''श्री गुरु जम्भेश्वराय नमः''

श्री गुरु जम्भेश्वर जी द्वारा उच्चरित

सबदवाणी की हिन्दी टीका

जम्भसागर

टीकाकार

कृष्णानन्द आचार्य

श्री बिश्नोई मन्दिर, ऋषिकेश (उत्तराखण्ड)

प्रकाशक-

जाम्भाणी साहित्य अकादमी

जम्भसागर

प्रकाशक : **जाम्भाणी साहित्य अकादमी**
सेक्टर-1, ई-134, जयनारायण व्यास कॉलोनी,
बीकानेर (राजस्थान)
E-mail : jsakademi@gmail.com
Website : www. jambhani.com

ग्यारहवां संस्करण : संवत् 2074, (2016 ई.)
जम्भेश्वरीय शताब्दी-संवत् 480

© **लेखकाधीन**

ISBN : 978–93–83415–27–4

मूल्य : 100/- **(एक सौ रुपये)**

मुद्रक :
तिलोक प्रिंटिंग प्रेस
मोहता चौक बीकानेर

Jambhsagar by krishnanand Aacharya
Pages : 288

सादर समर्पण

तेज पुंज विष्णु स्वरूप गुरु जाम्भोजी

के मुखारविन्द से उच्चरित सबद-सूत्र सार

रूप की यह नवीन विस्तृत सागर सदृश व्याख्या

जम्भसागर परंपरा के पूज्य लेखक, प्रकाशक

तथा पाठकों को सादर समर्पित।

भूमिका

भारतीय संस्कृति का अपना एक विशद् इतिहास है। जो अपने आप में अति विलक्षण है। इसका मुख्य आधार अध्यात्मवाद है। अध्यात्मवाद की परिणति ही मोक्ष है। मोक्ष भारतीय जीवन का अन्तिम सोपान है। अत: पुरूषार्थ चतुष्ट्य भारतीय संस्कृति के महत्त्वपूर्ण अंग है। जिसका सम्यक् ज्ञान अपौरूषेय वेद वाक्यों से हो सकता है। वेदों में जन कल्याणार्थ सभी साधनों का विधान विहित है किन्तु वेदों की भाषा व प्रतिपादक विषय कठिन होने के कारण जन सामान्य को उसका ज्ञान होना असंभव है। अत: परमपिता परमात्मा देश काल परिस्थिति के अनुरूप अवतीर्ण होकर, दिव्य ज्ञान की राशि, वेदों का कर्म, उपासना, ज्ञान भेदों सहित परम तत्त्व विषयक प्रतिपादन करते हैं।

अध्यात्मवाद का प्रतिपादन करने वाले शास्त्र दो भागों में विभक्त है, श्रुति तथा स्मृति रूप में। अपौरूषेय वेदों की ज्ञान राशि का नाम श्रुति है तथा वेदों के अतिरिक्त इतिहास पुराण व धर्म शास्त्र स्मृति कहलाते हैं। जितने भी अवतारी महापुरूष हुऐ हैं उन्होंने जन कल्याणार्थ ज्ञानोपदेश दिया है। वह सभी स्मृति कोटि में आता है किन्तु श्री जम्भेश्वरजी ने अपने ज्ञानोपदेश को वेद की संज्ञा दी है **''मोरा उपख्यान वेदूं''।**

पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी का सन्धि काल भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग है। उस समय में अनेकों महापुरूष अवतरित हुए जिनके दिव्य ज्ञानोपदेश से नयी चेतना भारतीय जन मानस में आयी। अत: इस काल को संत युग भी कहा जा सकता है। इससे पूर्व इस पवित्र भारत भूमि पर यवनों का शासन था जिससे धर्म कर्म विनाश के कगार पर जा पहुंचे थे। शैतान लोग निर्भय होकर विचरण करने लग गये थे। जिससे सारा वातावरण भयावह व अशान्त हो गया था। दुनिया में त्राहि त्राहि हो चुकी थी। तब अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक परमपिता परमात्मा अपनी प्रतिज्ञानुसार **''जां जां शैतानी करे उफारूं, तां तां महत न फलियो''** अनेक जगहों पर सन्त महापुरूषों ने अपना पवित्र संदेश भेजा जिनमें सन्त कबीर, रैदास, नानक, सूरदास, तुलसी इत्यादि हैं।

इन्होंने निर्भीकता से अपने अपने ढंग से जनमानस में नयी चेतना व धार्मिकता प्रदान की। यद्यपि परमपिता परमात्मा सदा एक रस रहते हुऐ भी अपनी इच्छानुसार अपनी काया का स्वयं निर्माण कर लेते हैं। जिसे अवतारी की संज्ञा देते हैं। सोलहवीं शताब्दी के संत युग में भगवान कृष्ण ने ही श्री गुरु जम्भेश्वर के रूप में अवतार लिया। सतयुग में स्वयं प्रभु ने नृसिंहावतार में भक्त प्रहलाद की रक्षा का वचन दिया था कि कलयुग के धर्मोद्धार के लिये मैं स्वयं आकर तुम्हारे बारह कोटि जीवों की रक्षा (मुक्ति प्रदान) करूंगा तथा कृष्णावतार में नन्द बाबा व यशोदा की प्रार्थना पर वचन दिया था कि और तो सभी प्रकार की रास लीला आदि से आप सन्तुष्ट है किन्तु जन्म लीला अवशिष्ट है, मैं उसे कलयुग में आपके यहाँ ही करूँगा।

साहबराम जी ने कहा है-**लोहट है नन्दराय जसोदा हांसा, भई मारूस्थल बृज भोम पींपासर बृज है सही। पींपासर बृज है सही नै, वचनों के प्रति पाल। कृष्ण कवल के कारणै, गुरु जम्भ लियो अवतार**" तथा '**प्रहलादा सूं वाचा कीवी आयो बारहां काजै।**" एक पंथ दो काज'' सतयुग व द्वापर युग के वचन दोनों एक साथ निभाने के लिये प्रभु ने अच्छा अवसर जानकर अवतार लिया। जैसे भगवान नृसिंह के अवतार में लौकिक बन्धन मर्यादा स्वीकार नहीं की, **''ना मेरे माय ना मेरे बाप न, म्हे अपनी काया आप संवारी''** सतयुग में भक्त प्रह्लाद की रक्षा के लिये खम्भ से नृसिंह रूप में प्रगट हुऐ, ठीक उसी प्रकार उत्तम अवसर देख करके संवत् 1508 भादव वदि अष्टमी को अर्धरात्रि में ग्राम पींपासर (जिला नागौर राज.) के ठाकुर लोहट जी की भक्ति से द्रवित होकर उनके पूजा गृह में दिव्य तेजोमय बालक के रूप में प्रगट हुए।

भले ही संसार अपने स्वार्थिक सम्बन्ध जोड़ ले तो कोई हर्ज नहीं है, किन्तु स्वयंभू तो है ''पद्म पत्रमिवाम्भस''। संसार से समसताक होते हुए भी निर्लेप रहते हैं। प्रभु ने सांसारिक व्यवहार कृष्णावतार में ही निभा दिये थे। यहां तो केवल वचनबद्धता निभाने ही आये थे। **''नर निरहारी एक लवाई प्रगट जोत विराजै।''**

श्री गुरु जाम्भोजी महाराज का स्वरूप तेजोमय ज्योति स्वरूप था। अत: आजीवन सांसारिक कार्य करते हुऐ भी निरहारी थे।प्रकृति के अधीन नहीं थे **''महापण को आधारूं।''** स्वयं अपने ही आधीन थे। श्री वील्होजी ने जाम्भोजी का परिचय इस प्रकार से दिया है।

बरस सात संसार बाल लीला निरहारी, बरस पांच बावीस पाल ऐता दिन चारी।
ग्यारै उपर चालीस शब्द कथिया अविनासी, बाल गुवाल गुरु ज्ञान मास तीन वरस पच्यासी।
पनरासै रू तिरानवै, वदि नुवि आगले, पालटे रूप रहियो र, धू इडग जोति संभराथले।

आज से पांच शताब्दी पूर्व श्री गुरु जम्भेश्वरजी ने अवतार लेकर जन कल्याण के लिये मानवता का परिष्कृत संविधान मानव मात्र के सामने रखा जो कि युक्ति मुक्ति का अमूल्य खजाना है। प्रारम्भिक अवस्था से ही प्रभु ने दिव्य अलौकिक चमत्कारों से जनमानस को प्रभावित कर सन्मार्ग में लाने का प्रयास किया। सात वर्ष तक अलौकिक बाल लीला की तथा मौन भंग करके अनुमानत: सं. 1515 भादवा वदि अष्टमी के दिन प्रथम शब्द का उच्चारण किया। सताइस वर्ष गो सेवा में व्यतीत किये। इस बीच ही हांसा लोहट का देहान्त होने पर सम्पूर्ण संपति जन हित के लिये लगाकर चौंतीस वर्ष की अवस्था में सम्भराथल पर निश्चित रूप से विराजमान हो गये।

सं. 1542 में कार्तिक वदि अष्टमी के दिन अपने वैकुण्ठ धाम से दिव्य कलश का आह्वान किया जिसमें पवित्र गंगादि सभी तीर्थो का जल लाकर प्रविष्ट किया, स्वयं श्री गुरु जाम्भोजी ने पाहल बनाकर बिश्नोई पंथ का प्रवर्तन किया। जिसमें अनेक राजा-महाराजाओं तथा कृषक, ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि लोगों को उन्नतीस नियमों के आदेशों पर चलने की प्रतिज्ञा करवा करके **''जीया नै जुगति मूवा नै मुक्ति''** सुगम मार्ग का दिग्दर्शन करवाया। सं. 1593 मिंगसर वदि नवमी तक लगातार मानव मात्र को ज्ञानोपदेश दिया। वह उपदेश 'सबदवाणी' के नाम से प्रसिद्ध है।

श्री गुरु महाराज ने अपने इस काल में अनेकों सबद कहे थे। किन्तु सभी सबद इस समय उपलब्ध नही है क्योंकि काल कराल ने अपने में ही समाहित कर लिये हैं। प्राचीन परंपरा में वेदों से लेकर सन्त युग तक ज्ञानोपदेश कण्ठस्थ करने की परंपरा थी। अत: वेदादि सभी श्रुति कहलाये। कण्ठ करने की परंपरा के बाद में पांडुलिपि में लिखा जाने लगा जिसमें केवल 120 सबद ही तथा कुछ संध्या मन्त्रादि ही उपलब्ध है, जो कि अद्यावधि प्रचलित है।

इस वर्तमान भौतिक युग में विश्व शांति का एक मात्र उपाय है श्री देवजी द्वारा उच्चरित सबदवाणी ही हो सकती है। सबदवाणी एवं उनतीस नियम सभी वेद शास्त्रों का सार होते हुए समसामयिक है। श्री गुरु महाराज जी का उपदेश आज से पांच शताब्दी पूर्व उपयोगी था वैसा ही वर्तमान समय में भी उपयोगी सिद्ध हो रहा है। सबदवाणी तत्कालीन ठेठ मरूभाषा में है क्योंकि जन साधारण को सन्मार्ग में लाने के लिये ही सबदवाणी का सृजन हुआ है। सबदवाणी मरुभाषा में गेय पदों की एक अनुपम विधि है। जिसे संशोधन के नाम पर शुद्ध मरुभाषा को संस्कृत निष्ठ हिन्दी के रूप में बदला है जो कि प्रचलित सबदवाणी का पाठ प्राचीन पाण्डुलिपि से मेल कम खाता है। वास्तव में संशोधन के नाम पर मूल भाषा में परिवर्तन नहीं होना चाहिये। टीकाएँ कितनी ही क्यों न हो मूल में बदलाव नहीं होना चाहिये।

अद्यपर्यन्त सबदवाणी पर अनेक टीकाएँ हुई है मूल रचना की जितनी अधिक व्याख्याएँ होती है उतना उसका अधिक महत्व होता है। इस सन्दर्भ में जम्भ संहिता, जम्भगीता, जम्भसागर, शब्दवाणी, बिश्नोई धर्म

प्रकाश आदि में उनतीस नियम व सबदों की अपने अपने ढ़ंग की विशद् व्याख्याएँ है। जम्भ संहिता में श्री ईश्वरानन्द जी ने उनतीस नियमों की विस्तृत व्याख्या की है। जिसका अनुकरण प्राय: उतरवर्ती सभी व्याख्याकारों ने किया है। श्री स्वामी सच्चिदानन्द जी ने जम्भगीता नामक व्याख्या में सबदों के मौलिक अर्थ तक पहुंचने का प्रयास किया है। बहुचर्चित जम्भसागर नामक शब्दों की व्याख्या श्री रामानन्द जी ने अद्वैतपरक की है। जिसका प्रकाशन स्वामी ज्ञानप्रकाश जी ने कई बार किया है। इन्हीं के शिष्य आचार्य कृष्णानन्द जी ने ''जम्भसागर'' नाम से सबदवाणी तथा उनतीस नियमों की विशेष व्याख्या प्रस्तुत कर रहे है। यह आप पाठकों के हाथों में है। डॉ. हीरालाल माहेश्वरी ने मूल विषयों को उजागर करने के लिये ''सबदवाणी'' नामक व्याख्या की है। जिसमें हठ योग पद्धति का विशेष आग्रह है। श्री स्वामी भागीरथदास जी आचार्य ने ''बिश्नोई धर्म प्रकाश'' में सबदों की व्याख्या में उपर्युक्त सभी टीकाकारों का समन्वय किया है जो कि बहुत उपयोगी है।

उपर्युक्त सभी महानुभावों ने **सबदवाणी** की व्याख्या करके मानव समाज का बहुत बड़ा उपकार किया है। फिर भी ''शब्दांरा अर्थ अनन्त है जाणैं सिरजण हार'', इस उक्ति को मध्य नजर रखने पर अभी तक शब्दों के कई अंश अछूते से प्रतीत हो रहे है। जब तक पाठकों को विषय का वास्तविक अर्थ हृदयांगम नहीं हो पाता तब तक संतुष्टि नहीं हो पाती है।

कई वर्षों से संत समाज व भक्तगण स्वामी कृष्णानन्द जी आचार्य तथा मुझे प्रेरित कर रहे थे कि विचार विमर्श करके प्राचीन परम्पराओं को ध्यान में रखकर शब्दों के मूल विषयों की व्याख्या के द्वारा उजागर करे। श्री स्वामी कृष्णानन्दजी वर्षों से जाम्भाणी साहित्य का प्रकाशन करते आ रहे हैं, जो कि सर्वविदित है। आपका जाम्भाणी साहित्य का विशेष अध्ययन है। अत: मैंने आपसे सात मार्च 1989 को फाल्गुन मेले मुकाम पर विशेष आग्रह किया कि सबदवाणी की एक खोजपूर्ण व्याख्या करो, जिससे श्रद्धालु भक्तों की जिज्ञासा पूर्ण हो सके। जम्भसागर का प्रकाशन आपके पास ही है। अत: आपने उसी नाम से जम्भसागर नामक सबदवाणी व नियमों की व्याख्या की है, जो यह आप सभी पाठकों के समक्ष है।

इसका अध्ययन करने पर मुझे मूल विषयों की व्याख्या के उजागर होने में काफी हद तक संतोष है। संभवत: आप सभी पाठकगण भी अवश्य ही संतुष्ट होंगे। ऐसी मैं आशा करता हूँ। व्याख्याकार का प्रयास आप लोगों के सन्तुष्ट होने पर ही विशेष सफल होगा।

स्वामी रामानन्द आचार्य
पीठाधीश्वर, मुक्तिधाम मुकाम,
त. नोखा, बीकानेर (राज.)

निवेदन

इस प्रकाशन से पूर्व भी ग्यारह बार इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का प्रकाशन हो चुका है। इस समय भी इस ग्रन्थ की मांग बनी हुई है। इस मांग को ध्यान में रखते हुए ''जाम्भाणी साहित्य अकादमी'' ने इस जम्भसागर का प्रकाशन किया है। ''साखी भावार्थ प्रकाश'' का प्रकाशन करवाने की प्रक्रिया भी चल रही है। अतिशीघ्र ही मूल जाम्भाणी साहित्य एवं अनेक प्रकार की व्याख्याएँ विभिन्न लेखकों द्वारा विरचित ग्रंथों का प्रकाशन भी शीघ्र ही किया जायेगा। जाम्भाणी साहित्य का जन-जन तक पहुँचाने का बीड़ा ''जाम्भाणी साहित्य अकादमी'' ने उठाया है। आप लोगों की सद्भावना एवं सहयोग रहेगा तो अवश्य ही अतिशीघ्र यह महत्त्वपूर्ण कार्य आपकी नव निर्मित अकादमी कर पायेगी। प्राचीन हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ जो हमारे पास धरोहर के रूप में विद्यमान है, उनकी सुरक्षा भी आधुनिक तकनीक से की जायेगी ये सभी गुरुतर कार्य के लिये बीकानेर में अकादमी के भवन निर्माण का कार्य चल रहा है। अतिशीघ्र ही आपके सामने भव्य भवन होगा जिसमें अब तक उपेक्षित विशाल जाम्भाणी साहित्य का तथा अन्य सभी प्रकार के धार्मिक, सामाजिक, ऐतिहासिक ग्रन्थों का संग्रह होगा। जिज्ञासु पाठक एवं शोधार्थी विद्यार्थियों के लिये मूल साहित्य उपलब्ध करवाने की भी व्यवस्था होगी।

अब तक प्रकाशित जाम्भाणी मूल सबदवाणी के पश्चात् सर्वाधिक मांग इस जम्भसागर की है। इस समय भी वही शुभ कार्य ''जाम्भाणी साहित्य अकादमी'' द्वारा किया जा रहा है। अकादमी के सभी सदस्यगण, सहयोगी, दानदाता एवं शुभचिन्तकों को बहुत-बहुत धन्यवाद।

आचार्य कृष्णानन्द
अध्यक्ष-
जाम्भाणी साहित्य अकादमी

सम्मति

जब कभी भी सुषुप्त मानव जगत ने नयी चेतना पायी है तो उसका स्रोत रहा है- साहित्य। उसी से जुड़ा यह जम्भसागर नामक नूतन ग्रन्थ सम्प्रति प्रचलित जाम्भाणी साहित्य में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है तथा यह अपने आप में अपूर्व है। मूल सबदवाणी एक अथाह पारावार है जो परमपिता परमात्मा श्री जम्भेश्वर भगवान के मुखारविन्द से उच्चरित होने से स्वत: प्रमाण स्वरूप अपौरूषेय वेद है क्योंकि सर्व धर्मो का मूल तो वेद ही है। वेद स्वत: प्रमाण और ईश्वरीय गिरा है। यदि सबदवाणी को पंचम वेद कहे तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी क्योंकि स्वयं श्री जम्भेश्वर भगवान के मुखारविन्द से निसृत हुआ यह महावाक्य प्रमाण के लिये मैं प्रयाप्त समझता हूं **''मोरा उपख्यान वेदूं।''**

सभी जाम्भाणी प्राच्य-प्रतीच्य विद्वन्मूर्धन्य इन्हीं को अपनी उत्कंठा तथा गवेषणा का एक मात्र केन्द्र मानकर इन्हीं के परम पावन प्रसृमर ज्ञान के परिसर में निरंतर अपनी मनीषा को परिष्कृत करते रहे हैं। इस दुर्बोध वेद-राशि को यथार्थ निरूपण के लिये प्रभु प्रेरणा से ही तप: पूत विद्वरेण्य श्री स्वामी कृष्णानन्द जी आचार्य के अन्त:करण में समीरणा हुई और साधारण लोगों को यह हृदयांगम कराने के लिये अपने अनुभव और तत्वानुसंधान के द्वारा व्याख्या करके इस अथाह पारावार को जन साधारण तक पहुँचाने का जो अपूर्व कार्य किया है, जो अवश्य ही सराहनीय है।

सबदवाणी जैसे अतुलनीय ग्रन्थ पर समय-समय पर आवश्यकतानुसार अनेक आशय और अर्थ निकाले तो कोई नयी बात नहीं है। इससे ही तो ग्रन्थ की महानता महिमा का पता चलता है। इससे यह भी जाहिर हो जाता है कि मूल सबदवाणी का निश्चय पूर्वक **''इदं इत्थं''** कहना अति दुरूह होगा। यथार्थ में धर्म अधर्म को जानने के लिये पथ-प्रदर्शक तो सबदवाणी ही है, जिसमें सभी धर्मो का समन्वय मिलता है।

श्री स्वामी कृष्णानन्द जी के द्वारा विरचित व्याख्या का सम्यक् प्रकारेण आद्य-अन्त अध्ययन करने पर ऐसा लगता है कि अन्य धर्म ग्रन्थ सद्गुरु श्री जाम्भोजी भगवान की गिरा के द्वारा प्रतिपादित धर्म की सुगमता से बुद्धिगम्यार्थ करवाने हेतु है।

मैं उम्मीद करता हूँ कि यह नूतन संस्करण विज्ञ एवं सबदवाणी जिज्ञासुओं के लिये सबदवाणी चिंतन में समरूप से योग सिद्ध होगा।

आचार्य गोवर्धनराम विश्नोई
श्री बिश्नोई संत आश्रम,
सोनड़ी, जिला बाड़मेर (राज.)

विषयानुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
1	मंगलाचरण	10
2	जम्भाष्टक (हिन्दी अर्थ)	11
3	संध्या (वृहन्ननवण)	13
4	गोत्राचार	16
5	मन्त्र ऋग्वेद प्रथम	18
6	प्रातः सांयकाल के होम मन्त्र	19
7	सबदवाणी प्रारम्भ	21
8	सबद संख्या 1 से 120 तक	22
9	कलश पूजा मन्त्र	256
10	पाहल मंत्र	262
11	कलश स्थापना एवं पाहल के सम्बन्ध में	265
12	बालक मंत्र	268
13	बालक गुरु दीक्षा मंत्र (सुगरा मंत्र)	270
14	साधु गुरु दीक्षा मंत्र	272
15	उनतीस नियमों की विस्तृत व्याख्या	274
16	अभिवादन प्रणाली तथा अन्य विविध विषय	295
17	जम्भ चरित्र ध्वनि	302
18	आरतियाँ	302

''श्री गुरु जम्भेश्वराय नमः''

''सबदवाणी जम्भसागर''

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवाव शिष्यते।।
ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

वह पूर्ण ब्रह्म परमात्मा सत् चित् आनन्द घन परमेश्वर सदा सर्वदा परिपूर्ण है। यह जगत भी उसी परमात्मा की सृष्टि होने से ही पूर्ण है क्योंकि उस पूर्ण से ही पूर्ण जगत की उत्पति हुई है। पूर्ण की संतान भी पूर्ण ही होगी अधूरी नहीं। उस सर्व समर्थ सर्वव्यापक पूर्ण ब्रह्म से ही पूर्ण जगत निकल जाने पर भी पीछे पूर्ण ही बच जाता है। दैहिक, दैविक और भौतिक ताप कष्टों की शांति हो।

ओ३म् सह नाववतु, सह नौ भुनक्तु, सह वीर्यं करवा वहै।
तेजस्वी नावधीतमस्तु, मा विद्विशा वहै।

हे पूर्ण परमात्मन्! आप गुरु-शिष्य हम दोनों की सभी प्रकार से साथ-साथ रक्षा करें। हम दोनों का साथ साथ सम्यग्प्रकारेण पालन-पोषण करें। हम दोनों साथ-साथ ही तेजस्वी होवें। बल प्राप्त करे तथा हमारा अध्ययन-अध्यापन किया हुआ अत्यन्त ओजस्वी होवें। कहीं पर भी हम पराजित न होवें। परस्पर स्नेह भाव बना रहे। किसी से द्वेश भाव न करें। हे प्रभु! हमें ऐसा बल प्रदान कीजिये।

''दोहा''

आदि शब्द गुरु एक था, ओम ही नाम कहाय।
नाम रूप सब जगत भया, शब्द ही रूप रहाय।
वही शब्द गुरु जम्भजी, शब्द ही करत उच्चार।
शब्द गुरु हम सुरति है, निस दिन करत विचार।
शब्द ही शब्द प्रणाम करि, वर्णेउ शब्द अनूप।
अर्थ ज्ञान आखर चहूं, जम्भेश्वर सत रूप।
जो कुछ कहूं से मैं नहीं, कहन हार वही और।
भला भया यदि अर्थ में, सतगुरु संत का जोर।

★★★★

''अथ जम्भाष्टक प्रारम्भ''

ओ३म् मुखे चारू शोभं महा मन्द हास्यं, करे जाप्य मालं गलेजीर्ण चैलम्।
महा गैर रक्तं शिर स्थान जूटं, पर ब्रह्म रूपं भजे जम्भमीशम्।1।
स्थले चोपवेशं वरे धूर वैष्टं, मुखे शब्द शास्त्रं श्रुते पार जातं।
जनैर्वैष्टमान सदा साधु वृन्दे, पर ब्रह्म रूपं भजे जम्भमीशम्।2।
अदृश्योदरं दृष्ट भूत तथापि, सदैवाभिमंत्रं महा योग सिद्धेः।
करे चारू पात्रं महा वृक्ष फलं, पर ब्रह्म रूपं भजे जम्भमीशम्।3।
स्वयं शेष रूपं स्वयं ब्रह्म रूपं, सदा निर्विकारं सदा मात्र देहम्।
महाकान्ति शोभं जितं शड्गुणेशं, पर ब्रह्म रूपं भजे जम्भमीशम्।4।
गतं रोग शोकं गतं राग द्वेषं, गतं पाप पुण्यं गतं क्रोध कामम्।
गुणातीत विष्णुं निराकार रूपं, पर ब्रह्म रूपं भजे जम्भमीशम्। 5।
दया ज्ञान सिन्धुं ध्रुवलोक बन्धुं, शुचि शीलवन्तं शुभालोकवन्तम्।
कृतं पाप दूरं मनो वाक दूरं, परब्रह्म रूपं भजे जम्भमीशम्। 6।
कृतानन्द भक्तं निवृताक्षैर्लब्धं, विनाक्षैर्प्रभुक्तिं जनस्यातिहार्दम्।
मुख ख्यात बोधं गतिं देहिनां च, परब्रह्म रूपं भजे जम्भमीशम्। 7।
महायोग वैद्यं हतं पापीनां च, नृणामेक गम्यं जलानामिवाब्धि।
महादैत्य नाशं सदा धर्म पालं, पर ब्रह्म रूपं भजे जम्भमीशम्। 8।

श्री जम्भाष्टकं मनसा, प्रातरूत्थाय मानवः।
विजितेन्द्रियः पठेन्नित्यं सर्व पापैर्प्रमुच्यते।।

भावार्थ–सर्वजन उपास्य देव परम गुरु श्री जम्भेश्वर जी का दिव्य कान्तिमय मुख अति सुन्दरता से शोभायमान हो रहा है एवं ताप जनित खिन्नता रहित होते हुए स्वाभाविक आनन्द जनित हास्य की छटा बिखेर रहे हैं। कर कमलों में ईश्वरीय जप करने के लिये एक माला धारण कर रखी है और दिव्य देह को ढ़कने के लिये मोटा खादी का वस्त्र जो अच्छे गेरूवें रंग में रंगा हुआ, जिसने चोले का आकार धारण कर रखा है। यही प्रिय वस्त्र अपनाया है और सिर पर घनी जटाओं का जूट बना रखा है। ऐसे परब्रह्म परमेश्वर जी की नित्य सेवा भजन करें उन्हीं के प्रति श्रद्धा नमन करते हुऐ समर्पित होवें अर्थात् भजन करें।1।

जो मरूस्थलीय कैलाश रूपी सम्भराथल पर विराजमान है। वहीं की पवित्र धूली ने दिव्य शरीर को वेष्टित करके विभूषित कर रखा है, मुखारविन्द से शास्त्र वेद पुराणादि के पारगामी दिव्य शब्दों का सुमधुर उच्चारण कर रहे हैं। सदा ही देव तुल्य साधु, सज्जन, भक्त तथा राजा महाराजाओं द्वारा घिरे हुऐ रहते हैं। ऐसे परब्रह्म रूप जम्भेश्वरजी की नित्य ही सेवा करें, उन्हीं के प्रति श्रद्धा से नमन करते हुए समर्पित होवें अर्थात् भजन करें।2।

सम्पूर्ण शरीर प्रत्यक्ष होने पर भी उनका पेट पीठ अन्य मनुष्यों की भांति दृष्टिगोचर नहीं होता अर्थात् चारों ओर मुख ही मुख दिखायी देता है। सदैव ही महायोग एवं सिद्धि देने वाले महामन्त्र के दाता हैं। जलादि ग्रहणार्थ हाथ में नारियल आदि किसी वृक्ष का फल पात्र अर्थात् बर्तन के रूप में धारण कर रखा है। ऐसे परब्रह्म रूप जम्भेश्वर जी की नित्य हम सेवा करें, उन्हीं के प्रति श्रद्धा से नमन करते हुऐ समर्पित होवें अर्थात् भजन करें।3।

स्वयं ही शेष रूप है तथा स्वयं ही परब्रह्म रूप है, सदा ही जगत में रहते हुए भी निर्विकार है तथा नित्य ही मात्र देही जीवात्मा से ही संसार में विचरण करते हैं अर्थात् शरीर का किंचित भी भान नहीं है। इसलिये आत्म ज्योति प्रकाश होते हुए समीपस्थ जनों को प्रकाशित करते हैं और सुख, दु:ख, ज्ञान, प्रयत्न, इच्छा, द्वेश इन छ: गुणों को जिन्होंने जीत लिया है ऐसे परब्रह्म रूप जम्भेश्वर जी की नित्य ही हम सेवा करें, उन्हीं के प्रति श्रद्धा से नमन करते हुए समर्पित होवें अर्थात् भजन करें।4।

जिनके रोग-शोक, राग-द्वेश, पुण्य-पाप, काम-क्रोध आदि विकारों की निवृति हो चुकी है। सत्व, रज, तम इन तीन गुणों से उपर उठ चुके हैं। निराकार विष्णु परमात्मा का ही स्वरूप है। ऐसे परब्रह्म रूप परमेश्वर श्री जम्भेश्वरजी की नित्य ही हम सेवा करें, उन्हीं के प्रति श्रद्धा से नमन करते हुऐ समर्पित होवें अर्थात् भजन करें।5।

दया ज्ञान के सागर है। सत्य सनातन लोक में पहुँचाने के लिये सभी लोगों के लिये परम बन्धु है। पवित्र शील व्रत को धारण कर रखा है तथा अन्य समीपस्थ जनों को भी धारण करवाते हैं एवं शुभ प्रकाशमय दैदीप्यमान स्वरूप धारण किया है। मनसा, वाचा, कर्मणा दोषों व पापों को दूर कर दिया है। ऐसे परब्रह्म रूप जम्भेश्वर जी की नित्य ही हम सेवा करें, उन्हीं के प्रति श्रद्धा से नमन करते हुऐ समर्पित होवें अर्थात् भजन करें।6।

प्रत्येक व्यक्ति के प्रति अति हार्दिक शुभ कामनाएँ करते हैं अन्त: हृदय से जुड़कर हृदय की पीड़ा जानकर निवृत करते हैं अर्थात् जो अप्राप्य है उसे तो प्राप्त करवाकर भक्तों को आनन्दित करते हैं तथा जो प्राप्त हो चुका है किन्तु कष्टदायी है तो उससे निवृत करके सभी प्रकार से अपने प्रियजनों को आनन्दित करते रहते हैं तथा प्रमुख कथा आख्यानों द्वारा बोध करवा करके सज्जन प्राणियों को सद्गति देते हैं अर्थात् जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा दिलवाते हैं। ऐसे परब्रह्म रूप परमेश्वर श्री गुरु जाम्भोजी की नित्य ही हम सेवा करें, उन्हीं के प्रति श्रद्धा से नमन करते हुऐ समर्पित होवें अर्थात् भजन करें।7।

महायोग विधि के दाता हैं, पापी जनों के पाप का हनन करते हैं तथा जिस प्रकार से नदी नालों के रूप में बहकर जल अन्त में समुद्र में ही समा जाता है। वह समुद्र ही सम्पूर्ण जल का गन्तव्य स्थान है उसी प्रकार से ही सम्पूर्ण प्राणियों का स्थान अर्थात् निकलने तथा समाहित होने का एक ही वह परब्रह्म परमात्मा ही स्थान है। वही अनेकों रूप धारण करके महा दैत्यों का विनाश करते हैं तथा सदा ही धर्म की रक्षा करते हुए परब्रह्म रूप परमेश्वर श्री जम्भेश्वरजी की हम सेवा करें, उन्हीं के प्रति श्रद्धा से नमन करते हुए समर्पित होवें अर्थात् भजन करें।8।

एकाग्र मन से जो मानव प्रात: काल उठकर इस जम्भाष्टक महा मन्त्र को नित्य प्रति पढ़ेगा, उसके सभी पाप छूट जायेंगे।

★★★★

''श्री गुरु जम्भेश्वर प्रणीतम्''

संध्या (वृहन्नवण)

ओ३म् विसंन विसंन तूं भणिरे प्राणी, साधां भक्तां उधरणौं।

भावार्थ–श्री गुरु जम्भेश्वरजी ने जितने भी शब्द श्री मुख से कहे वे सभी किसी न किसी को निमित बना करके ही कहे हैं। यह संध्या मंत्र भी अपनी बुआ तांतू के प्रति कहा है तथा बाल्यावस्था में ही उच्चारण किया है। हे तांतो बुआ! तूँ इस शरीर से तो पिता की बहिन होने से बूआ लगती है किन्तु शरीर से प्राणों का संचार होने से तूँ प्राणी है इसलिये प्राणी होने से तेरा कर्त्तव्य बनता है कि जो तुम्हारे प्राणों का आधार सर्वेश्वर भगवान विष्णु है। उसका जप कर अर्थात् स्मरण ध्यान करते हुए उन महान प्राणों में अपने प्राण सम्मिलित कर। उस परमपिता परमात्मा विष्णु का भजन करते हुए अनेकानेक साधु तथा भक्तों का उद्धार हुआ है।

देवला सह दानूं दास्यब दानूं, मदसूं दानूं महम हंणों।

भगवान विष्णु की महिमा अनन्त है, यथा समय देवता तथा दानव दोनों को ही अभिमान हो गया था उस अहंकार का विनाश किया तथा उसी प्रकार से अन्य किसी समय में जो भगवान के भक्त थे अर्थात् दास थे उनका भी अहंकार बढ़ गया था, उसका भी हनन किया। कभी–कभी दास भक्त भी दानव सदृश अहंकारी हो जाते हैं। तब परमात्मा उनका अहंकार निवृत करते हैं तथा मधु, कैटक आदि भयंकर राक्षसों के अहं का विनाशक एक परम विष्णु ही है।

चेतो चित जांणी सारंग पाणी, नादे वेदे निज रहणौं।

हे संसार के लोगों! चेतो, हे बूआ! तूँ भी चेत अर्थात् सचेत हो जा, अब जागृत होने का सुअवसर आ चुका है तथा सावधान होकर उस धनुषधारी भगवान को बुद्धि तथा मन से ग्रहण धारण करो। वही परमेश्वर नाद ध्वनि तथा वेद के अन्दर समाया हुआ है अर्थात् अनहद नाद एवं वेद से ही वह विष्णु प्राप्त किया जा सकता है।

आदि विसन बाराहूं, दाढ़ापति धर उधरणौं।

आदि अनादि भगवान विष्णु ने सृष्टि के आदि में जब हिरणाक्ष ने इस धरती को जल में डूबा दिया था ठीक उसी समय में ही बाराह रूप धारण करके अपनी दाढ़ों पर धरती को रख कर उद्धार किया था तथा हिरणाक्ष को मार डाला था। वही विष्णु जपने योग्य है।

लिछमी नारायण निहचल, थाणों थिर रहणों।

इस संसार में अनेकानेक परिवर्तन होते हैं उस परिवर्तन की चपेट में देव, दानव, मानव आदि कोई भी स्थिर नहीं रह सकते किन्तु एक लक्ष्मी पति भगवान विष्णु ही स्थिर है उनका आसन कभी भी हिलता नहीं है क्योंकि वह देश काल जाति से परे है।

निमोह निपाप निरंजन सांमी,भणि गोपालूं त्रिभुवन तारूं,भणतां गुणता पाप खयौ।

इस संसार के लोग उसे गोपाल के नाम से ही जानते हैं क्योंकि वह गोपालक श्री कृष्ण है। वह स्वयं तो मोह रहित है निष्पाप है माया रहित है। सम्पूर्ण सृष्टि का स्वामी है किन्तु सभी का स्वामी होते हुऐ भी मान, मोह,

माया रहित होना एक आश्चर्य ही है तथा तीनों लोकों में बसने वाले सदाचरण शील प्राणियों का उद्धार करने वाले भी वही है। उसी परमेश्वर का भजन स्मरण करने से अनेक जन्मों के संचित पापों का विनाश हो सकता है क्योंकि सामर्थ्यशाली तो वह एक ही है।

तिह तूठे मोख मुगति ज लाभै, अवचल राजूं खाफर खानूं खै गुवणौं।

उस परमात्मा के प्रसन्न हो जाने से मानव मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। यह दिव्य अनुपम फल मिलता है। जिसके पास यह फल आ जाता है उसका राज्य परमात्म वैकुण्ठ लोक में अविचल-स्थिर हो जाता है। वह प्राणी जन्म-मरण के चक्कर अर्थात् चौरासी लाख जीवायोनी में नहीं आता, यही परम फल का सुस्वाद है।

चीते दीठै मिरघ तरासै, बाघां रोलै गऊ तरासै तीर पुल्यै गुण बाण हयौ।
तपति बूझै धारा हरि बूठै, यों विसन जपंता पाप खयौ।

जिस प्रकार से चीते को देखकर हिरण भाग जाते है तथा बाघ की ध्वनि सुनकर गऊ भाग जाती है नहीं ठहर सकती तथा जिस प्रकार से धनुष की डोरी पर चढ़ा हुआ तीर छूटने पर आगे अपने लक्ष्य का वेधन अवश्य ही कर देता है, जब परमात्मा की अनुकंपा होती है तब आकाश में घटाएँ घिर आती है और क्षण भर में ही महान गर्मी को अपनी बौछारों से शांत कर देती है, ठीक उसी प्रकार से भगवान विष्णु की अराधना जप करने से पापों का पलायन हो जाता है। जिस प्रकार से प्रकाश के आने से उस देश में अन्धकार नहीं टिक सकता, ठीक उसी प्रकार से ही विष्णु के सामने पाप कदापि नहीं ठहर सकते।

ज्यौं भूख को पालन अन्न अहारूं, विष को पालन गरूड़ दवारूं।
कांही कांही पखेरवां सीचांण तरासै, विसंन जपंता पाप विणासै।

जिस प्रकार से अन्न खाने से भूख की निवृति हो जाती है अर्थात् भूख का शत्रु अन्न देवता है जो भूख का विनाश कर देता है तथा विशैले प्राणी जैसे सांप आदि का शत्रु गरूड़ है। अर्थात् गरूड़ को देखकर सांप भाग जाते हैं, एक साथ नहीं रह सकते, जहां गरूड़ जी रहेंगे वहां विष कदापि नहीं रह सकता तथा कुछ छोटे-छोटे पक्षी चिड़िया आदि बाज पक्षी को देखकर छुप जाते हैं या भाग जाते हैं उसके सामने नहीं ठहर सकते। ठीक उसी प्रकार से भगवान विष्णु के सामने पाप नहीं ठहर सकते, यहाँ पर विष्णु बलवान है तथा पाप निर्बल है, यह शाश्वत नियम है कि सबल के सामने निर्बल कभी भी नहीं ठहर सकता।

विसनुं ही मन विसनु भणियो, विसनुं ही मन विसनुं रहियौ।

हे मानव! यदि तुम्हें इस संसार में आकर कुछ प्राप्ति करनी है तो केवल मात्र एक विष्णु का ही जप स्मरण-ध्यान करना तथा जीवन यापन भी विष्णुमय अर्थात् आनन्दमय होकर ही करना। अपने जीवन की कथनी और करनी में अन्तर नहीं रखना। जीवन में विष्णु को धारण करके कोई भी शुभ कार्य करेगा तो उसका फल अत्यन्त सुमधुर ही होगा।

इकवीस कोड़ि बैकुण्ठ पहोंता, साचै सतगुरु का मन्त्र कहियों।

हे तांतू! इस विष्णु महामन्त्र का स्मरण ध्यान करते हुऐ इक्कीस करोड़ प्राणियों का उद्धार हो चुका है। यही सच्चे सतगुरु का बताया हुआ महा मन्त्र है। इसलिये तूँ भी इसी महामन्त्र का आश्रय ग्रहण कर, तेरा भी उन्हीं की तरह कल्याण हो जायेगा।

विशेष-गुरु जम्भेश्वर जी द्वारा उच्चरित यह संध्या मंत्र है। प्रातः सांयकालीन संध्या समय इसका

उच्चारण करना हमारी परंपरा है तथा अति आवश्यक भी है। इस महामन्त्र में विष्णु का नाम स्मरण ही बतलाया है। केवल एक विष्णु के स्मरण से ही अन्य सभी राम कृष्णादि अवतारों का जप स्वत: ही हो जाता है क्योंकि ये सभी अवतार भगवान विष्णु के ही हैं। इसलिये सभी का मूल विष्णु ही है। इस मन्त्र में विष्णु नाम की झड़ी सी लगा दी है। अन्यत्र शब्दों में ऐसा होना दुर्लभ है।

कुछ आधुनिक प्रतियों में ''इकवीस'' के स्थान पर ''तेतीस'' पद भी आया है। यह काफी विवाद का विषय बन चुका है। मेरी दृष्टि में तो यहां पर इकवीस पद ही ठीक है। इसीलिये मूल पाठ में यहां पर यही शब्द रखा है। इसमें कारण यह है कि गुरु जम्भेश्वर जी ने यह मन्त्र अपनी बुआ तांतू के प्रति सुनाया उस समय जब बिश्नोई पन्थ की स्थापना हुई थी, तब तेतीस करोड़ पार कैसे पहुँच गये? स्वयं गुरुजी ने कहा है कि-'**आयो बारां काजै, बारां में सूं एक घटे तो सुचेलो गुरु लाजै। बारा थाप घणां न ठाहर।**' इत्यादि अनेक स्थलों पर यही कहा है कि बारह करोड़ प्राणियों के उद्धार के लिये आया हूँ। तब यह बात स्पष्ट है कि तेतीस कैसे कह सकते हैं क्योंकि अब तक इक्कीस करोड़ का उद्धार करना ही कर्त्तव्य पूर्ण हुआ है। तब तेतीस करोड़ का उद्धार स्वयं जम्भेश्वर जी कैसे कह सकते हैं। यह बारह करोड़ उद्धार का कार्य तो अब करना है, यदि तेतीस का कहते हैं तो परस्पर विरोध उत्पन्न होता है। इसलिये तेतीस की जगह इक्कीस पद ही ठीक है तथा प्राचीन प्रतिलिपियों में भी ऐसा ही है। आधुनिक प्रतियों में कहीं प्रमादवश या अज्ञानता में यह तेतीस पद लिखा गया है।

इस बात का समर्थन साखियों में भी संत कवियों ने अनेक स्थानों पर किया है-बारा इकवीसां मिले, लंघे भवजल पार, बसती बारा इकवीसा मिले, हमारे गुरु भाई तथा अन्य साखियों में भी ऐसा ही अनेक जगहों पर स्पष्ट लिखा है।

★★★★

अथ गोत्राचार प्रारम्भ

ओ३म् जदूवास रूपं पूज्यत्रं सामनिधिं गुणनिधिं आकाश पितरम्।
सतारामं पंचम पाताल मुखं वरूण ते शिव मुखम्।।1।।

भावार्थ-हे वरूण! हे जलीय अधिष्ठाता देवता! आपका स्वरूप सर्वत्र व्यापक है। जहाँ कहीं भी सृष्टि की किंचित मात्र भी झलक है, वहीं पर आप जल रूप में विद्यमान है। आप सभी प्राणी मात्र के ग्राह्य है। जल बिना जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती इसलिये हे देव! आप सदा सर्वदा पूजनीय है। आपके गमन की ध्वनि विशेष सामगान की निधि है, आपसे ही गान विद्या सीखी है, आप ही गुणों के खजाना है। परम्परा आकाश ही आपका पितामह लगता है तथा उसी में ही आप स्थित रहते हैं क्योंकि पितामह की गोद में पौत्र बैठता है। (आकाश से वायु, वायु से तेज तथा तेज से जल की उत्पति होती है।)

आप ही सत में रमण करने वाले हैं क्योंकि आपकी उत्पति, स्थिति सत्य पर ही आधारित है। हे देव! आपकी गति तो उपर से लेकर नीचे तक पांचों पातालों में भी समान रूप से है। जल की प्राप्ति नीचे गहराई में ही होती है क्योंकि आपका मुख सदा ही नीचे की ओर रहता है। इस प्रधानता के कारण आप नीचे की ओर बहने वाले हैं। आप स्वयं नीचे की ओर बहकर अपने प्रियजनों को उपर उठाते हैं। हे देव! आपका मुख नित्य प्रति हमारे लिये कल्याणकारी होवें, यही हमारी करबद्ध प्रार्थना है।

श्री पार्वत्युवाच-कस्मिन् मासे कस्मिन् पक्षे कस्मिन तिथौ।
कस्मिन् वासरे कस्मिन् नक्षत्रे कस्मिन् लग्ने, उत्पनौ असौ।।2।।

एक समय पार्वती ने शिवजी से पूछा कि हे देव! आप जिस अग्नि देव की उपासना करते हैं उस देव के बारे में कुछ परिचय दीजिये। शिवजी ने उत्तर देना स्वीकार किया। तब पार्वती ने पूछा कि यह अग्नि किस महीने, पक्ष, तिथि, वार, नक्षत्र तथा लग्न में उत्पन्न हुई है।

श्री महादेव उवाच-आषाढ़ मासे कृष्ण पक्षे, अर्द्ध रात्रौ मीन लग्ने
चतुर्दश्यां शनि वासरे रोहिणी नक्षत्रे, उर्ध्वमुखे दृष्ट पाताले अगोचरन्नामाग्नि।3।

श्री महादेवजी ने कहा-आषाढ़ महीने के कृष्ण पक्ष की आधी रात्रि में मीन लग्न की चतुर्दशी तिथि में शनिवार तथा रोहिणी नक्षत्र में ऊपर मुख किये हुए सर्वप्रथम पाताल से दृष्ट होती हुई अगोचर नामधारी यह अग्नि प्रगट हुई।

श्री पार्वत्युवाच-क्वतस्य माता क्वतस्य पिता क्वतस्य गोत्र।
कति जिह्वा प्रकाशित। 4।
श्री महादेव उवाच-अरणस माता वरूणष्पिता शाण्डिल्य गोत्रे।
वनस्पति पुत्रम्, पावकनामकम् वसुन्धरम्। 5।

उस महान अग्नि के माता-पिता कौन है? गौत्र क्या है? तथा कितनी जिह्वा से प्रगट होती है। श्री महादेवजी ने कहा-वन से उत्पन्न हुई सूखी आम्रादि की समिधा लकड़ी ही इस अग्नि देव की माता है क्योंकि

लकड़ी में स्वाभाविक रूप से अग्नि रहती है, जलाने पर अग्नि के संयोग से अग्नि प्रगट होती है, अग्निदेव अरणस के गर्भ से ही प्रगट होती है इसलिये लकड़ी ही माता है तथा वन को उत्पन्न करने वाला जल होता है इसलिये जल ही इसका पिता है। शाण्डिल्य ही जिसका गोत्र है। ऐसे गोत्र तथा विशेषणों वाली वनस्पति की पुत्री यह अग्नि देव इस धरती पर प्रगट हुई जो तेजोमय होकर सभी को प्रकाशित करती हुई उष्णता प्रदान करती है।

चत्वारि शृंगा त्रयो अस्य पादा द्वेशीर्शे सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिद्धा बद्धो वृषभोरोरवीति महादेवो मर्त्या आविवेश।।6।।

इस प्रत्यक्ष अग्नि देव के अग्निष्टोमादि चार प्रधान यज्ञ जो चारों वेदों में वर्णित है वही शृंग अर्थात् श्रेष्ठता है। इस महादेव अग्नि के भूत, भविष्य वर्तमान ये तीन चरण हैं। इन तीनों कालों में यह विद्यमान रहती है। इह लौकिक पार लौकिक इन दो तरह की ऊंचाइयों को छूने वाली यह परम अग्नि सात वारों में सामान्य रूप से हवन करने योग्य है क्योंकि ग्रह नक्षत्रों से यह ऊपर है इसलिये इन सातों हाथों से यह आहुति ग्रहण कर लेती है तथा मृत्युलोक, स्वर्ग लोक पाताल लोक इन तीनों लोकों में ही बराबर बनी रहती है अर्थात् तीनों लोक इस अग्नि से ही बंधे हुऐ स्थिर है। जिस प्रकार से मदमस्त वृषभ ध्वनि करता है उसी प्रकार से जब यह घृतादि आहुति से जब यह अग्नि प्रसन्न हो जाती है तो यह भी दिव्य ध्वनि करती है। इन विशेषणों से युक्त अग्नि देवता महान कल्याणकारी रूप धारण करके हमारे मृत्यु लोकस्थ प्राणियों में प्रवेश करे जिससे हम तेजस्वी हो सकें और अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकें।

निखिल ब्रह्माण्डमुदरे यस्य द्वादश लोचनं सप्त जिह्वा।7।
काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधुम्रवर्णा।
स्फुलिंगिनी विश्वरूपी च देवी लेलायमाना इति सप्त जिह्वा।8।

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को जिस अग्नि ने उदर में समाहित कर रखा है, वह विश्वरूपा अग्नि देवी है जिसके उदर में प्रलयकालीन में सभी जीव शयन करते हैं तथा उत्पत्ति काल में भी सभी ओर से अग्नि वेष्टित है। उसकी ही परछाया से जगत आच्छादित है तथा जैसा गीता में कहा है ''अहं वैश्वानरो भूत्वा'' अर्थात् यह अग्नि ही सर्वोपरि देव है। जिस अग्नि के बारह आदित्य यानि सूर्य ही बारह नेत्र है। उसके द्वारा सम्पूर्ण जगत को देखती है। सात इनकी जिह्वाएँ जैसे काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, स्फुलिंगिनी, विश्वरूपी इन सातों जिह्वाओं द्वारा ही सम्पूर्ण आहुति को ग्रहण करती है।

प्रथमस्तु घृतम् द्वितीये यवम्, तृतिये तिलम्, चतुर्थे दधि, पंचमें क्षीरम्।
षष्ठे श्री खंडम्, सप्तमें मिष्ठान्नम् एतानि सप्त अग्नेर्भोजनानि।
एतै सप्त जिह्वा प्रकाश्यन्ते। 9।

इस महान अग्नि देव के ये सात प्रिय भोजन सामग्री है। जिसमें सर्व प्रथम घी, दूसरा यव, तीसरा तिल, चौथा दही, पांचवां खीर, छठा श्रीखंड, सातवीं मिठाई यही हवनीय सामग्री है जिसे अग्नि देव अति आनन्द से सातों जिह्वाओं द्वारा ग्रहण करते हैं।

ऊर्ध्व मुखाधोमुखाभिमुखैः साहायं करोति। घृत मिष्ठान्नादि पदार्थाः।
मह्म विष्णु मुखे प्रविशन्ति। सर्वे देवा ब्रह्मा विष्णुः महेश्वरादयस्तृप्यन्ति।10।

भजन करने वाले ऋत्विक जन की यह अग्नि चाहे ऊर्ध्वमुखी हो चाहे अधोमुखी हो अथवा सामने

मुख वाली हो हर स्थिति में सहायता ही करती है तथा इस अग्निदेव में प्रेम पूर्वक ''स्वाहा'' कहकर दी हुई मिष्ठान्नादि आहुति महा विष्णु के मुख में प्रवेश करती है अर्थात् महा विष्णु प्रेम पूर्वक ग्रहण करते हैं जिससे सम्पूर्ण देवताओं ब्रह्मा, विष्णु, महेश ये तीनों देवता तृप्त हो जाते हैं। इन्हीं देवों को प्रसन्न करने का एक मात्र साधन यही है।

★★★★

मन्त्र ऋग्वेद प्रथम

अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्न धातमम्।1।
अग्निः पूर्वेभिऋषिभिरीडयो नूतनैरूत स देवा एह वक्षति।2।
अग्निना रयिमश्नवत्पोशमेव दिवे दिवे यशसंवीर वत्तमम्।3।
अग्नेयं यज्ञ मध्वरं विश्वतः परिभूरसि स इद्देवेक्षु गच्छति।4।
अग्निर्होता कविक्रतु सत्यश्चित्र श्रवस्तमः देवो देवे भिरागमत्।5।
यदंगदाशुशे त्वमग्ने भद्रं करिश्यसि तवेत्तत्सत्यमं गिरः।6।
उपत्वाग्ने दिवे दिवे दोशावस्तर्धियावयम् नमो भरं त एमसि।7।
राजंत मध्वराणां गोपा मृतस्य दी दिवीम् वर्धमानं स्वेदमे।8।
स नः पितेव सूनवे अग्ने सुपाय नो भव स च स्वा नः स्वस्तये।9।

''वेदों के मन्त्र''

ओ३म् शन्नो मित्रः शं वरूणः शन्नो भवत्वर्यै मा। शन्न इन्द्रो बृहस्पति शन्नो विष्णु रूक्रमः।1।
नमो ब्रह्मणों नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिस्यामि ऋतं वदिश्यामि।
सत्यं वदिश्यामि तन्मामवतु तद्वक्तार अवतु मामवतु वक्तारम्।2।
यथे मां वाचं कल्याणी मावदानी जनेभ्य ब्रह्म राजन्याभ्यांशुद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय।3।
वसो पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम्।
देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्ष।4।
सा विश्ववायुः सा विश्व कर्मा सा विश्व धाया। इन्द्रस्यत्वा भागं सोमेना तनच्मि विष्णो हव्यं रक्ष।5।
विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव यद्भद्रं तन्नं आसुव।6।
ओ३म् भूर्भुव स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।7।
चतुर्शु वेदेषु समानो मन्त्र गायत्री।

अथ प्रातः सांयकालीन के होम मन्त्र

ओ३म् अग्नये स्वाहा।1। सोमाय स्वाहा।2। प्रजापतये स्वाहा।3। इन्द्राय स्वाहा।4।
सूर्योज्योतिर्ज्योतिः सूर्य स्वाहा।1। सूर्योवर्चो ज्योतिर्वर्च स्वाहा।2। ज्योतिः सूर्य सूर्यो स्वाहा।3।
सजूर्द्देवेन सवित्रा सजूरूष सेन्द्रवत्या जुषाणः सूर्योवेतु स्वाहा।4।
अग्निर्ज्योति ज्योतिरग्नि स्वाहा।1। अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा।2। अग्निर्ज्योति ज्योतिरग्नि स्वाहा।3। सजूर्द्देवेन सवित्रा सजू रात्र्येन्द्र वत्या जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा।4।
ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा।1। भुवरवायवेअपानाय स्वाहा।2। स्वरादित्यायव्यानाय स्वाहा।3।
भूर्भुवः स्वरग्निवायवादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्य स्वाहा।4।
आपो ज्योतिरसो अमृतं ब्रह्मभूर्भूवः स्वरो स्वाहा।5।
यां मेधां देवगणां पितरश्चोपासते तया मामद्य मेधाविनं कुरू स्वाहा।6।
विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव यद्भद्रं तन्न आसुव स्वाहा।7।

विशेष-श्री गुरु जाम्भोजी ने कहा है कि ''होम हित चित प्रीत सूं होय'' वैदिक ऋषियों का तो हवन करना प्रथम कर्तव्य था। उसी महान परंपरा का पालन सर्वहितार्थ करणीय है। इस कर्तव्य का बोध गुरुजी ने सभी जनों को करवाया तथा स्वयं भी करते रहे। ''स्वर्ग कामो यजेत'' स्वर्ग प्राप्ति के इच्छुक जन को यज्ञ करना चाहिये। वेद वाक्य तो यहीं तक सीमित है। यह कहीं नहीं बताया कि उस यज्ञ का विधि-विधान क्या हो। जब प्रारम्भिक काल था तब तो न जानें क्या विधान रहा हो किन्तु उतरोतर ज्यों ज्यों विद्या का विकास हुआ त्यों त्यों ही यह यज्ञ विधि-विधान की समस्या सामने आयी और उस समस्या का समाधान विद्वानों ने अपनी-अपनी बुद्धि अनुसार नये-नये यज्ञ विधि-विधान बनाकर निकाला। यही परंपरा अद्य पर्यन्त अजस्र प्रवाह से चल रही है। अब भी अनेकानेक यज्ञ विधि-विधान निर्मित होते है। इसलिये अब तक कोई एक सर्वमान्य सिद्धान्त नहीं बन सका है कि इसी विधान से यज्ञ हो सकता है। इन अनेकानेक विविधताओं में बिश्नोई समाज का भी अपना अलग ही विधान है जिसको पांच सौ साल से भी अधिक समय से करते आ रहे हैं। इस विधान के अनुसार ही यह ग्रन्थ निर्मित हुआ है।

मंगलाचरण पश्चात् सर्वप्रथम संध्या का पाठ रखा गया है क्योंकि यज्ञ से पूर्व संध्या का विधान है, इसके पश्चात् हवनीय पदार्थ समुपस्थित हो जाने पर आहुति ग्रहणार्थ अग्नि देव को सम्मुख किया जाता है तथा इससे पूर्व ही जदुवास के द्वारा वरूण देवता का आह्वान किया जाता है। इसलिये हवन के पास जल से भर कर कलश भी रखा जाता है। उसमें वरूण देवता के निवासार्थ मन्त्र द्वारा आह्वान किया जाता है।

तत्पश्चात् श्री ''पार्वत्युवाच'' इस गोत्राचार द्वारा अग्नि देवता की विशेषता को प्रकट करते हुए आहुति ग्रहणार्थ अग्नि का आह्वान किया जाता है। जब अग्नि स्वयं देवत्व को धारण करके जगमगाने लगती है। तब सूर्य, चन्द्र, प्रजापति, इन्द्र आदि देवता के निमित पृथक् पृथक् नाम गोत्र का उच्चारण करके स्वाहा कहते हुए आहुति दी जाती है। जिनके अलग-अलग मन्त्र है, उनका सस्वर उच्चारण किया जाता है।

तत्पश्चात् भी उन सर्वदेवों के महादेव भगवान विष्णु के निमित करके महा यज्ञ किया जाता है। प्रथम तो सबदवाणी का सस्वर पाठ करते हैं तथा सबद पूर्ण हो जाने पर ''स्वाहा'' कह करके आहुति दी जाती है। एक परमात्मा विष्णु के प्रसन्न हो जाने से सर्वदेवता ही तृप्त हो जाते हैं। वेद मन्त्रों का उच्चारण करने पर एक लय सहित ध्वनि

निकलती है उस ध्वनि का ही महत्त्व होता है जो वातावरण को शुद्ध-पवित्र बना देती है। ठीक उसी प्रकार से ही सबदवाणी से भी एक विशेष ध्वनि का निर्माण होता है वह भी आधुनिक युग में ध्वनि जनित प्रदूषण का निवारक है और भी अन्य प्रकार के पर्यावरण प्रदूषणों का निवारक यज्ञ इस समय सत्य साबित हो रहा है।

हवन का समय प्रातः सांय सूर्योदय के बाद व सूर्यास्त के बाद का ही होता है। हवन में हवनीय पदार्थों में गऊ का घृत ही सर्वोत्तम होता है तथा साथ ही हवन सामग्री नारियल, गोला, समिधा, आम्र पीपल, खेजड़ी आदि की उत्तम होती है। हवन कर्त्ता सभी मिलकर एक स्वर-लय से वेद मन्त्रों या सबदवाणी का पाठ करें तभी लाभदायक होता है। नित्य प्रति हवन में वैदिक मन्त्रों सहित दस सबदों से अधिक ही अपनी श्रद्धानुसार उच्चारण करे तथा विशेष हवन में पूरे एक सौ बीस शब्दों का सस्वर ही उच्चारण करें। यदि वैदिक मन्त्रों का ठीक से उच्चारण नहीं कर सकते तो प्रथम गोत्राचार बोलकर बाद में अपनी इच्छानुसार सबदवाणी का उच्चारण करें तथा आहुति देते समय ''स्वाहा'' अवश्य ही सभी मिलकर बोलें।

★★★ ★★★

''सबदवाणी प्रारम्भ''

''प्रसंग दोहा''

हांसा लोहट ने कहे, सुनों बात चित लाय।
बालक मोटो बोलै नहीं, कोई जतन कराय।1।

बालक जाम्भोजी की आयु लगभग सात वर्षो की हो गयी थी किन्तु जैसा अन्य बालकों का सामान्य व्यवहार होता है वैसा नहीं था। यदा-कदा कुछ बोलते भी थे किन्तु बहुत ही कम। लोग उन्हें गूंगा कहते थे तथा कुछ सुजान लोग उन्हें मौनी भी कहते थे। क्योंकि कहा भी है-''बाल्यं पाण्डित्यं निर्विद्य मुनि मौनं भवति'' ज्ञानी की प्रथम बाल्यावस्था पश्चात् पाण्डित्यावस्था और इन दोनों को ही छोड़कर अन्तिम मौन अवस्था ही हो जाती है। वे बोलना तो जानते थे किन्तु अवसर देखकर ही यथावश्यक बोला करते थे, व्यर्थ की बातें नहीं करते थे। लोहट तथा माता हांसा देवी को हर समय चिंता लगी रहती थी कि यह बालक बड़ा हो गया पर बोलता नहीं।

जितने लोग उतनी ही बातें, कोई कहता कि इस बालक पर कोई देवता जबरदस्त रूठा हुआ है किन्तु लोहट भाई बहुत ही कंजूस है, धन खर्चना नहीं चाहता। अन्य कुछ और ही बातें करते, तब हांसादेवी ने लोहट जी से कहा कि इस बालक के लिये कोई प्रयत्न करो जिससे यह बालक बोल सके। ठीक प्रकार से भोजन कर सके तथा अन्य बालकों की भांति आचरण कर सके। तब लोहट जी ने कहा कि मैंने सुना है कि नागौर में एक पूरबिया पुरोहित आया हुआ है। उसको मैं अभी जाकर लाता हूँ। अपने कथनानुसार दक्षिणा देने का वायदा करके उस पुरोहित को लेने के लिये लोहट जी नागौर पहुँचे और पुरोहित को भरपूर दक्षिणा देने का लोभ देकर पींपासर ले आये। पुरोहित ने आकर पूजा का सामान इस प्रकार से सजाया-

''दोहा''

तब सों द्विज आयके, लाघव कियो उपाय।
दैवी को सुमरत तवै, इन्द्र बाहन में सराय।2।
चौमुख दीप बनाय के, अगन दिये संवार।
वो जगावै वो बूझै, बूझत न लागै वार।3।
सिर धुनै फूं फूं करै, बहुता करै प्रज्ञान।
जम्भ गुरु तब बोलिया, सुण रे मूढ़ अज्ञान।4।
काचै करवै जल रख्यों, सबद जगायो दीप।
ब्राह्मण को परचा दिया, ऐसो अचरज कीन।5।
जो बूझा सोई कहयो, अलख लखायो भेव।
धोखा सबै गंवाय कै, सबद कहयौ जम्भदेव।6।

पूर्व देश निवासी उस पुरोहित ने आकर अतिशीघ्र ही ठीक करने के लिये उपाय प्रारम्भ किया। सर्वप्रथम सम्पूर्ण आंगन को गऊ के गोबर से लिपवाया उसमें एक चौक बनवाकर दीपक घृत से भरकर

रखवाया। स्वयं रेशम की गद्दी बिछवाकर उसके ऊपर बैठा तथा जाम्भोजी को भूमि पर बैठाया। देवी का जप करने लगा, चुन-चुनकर उड़द जाम्भोजी पर फेंकने लगा। दीपक ज्यूं-ज्यूं जलाता त्यूं-त्यूं बुझ जाता। इस प्रकार करते हुऐ आधा दिन व्यतीत हो गया था। तब वह पुरोहित कहने लगा कि इस बालक पर तो कोई जबरदस्त देव रूठा हुआ है यदि यह दीपक जल जाय तो मैं इस बालक को ठीक कर सकता हूँ।

बालक जाम्भोजी वहाँ से उठ खड़े हुए और एक कच्चे सूत का धागा लिया तथा कुम्हार के घर जाकर बिना पका हुआ घड़ा लेकर कूवे के उपर जाकर अन्दर लटकाकर जल निकाला और वापिस घर आकर उन्हीं दीपकों में जल डालकर चुटकी बजाकर दीपकों को प्रज्ज्वलित कर दिया। यह आश्चर्य जनित घटना पींपासर ग्रामवासियों सहित उस पुरोहित ने देखी, नत मस्तक होकर प्रार्थना करने लगा-

हे देव! अब आप ही कुछ बोलिये, मुझे सन्मार्ग दिखलाइये, जिससे मेरा आवागमन मिट जाये। तभी लोगों के सहित पुरोहित के प्रति यह प्रथम सबदोच्चारण किया-

सबद-1

ओ३म् गुरु चीन्हों गुरु चीन्ह् पुरोहित, गुरु मुख धर्म बखाणी।

भावार्थ-ओ३म् यह परमपिता परमात्मा सर्वेश्वर अनादि निराकार भगवान विष्णु का ही परम प्रिय नाम है। नाम से ही नामी का ज्ञान होता है। सर्वप्रथम सृष्टि के आदि काल में तो वह परम सत्ता ओ३म् नाम से ही जानी जाती थी परन्तु आगे समयानुसार ही सत्ता शिव, राम, कृष्ण आदि नामों से जानी जाने लगी।उपनिषद् में कहा भी है-'**ओमिति एकाक्षर ब्रह्म उद्गीथमुपासीत**' गीता में ''**ओमित्येकाक्षर ब्रह्म व्यवहारन् मामनुस्मरन्**'' पतंजलि ने कहा - '**तस्य वाचक प्रणवः**' इत्यादि निर्देश दिये गये हैं। ओम का ध्वनि से उच्चारण किया जाता है तब वह परमात्मा अति प्रसन्न होता है क्योंकि वह परमात्मा का सर्वाधिक प्रिय नाम है, इसलिये शब्दों के प्रारम्भ में यह ओम का पाठ देना उचित ही है। इससे मंगल स्तुति नमस्कारादि सभी नियमों का समुचित पालन हो जाता है। यहाँ पर ओ के आगे ३ लिखा गया है इसका अर्थ है कि ओ का उच्चारण तीन मात्रा में किया जावे।

गुरु श्री देवजी कहते हैं-हे संसार के लोगों! आप सभी लोग सदा सर्वदा ही यदि अपना कल्याण चाहते हैं तो उस परमपिता परमात्मा परमेश्वर परम सत्ता ओम् नामी गुरु को पहचानों। यहाँ पर चीन्हों का अर्थ मानना या स्मरण करना नहीं हैं यहाँ चीन्हों का अर्थ पहचान करना है। गुरु की पहचान कुछ सद्गुणों द्वारा ही हो सकती है। वे गुण आगे बतलाये जायेंगे। हे पुरोहित! तूँ भी गुरु को पहचान तथा गुरुमुखी होकर सद्धर्म का उपदेश कर तथा मनमुखी धर्म का परित्याग कर क्योंकि गुरुमुख से निकला हुआ वचन सदा धर्म की ओर ले जाने वाला है। अलंकारों से विभूषित गुरु को पहचान लेना। वास्तव में इन विशेषणों से युक्त ही सद्गुरु होगा।

जो गुरु होयबा सहजे शीले शब्दे नादे वेदे, तिहिं गुरु का आलिंकार पिछाणी।

सहज स्वभाव से ही शील व्रतधारी शब्द विद्या का ज्ञाता अनहद नाद ध्वनि का श्रोता व सम्पूर्ण वेदों का ज्ञाता तथा वक्ता यदि गुरु है तो उस गुरु के ये गुण अलंकार ही होंगे उन अलंकारों से विभूषित गुरु को पहचान कर लेना। वास्तव में इन विशेषणों से युक्त ही सद्गुरु हो सकता है, इन गुणों के बिना सतगुरु होने की कल्पना नहीं की जा सकती।

छव दरसण जिहिं के रूपण थापण, संसार बरतण निज कर थरप्या सो गुरु प्रत्यक्ष जांणी।

भारतीय आस्तिक ऋषियों द्वारा रचित न्याय, सांख्य, मीमांसा, वैशेषिक, योग, वेदान्त ये छः दर्शन

जिस परमात्मा स्वरूप सद्गुरु के सम्बन्ध में अति विस्तार से वर्णन करते हैं। इन्हीं छः शास्त्रों में जीव ईश्वर और जगत के बारे में अति सूक्ष्मता से वर्णन हुआ है। इस संसार रूपी घट बर्तन को जिस सतगुरु रूप परमात्मा ने अपने हाथों द्वारा बनाया है। उसी सतगुरु को हे पुरोहित! तूँ यहाँ पर प्रत्यक्ष देखकर पहचान।

जिहिं के खरतर गोठ निरोतर वाचा, रहिया रूद्र समाणी।

जिस परमात्मा स्वरूप गुरु के बारे में विचार करते हुए अच्छे-अच्छे विद्वानों की संगोष्ठियाँ भी चुप हो जाती हैं। अपने सामर्थ्यानुसार विचार कर लेने के पश्चात् वेद की ध्वनि का अनुसरण करती हुई ''नेति-नेति'' कहते हुऐ शांत हो जाती हैं क्योंकि परमात्मा वाणी का विषय नहीं है अनुभव गम्य विषय को वाणी प्रगट नहीं कर सकती क्योंकि वह परमात्मा रूद्र रूप से सर्वत्र समाया हुआ है। जिस प्रकार से शरीर में रूधिर समान रूप से सर्वत्र है उसी प्रकार से वह चेतन ज्योति भी सर्वत्र सामान्य रूप से समायी हुई है।

गुरु आप संतोषी अवरां पोखी, तंत महारस बांणी।

गुरु आप तो स्वयं संतोषी हैं अर्थात् कभी किसी से कुछ भी लेने की इच्छा नहीं रखते क्योंकि वह तो सम्पूर्ण जीवों का पालन-पोषण करने वाले हैं तथा जीवों के पास कुछ देने को भी नहीं है। केवल अहंकार ही अपनी निजी संपति है उसे हम समर्पण कर सकते हैं, यही सच्चा त्याग हो सकता है तथा सद्गुरु की वाणी तत्व को बतलाने वाली होती है और महारसीली मीठी वाणी से श्रोता को अमृत पान कराते हुऐ वे अजर अमर कर देती है।

के के अलिया बासण होत हुतासण, तामैं खीर दूहीजूं।

इस विशाल संसार में कुछ लोग कच्चे मटके की तरह होते है, उसमें दूध, पानी नहीं रूक सकता अर्थात् जिनका अन्तःकरण अभी मलीन है उनके ऊपर ज्ञान की बात असर नहीं करती किन्तु यही मटका जब अग्नि के संयोग से पक जाता है तब उसमें दूध दूहा जा सकता है क्योंकि पकने के पश्चात् दूध ठहरने की योग्यता उस बर्तन में आ जाती है। ठीक उसी प्रकार से ही अमृतमय वाणी रूपी अग्नि का संयोग मूढ़ जनों के अन्तःकरण से होगा तब वे भी मलिनता को दूर करके ज्ञान रूपी अमृत को धारण कर सकेंगे इसलिये कहा है-''**श्रोतव्य, मन्तव्य, निधिध्याषितव्य दृष्टव्य**'' श्रवण मनन निधिध्यासन करने से परमात्मा का दर्शन होता है।

रसूवन गोरस घीय न लीयूं, न तहां दूध न पाणी।

दूध में से घृत निकाल लेने पर पीछे छाछ ही रह जाती है न तो आप उसे दूध ही कह सकते और न ही जल कह सकते। ठीक उसी प्रकार से ही मानव के अन्दर ''रसौ वै सः'' वह रसमय आत्म ज्योति है किन्तु उसका साक्षात्कार नहीं होता है तो मानव छाछ की तरह ही रस हीन है। न तो आप उसे अपने मूल स्वरूप स्वभाव में स्थित ही कह सकते क्योंकि वह तो स्वरूप को भूल चुका है और न ही उसे आप रस विहीन ही कह सकते। क्योंकि उस आनन्दमय रस में तो वह ओत प्रोत ही है। किन्तु वह रस उसे अब तक प्राप्त नहीं हुआ है, तो हम उसे गोरस ही कह सकते हैं।

गुरु ध्याईरे ज्ञानी तोड़त मोहा, अति खुरसाणी छीजत लोहा।

इसलिये ज्ञानी गुरु का ध्यान कर, वह तेरे मोह का बन्धन तोड़ देगा जिस प्रकार से खुरसाणी पत्थर कठोर लोहे के लगे हुऐ जंग रूपी मेल को काट देता है उसे शुद्ध पवित्र कर देता है उसी प्रकार से ही तुम्हारे जंग रूपी मोह को सतगुरु ही काट सकते हैं।

पांणी छल तेरी खाल पखाला, सतगुरु तोड़े मन का साला।

हे मानव! तेरा पंच भौतिक शरीर चमड़े की बनी हुई पखाल की तरह ही है क्योंकि उस चमड़े की पखाल में भी पानी भरा जाता है तथा ऊंठ के पीठ पर लादकर के जब ले जाते हैं तो वह छलकती है। ठीक उसी प्रकार से तुम्हारा शरीर भी पानी से भरा हुआ है चलने पर यह भी छलकता है। जिस प्रकार से पखाल में छोटा छेद हो जाता है तो सम्पूर्ण जल निकल जाता है। उसी प्रकार से तुम्हारा शरीर भी फूट जायेगा तो पांचों तत्व स्वकीय स्वरूप में विलीन हो जायेंगे, यह देह मृत हो जायेगी। देही अपने कर्मानुसार अन्य शरीर में गमन करेगी। मानसिक दु:ख को सतगुरु ही मिटा सकता है। सभी मानसिक दु:खों की सदा सर्वदा निवृति हो जायेगी तो कायिक आदि दु:ख तो स्वत: ही निवृत हो जायेंगे।

सतगुरु है तो सहज पिछाणी, कृष्ण चरित विन काचै करवै रह्यो न रहसी पांणी।।

हे पुरोहित! तुम्हारे सामने बैठा हुआ बालक यदि सतगुरु है तो सहज ही में पहचान कर लेना। यहाँ पर सतगुरु होने का बहुत बड़ा प्रमाण प्रस्तुत कर रहे हैं कि देख कृष्ण चरित के बिना कच्चे घड़े में न तो कभी जल ठहरा और न ही कभी भविष्य में ठहर सकेगा किन्तु कृष्ण चरित से तो असंभव भी संभव हो जाता है। कच्चे घड़े में जल ठहर जाना यह कृष्ण चरित ही है। इस प्रकार से खेमनराय पूर्व देश के पुरोहित के प्रति बाल्यावस्था में यह प्रथम सबद गुरु महिमा से युक्त उच्चारण किया।

★★★★

प्रसंग-2-चौपाई

एक समय सम्भराथल के स्वामी, बैठेहु तेसु अन्तरयामी।
नृपरी वर्ग जो धाड़ै लाया, जम्भेश्वर के निकट ही आया।
बालक ऐसे बोले भेव, सांढ़ छुड़ाओ साचा देव।
जब देवजी भाखै ऐसे, गेड्डी असवार हुवो तुम तैसे।
बालक असवार ही भाज ही, सारे ललकार करे तब ही।
वांकै नजर कटक जो आया, वर्ग छोड़ तब दूर पराया।

गऊवें चराते समय गुरु जाम्भोजी सम्भराथल पर विराजमान थे। उसी समय ही ग्वाल-बालों ने आकर निवेदन किया कि हे देव! इस समय पशु-धन पर बड़ी विपति आयी हुई है। जोधपुर राज्य के पशु-धन ऊंठ, गऊ आदि को डाकू लोग हरण करके जबरदस्ती यहीं सम्भराथल के नीचे से होते हुए ले जा रहे हैं। इन बेचारी गऊवों के बछड़े पीछे छूट गये हैं तथा अपनी प्रिय भूमि को छुड़ा देने से अति कष्ट से रंभा रही है। आप कृपा करके अपनी सिद्धि के बल से इन्हें छुड़ा दीजिये। तब गुरुजी ने कहा-हे बालकों! आप सभी एकत्रित होकर अपनी-अपनी लाठियों पर सवार हो जाओ और उनका पीछा करो जिससे तुम्हें देखकर वे डाकू लोग भाग जायेंगे। जाम्भोजी की आज्ञा स्वीकार करके बालकों ने ऐसा ही किया जिससे डाकुओं को बहुत बड़ी सेना आती हुई दिखाई दी। डाकू लोग भय के मारे पशु धन छोड़कर भाग गये। कुछ समय पश्चात् जोधपुर नरेश के राजकुमार ऊधोजी, वीदोजी आदि अपनी सेना सहित वहीं पर आ पहुँचे। उन्होंने देखा कि उनका सम्पूर्ण धन वहीं पर सम्भराथल के अति निकट ही विचरण कर रहा है। यह आश्चर्य देखकर वे दोनों सेना सहित सम्भराथल पर पहुँचे। जहाँ पर जम्भदेवजी

ग्वाल-बालों से घिरे हुऐ बैठे थे। सादर नमन करके उनके पास ही बैठकर अपनी जिज्ञासा शान्त करने के लिये कहने लगे -हे देव! आपने हमारे धन को छुड़ाया यह हमें इन बालकों से पता चला है। आपने हमें भयंकर युद्ध की विभीषिका से बचाया तथा इन बेचारे पशुओं को मुक्ति दिलवाकर महान परोपकार का कार्य किया।

''दोहा''

उधरण कान्हावत यूं कह्यो, देवजी किसो आचार।
पेट पीठ दीसै नहीं, ताका करो विचार।

जोधपुर नरेश जोधाजी के भ्राता कान्हाजी के पुत्र उधरण ने पूछा कि हे देव! मैं कुछ समय से लगातार आपकी तरफ अपलक दृष्टि से देख रहा हूँ किन्तु आपकी पीठ नहीं दिखती अर्थात् चारों ओर आपके मुखारविन्द की ज्योति ही दृष्टिगोचर होती है इसमें क्या रहस्य है? कृपा करके बतलाइये। तब श्री देवजी ने यह सबद उच्चारण किया और अपनी स्थिति बतलायी।

सबद-2

ओ३म् मोरे छाया न माया लोही न मासूं, रक्तूं न धातूं मोरे माय न बापूं।

भावार्थ-प्राय: सभी सांसारिक जीव माया की छाया में ही रहते हुऐ अपना जीवन व्यतीत करते हैं। इसलिये उनको सत्य-असत्य का विवेक नहीं हो पाता। किन्तु जम्भदेवजी कहते हैं- हे उधरण! मेरे इस शुद्ध स्वरूप में न तो माया है और न ही माया की अज्ञान रूपी छाया है अर्थात् अन्य लोगों की भांति मैं मायाच्छादित नहीं हूँ। इस शुद्ध स्वरूप चैतन्य आत्मा में पंच भौतिक शरीर की भांति लहू, मांस, रक्त और धातु नहीं है। इस निर्गुण निराकार सच्चिदानन्द आत्मा के न तो कोई माता है और न ही कोई पिता है। यहाँ पर अयात्मा ब्रह्म के अनुसार आत्मा परमात्मा दोनों का अभेद प्रतिपादन किया है।

आपण आपूं रोही न रापूं, कोपूं न कलापूं, दुख न सरापूं।

मैं स्वयं अपने आप में ही स्थित हूँ अर्थात् अपने जीवन यापन के लिये अन्य किसी सहारे की आवश्यकता नहीं है। वन्य जीवन की भांति अव्यवस्थाओं से भरा हुआ मेरा जीवन नहीं है। दुर्गुणों से निर्मूल होकर शुद्ध सात्विक हो चुका हूँ इसलिये किसी भी प्रकार का क्रोध, मोह, आदि मेरे यहाँ नहीं है तथा जब क्रोध ही नहीं है तो दु:ख भी नहीं है और दु:ख न होने से मैं किसी को श्राप भी नहीं दे सकता। किन्तु केवल आशीर्वाद ही दे सकता हूँ।

लोई अलोई त्यूंह तृलोई ऐसा न कोई जंपा भी सोई, जिहिं जंपे आवागवण न होई।

ऊधरण ने पूछा कि हे देव! जब स्वयं आप ही ब्रह्म स्वरूप है तो जप किसका करते हो। जम्भदेवजी ने कहा-यह बात तुम्हारी ठीक है किन्तु इस जड़ चेतनमय तीनों लोकों में कहीं भी उस चेतन शक्ति से खाली नहीं है, वह सर्वत्र व्याप्त है उसी व्यापक स्वरूप परमात्मा का भजन हो रहा है। परमेश्वर का भजन करने से मृत्यु का चक्र छूट जाता है क्योंकि जैसी उपासना करता है वह उपासक भी वैसा ही हो जाता है। अमरत्व की साधना करने वाला अमर पद प्राप्त कर लेता है।

मोरी आद न जाणत, महीयल धूंवा बखाणत, उरध ढ़ाकले तृसूलूं।

हे उधरण! मेरे शुद्ध स्वरूप परमात्मा की आदि कोई नहीं जानता क्योंकि जब वह आदि स्वरूप में स्थित था तब तो सृष्टि की उत्पत्ति भी नहीं थी। तब इस सृष्टि का मानव परमात्मा के प्रथम स्वरूप को कैसे जान सकेगा किन्तु अनुमान के द्वारा ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है जैसे पर्वत पर धूंवा निकलता हुआ देखकर अग्नि का अनुमान किया जाता है उसी प्रकार से कार्य रूप जगत को देखकर के कारण स्वरूप परमात्मा का अनुमान मात्र ही होता है उसे प्रत्यक्ष कदापि नहीं कर सकते। हे उधरण! दैहिक, दैविक तथा भौतिक ये तीन प्रकार के ताप जो सदा ही सूल की तरह ऊपर उठे हुऐ चुभते रहते है इनको ढ़कने का प्रयत्न कर, यही इस समय कर्त्तव्य है। व्यर्थ के वाद-विवाद में पड़कर समय को व्यर्थ मत कर।

आद अनाद तो हम रचिलो, हमें सिरजीलो से कौण।

यह वर्तमान तथा इससे पूर्व सृष्टि की रचना तो परमात्मा स्वरूप मैंने ही की है, तब प्रश्न उठता है कि परमात्मा की रचना करने वाला भी तो कोई होगा। यदि यहाँ पर कार्य कारण भाव की कल्पना करते हैं तो अनावस्था दोष आता है इसलिये जम्भेश्वर जी कहते हैं कि हमारी सृजना करने वाला तो कोई भी नहीं है। यदि कोई होता है तो उसका भी कर्त्ता और होगा तथा उसका भी कोई और, यही अनावस्था दोष है।

म्हे जोगी के भोगी कै अल्प अहारी, ज्ञानी कै ध्यानी कै निज कर्मधारी।

हमारे जैसे अवतारी पुरूष योगी है या भोगी अथवा थोड़ा आहार करने वाले हैं या हम ज्ञानी हैं अथवा ध्यान करने वाले ध्यानी तथा स्वकीय कर्तव्य कर्म का पालन करने वाले हैं।

सोखी के पोखी, कै जल बिंबधारी, दया धर्म थापले निज बाला ब्रह्मचारी।

हम आप किसी का शोषण करने वाले हैं या जल में प्रतिबिम्ब रूप हैं या स्वयं सूर्य सदृश बिम्ब रूप है। हे उधरण! मैं क्या हूँ इसकी चिंता तुम छोड़ो। परमात्मा अवतार धारण किस रूप में करते है इसका कोई निश्चय नहीं है। उपर्युक्त बताये हुए गुणों में वह किसी भी रूप में हो सकता है किन्तु यहाँ पर तुम मुझे दया धर्म की स्थापना करने वाले बाल ब्रह्मचारी रूप में ही समझो।

★★★★

''दोहा''

वीदा जोधावत कहै, सोरम आवै देव।
डील तुम्हारो महीम है, हमें बतावो भेव।

उपर्युक्त शब्द को सुन करके जोधाजी के पुत्र वीदा ने पूछा कि हे देव! आपके शरीर से सुगन्ध आ रही है क्या आपने शरीर पर कोई सुगन्धित इत्र आदि लगा रखा है? या प्राकृतिक रूप से ही सुगन्धी निसृत हो रही है इसका निर्णय बताओ आपकी अति कृपा होगी। तब गुरु जी ने सबद कहा-

सबद-3

ओ३म् मोरे अंग न अलसी तेल न मलियो, ना परमल पिसायो।

भावार्थ-हे वीदा! मेरे इस शरीर पर किसी भी प्रकार का अलसी आदि का सुगन्धित तेल या अन्य

पदार्थ का लेपन नहीं किया गया है क्योंकि मैं यहाँ सम्भराथल पर बैठा हुआ हूँ, यहाँ ये सुगन्धित द्रव्य उपलब्ध भी नहीं है और न ही इनकी मुझे आवश्यकता ही है।

जीमत पीवत भोगत विलसत दीसां नाही, म्हापण को आधारूं।

पृथ्वी का गुण गन्ध है जो भी पार्थिव पदार्थों का शरीर रक्षा के लिये सेवन करेगा, उस शरीर में दुर्गन्ध अवश्य ही आयेगी किन्तु जम्भेश्वर जी कहते हैं कि हे वीदा! मुझे इस शरीर रक्षार्थ इन पृथ्वी आदि पांच द्रव्यों की आवश्यकता नहीं पड़ती क्योंकि परमात्मा तो सभी का आधार है। परमात्मा का आधार कोई नहीं होता है। वह परमात्मा पंच भौतिक शरीर धारण करता है तो भी अन्य सांसारिक जनों की भांति खाना-पीना, भोग-विलास आदि नहीं करता, वे अत्यल्प आव यकतानुसार आहार यदि करते हैं तो वह आहार दुर्गन्ध आदि विकार उत्पन्न नहीं कर सकता। इसलिये हमारा शरीर सुगन्ध वाला है, न कि दुर्गन्ध वाला।

अड़सठ तीर्थ हिरदै भीतर, बाहर लोका चारूं।

अड़सठ स्थानों में प्रसिद्ध तीर्थ तो बाह्य न होकर हृदय के भीतर ही है अर्थात् जिस प्रकार से अड़सठ तीर्थ हृदय में प्रवाहित होते हैं, योगी लोग उनमें स्नान करते हैं, उसी प्रकार से चेतन सत्ता भी हृदय देश में प्रत्यक्ष रूपेण रहती है। उसमें ही जो रमण करेगा उसके शरीर में कैसी दुर्गन्धी, वह ज्योतिर्मय ईश्वर तो सदा सर्वदा सुगन्धमय ही है तथा जिनकी वृति बाह्य शरीर में ही विचरण करती है। परमात्मा की झलक से वंचित हो चुकी है तथा बाह्य पदार्थों का आश्रय ग्रहण किया है ऐसे जनों का शरीर दुर्गन्धमय ही होगा इसलिये हे वीदा! मैं तो अड़सठ तीर्थों में स्नान नित्य प्रति करता ही हूँ, यहाँ पर सांसारिक जनों की भांति व्यवहार तो मेरा लोकाचार ही है।

नान्ही मोटी जीया जूणी, एति सांस फूरंतै सारूं।

सृष्टि के छोटे तथा बड़े जीवों की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय के बीच का समय एक श्वांस का ही होता है। जितना समय श्वांस के आने तथा जाने में लगता है उतने ही समय में परमात्मा सम्पूर्ण जीवों की सृजना कर देते हैं, वह सृजन कर्त्ता मैं ही हूँ।

वासंदर क्यूं एक भणिजै, जिहिं के पवन पिराणों।

यहाँ पर उपर्युक्त वचनों को श्रवण करने पर वीदा के अन्दर कुछ क्रोध उत्पन्न हो गया, इसलिये जम्भेश्वर जी ने कहा- हे वीदा! तूँ एक मात्र क्रोध रूपी अग्नि को ही क्यों बढ़ावा देता है। यह क्रोध तुम्हारे लिये विनाशकारी है। अग्नि और क्रोध में सादृश्यता बताते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार से अग्नि की प्राणवायु होती है उसी प्रकार से क्रोध का प्राण भी वायु रूप झट से निकला हुआ कठोर वचन होता है।

आला सूका मेल्है नाही, जिहिं दिश करै मुहाणौं।

जब अग्नि प्रज्वलित हो जाती है तब न तो हरी वनस्पति को छोड़ती है और न ही शुष्क वनस्पति को छोड़ती है, दोनों को ही भस्म कर देती है। उसी प्रकार से क्रोध भी जब बढ़ जाता है तो न तो दोषी को छोड़ता और न ही निर्दोषी का ख्याल करता, विवेक शून्य होकर दोनों पर बराबर ही अपराध कर देता है। अग्नि तथा क्रोध दोनों ही जिस तरफ बढ़ेंगे उस तरफ तबाही मचा देंगे।

पापे गुन्है वीहे नाही, रीस करै रीसाणौं।

अग्नि तथा क्रोध दोनों ही जिस तरफ बढ़ेंगे अर्थात् जिस व्यक्ति को भी अपना लक्ष्य बनायेंगे उस समय न तो उसे पापी का ज्ञान रहेगा और न ही गुणी का ज्ञान रहेगा। क्रोध में व्यक्ति जब क्रोधित हो जाता है तो निर्णय

लेने में असमर्थ हो जाता है। उसका कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का विवेक भ्रष्ट हो जाता है।

बहूली दौरे लावण हारू, भावै जाण मैं जाणूं।

यह क्रोध ही सभी दुर्गुणों की जड़ है। एक क्रोध से ही सभी दुर्गुण उत्पन्न हो जाते हैं और ये दुर्गुण बार बार नरक में ले जाने वाले होते हैं। इस जीवन में दु:खों को भोगते हैं तथा परलोक भी दु:खमय बन जाता है। अग्नि हाथ में चाहे जानकर ले या अनजान में लें वह तो जलायेगी ही। इस प्रकार से क्रोध भी चाहे जानकर करें या अनजान में करें वह तो दुखित करेगा ही।

न तूं सुरनर न तूं शंकर, न तूं राव न राणों।

हे वीदा! न तो तूँ देवता है और न ही तू मानव है तथा न ही तूँ शंकर है। न तू राजा है और न ही तू राणा है।

काचै पिण्ड अकाज चलावै, महा अधूरत दाणों।

तेरा यह शरीर तो कच्चा है इस पर तूँ इतना अभिमान क्यों करता है। यह कभी भी टूट सकता है तथा इस स्थिर काया से तूँ पाप करता है, यह तो धूर्तो का, दानवों का कार्य है।

मौरे छुरी न धारूं लोह न सारूं, न हथियारूं।

जब वीदा कुछ नम्रता को प्राप्त हुआ तब कहने लगा कि आप इस भयंकर वन में रहते हो आपके पास कोई हथियार तो अवश्य ही होगा यदि नहीं होगा तो आपको जरूर रखना चाहिये। यह शंका उत्पन्न होने पर जम्भेश्वर जी ने कहा कि मेरे पास लोहे की बनी हुई धारीदार, पैनी छूरी या अन्य हथियार नहीं है तब वीदे की शंका ने आगे पैर पसारा कि आखिर आपके शत्रु क्यों नहीं? आगे जाम्भोजी ने बताया।

सूरज को रिप बिहंडा नाही, तातै कहा उठावत भारूं।

हे वीदा! सूर्य का शत्रु जुगनूं-आगिया नहीं हो सकता क्योंकि शत्रुता तथा मित्रता ये दोनों बराबर वालों में ही होती है इसलिये मैं तो सूर्य के समान हूँ तथा अन्य सांसारिक शत्रु लोग तो जुगनूं के समान ही है। सूर्य जब तक उदय नहीं होता तब तक जुगनूं चम चम करता है। सूर्य उदय होने पर तो लुप्त हो जाता है। इसलिये मैं यह शस्त्र रूपी लोहे का भार क्यों उठाऊँ। क्योंकि मेरा शत्रु कोई नहीं है। अथवा जिस प्रकार से सूर्य को शत्रु विनाश नहीं कर सकता उसी प्रकार से मेरा भी शत्रु कुछ भी नहीं कर सकता तो शरीर की रक्षा के लिये मैं भार क्यों उठाऊँ।

जिहिं हाकणड़ी बलद जू हाकै, न लोहै की आरूं।

मेरे पास तो जो बैल हांकने की साधारण लकड़ी होती है उसके अग्र भाग में लोहे की छोटी सी कील लगी रहती है उसके बराबर भी लोहे का शस्त्र नहीं है। "**ज्ञान खड़गूं जथा हाथे कोण होयसी हमारा रिपूं।**"

★★★★

"**दोहा**"

उधरण कान्हावत बूझियों, जम्भगुरु से भेव।
आपरी उमर थोड़ी दीसै, किता दिनां रा देव।
जो बूझयो सोई कह्यो, अलख लखायो भेव।
धोखा सभी गंमाय के, सबद कह्यो जम्भदेव।

कान्हाजी के पुत्र उधरण ने फिर पूछा – हे देव! आपने बातें तो बहुत ही ऊँची बतलायी है, ऐसा मालूम पड़ता है कि आपने बहुत वर्षो तक विद्याध्ययन किया है, किन्तु आपकी आयु तो बहुत ही थोड़ी दिखाई देती है आप कितने वर्षो के हैं। तब गुरु जाम्भोजी ने जैसा पूछा था वैसा ही उतर अपनी सबदवाणी के द्वारा दिया और कहा मैं अपनी उमर कितने वर्षो की बतलाऊँ?

सबद-4

ओ३म् जद पवन न होता पाणी न होता, न होता धर गैणारूं।

भावार्थ-महा प्रलयावस्था में जब सृष्टि के कारण रूप आकाशादि तत्व ही नहीं रहते, वे अपने कारण में विलीन हो जाते है तथा पुनः सृष्टि प्रारम्भ अवस्था में अपने कारण से कार्य रूप परिणित हो जाते हैं, यही क्रम चलता रहता है। श्री देवजी कहते हैं कि जब सृष्टि की उत्पत्ति नहीं हुई थी उस समय सृष्टि के कारण रूप पवन, जल, पृथ्वी आकाश और तेज नहीं थे। जैसा इस समय आप देखते हैं वैसे नहीं थे, अपने कारण रूप में ही थे।

चन्द न होता सूर न होता, न होता गिंगदर तारूं।

उस समय सूर्य चन्द्रमा नहीं थे तथा ये आकाश मण्डल के तारे भी नहीं थे अर्थात् अग्नि तत्व का फैलाव नहीं हुआ था। यानि अग्नि स्वयं कार्य रूप में परिणित नहीं हो सकी थी।

गऊ न गोरू माया जाल न होता, न होता हेत पियारूं।

तथा अन्य पृथ्वी तत्त्व का पसारा भी तब तक नहीं हो सका था जो प्रधानतः गाय बैल के रूप में प्रसिद्ध है तथा तब तक ईश्वरीय माया ने अपनी गतिविधि प्रारम्भ नहीं की थी। सभी जीव-आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप में ही थे। माया ने अपना जाल अब तक नहीं फैलाया था। जिससे प्रेम, मोह, द्वेश आदि भी नहीं थे किन्तु सभी कुछ सामान्य ही था।

माय न बाप न बहण न भाई, साख न सैण न होता पख परवारूं।

तब तक माता-पिता, बहन-भाई, सगा-सम्बन्धी, मित्र आदि परिवार का पक्ष नहीं था। जीव स्वयं अकेला ही था। मोह माया जनित दुःख से रहित चैतन्य परमात्मा हिरण्यगर्भ के रूप में स्थित था।

लख चौरासी जीया जूणी न होती, न होती बणी अठारा भारूं।

चौरासी लाख योनियाँ भी तब तक उत्पन्न नहीं हुई थी अर्थात् मनुष्य आदि जीव भी सुप्तावस्था में ही थे। अठारह भार वनस्पति भी उस समय नहीं थी। (शास्त्रों में वर्णित है कि कुल वनस्पति अठारह भार है यह भार एक प्रकार का तोल ही है।)

सप्त पाताल फूंणीद न होता, न होता सागर खारूं।

सातों पाताल तथा लोक का स्वामी पृथ्वी धारक शेष नाग भी नहीं था। यहाँ पर केवल पाताल लोकों का ही निषेध किया है, इसका अर्थ है कि अन्य उपरी स्वर्गादिक लोक तो थे तथा खारे जल से परिपूर्ण समुद्र भी उस समय नहीं था।

अजिया सजिया जीया जूणी न होती, न होती कुड़ी भरतारूं।

जड़ चेतनमय दोनों प्रकार की सृष्टि उस समय नहीं थी तथा उन दोनों प्रकार की सृष्टि के रचयिता माया पति सगुण-साकार ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों देव भी तब तक नहीं थे। आकाशादि सृष्टि की उत्पति के पश्चात् ही सर्व प्रथम

विष्णु की उत्पत्ति होती है, विष्णु से ही ब्रह्मा की उत्पति होती है ब्रह्मा ही अपनी झूठी मिथ्या माया से जगत की रचना करते है, ऐसी प्रसिद्धि है इसलिये उस समय कूड़ी-झूठी माया तथा माया पति दोनों ही नहीं थे तब जड़ चेतन की उत्पत्ति भी नहीं थी।

अर्थ न गर्थ न गर्व न होता, न होता तेजी तुरंग तुखारूं।

उस समय ये सांसारिक चकाचौंध पैदा करने वाले धन दौलत तथा उससे उत्पन्न होने वाला अभिमान नहीं था। चित्र-विचित्र, रंग-रंगीले तेज चलने वाले घोड़े उस समय नहीं थे।

हाट पटण बाजार न होता, न होता राज दवारूं।

श्रेष्ठ दुकानें, व्यापारिक प्रतिष्ठान, बाजार आदि दिग्भ्रमित करने वाले राज-दरबार भी उस समय नहीं थे। जो इस समय यह उपस्थित चकाचौंध तथा राज्य प्राप्ति की अभिलाषा जनित क्लेश उस समय नहीं था।

चाव न चहन न कोह का बाण न होता, तद होता एक निरंजन शिम्भू।

इस समय की होने वाली चाहना यानि एक-दूसरे के प्रति लगाव या प्रेम भाव खुशी से होने वाली चहल-पहल, उत्सव तथा क्रोध रूपी बाण भी उस समय नहीं थे। प्रेम तथा क्रोध दोनों ही अपनी-अपनी जगह पर स्थित होकर मानव को घायल कर देते है, यह स्थिति उस समय नहीं थी तो क्या ? कुछ भी नहीं था ? उस समय तो माया रहित एकमात्र स्वयंभू ही था।

कै होता धंधूकारूं बात कदो की पूछै लोई, जुग छतीस विचारूं।

या फिर धन्धूकार ही था। पंच महाभूतों की जब प्रलयावस्था होती है तब वे परमाणु रूप में परिवर्तित हो जाते हैं, उन परमाणुओं से धन्धूकार जैसा वातावरण हो जाता है। हे सांसारिक लोगो! आप कब की बात पूछते हो ? यदि आप कहें तो एक या दो युग नहीं छतीस युगों की बात बता सकता हूँ।

तांह परैरे अवर छतीसूं, पहला अन्त न पारूं।

तथा छतीस युगों से भी आगे की बात बता सकता हूँ तथा उन छतीस से भी पूर्व की बात बता सकता हूँ। उससे पूर्व का तो कोई अन्त पार भी नहीं है।

म्हे तदपण होता अब पण आछै, बल बल होयसा कह कद कद का करूं विचारूं।

जब इस सृष्टि का विस्तार कुछ भी नहीं था इसलिये मैं बता भी सकता हूँ कि उस समय क्या स्थिति थी। इस समय मैं विद्यमान हूँ और आगे भी रहूँगा। हे उधरण! कहो कब-कब का विचार कहूँ अर्थात् आप लोग मेरी आयु किस-किस समय की पूछते हो ? मैं अपनी आयु कितने वर्षो की बतलाऊँ।

★★★★

''दोहा''

उधरण कान्हावत यूं कहै, जाम्भाजी सूं बात।
जाप कुणा रो थे जपो, हमें बतावों तात।

कान्हाजी के पुत्र उधरण ने इससे पूर्व सबद द्वारा आयु का ज्ञान प्राप्त करके फिर दूसरा प्रश्न पूछा कि हे देव! आप जप किसका करते हो, हमें भी बतलायें कि हम किस देवता का जप-नाम स्मरण उपासना करें।

गुरु जाम्भोजी ने शब्दोच्चारण इस प्रकार से किया-

सबद-5

ओ३म् अइयालो अपरंपर बाणी, म्हे जपां न जाया जीऊं।

भावार्थ-हे संसार के लोगों! मेरी वाणी अपरंपर है अर्थात् तुम लोग जिनकी परंपरा से उपासना करते आये हो और अब भी कर रहे हो, ऐसी परंपरा वाली उपासना मैं नहीं करता। आप लोगों ने जिस परम तत्त्व की कभी कल्पना भी नहीं की होगी जो लोगों की सामान्य वाणी से परे है। केवल योगी लोगों द्वारा अनुभव गम्य है, उसी परम देव की मैं मन वचन कर्म से उपासना तथा जप करता हूँ और आप लोग भी उसी की उपासना करो। हमारे जैसे पुरूष कभी भी जन्में हुए जीवों की उपासना जप नहीं करते यदि आप लोग करते हैं तो छोड़ दीजिये। जन्मा जीव तो स्वयं असमर्थ है कमजोर व्यक्ति दूसरे की क्या सहायता कर सकता है।

नव अवतार नमो नारायण, तेपण रूप हमारा थीयूं।

परम सत्तावान भगवान विष्णु के ही नवों अवतार हुए है ये नव अवतार-मच्छ, कच्छ, वाराह, नृसिंह, बावन, परशुराम, राम-लक्ष्मण, कृष्ण तथा बुद्ध इत्यादि। ये नवों अवतार ही नमन करने योग्य है इनसे अतिरिक्त अन्य जन्मा जीव उपास्य नहीं है तथा ये नवों अवतार श्री जाम्भोजी कहते है कि मेरे ही रूप है। देशकाल, शरीर से भिन्न होते हुऐ भी तत्व रूप से तो मैं और नवों अवतार एक ही है।

जपी तपी तकपीर ऋषेश्वर, कांय जपीजै तेपण जाया जीऊं।

अब आगे जन्मे जीवों को बता रहे हैं, जिनका जप लोग किया करते हैं उनमें यती, तपस्वी, तकिये पर रहने वाले फकीर, ऋषि, मण्डलेश्वर इत्यादि जन्में जीव है। हे लोगों! इनका जप क्यों करते हो।

खेचर भूचर खेत्रपाला परगट गुप्ता, कांय जपीजै तेपण जाया जीऊं।

आकाश में विचरण करने वाले, खेत्रपाल, भोमियां इत्यादि कुछ तो प्रगट तथा कुछ गुप्त हैं, इन्हें आप क्यों जपते हैं ये तो जन्मे हुऐ जीव हैं।

वासग शेष गुणिंदा फुणिंदा, कांय जपीजै तेपण जाया जीऊं।

वासुकि नाग, शेषनाग, मणिधारी, गुणवान तथा फणधारी नागराज ही क्यों न हो ये सभी जन्में हुऐ जीव है। इसलिये जप करने के योग्य नहीं है। फिर इनके नीचे पड़कर धोक क्यों लगाते हो।

चोषट जोगनी बावन भैरूं, कांय जपीजै तेपण जाया जीऊं।

चौषट प्रकार की योगनियाँ तथा बावन प्रकार के बीर-भैरव जो देहातों में अब भी पूजे जाते है ये सभी जन्म-मरण धर्मा सामान्य जीव है। इनकी आराधना सदा ही वर्जनीय है। आप लोग क्यों भोपों पुजारियों के चक्कर में पड़कर धन, बल, समय व्यर्थ में ही बर्बाद करते हो।

जपां तो एक निरालंभ शिम्भू, जिहिं के माई न पीऊं।

एक निराकार निरालंभ, निरंजन, स्वयंभू का ही हम तो जप करते है जिनके न तो कोई माता है और न ही कोई पिता है तथा जो सर्वाधार सर्वशक्तिमान है और वह सभी के माता-पिता, भाई-बन्धु सभी कुछ है।

न तन रक्तूं न तन धातूं, न तन ताव न सीऊं।

न तो उस आराध्य देव के शरीर में रक्त है और न ही धातू है तथा न ही उनके शरीर को गर्मी लगती

और न ही सर्दी सताती है।

सर्व सिरजत मरत विवरजत, तास न मूल ज लेणा कीयों।

एक मात्र समादरणीय वह तत्त्व साकार रूप धारण करके सर्वसृष्टि की रचना करता है। मृत्यु से स्वयं तो रहित है किन्तु सभी जीवों का मूल स्थान है। वहीं से जीवों का उद्‌गम होता है, अन्त में वहीं जाकर जीव विलीन हो जाते हैं। ऐसे परम तत्व मूल को खोजना चाहिये, प्राप्त करना चाहिये।

अइयालो अपरंपर बाणी, म्हे जपां न जाया जीऊं।

इसलिये हे लोगों! मेरा मार्ग कुछ विचित्र है किन्तु सत्य सनातन है, संसार की लीक से हटकर होने से आश्चर्य नहीं करना। अत: मैं जन्में जीवों का जप नहीं करता। जो स्वयं फंसे हैं वे दूसरों को कैसे मुक्ति दिला सकते हैं।

★★★★

''दोहा''

उधरण कान्हावत यों कहे, दोय कहै छै देव।
भिन्न भिन्न समझाइयों, हमें बतावों भेव।

उधरण राजपुत्र ने इससे पूर्व तीन सबदों को ध्यानपूर्वक श्रवण किया तब यह जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि जीव और ब्रह्म एक ही है या दो भिन्न भिन्न है, इस शंका का समाधानार्थ उधरण ने प्रार्थना की। तब श्री देवजी ने यह सबदोच्चारण किया-

सबद-6

ओ३म् भवन भवन म्हें एका जोती, चुन चुन लिया रतना मोती।

भावार्थ-सम्पूर्ण चराचर सृष्टि के कण कण में परम तत्त्व रूप परब्रह्म की सामान्य ज्योति सर्वत्र है अर्थात् प्रत्येक शरीर में स्थित जीवात्मा उसी एक परमात्मा का ही प्रतिबिम्ब है। जैसा बिम्ब रूप परमात्मा है वैसे ही प्रतिबिम्ब रूप जीव है, दोनों में कोई भेद नहीं है। यदि किसी को भेद मालूम पड़ता है तो वह केवल उपाधी के कारण ही हो सकता है। गुरु जाम्भोजी कहते हैं कि जीव सभी एक होने पर भी तथा परमात्मा का अंश होने पर भी, हमारे जैसे अवतारी पुरूष सभी जीवों का उद्धार नहीं करते क्योंकि सभी जीव अब तक ईश्वर प्राप्ति की योग्यता नहीं रखते जो हीरा-मोती सदृश अमूल्य शुद्ध सात्विक सज्जनता को प्राप्त कर चुके हैं उन्हें ही हम परम धाम में पहुँचाते हैं।

म्हे खोजी थापण होजी नाही, खोज लहां धुर खोजूं।

हम खोजी हैं अर्थात् जिन जीवों के कर्मजाल समाप्त हो चुके हैं वे लोग अब परम तत्व के लिये बिल्कुल तैयार हैं उन्हें केवल सहारे की जरूरत है ऐसे जीवों की हम खोज करेंगे तथा चुन-चुनकर उन्हें परम सत्ता से साक्षात्कार करवायेंगे। हम होजी नहीं हैं अर्थात् अज्ञानी या ना समझ नहीं है। एक एक कार्य बड़ी शालीनता से किया जायेगा जो सदा के लिये सद्‌मार्ग स्थिर हो जायेगा। सृष्टि के प्रारम्भिक काल से लेकर अब तक जितने भी जीव बिछुड़ गये हैं उन्हें प्रह्लादजी के कथनानुसार वापिस खोज करके सुख शांति प्रदान कराऊँगा। इसलिये मेरा

यहाँ पर आगमन हुआ है।

अल्लाह अलेख अडाल अजोनी स्वयंभूं, जिहिं का किसा विनाणी।

उस परम तत्त्व की प्राप्ति जीव करते है वह अल्लाह, माया रहित शब्द लेखन शक्ति से अग्राह्य,उत्पत्ति रहित, मूल स्वरूप, जो स्वयं अपने आप में ही स्थित है, उसका विनाश कैसे हो सकता है। इसलिये इस सिद्धान्त से विपरीत जो जन्मा हो, लेखनीय हो, डाल रूप हो, जो उत्पतिशील हो उसका ही विनाश संभव है। इसलिये उस नित्य आनन्द स्वरूप परमात्मा को प्राप्त करके जीव भी नित्य आनन्द रूप ही हो जाता है।

म्हे सरै न बैठा सीख न पूछी, निरत सुरत सब जाणी।

जब उधरण ने पूछा कि हे देव! यह शिक्षा आपने कौनसी पाठशाला में प्राप्त की क्योंकि ऐसी विद्या तो हम भी सीखना चाहते हैं। तब जम्भेश्वर जी ने कहा-कि मैंने यह विद्या किसी पाठशाला में बैठकर नहीं सीखी। तो फिर कैसे जान गये? हे उधरण! मैने इसी प्रकृति की पाठशाला में बैठकर सुरति-वृत्ति को निरति यानि एकाग्र करके सभी कुछ जान लिया। पाठशाला में बैठकर तो सभी कुछ नहीं जाना जा सकता किन्तु उस सत्ता परमेश्वर के साथ वृत्ति को मिला लेने से सभी कुछ जाना जा सकता है। क्योंकि वह परम तत्त्व व्यापक होने से वृत्ति एकाग्र कर्त्ता जीव भी व्यापकत्व को प्राप्त हो जाता है और सभी कुछ जान लेता है। इसलिये आप भी मन वृत्ति को एकाग्र कीजिये और सभी कुछ जानिये।

उतपति हिन्दू जरणा जोगी, किरिया ब्राह्मण, दिल दरवेसां
उनमुन मुल्ला, अकल मिसलमानी।

उत्पत्ति से तो सभी हिन्दू हैं क्योंकि जितने भी धर्म पंथ चले है उनका तो कोई न कोई समय निश्चित है। किन्तु हिन्दू आदि अनादि है, कोई भी संवत् निश्चित नहीं है तथा मानवता जिसे हम कहते है वह पूर्णतया हिन्दू में ही सार्थक होती है इसलिये उत्पन्न होता हुआ बालक हिन्दू ही होता है। बाद में उसको संस्कारों द्वारा मुसलमान, ईसाई आदि बनाया जाता है। जिसके अन्दर जरणा अर्थात् सहनशीलता है वही योगी है। जिस प्राणी के अन्दर क्रिया, आचार-विचार, रहन-सहन पवित्र तथा शुद्ध है वही ब्राह्मण है। जिस मानव के अन्दर दिल अन्त:करण शुद्ध पवित्र विशाल, राग द्वेष से रहित है वही दरवेश है। जिस मनुष्य ने मानसिक वृत्तियों को संसार से हटाकर आत्मस्थ कर लिया है वही मुल्ला है तथा जो इस संसार में बुद्धि द्वारा सोच-विचार के कार्य करता है वही मुसलमान हो सकता है क्योंकि मुसलमान पंथ संस्थापक ने अक्ल हीनों को अक्ल दी थी जिससे यह पंथ स्थापित हुआ था। कोई भी जाति विशेष इन विशिष्ट कर्मो द्वारा ही निर्मित होती है। कर्महीन होकर केवल जन्मना जाति से कुछ भी लाभ नहीं है। यह तो मात्र पाखण्ड ही होगा।

★★★★

प्रसंग-3

दोहा

लूणकरण बीकानेरीयो, मुहमद खां नागौर।
एक समय भेला हुआ, करने लागा झोड़।
बात चलाई जम्भ की, बैठे करे अचीर।
जम्भजी हिंदवां रा देव कै, मुसलमानां रा पीर।

लूणकरण यूं बोलियां, किण विध कहिये भेव।

एक समय बीकानेर का राजा लूणकरण तथा नागौर का बादशाह सूबेदार मुहमद खां एक जगह दोनों की भेंट हुई, आपस में चर्चा चली कि जम्भदेवजी सम्भराथल पर विराजमान है जो सर्वश्रेष्ठ देव है ऐसा लूणकरण ने कहा। इस वार्ता से देव की बात सुनकर मुहमद खां कहने लगा-आप इन्हें देव मत कहो, ये तो हमारे मुसलमानों के पीर है। लूणकरण ने कहा-यह कैसे हो सकता है। ये तो हमारे हिन्दुओं के देव है क्योंकि स्नान, विष्णु का जप, मद्य मांस छुड़ाना हवन करना आदि हिन्दू धर्म का ही प्रचार कर रहे हैं। तब मुहमद कहने लगा-इसमें तो आपका कोई हक नजर नहीं आता क्योंकि वे तो हमें नमाज पढ़ना, कलमा रखना आदि मुसलमानी राह बताते है इसलिये हमारे पीर है। इस प्रकार से आपस में विवाद करने लगे तब-

''दोहा''

राव पुरोहित मेल्हियो, काजी भेज्यो खान।
जम्भेश्वर पे आय कै, बूझया विधी विधान।
पुरोहित बुलायो देवजी, लियो निकट बुलाय।
शब्द सुणायो जम्भ गुरु, दुरमति दई नसाय।

राजा लूणकरण ने तो अपना प्रतिनिधि बनाकर पुरोहित को भेजा और मुहमद खां ने काजी को भेजा। दोनों साथ ही साथ निर्णय लेने के लिये सम्भराथल पहुँचे। उन्होंने आकर हिन्दू मुसलमान धर्म सम्बन्धी विधि-विधान पूछे, तब प्रथम पुरोहित को अपने निकट बुलाया और बैठाकर दिल की दुर्मति मिटाने के लिये सबद कहा-

सबद-7

ओ३म् हिन्दू होय कै हरि क्यूं न जंप्यो, कांय दहदिश दिल पसरायो।

भावार्थ-हिन्दू होने का अर्थ है कि भगवान विष्णु-हरि से सम्बन्ध स्थापित करना। विष्णु निर्दिष्ट मार्ग का अनुसरण करना तथा विष्णु परमात्मा का अनुगमन करना तथा विष्णु परमात्मा का स्मरण करना। यदि हिन्दू होकर यह कर्त्तव्य तो किया नहीं और मन इन्द्रियों को दशों दिशाओं में भटकाते रहे तो फिर तुम कैसे हिन्दू हो सकते हो।

सोम अमावस आदितवारी, कांय काटी बन रायों।

आप लोग हिन्दू होकर भी चन्द्रमा के रहते, अमावस्या के समय तथा सूर्यदेव के समक्ष हरे वृक्षों को काटते हो तो तुम कैसे हिन्दू हो सकते हो? अर्थात् किसी भी समय हरे वृक्ष नही काटने चाहिये ये जीव धारी होते हुए मानव आदि के लिए बहुत ही उपयोगी हैं। सम्पूर्ण समय में सोम-चन्द्रमा, अमावस तथा आदित्य-सूर्य ये तीनों उपस्थित रहेगें ही। दिन में सूर्य रात्रि में चन्द्रमा तथा अन्धेरी रात्रि में अमावस्या रहेगी इन तीनों के बिना तो समय की कल्पना भी नही की जा सकती। इसलिए हरे वृक्ष नहीं काटने चाहिए। सदा ही वर्जनीय है।

गहण गहंते बहण बहंतै, निर्जल ग्यारस मूल बहंतै।

कांयरे मुरखा तैं पालंग सेज निहाल बिछाई।

सूर्य चन्द्र ग्रहण के समय में प्रातः सांय संध्या के समय में (उस समय वेणा अर्थात् कूवे तालाब से जल लाने की बेला में) निर्जला ग्यारस में तथा मूल नक्षत्र में (यह नक्षत्र अनिष्टकारी होता है) हे मूर्ख! ऐसे समय में तुमने सुन्दर पलंग बिछाकर सांसारिक सुख के लिये प्रयत्नशील रहा। इन समय में गर्भाधान से होने वाली संतान शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक रूप से स्वस्थ पैदा नहीं होगी। दुष्ट स्वभाव जनित विकृत ही होगी।

जा दिन तेरे होम जाप न तप न किरिया, जान कै भागी कपिला गाई।

उन ग्रहणादि दिनों में तेरे को हवन, जप, तप, शुद्ध आचारादि क्रिया, शुभ कर्म करने चाहिये थे। किन्तु ये कर्म तो तूने किये नहीं तो जान-समझ करके भी घर में आयी हुई कामधेनु को तुमने भगा दिया।

कूड़ तणों जे करतब कियो, ना तै लाव न सायों।

इस समय में इस संसार में रहकर, झूठ बोलकर कपटपूर्ण कर्तव्य किया न तो उसमें कुछ लाभ हुआ और नहीं अच्छा ही कहा जा सकता है। सत्य प्रिय हितकर वचनों की परवाह न करके तूने अपने जीवन को नीचे धकेल दिया है।

भूला प्राणी आल बखाणी, न जंप्यो सुर रायो।

हे भूले हुऐ हिन्दू प्राणी! तूने यथार्थ की बात तो कभी नहीं कही तथा वैसे ही व्यर्थ की आल-बाल बातें बकता रहा। किन्तु देवाधिदेव विष्णु हरि का जप नहीं किया।

छंदै का तो बहुता भावै, खरतर को पतियायो।

स्वकीय प्रशंसा परक तथा परकीय निंदा परक बातें तो तुझे बहुत ही अच्छी लगी और किसी साहसी जन ने सच्ची यथार्थ बात तुम्हारी तथा परायी कही तो वह तुम्हें अच्छी नहीं लगी उस पर तुमने विश्वास तक नहीं किया क्योंकि तुम्हें अपनी प्रशंसा और दूसरों की बुराई में ही आनन्द आता है।

हिव की बेला हिव न जाग्यो, शंक रह्यो कदरायो।

अनायास ही प्राप्त इस अमूल्य समय में हृदय को जगाया नहीं क्योंकि हृदय में ही तो जीव चेतन रहता है। वह तो वचनों द्वारा जगाया जा सकता है। यदा कदा किसी ने जगाने की चेष्टा भी की तो झट से तूने शंका खड़ी कर दी। जिससे तुम्हारी शंका कभी निर्मूल नहीं हो सकी और नहीं जाग सका, उल्टा अभिमान के वशीभूत हो गया।

ठाढ़ी बेला ठार न जाग्यो, ताती बेला तायो।

सूर्यास्त की बेला ठण्डी होती है उसी प्रकार से मानव की वृद्धावस्था भी ठण्डी वेला ही है क्योंकि शरीर प्रायः ठण्डा ही हो जाता है। धीरे-धीरे समय आने पर बचा-खुचा तेज भी गमन कर जाता है। तब हम उसे मृत कहते हैं। जवानी अवस्था तो दुपहरी के सूर्य के समान गर्म बेला है। हे प्राणी! वृद्धावस्था में तो ठण्डा हो जायेगा, शक्ति क्षीण हो जायेगी। कुछ कर नहीं सकेगा और युवावस्था में तो गर्मी के जोश में तूने कुछ ऐसा कार्य किया नहीं जो पार उतार दे यदि चाहता तो कर सकता था।

बिम्बै बैला विष्णु न जंप्यो, ताछै का चीन्हौं कछु कमायो।

बाल्यावस्था तो उगते हुए सूर्य की भांति अति सुन्दर निर्दोश तथा मन मोहक है। वह तो बिम्बै बेला है। इसमें तो सचेत होना भी कठिन है क्योंकि जब तक नासमझ है। हे प्राणी! तूने इन तीनों अवस्थाओं में ही भगवान

का भजन नहीं किया तो फिर किस की पहचान की और क्या कमाई की अर्थात् यह जीवन व्यर्थ ही गंवा दिया।

अति आलस भोलावै भूला, न चीन्हों सुररायो।

आलस्य ही मानव का महान शत्रु है। हे प्राणी! अति आलस में पड़कर न तो तुमने स्वयं कुछ कल्याणकारी कार्य किया और न ही किसी और को करने दिया। स्वयं तो भूल में रहा और दूसरों को भी भूल में डालता रहा। देवपति भगवान विष्णु का स्मरण-ध्यान नहीं किया तो यही तुमने जीवन में भूल की है।

पार ब्रह्म की सुध न जांणी, तो नागे जोग न पायो।

जब तक परब्रह्म की सुध नहीं जान सका तब तक नंगे रहने से धूणी धूकाने से अथवा भभूत रमाने से कोई योगी या हिन्दू नहीं हो सकता।

परशुराम के अर्थ न मूवा, ताकी निश्चै सरी न कायो।

परशुराम जी भगवान विष्णु के ही अवतार थे, उन्होंने इस संसार में अनेकानेक आश्चर्य जनक कार्य किये थे, अपने जीवन काल में ब्राह्मणत्व और क्षत्रियत्व दोनों धर्मो को एक साथ पूर्णता से निभाया। संसार में आयी हुई विपत्ति का विनाश करके सद्मार्ग प्रशस्त किया यदि इस समय उनके मार्ग पर चलकर कोई व्यक्ति अपने प्राणों का बलिदान देता है तो उसी का ही जीवन सफल है और जो तपस्यामय कठोर मार्ग से घबराता है उसका कार्य निश्चित ही सफल नहीं हो सकेगा। इसलिये हे पुरोहित! हिन्दू तो वही है जो हिन्दू धर्म को धारण करता है, केवल नाम मात्र से कुछ भी नहीं होता।

★★★★

''दोहा''

पुरोहित नै कहै देवजी, कोई पाहुणौं आवन्त।
चोरी करके निकले, लारै वार चढ़ंत।
मारग में कोई तुरक मिले और बार पहुंचे आय।
तपावस कर यां बात को, कहो मारियें काय।
चोर मारिये देवजी, साध न मारै कोय।
कारण नाही जात को, भावै हिन्दू होय।
जम्भेश्वर तब यूं कहै, पुरोहित कियो नियाव।
साच झूठ को भेद है, इसको यों ही भाव।
पुरोहित दूर बैठाय कै, काजी लियो बुलाय।
शब्द सुणायो जम्भ जी, इसको भेद बताय।

उपर्युक्त शब्द सुनाकर पुरोहित तथा काजी से जम्भदेवजी ने कहा-कि तुम्हारे घर पर कोई तुम्हारी ही जाति का प्रिय व्यक्ति आये और रात्रि में ही चोरी करके चला जाये और आप लोग पीछे पकड़ने के लिये जायें मार्ग में यदि कोई आपकी जाति से भिन्न जाति का सज्जन मिल जाये तो आप किसको पकड़ेंगे? तब पुरोहित ने कहा-देवजी! इसमें जाति का कोई कारण नहीं है जो चोर होगा वही पकड़ा जायेगा चाहे वह हिन्दू ही क्यों न

हो। यह न्याय तो पुरोहित तूने अपने आप ही कर दिया है। इसलिये हे पुरोहित मैं न तो हिन्दू ही हूँ और न ही मुसलमानों का पीर ही हूँ। मैं तो जो जाति-पांति से ऊपर उठकर सच्चे मार्ग के अनुयायी है, उन्हीं का देव हूँ वे ही मुझे प्रिय है। फिर देवजी ने पुरोहित को दूर बैठाया और काजी को समीप बुलाकर कहा-तुम लोग जो मुझे पीर कहते हो इसका कारण बतलाओ, ऐसा कहते हुऐ काजी के प्रति सबद सुनाया-

सबद-8

ओ३म् सुण रे काजी सुण रे मुल्ला, सुण रे बकर कसाई।

भावार्थ-बकरी आदि निरीह जीवों की हत्या करने वाले कसाई रूपी काजी, मुल्ला तुम लोग मेरी बात को ध्यान पूर्वक श्रवण करो।

किणरी थरपी छाली रोसो, किणरी गाडर गाई।

किस महापुरुष पैगम्बर ने यह विधान बनाया है कि तुम काजी मुल्ला मुसलमान या हिन्दू मिलकर या अलग-अलग इन बेचारी भेड़-बकरी और माता तुल्य गऊ के गले पर छुरी चलावो अर्थात् ऐसा विधान किसी ने नहीं बनाया तुम मनमुखी हो तथा अपना दोश छिपाने के लिये किसी महापुरुष को बदनाम मत करो।

सूल चुभीजै करक दुहैली, तो है है जायों जीव न घाई।

यदि तुम्हारे शरीर में कांटा चुभ जाता है तो भी दर्द असह्य हो जाता है फिर बेचारे जन्मे जीव ये भी तो शरीर धारी है इनके गले पर छुरी चलाते हो कितना कष्ट होता है। सभी प्राणी जीना चाहते है मृत्यु भयंकर है, उस दुखदायी अवस्था में इन मूक प्राणियों को आप पहुँचा देते है इससे बढ़कर और क्या कष्ट होगा, यही बड़े दु:ख की बात है।

थे तुरकी छुरकी भिस्ती दावों, खायबा खाज अखाजूं।

आप लोग मुसलमान है और हाथ में छुरी रखते हैं तथा अखाद्य मांस आदि का खाना खाते हैं फिर भी स्वर्ग में जाने का दावा करते है, यह असंभव है।

चर फिर आवै सहज दुहावै, तिसका खीर हलाली।

जो गऊ, भेड़, बकरी आदि वन में घास चरकर आती है और स्वाभाविक रूप से अमृत तुल्य दूध देती है और उस दूध से खीर, घी, दही आदि बनते है वह तो तुम्हारी हक की कमाई है किन्तु-

जिसके गले करद क्यूं सारो, थे पढ़ सुण रहिया खाली।

अन्याय द्वारा उन पर करद की मार क्यों करते हो, आप लोग कुरान आदि पढ़-सुन कर भी खाली ही रह गये, कुछ भी नहीं समझ सके।

★★★★

''दोहा''

काजी कहै सुण जम्भ जी, किया कर्म न होय।
नमाज पढ़त है दीन की, सगरा मेल दे धोय।
जो बूझ्यो सोई कह्यो, अलख लखायो भेव।

धोखा सबै गमाय कै, सबद कह्यो जम्भदेव।

काजी ने कहा-हे जम्भदेवजी! हम लोग दीन इस्लाम धर्म की नमाज पढ़ते है उससे हमारे सभी पाप कर्म मिट जाते हैं। इस प्रश्न का समाधान करने के लिये जम्भेश्वर जी ने सबदोच्चारण किया-

सबद-9

ओ३म् दिल साबत हज काबो नेड़ै, क्या उलबंग पुकारो।

भावार्थ-यदि तुम्हारे दिल शुद्ध सात्विक विकार रहित है तो तुम्हारे काबे का हज नजदीक ही है अर्थात् हृदय ही तुम्हारा काबै का हज है तो फिर क्यों मकानों की दिवारों पर चढ़कर ऊँची आवाज से उस अल्ला की पुकार करते हो, यह तुम्हारी बेहूदी उलबंग तुम्हारा अल्ला नहीं सुन सकेगा क्योंकि वह अल्ला तो तुम्हारे दिल में ही है।

भाई नाऊँ बलद पियारो, ताकै गलै करद क्यूं सारों।

अपने प्रियजन भाई से भी हल चलाने वाला बैल प्रिय होता है, भाई मौके पर कभी भी जबाब दे सकता है किन्तु वह भोला-भाला बैल कभी भी संकट की घड़ी में जबाब नहीं देगा। आप लोग महा मूर्ख हो जो उस बैल के गले पर भी करद चलाते हो, यदि आप लोग जरा भी सोच-समझ रखते हो तो फिर ऐसा क्यों करते हो।

बिन चीन्है खुदाय बिबरजत, केहा मुसलमानों।

तुम लोगों ने ईश्वर को तो पहचाना नहीं है। उस खुदा ने भी तो जीव हत्या करना मना किया है फिर भी जीव हत्या करते हो, तो तुम सच्चे मुसलमान कैसे हो सकते हो। शिष्य यदि गुरु का कहना नहीं माने तो फिर कैसा गुरु और कैसा शिष्य।

काफर मुकर होकर राह गुमायो, जोय जोय गाफिल करें धिंगाणों।

अपने गुरु के वचनों को छोड़कर आप लोग वास्तव में काफिर-नास्तिक हो चुके हो और अपने पथ से भ्रष्ट होकर जबरदस्ती करते हो। वास्तव में अपने मार्ग का पता तो तुम्हें है किन्तु जानते हुऐ भी अनजान बनकर पाप कर्म करने में प्रवृत हो गये, यही तुम्हारी जबरदस्ती है।

ज्यूं थे पश्चिम दिशा उलबंग पुकारो, भल जे यो चिन्हों रहमाणों।

जिस प्रकार से आप लोग पश्चिम दिशा की ओर मुख करके बड़े जोर से हेला आवाज मारते हो ठीक उसी प्रकार से यदि उस दया-ज्ञान सिन्धु रहम करने वाले परमेश्वर को सच्चे दिल से याद करो तो तुम्हारा भला होना निश्चित ही है।

तो रूह चलंते पिण्ड पड़ंतै, आवै भिस्त विमाणों।

यदि आप लोग सच्चे मन से नमाज की तरह ही परमात्मा का स्मरण करो तो जब यह आत्मा शरीर से विलग हो जायेगी यह शरीर गिर जायेगा, उस समय स्वर्ग से विमान तुम्हारे लिये अवश्य ही आयेगा।

चढ़ चढ़ भींते मड़ी मसीते, क्या उलबंग पुकारो।

बिना सच्चाई के तो केवल भींत, मेड़ी, मस्जिद आदि पर चढ़कर पुकार करने से कोई लाभ नहीं कभी स्वर्ग की आशा नहीं करना।

काहे काजै गऊ विणासै, तो करीम गऊ क्यूं चारी।

भगवान श्री कृष्ण ने गऊवें चराई थी यदि गउवों को मारना ही इष्ट होता तो वे समर्थ पुरुष कभी भी गउवें नहीं चराते। अब तक तो यहाँ संसार में एक भी गऊ जीवित नहीं होती तो फिर तुम लोग क्यों गऊवों का विनाश करते हो।

कांही लीयो दूधूं दहियूं, कांही लीयूं घीयूं महीयूं।
कांही लीयूं हाडूं मासूं, काहीं लीयूं रक्तूं रूहियूं।

यदि तुम लोग गऊवों का विनाश करना ठीक मानते हो तो फिर उनका अमृतमय दूध, दही, घी, मेवा आदि क्यों ग्रहण करते हो, इन वस्तुओं से सदा परहेज रखो और यदि घी, दूध आदि ग्रहण करते हो तो फिर उनके हाड़, मांस, रक्त और जीव को क्यों खा जाते हो, यह तुम्हारा न्याय नहीं हो सकता।

सुणरे काजी सुणरे मुल्ला, यामै कोण भया मुरदारूं।

रे काजी, रे मुल्ला! ध्यानपूर्वक सुनों! इसमें मुर्दा कौन हुआ? मारने वाला या मरने वाला? यहाँ तो ऐसा ही लगता है कि मुर्दे को खाने वाला ही मुर्दा-मृत है। जो मर चुका है वह तो नया शरीर धारण कर ही लेगा, किन्तु मरे हुऐ को खाने वाला तो रोज मुर्दा-मृत होता है अर्थात् तुम लोग सभी मुर्दे हो।

जीवां ऊपर जोर करीजै, अंत काल होयसी भारूं।

इस समय यदि जीवों पर जोर जबरदस्ती करते हो तो अन्त समय में तुम्हारे लिये मुश्किल पैदा हो जायेगी। तुम्हारा यह जीवन मूल ही नष्ट हो जायेगा।

★★★★

''दोहा''

विसमिल्ला कहै मार है, हमारे यही इमान।
जम्भेश्वर तब बोलियां, सबद सुनायों कान।

इन शब्दों को श्रवण करके फिर से वह काजी कहने लगा-हे देव! हम तो विसमिल्ला का नाम लेकर जीवों को मारते है हमारा यह इमान-धर्म है। तब जम्भेश्वर जी नें पुनः सबद सुनाया-

सबद-10

ओ३म् विसमिल्ला रहमान रहीम, जिहिं कै सदकै भीना भीन।

भावार्थ-विसमिल्ला तो रहम-दया भाव रखने वाले स्वयं विष्णु अवतारी राम ही है। उनका मार्ग तो तुम्हारे से भिन्न ही था। वर्तमान में तुमने जो जीव हत्या का मार्ग अपना रखा है यह तुम्हारा मनमुखी है। उनको बदनाम मत करो।

तो भेटिलो रहमान रहीम, करीम काया दिल करणी।

सभी पर रहम करने वाले श्री राम एवं गोपालक श्री कृष्ण को दिल रूपी हृदय गुहा में स्थिर करके फिर कोई शुभ कार्य करोगे तभी तुम्हारा कार्य सुफल होगा। उस रहीम से भेंट मिलन भी हो सकेगा।

कलमा करतब कौल कुराणों, दिल खोजो दरबेश भइलो तइयां मुसलमानों।

शुभ कर्तव्य कर्म करना ही कलमा रखना है और प्रतिज्ञा निभाना ही कुराण पढ़ना है तथा यही पीर पैगम्बरों

का आदेश है। जो व्यक्ति अपने ही अन्त:करण में छिपे हुऐ अवगुणों को खोजकर उनको बाहर निकाल देता है एवं शुद्ध पवित्र हो जाता है वही सच्चा मुसलमान है तथा वही दरवेश है।

पीरां पुरूषां जमी मुसल्ला, कर्तब लेक सलामों।

पीर पुरुष और सभी एकत्रित हुए मुसलमानों आप लोग आपस में एक दूसरे के प्रति सलाम कहते हो यह भी तुम्हारी सलाम व्यर्थ ही है क्योंकि जब तक नेक कमाई नहीं करोगे तब तक तुम्हारा कभी भी कोई भी कार्य सिद्ध नहीं हो सकता है। कथनी और करनी में एकता ही जीवन में सुख का मूल है। वास्तविक सलाम तो नेक कमाई है।

हम दिल लिल्ला तुम दिल लिल्ला, रहम करे रहमाणों।

हमारे दिल में वह लीलाधारी परमेश्वर है और तुम्हारे दिल में भी वही विराजमान है क्योंकि वह रहम करने वालों में सर्वश्रेष्ठ है। अर्थात् जो एक हिन्दू महात्मा मो मानव शरीर दिया है उसी से ही मुसलमान को भी वही अमूल्य मानव चोला दिया है तथा स्वयं ही उसमें प्रवेश भी हुआ है।

इतने मिसले चालो मीयां, तो पावो भिस्त इमाणों।

हे मियां! ऊपर बताये हुए मार्ग नियमों पर चलोगे तो भिस्त स्वर्ग प्राप्त कर सकते हो। जिस की प्राप्ति के लिये दिन-रात प्रयत्न शील दिखाई देते हो।

★★★★

''दोहा''

हज काबै का हज करां, पाप न रहै लिंगार।
जम्भेश्वर यों बोलिया, इसका सुणों विचार।

हम मुसलमान लोग काबै जाकर हज कर आते हैं तो जीवन भर के किये हुऐ सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। तब गुरु जम्भेश्वर जी ने सबद उच्चारण किया।

सबद-11

ओ३म् दिल साबत हज काबो नैड़ै, क्या उलबंग पुकारो।

भावार्थ-यदि तुम्हारे दिल में सच्चाई है तो काबे की हज निकट ही है। जब तुम्हारा अपना अन्त:करण नजदीक ही है तो फिर उसे दूर समझकर इतनी जोर से आवाज क्यों लगाते हो क्योंकि वह अल्ला तो तुम्हारे दिल में ही है।

सीने सरवर करो बंदगी, हक्क निवाज गुजारो।

उस परमपिता परमात्मा की प्राप्ति करना चाहते हो तो हृदय में प्रेम और दीनता से पुकार करो यही सच्ची प्रार्थना होगी। प्रतिदिन केवल नमाज अदा करने से तो कुछ कार्य सफल नहीं हो सकेगा। जब तक अपने जीवन में हक की कमाई नहीं करोगे, नमाज का अर्थ ही है कि हम अपने जीवन को शुद्ध परोपकारमय बनावें।

इंहि हैड़ै हर दिन की रोजी, तो इस ही रोजी सारों।

ईमानदारी से भले ही कितना ही कठिन कार्य करना पड़े वही कार्य अपने जीवन यापन के लिये उत्तम है। बेईमानी से किया हुआ कर्म जीवन को बर्बाद कर देगा वह अच्छा कैसे हो सकता है। जीवन में शारीरिक परिश्रम करके जो कुछ प्राप्त होता है वही संतोषजनक हो सकता है।

आप खुदाय बंद लेखौ मांगै, रे वीन्है गुन्है जीव क्यूं मारो।

स्वयं खुदा न्यायकारी आपसे न्याय मांगेगा और पूछेगा कि रे प्राणी! तेरे को अमूल्य मानव जीवन दिया था।इस जीवन में तेने क्या-क्या कर्म किये? उन जीवों ने तेरा क्या अपराध किया था। जिससे तुमने उनको मार डाला। तुझे किसी भी प्राणी को मारने का हक नहीं है, यदि तूँ किसी को जीवन दान नहीं दे सकता तो मृत्यु देने का क्या हक है? यह अनाधिकार चेष्टा है।

थे तक जाणों तक पीड़ न जांणो, विन परचै वाद निवाज गुजारो।

आप लोग बल प्रयोग द्वारा प्राणियों को मारना तो जानते हो किन्तु उनकी पीड़ा को नहीं जानते अर्थात् आपके पास सहानुभूति नहीं है अपने जीवन में कभी किसी सद्गुरु की बात का विश्वास पूर्ण श्रवण नहीं किया जिससे आत्मज्ञान प्राप्ति के बिना ही व्यर्थ में ही विवाद करते हो इसी प्रकार से अज्ञानी रहकर ही नमाज अदा करते हो तो इससे जीवन में कुछ भी लाभ नहीं होगा।

चर फिर आवै सहज दुहावै, जिसका खीर हलाली।
तिसके गले करद क्यूं सारौ, थे पढ़ सुण रहिया खाली।

जो माता तुल्य गऊ वन में चरकर आती है और वापिस आकर स्वभाव से ही अमृत तुल्य दूध देती है। उससे तुम लोग खीर आदि बनाकर खाते पीते हो फिर ऐसी परोपकारी माता के गले पर करद का वार भी करते हो तो तुम लोग पढ़-लिख, सुनकर भी खाली रह गये। तुम्हारा पढ़ना-लिखना व्यर्थ ही सिद्ध हो गया।

थे चढ़ चढ़ भींते मड़ी मसीते, क्या उलबंग पुकारो।
कारण खोटा करतब हीणा, थारी खाली पड़ी निवाजूं।

गऊ आदि जीव धारियों का मांस भक्षण करके फिर भींतों पर मेड़ी और मस्जिदों पर चढ़कर क्यों उलबंग से पुकार करते हो, क्या वह खुदा तुम्हारी बात को कभी सुनेगा? क्या वह बहरा या अन्धा हो गया है जो तुम्हारे इन खोटे पाप कर्मों को नहीं सुनता और देखता। क्या वह तुम्हारे हृदय की बात को नहीं जानता। जब तक तुम्हारे कार्य कारण रूप से खोटे कर्म है इन दुष्ट कर्मों का परित्याग नहीं करोगे तब तक तुम्हारा नमाज पढ़ना व्यर्थ है इससे कुछ भी अच्छा फल मिलने वाला नहीं है।

किहिं ओजूं तुम धोवो आप, किहिं ओजूं तुम खण्डा पाप।
किहिं ओजूं तुम धरो धियान, किहिं ओजूं चीन्हों रहमान।

इस प्रकार से जीव हत्या करते हुए फिर आप लोग किस प्रकार से अपने को साफ करोगे तथा किस प्रकार से पापों का नाश करोगे? किस प्रकार से परमसत्ता परमेश्वर-अल्ला का ध्यान करोगे और किस प्रकार से उस रहम करने वाले रहीम-राम को पहचान कर स्मरण करोगे। तुम्हारा अन्त:करण व शरीर इतना अपवित्र हो चुका है, जिससे तुम्हारी इन शुभ कार्य करने की योग्यता समाप्त हो गयी है और न ही नमाज पढ़ने से पूर्व हाथ पांव आदि धोना रूप ओजूं से ही कुछ शुभ कार्य होने वाला है।

रे मुल्ला मन मांही मसीत नमाज गुजारिये, सुणता ना क्या खरै पुकारिये।

रे मुल्ला काजी! इस लोक दिखावा रूप उलबंग को छोड़कर अपने मनरूपी मसीत में ही शांति तथा सावधानीपूर्वक निमाज पढ़िये। वह अन्तर्यामी खुदा क्या सुनता नहीं है? वह तो घट-घट की बात जानने वाला है। तो फिर खड़े होकर जोर से पुकारने की आवश्यकता नहीं है।

अलख न लखियो खलक पिछाण्यो, चांम कटै क्या हुइयो।

मन बुद्धि द्वारा परमात्मा का अनुभव तो किया नहीं और संसार में ही दशों दिशाओं में वृत्ति को भटकाता रहा, केवल संसार को ही सत्य सभी कुछ समझा तो फिर सुन्नत कराने से क्या लाभ हुआ।

हक हलाल पिछाण्यों नांही, तो निश्चै गाफल दोरै दीयो।

इस संसार में रहते हुऐ कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, पाप-पुण्य, हक्क-बेहक्क की पहचान तो की नहीं। विवेक बुद्धि से तो कार्य किया नहीं हे गाफिल! निश्चित ही तुझे खुदा-ईश्वर दौरे नरक में ही डालेंगे।

★★★★

''दोहा''

फिर यो काजी बोलियो, फरमाई यह मुहमद।
जम्भगुरु तब यों कही, इसका सुणियो सबद।

फिर वह काजी कहने लगा-हे देव! यह जीव हत्या करना तो मुहमद साहब ने हम लोगों को बतलाया है, तब जम्भेश्वर जी ने सबद उच्चारण किया।

सबद-12

ओ३म् महमद महमद न कर काजी, महमद का तो विक्रम विचारूं।

भावार्थ-अपने कुकर्मो पर परदा डालने के लिये हे काजी! तूँ मुहमद का नाम बार-बार मत ले। तुम्हारे विचारों, कर्तव्यों से मुहम्मद का कोई मेल जोल नहीं है। उनके विचार सर्वथा भिन्न थे।

महमंद हाथ करद जो होती, लोहै घड़ी न सारूं।

यदि तुम्हारी यह मान्यता है कि मुहमद भी हाथ में करद रखते थे तो यह बात सर्वथा गलत है क्योंकि प्रथम तो मुहमद जैसे महापुरुष हाथ में कभी हिंसा करने वाली खड़ग रख ही नहीं सकते और यदि रखते थे तो उनके पास में लोहे की बनी हुई नहीं थी। वह तो ज्ञान रूपी खड़ग ही थी। जिससे लोगों के पाप नाश किया करते थे।

महमद साथ पयंबर सीधा, एक लख असी हजारूं।

मुहमद के साथ में तो एक लाख असी हजार पैगम्बर यानि सिद्ध पुरुष थे। उन्होंने तो सद्मार्ग अपना करके स्वयं का तथा साथ में इन सिद्ध पुरुषों का भी उद्धार किया था।

महमद मरद हलाली होता, तुम ही भये मुरदारूं।

मुहमद तो पूर्णतया हक्क से कमाई करके शाकाहारी भोजन करते थे और तुम लोग जो अपने को उनका शिष्य बतलाकर मुर्दा खाते हो अर्थात् मांसाहारी होकर उनके मार्ग के अनुयायी कदापि नहीं हो सकते।

इस प्रकार से पुरोहित और काजी दोनों ने अलग-अलग शब्द सुनकर वापिस यथा स्थान पहुँचकर लूणकरण और मुहमद को अवगत करवाया।

★★★★

प्रसंग-3 दोहा

जम्भेश्वर बैठे सही, संत सभा के मांय।
जाट आय ऐसे कही, सतगुरु कहो समझाय।
पुण्य दान की बात का, बहुत करे प्रज्ञान।
थे कांसुं समझायस्यो, म्हेई जाणु सुजान।
दान पुण्य देवां घणां, भोपा भरड़ा देव।
जाप बहुत सा हम करां, पूजां देवी देव।

सारण गोत्र का शोभाराम जाट ने आकर सभा में आसीन गुरु जाम्भोजी से कहा-कि आप हमें व इन लोगों को कौनसी नयी बात बतला रहे हो। हम लोग दान पुण्य की बात को तो पहले से ही जानते हैं और घर पर आये हुए भोपा, भरड़ा, सुपात्र, कुपात्र का बिना विचार किये ही अपने यश की प्राप्ति हेतु देते ही हैं तथा जप उपासना भी करना जानते हैं। देवी, जोगणी, भेरू, भूत-प्रेत आदि की पूजा तो हम पहले से ही करते आये हैं। परमेश्वर की आराधना का तो कोई मतलब ही नहीं है। जैसा ही जपता है वैसा ही नहीं जपता वह भी इसमें कोई अन्तर नजर नहीं आता है। अब आप हमें नयी कौनसी बात बताने जा रहे हैं। तब श्री देवजी ने कहा-हे मूढ़ जड़ जाट! मैं तेरे को असली भेद बतलाऊँगा जिससे तूँ संसार सागर से पार उतर जायेगा।

सबद-13

ओ३म् कांय रे मुरखा तै जन्म गुमायो, भुंय भारी ले भारूं।

भावार्थ-रे मूर्ख! तुमने इस अमूल्य मानव जीवन को व्यर्थ में ही व्यतीत क्यों कर दिया। यह तुम्हारे हाथ से निकल चुका तो फिर लौटकर नहीं आयेगा। इस संसार में रहकर भी तुमने चोरी, जारी, निंदा, झूठ आदि पापों की पोटली ही बाँधी है। जब इस संसार में आया था तो काफी हल्का था, निष्पाप था। किन्तु यहाँ आकर इन पापों की पोटली से स्वयं ही बोझ से दब रहा है और इस धरती को भी भार से बोझिल बना दिया।

जां दिन तेरे होम नै जाप नै, तप नै किरिया।
गुरु नै चीन्हौं पन्थ न पायो, अहल गई जमवारूं।

उन दिनों में जब तूँ स्वस्थ था तथा अमावस्यादि पवित्र दिन थे। उन दिनों में तुम्हें हवन-जप आराधना तपस्या तथा शुद्ध सात्विक क्रियायें करनी चाहिये थी। इस संसार में रहते हुऐ तुझे गुरु की पहचान करके उनसे सम्बन्ध स्थापित करना था तथा उन सद्गुरु से प्रार्थना करके सद्मार्ग के बारे में पूछकर उन पर चलने का प्रयत्न करना चाहिये था। यह शुभ कार्य तुमने नहीं किया तो तेरा जन्म व्यर्थ ही चला गया।

ताती बेला ताव न जाग्यो, ठाढ़ी बेला ठारूं।
बिंम्बै बैला विष्णु न जंप्यो, तातै बहुत भई कसवारूं।

प्रत्येक दिन में तीन बेला आती है प्रातः, दुपहरी और सांय ठण्डी बेला। उसी प्रकार से मानव जीवन की भी बाल्यावस्था यह बिम्बै बैला है। युवावस्था यह ताती बेला है क्योंकि जवानी का खून गर्म होता है और वृद्धावस्था यह ठण्डी बेला है, यह अन्तिम अवस्था है इसमें तेज मंद हो जाता है। हे प्राणी! इन तीनों अवस्थाओं में तुमने भगवान विष्णु का भजन नहीं किया तो बहुत ही बड़ी कमी रह गयी। अपने जीवन को सफल नहीं कर पाया इससे बढ़कर और ज्यादा हानि क्या हो सकती है।

खरी न खाटी देह बिणाठी, थीर न पवना पारूं।

शुभ कर्तव्य कर्म तो तूने किया नहीं वैसे ही आल-जंजाल में फंसा रहा। इस उहा-पोह में तेरे शरीर की आयु व्यतीत हो गयी क्योंकि इस संसार में कोई भी वस्तु स्थिर नहीं है। पवन, पानी, तेज, पृथ्वी आदि सभी का समय निश्चित है इसलिये तेरा श्वांस भी स्थिर कैसे हो सकता है।

अहनिश आव घटंती जावै, तेरे श्वांस सबी कसवारूं।

दिन और रात्रि करके तुम्हारी यह सीमित आयु घटती जा रही है। तुम दिनोंदिन छोटा होता जा रहा है। ये तेरे प्रत्येक श्वांस बड़े कीमती है। एक एक श्वांस का मूल्य चुकाया नहीं जा सकता।

जा जन मन्त्र विष्णु न जंप्यो, ते नर कुबरण कालूं।
जा जन मन्त्र विष्णु न जंप्यो, ते नगरे कीर कहारूं।

जिस मानव ने परमपिता परमेश्वर अवतार धारी सर्व जन पालन-पोषण कर्ता भगवान विष्णु का जप नहीं किया वह चाहे भले ही मृत्यु के उपरांत दूसरे जन्म में मानव योनि को प्राप्त कर ले किन्तु वह अच्छा सुस्वस्थ मानव कदापि नहीं हो सकता। उसे किसी दुःखी परिवार में जन्म लेना पड़ेगा। वह काले रंग का दुष्ट प्रकृति वाला ही होगा या नगर में रहकर दिन भर गधे की तरह भार उठायेगा। मानव शरीर तो प्राप्त हुआ किन्तु विष्णु कृपा बिना पवित्र श्रीमानों के घर पर जन्म मिलना अति दुर्लभ है।

जा जन मन्त्र विष्णु न जंप्यो, ते कांध सहै दुख भारूं।
जा जन मन्त्र विष्णु न जंप्यो, ते घण तण करै अहारूं।

जिस प्राणी ने सर्वत्र व्यापक भगवान विष्णु का जप नहीं किया वह जन्मान्तर में कंधे पर भार उठाने वाला शरीर प्राप्त करेगा तथा अत्यधिक भोजन करने वाला शरीर जो कभी पेट भी भरता नहीं जो सदा भूखे रहने वाले पशु पक्षी या मानव शरीर को धारण करेगा।

जा जन मन्त्र विष्णु न जंप्यो, ताको लोही मांस विकारूं।
जा जन मन्त्र विष्णु न जंप्यो, गावै गाडर सहरै सुवर जन्म जन्म अवतारूं।

जिस प्राणी ने मानव शरीर धारण करके हरिनारायण विष्णु की सेवा पूजन तन-मन-धन से नहीं किया उसके लोही, मांस में सदा विकार पैदा होगा अर्थात् सदा ही रोगी रहेगा और दूसरे जन्म में गांवों में गाडर भेड़ का जन्म होगा तथा शहरों में सुवर का जन्म धारण करना पड़ेगा जिसे सदा ही दुख झेलना पड़ेगा।

जा जन मन्त्र विष्णु न जंप्यो, ओडा के घर पोहण होयसी, पीठ सहै दुःख भारूं।
जा जन मन्त्र विष्णु न जंप्यो, राने वासो मोनी बैसे ढूकै सूर सवारूं।

मानव शरीर धारी को स्वकीय मूल स्वरूप देवाधिदेव विष्णु परमात्मा की प्राप्ति के लिये उन्हीं परम सत्ता से सम्बन्ध स्थापित करना चाहिये। सम्बन्ध स्थापित करने का प्रमुख साधन विष्णु का नाम स्मरण ही है,

यदि कोई ऐसा नहीं कर पाता है तो वह जन्मों जन्मों में गधे का जीवन धारण करके अपने मालिक ओड जाति के यहाँ पर भार उठाना पड़ेगा। या फिर डोड-गृध पक्षी का रूप धारण करके रात्रि में तो कहीं आहार के लिये जा नहीं सकेगा भूखे ही रात्रि व्यतीत करेगा प्रात:काल ही मौन रहकर गंदगी में अपना भोजन प्राप्त करेगा।

जा जन मन्त्र विष्णु न जंप्यो, ते अचल उठावत भारूं।
जा जन मन्त्र विष्णु न जंप्यो, ते न उतरिबा पारूं।
जा जन मन्त्र विष्णु न जंप्यो, ते नर दौरे घुप अंधारूं।

जिस पंचभौतिक शरीर धारी आत्मा रूप मानव ने अनन्त अवतारधारी भगवान विष्णु को हृदयस्थ नहीं किया उन्हें चौरासी लाख जीया जूणी रूपी अचल भार उठाना पड़ेगा। वह संसार सागर के दु:खों से पार तो नहीं हो सकता और बार-बार जन्म-मरण को प्राप्त हुआ कठिन अन्धकार मय भयंकर नरक में गिरेगा।

तातै तंत न मंत न जड़ी न बूंटी, ऊंडी पड़ी पहारूं।
विष्णु न दोष किसो रे प्राणी, तेरी करणी का उपकारूं।

इसलिये इन दुखमय योनियों से छूटने के लिये न तो कोई तंत्र है न ही कोई मंत्र है न ही कोई जड़ी या बूंटी ही है। इनसे छूटने का मात्र एक उपाय केवल भगवान विष्णु ही है वही तुम्हें छुड़ा सकता है। यदि वह अवसर चला गया तो फिर लौटकर नहीं आयेगा। बहुत दूर चौरासी लाख पर चला जायेगा। फिर कभी भूलकर विष्णु को दोष नहीं देना। प्राय: लोगों को जब कष्ट आता है तो भगवान को दोष देते हैं। हे प्राणी! तूँ ऐसा कभी मत करना। ये सुख दु:ख तो तेरे कर्मो का ही फल है। बीज तो मानव स्वयं ही बोता है पर बीजों को फूलने फलने में सहायता भगवान स्वयं करते हैं इसलिये जैसा बीज बोवोगे फल भी तो वैसा ही होगा। तो फिर स्वयं का दोष दूसरों के उपर क्यों डालता है।

''दोहा''
फेर जाट यों बोलियो, जाम्भेजी सूं भेव।
वेद तंणां भेद बताय द्यो, ज्यों मिटै सर्व ही खेद।

ऊपर का शब्द श्रवण करके फिर वह जाट कहने लगा कि हे देव! वेदों के बारे में मैने बहुत ही महिमा सुनी है। इसका भेद आप मुझे बतला दीजिये। जिससे मेरा संशय निवृत हो सके। श्री देवजी ने उसके प्रति यह दूसरा शब्द सुनाया-

सबद-14

ओ३म् मोरा उपख्यान वेदूं कण तत भेदूं, शास्त्रे पुस्तके लिखणा न जाई।
मेरा शब्द खोजो, ज्यूं शब्दे शब्द समाई।

भावार्थ-हे जाट! मेरे मुख से निकले हुए शब्द ही सत्य से साक्षात्कार कराने वाले होने से वेद ही है तथा सार तत्व रूप परमेश्वर का भेद बताने वाले है। इन शब्दों को अन्य शास्त्र पुस्तकों से यदि आप प्रमाणित करना चाहेंगे तो तुम्हें प्रमाण नहीं मिल सकेगा। मेरे शब्दों को जानने के लिये बाह्य खोज न करते हुऐ मेरे शब्दों को ही खोजो। जिस प्रकार से शब्द रूप ब्रह्म से निकला हुआ शब्द पुन: शब्द ब्रह्म में लीन हो जाता है। उसी प्रकार शब्दों में लीन होकर अर्थ रूप कण तत्व की खोज करो। यहाँ पर शब्दों को ही वेद बताया है। वेद का

अर्थ ज्ञान होता है तथा वेद हम उस शास्त्र को कहते हैं जो सृष्टि के आदि में सर्वप्रथम रचा गया तथा अन्य किसी शास्त्र से प्रमाणित न किया हो। यहाँ पर सबदवाणी के विषय में भी ऐसा ही है। गुरु जम्भेश्वर जी ने स्वकीय अनुभव की वाणी कही। अन्य किसी शास्त्र से ज्ञान उधार नहीं लिया गया तथा सामान्य से विद्वान जनों तक के लिये बराबर ज्ञान दाता होने से वेद कहना उचित ही है। विशेषत: अनपढ़ किसान वर्ग के लिये संस्कृत भाषा में रचित वेद व्यर्थ ही सिद्ध हो रहे थे। उनके लिये तो वास्तव में अपनी मातृभाषा में दिया गया सबदवाणी ज्ञान ही सच्चा वेद है।

हिरणा द्रोह क्यूं हिरण हतीलूं, कृष्ण चरित बिन क्यूं बाघ बिडारत गाई।

वन में निर्द्वन्द्व रूप से विचरण करने वाली हरिणियां के झुण्ड में एक ही नर हरिण रहता है यदि कोई अन्य हरिण झुण्ड में आने का प्रयत्न करता है तो दोनों में घन घोर युद्ध होता है जो कमजोर होगा वही मार खाकर भाग जायेगा। एक दूसरों के प्राणों के प्यासे क्यों हो जाते हैं? इतना द्वेश क्यों रखते है और बाघ उनकी हत्या भी कर देता है ऐसा क्यों? श्री देवजी कहते हैं कि यह सभी कुछ कृष्ण के दिव्य चरित्र को आत्मसात् किये बिना पशुओं में ऐसा अनर्थ होता है। उसी प्रकार मानव में भी कृष्ण की झलक हृदयस्थ किये बिना ऐसा ही होता देखा गया है।

सुनही सुनहा का जाया, मुरदा बघेरी बघेरा न होयबा।
कृष्ण चरित विन, सींचाण कब ही न सुजीऊ।

श्वान अर्थात् कुत्ते-कुत्ती का जाया हुआ निहायत कमजोर होने से बघेरी-बघेरा नहीं हो सकता। वैसे देखा जाय तो देह दृष्टि से तो कुछ भी बघेरा और कुत्ते में फर्क नहीं है किन्तु अन्दर ऊर्जा-शक्ति में अन्तर अवश्य ही है। जिससे बघेरा कुत्ते को मार डालता है। बाज पक्षी कभी भी सुजीव नहीं हो सकता। उसकी दृष्टि भी अपने से कमजोर पर लगी रहती है। संसार में ऐसा अनर्थ क्यों होता है। यह भोजन भोज्य भाव एक-दूसरे के प्रति वैर भाव क्यों होता है। इसका मात्र एक ही कारण है कृष्ण की अलौकिक लीला का जीवन मे अभाव होना। इसी प्रकार से मानव भी राग-द्वेष के अन्दर डूब जाते है और अपने को तबाह कर लेते है। किन्तु जीवन में परमात्मा को स्थान नहीं देते। यदि सभी लोग कृष्ण परमात्मा का चरित्र अपने जीवन में अपना लें तो सभी समस्याएँ स्वत: ही हल हो जायेगी।

खर का शब्द न मधुरी बाणी, कृण चरित बिन श्वान न कबही गहीरूं।

गधे की ध्वनि सप्त स्वर में गूंजती है किन्तु मधुर नहीं होती है। उसे कोई भी सुनना पसन्द नहीं करता तथा कुत्ता कभी भी गम्भीर नहीं हो सकता। सदा ही चंचल रहता है कितना भी खाना खिलाओं संतोष नहीं करता ऐसा क्यों होता है। यह सभी कुछ भगवान के दिव्य आध्यात्मिक जीवन को स्वीकार न करने से ही संभव होता है। मानव भी जब तक ईश्वरीय ज्ञान को धारण नहीं करेगा तब तक न तो मधुर ही बोल सकेगा और न ही गंभीर एवं संतोषी हो सकेगा कृष्ण लीला से ही ये सद्गुण धारण करना संभव है। बिना कृष्ण के तो कुत्ते एवं गधे के सदृश ही है।

मुंडी का जाया मुंडा न होयबा, कृष्ण चरित बिन रीछा कबही न सुचीलूं।

सज्जन प्रकृति वाली, सींगों रहित गऊ आदि के उत्पन्न हुआ बच्चा वैसा नहीं होता अर्थात् जैसे माता-पिता हो वैसी गुणों वाली सन्तान उत्पन्न नहीं होती और न ही रीछ कभी सुजीव होकर सज्जनता का

व्यवहार कर सकता क्योंकि उनमें कृष्ण भगवान सम्बन्धी ज्ञान का सर्वथा अभाव है। उसी प्रकार से मानव भी कृष्ण चरित रहित सुजीव नहीं हो सकता। जीवन में सुधार भगवान की लीला में भक्ति पैदा होने से सम्भव है।

बिल्ली की इन्द्री संतोष न होयबा, कृष्ण चरित बिन काफरा न होयबा लीलूं।

भोग्य पदार्थ भोग लेने के पश्चात् भी बिल्ली की चक्षु रसना आदि इन्द्रियाँ संतोष को प्राप्त नहीं होती, ज्यों-ज्यों भोग प्राप्त होते है त्यों-त्यों लालसा उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। उसी प्रकार मानव की भी दशा है और नहीं काफिर-नास्तिक व्यक्ति कभी परमात्मा की दिव्य लीलाओं में आनन्द ले सकता क्योंकि अब तक उन पर कृष्ण परमात्मा की दृष्टि नहीं पड़ी है। आध्यात्मिक ज्ञान का संस्कार अब तक उदित नहीं हुआ है। कृष्ण की अपार कृपा से ही मानव की इन्द्रियाँ संतोष को प्राप्त होती है तथा मानव आस्तिकता को प्राप्त करता है।

मुरगी का जाया मोरा न होयबा, कृष्ण चरित बिन भाकला न होयबा चीरूं।

मुर्गी का जन्मा हुआ कभी मोर नहीं हो सकता अर्थात् प्रकृति से ही छोटा आदमी कभी बड़ा नहीं बन सकता। मूलभूत प्रकृति में बदलाव आना अति कठिन है और न ही कभी भाकला ऊंट की जटाओं से बना हुआ मोटा वस्त्र मल मल रेशमी वस्त्र नहीं हो सकता अर्थात् भगवान की अहेतुकी कृपा बिना स्वभाव से कठोर व्यक्ति कभी भी निर्मल नहीं हो सकता। कोमल बनने के लिये कृष्ण की दिव्य लीलाओं का श्रद्धापूर्वक आत्मसात् करना ही पड़ेगा।

दंत बिवाई जन्म न आई, कृष्ण चरित बिन लोहै पड़ै न काठ की सूलूं।

जब बच्चा संसार में आता है तो उसके जन्म के साथ ही दांत नहीं आते। दांत आने के लिये समय चाहिये उसी प्रकार से मानव इस संसार में पदार्पण करता है तो साथ में लेकर कुछ भी नहीं आता यहां आकर ही कुछ समय पश्चात् दांत रूपी धन को जोड़ता है किन्तु यह सभी कुछ कृष्ण चरित से ही संभव हो सकता है। बालक के दांत और मानव का धन। लोहे की शिला में लकड़ी की खूंटी नहीं गाड़ी जा सकती किन्तु कृष्ण चरित से सम्भव हो सकती है। अनहोनी को भी होनहार कर दे यही कृष्ण चरित्र है। ऐसा जीवन में कई बार देखा गया है।

नींबड़िये नारेल न होयबा, कृष्ण चरित बिन छिलरे न होयबा हीरूं।

नीम वृक्ष के कभी नारियल नहीं लग सकता और छोटे तालाबों में कभी भी हीरा नहीं मिल सकता। हीरों की प्राप्ति के लिये अथाह जल राशि समुद्र में गोता लगाना पड़ेगा और नारियल के लिये नीम को छोड़कर नारियल वृक्ष का ही सहारा लेना पड़ेगा किन्तु कृष्ण चरित्र से ये दोनों नीम और छिलरीये में मिल सकते है। इस मरुभूमि रूपी नींब के वृक्ष पर तथा इन थोड़े से लोगों के बीच छिलरीये में भी कभी कभी ईश्वरीय शक्ति रूपी नारियल और हीरा प्रगट हो जाता है। श्री देवजी कहते है कि यह मैं कृष्ण चरित्र से ही यहाँ पर अवतरित हुआ हूँ अन्यथा असंभव था।

तूंबण नागर बेल न होयबा, कृष्ण चरित बिन बांवली न केली केलूं।

कड़वाहट से भरी हुई तूंबे की बेल कभी भी मधुर नागर बेल नहीं हो सकती और न ही बांवली वृक्ष के कभी केला लग सकता, किन्तु यह कृष्ण चरित्र से विपरीत कार्य तूंबे की बेल नागर और बांवली के केला लग सकता है। कहीं पर गुरु जम्भेश्वरजी ने लगाया भी है। जिस व्यक्ति में जन्मजात कड़वाहट भरी हुई है वह कभी मधुर स्वभाव वाला नहीं हो सकता, क्योंकि उसमें कृष्ण परमात्मा की भक्ति का अभाव है। और जिस दिन भी वह कृष्ण चरित्र को हृदय में स्थान देगा उसी दिन से मधुरता प्रारम्भ हो जायेगी। कृष्ण चरित्र रहित बांवली रूपी

जन पर भी मधुर कोमल केले का फल आने लगेगा। यही है कृष्ण चरित्र की विशेषता।

गऊ का जाया खगा न होयबा, कृष्ण चरित बिन दया न पालत भीलूं।

गऊ का जन्मा हुआ कभी पक्षी नहीं हो सकता और भील शिकारी के अन्दर दया नहीं होती है। किन्तु कृष्ण चरित्र से गऊ का जन्मा पक्षी भी हो सकता है और भील के अन्दर दया भी पैदा हो सकती है। कभी-कभी स्वभाव से संत जन भी दुष्ट हो जाते हैं। वे शिकारी की तरह आचरण करने लगते हैं। किन्तु यदि कोई भक्त जन शक्ति सम्पन्न सिद्ध जन से ईश्वरीय चरित्र ग्रहण कर लेता है तो वह भी तन्मय होकर प्रकृतिस्थ हो जाता है।

सूरी का जाया हस्ती न होयबा, कृष्ण चरित बिन ओछा कबही न पूरूं।

सुवरी का जन्मा हुआ कभी हाथी नहीं हो सकता तथा छोटा आदमी कभी पूर्ण नहीं हो सकता किन्तु कृष्ण शक्ति से ये दोनों ही संभव हो सकते हैं। नीच कर्म करने वाला व्यक्ति अपने कर्मों के अनुसार छोटी-मोटी चौरासी लाख योनियों में ही भटकेगा क्योंकि उनमें कृष्ण की गीता का ज्ञान नहीं था और यदि वह अमूल्य कृष्ण चरित्र के ज्ञान को धारण कर ले तो वह तत्काल ही सूवर से हाथी सदृश महान बन सकता है और सद्गुणों रहित अपूर्ण मानव भी कृष्ण भगवान की आज्ञा का पालन करे तो वह भी गुणों से परिपूर्ण हो सकता है।

कागण का जाया कोकला न होयबा, कृष्ण चरित बिन बुगली न जनिबा हंसूं।

कौवे का जन्मा हुआ शावक कभी भी कोयल नहीं हो सकती और न ही बुगली के जन्मा हुआ हंस हो सकता है। किन्तु कृष्ण चरित्र से तो असंभव का भी संभव हो जाता है क्योंकि कृष्ण चरित्र सभी मर्यादाओं से भी परे है। चंचलता, कालुष्यता, दुष्टता से युक्त जन भी कृष्ण की त्रिगुणात्मिका माया को समझ कर हृदय से परमात्मा को प्राप्त करने के लिये कृष्ण को अपने जीवन में अपनाता है तो वह भी कृष्ण शक्ति के प्रभाव से कोयल सदृश निर्मल दोश रहित होकर सर्वजन प्रिय हो जाता है। बगुला से हंस होने की सामर्थ्य आ जाती है।

ज्ञानी कै हृदय प्रमोध आवत, अज्ञानी लागत डासूं।

यह कृष्ण चरित्र सम्बन्धी अपार महिमा सुनकर ज्ञानी को तो आनन्द आता है और अज्ञानी को कांटे की तरह वार्ता चुभती है। यही ज्ञानी और अज्ञानी की परख है।

★★★★

''दोहा''

जाट कहै सुण देवजी, सत्य कहो छौ बात।
झूठ कपट की वासना, दूर करो निज तात।

इन उपर्युक्त दोनों सबदों को श्रवण करके वह जाट काफी नम्र हुआ और कहने लगा-हे तात! आपने जो कुछ भी कहा सो तो सत्य है किन्तु मेरे अन्दर अब भी झूठ कपट की वासना विद्यमान है। आप कृपा करके दूर कर दो।

सबद-15

ओ३म् सुरमां लेणां झीणा शब्दूं, म्हे भूल न भाख्या थूलूं।

भावार्थ-हे जाट! तूँ इन मेरे वचनों को धारण कर जो सुरमें के समान अति बारीक सूक्ष्म है जैसे सुरमां

महीन होता है उसी प्रकार से मेरे शब्द भी अति गहन से गहन विषय को बताने वाले है इसीलिये कुशाग्र बुद्धि से ही ग्राह्य है। इन शब्दों को तो शूरवीर पुरुष ही समझकर इन पर चल सकता है। हमने अपने जीवन में कभी भी स्थूल व्यर्थ की बात नहीं कही। सदा सचेत रहकर आनन्द दायिनी वाणी का ही बखान किया है।

सो पति बिरखा सींच प्राणी, जिहिं का मीठा मूल स मूलूं।

हे प्राणी! तूँ उस वृक्षपति को मधुर जल से परिपुष्ट कर जिसका फल फूल समूल ही मधुर हो।

पाते भूला मूल न खोजो, सींचो कांय कु मूलूं।

तुमने वृक्ष के मूल में तो जल डाला नही और कभी पतों में कभी डालियों में जल सेंचन करता रहा इससे वह मधुर फलदायी वृक्ष हरा भरा नहीं होगा और अज्ञानतावश तुमने कुमूल स्वरूप आक धतुरा आदि विष वृक्षों को पानी पिलाता रहा, यह जीवन में तुमने बड़ी भूल की है।

विष्णु विष्णु भण अजर जरीजै, यह जीवन का मूलूं।

हे प्राणी! अपने प्राणों के चलते हुऐ श्वासों श्वास ही विष्णु परमात्मा को सदा ही याद रख, उन्हीं विष्णु का उच्चारण करते हुऐ जप भजन करें और काम, क्रोध, मोह, मात्स्र्य, ईर्ष्या, राग, द्वेश आदि दोशों को निकालकर शुद्ध पवित्र हो जा। यही जीवन का मूल मन्त्र है। यहाँ सर्व जन के मूल स्वरूप भगवान विष्णु है तथा डालियाँ पते रूप छोटे-मोटे देवी देवता है और भूत-प्रेत, जोगिणी, भेरूं आदि कुमूल विष वृक्ष है। विष वृक्ष रूपी भूत-प्रेतों की सेवा सदा ही जीवन को विषैला बना देगी। डाली-पती रूपी देवता से कुछ भी लाभ नहीं, परिश्रम व्यर्थ होगा, इसीलिये सभी के मूल स्वरूप मधुर फलदायी विष्णु की सेवा, जप सर्वोपरि है।

खोज प्राणी ऐसा विनाणी, केवल ज्ञानी, ज्ञान गहीरूं, जिहिं कै गुणै न लाभत छेहूं।

हे प्राणी! तूँ उन सर्व प्राणियों के मूल स्वरूप सत्य सनातन, पूर्ण ब्रह्म परमात्मा भगवान विष्णु की प्राप्ति का प्रयत्न कर, जो वह केवल ज्ञानी है ज्ञान के भण्डार है जन्म मृत्यु जरा रहित है उनके गुणों का तो कोई आर-पार ही नहीं है।

गुरु गेवर गरवां शीतल नीरूं, मेवा ही अति मेऊं।

यदि उस सद्गुरु परमात्मा की महानता का वर्णन करें तो वजन पक्ष में तो वह सुमेरू पर्वत से भी भारी है और शीतलता में तो जल से भी कहीं अधिक शीतल है। मीठापन में तो मेवा से भी अधिक मीठा है अर्थात् आप जिस रूप में भी ग्रहण करना चाहते है उन्हीं से भरपूर है।

हिरदै मुक्ता कमल संतोषी, टेवा ही अति टेऊ।

सद्गुरु परमात्मा हृदय कमल में सदा ही मुक्त है अनेकानेक हृदयगत रहने वाली वासनाओं की वहाँ पर स्थिति नहीं है। सदा ही अपनी स्थिति में संतुष्ट रहते है। उन्हें किसी बाह्य उपकरण की आवश्यकता नहीं है। सद्गुरु स्वयं तो सदा परकीय आश्रय रहित है। किन्तु सांसारिक निराश्रित जनों के सदा ही आश्रय दाता है। जब किसी पर प्रसन्न होते हैं तो पूर्णतया अपने दास को अपना बना लेते है। ''**गुणियां म्हारा सुगणा चेला, म्हे सुगणा का दासूं।**''

चड़कर बोहिता भवजल पार लंघावै, सो गुरु खेवट खेवा खेहूं।

दयालु सतगुरु ने यह शब्दों रूपी नौका इस संसार सागर से पार उतारने के लिये प्रदान कर दी है। जो सचेत होकर इस नैया पर सवार हो जायेगा उसको तो सत्गुरु स्वयं केवट होकर पार उतार देंगे। जो इस नाव से

वंचित रह जायेगा वह बारंबार डूबता रहेगा। सद्गुरु का अर्थ ही है कि वह केवट की तरह समिपस्थ जनों को जन्म-मरण के दुखों से छुड़ा दे।

★★★★

''दोहा''

फेर जाट यों बोलिया, जम्भेश्वर सो भेव।
सब पवित्र कैसे भये, हमें बतावो देव।

इन सबदों को श्रवण कर फिर उसी व्यक्ति ने संत सभा में समासीन जम्भेश्वर जी से यह पूछा-कि हे देव! ये लोग जो थोड़े दिन पूर्व दुराचार में लिप्त थे अब इस समय जल्दी ही पवित्र कैसे हो गये। इसका कारण हमें बतलावो। श्री देवजी ने उस समय जाट को लक्ष्य करके सर्वसाधारण के प्रति सबद कहा-

सबद-16

ओ३म् लोहे हूंता कंचन घड़ियो, घड़ियो ठाम सु ठाऊं।
जाटा हूंता पात करीलूं, यह कृष्ण चरित परिवाणों।

भावार्थ-प्रारम्भिक अवस्था में सोना भी लोहा जैसा ही विकार सहित होता है। खानों से निकालकर उसे अग्नि के संयोग से तपाकर विकार रहित करके सोना बनाया जाता है तथा उस पवित्र स्वर्ण से अच्छे से अच्छा गहना आभूषण बनाया जाता है जिसे युवक युवतियाँ पहनकर आनन्दित होते है। उसी प्रकार से इस मरुदेशीय जाट भी लोहे जैसे ही थे किन्तु अब मेरी संगति में आ जाने से ये सभी पवित्र देव तुल्य हो गये हैं। इन लोगों ने सबदवाणी रूपी ताप से अपने को पवित्र बना लिया है। इस प्रकार से ये जाट पवित्र हुऐ हैं। इनकी पवित्रता में सबसे बड़ा हेतु तो कृष्ण परमात्मा का दिव्य अलौकिक चरित्र है। कृष्ण की अपार शक्ति कृपा ने इनको वास्तव में सहयोग दिया है।

बेड़ी काठ संजोगे मिलिया, खेवट खेवा खेहूं।
लोहा नीर किसी विध तरिबा, उत्तम संग सनेहूं।

लकड़ी से बनी हुई नौका के साथ संयोग होने से लोहा भी नदी जल से पार हो जाता है डूबने का डर नहीं होता है। क्योंकि उस लोहे ने उत्तम लकड़ी का संग किया है और फिर अच्छा केवट नौका चलाने वाला भी प्राप्त हो जाता है। तो हजारों मन लोहा अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँच जाता है। उसी प्रकार से जाट लोग भी अब निश्चित ही संसार सागर से पार उतर जायेंगे, क्योंकि इन्होंने समयानुसार मेरे से संगति की है। अपने जीवन को उत्तम बनाया है और अब इनके केवट रूपी सतगुरु का हाथ सिर पर आ गया है। अब डूबने की कोई आशंका नहीं है।

बिन किरिया रथ बैसैला, ज्यूं काठ संगीणी लोहा नीर तरीलूं।
नांगड़ भांगड़ भूला महियल, जीव हतै मड़ खाइलो।

शुद्ध क्रिया रहित यह शरीर रूपी रथ इस अथाह संसार सागर में डूब जायेगा। जिस प्रकार से लोहा काठ संगति रहित डूब जाता है तथा सत्संगति से लोहा तथा मानव दोनों ही पार उतर जाते है। संसार में सतगुरु मिलना अति दुर्लभ है। वैसे आप किसी सतगुरु की खोज के लिये प्रयास करोगे तो आपके सामने अनायास ही

नंगे रहने वाले साधु, सन्यासी, भांग पीकर मदमस्त रहने वाले जो अपने आप को भूले हुए है और दूसरों को भी भुलावे में डालकर धन ऐंठते है। ऐसे ऐसे लोग जो जीवों को मारकर मुरदों को खाते है सभी नशीली वस्तुओं का सेवन करते है फिर भी ज्ञान देने का दावा करके जिज्ञासुओं को अपने जाल में फंसा लेते है। ऐसे लोगों से सावधान रहकर ही सत्संगति पायी जा सकती है।

★★★★

''दोहा''

जाट परच पाऐ लग्यो, हृदय आई शांत।
सतगुरु साहब एक है, गई हृदय की भ्रान्त।

प्रसंग दोहा

विश्नोईयां ने आयके, इक बूझण लागो जाट।
जाम्भोजी के अस्त्री है, ओके म्हासूं घाट।
विश्नोई यूं बोलियां, नहीं लुगाई कोई।
निराहारी निराकार है, पुरुष परमात्म सोई।
झगड़त झगड़त उठ चल्या, जम्भ तंणै दरबार।
जायरूं पूछै देव ने, इसका कहो विचार।
जम्भेश्वर इण विधि कह्यो, थे जु लुगाई जान।
विश्नोई ऐसे कह्यो, दीठी सुणी न कान।
सबद सुणायों देवजी, ऐसे कह्यो विचार।
यह सुन्दर मेरे रहे, परख लेहु आचार।

किसी समय बिश्नोइयों की जमात भ्रमणार्थ गई हुई थी। उस समय एक अजाराम सियाग बनिया गाँव का रहने वाला बड़ा विवादी था। उससे भेंट हो गयी। परस्पर गुरु जम्भेश्वर जी के बारे में चर्चा चली, तब वह कहने लगे कि जाम्भोजी भी हमारी तरह गृहस्थी है, वो स्त्री भी रखते है मैने सुना है। तब बिश्नोई कहने लगे उनके कोई स्त्री नहीं है। वे तो निराहारी निराकार माया रहित ईश्वरीय रूप है। इस प्रकार के विवाद को सुलझाने के लिये वे सभी सम्भराथल पर पहुँचे। वहाँ पर अपने शिष्य मण्डली सहित जम्भेश्वरजी विराजमान थे। बिश्नोइयों ने आकर पूछा-तब जम्भेश्वर जी ने कहा कि मैं स्त्री अवश्य ही रखता हूँ। उस समय बिश्नोइयों ने कहा-हमने तो कभी आँखों से नहीं देखी और न ही कभी कानों से सुनी है। श्री देवजी ने कहा वह स्त्री ही ऐसी है जिसे आप न तो कानों से सुन सकते और न ही आँखों से देख ही सकते। आप लोग सुनों मैं कैसी स्त्री रखता हूँ।

सबद-17

ओ३म् मोरै सहजे सुन्दर लोतर बाणी, ऐसो भयो मन ज्ञानी।

भावार्थ-मेरी यह स्वभाव से ही उच्चरित होने वाली सुन्दर प्रिय वाणी ही स्त्री है। इस प्रिय वाणी से

मेरा मन ऐसा ज्ञानी हो चुका है, जिससे अब सर्वत्र आनन्द ही आनन्द है, अब मुझे किसी सांसारिक स्त्री की आवश्यकता नहीं है। ऐसी दिव्य स्त्री मेरे पास हर समय रहती है। यदि आपको चाहिये तो ले जा सकते हो।

तइयां सासूं तइयां मांसूं, रक्तूं रूहीयूं, खीरूं नीरूं, ज्यूं कर देखूं।
ज्ञान अंदेसूं, भूला प्राणी कहे सो करणों।

तब किसी का भी मन ज्ञानी हो जाता है तो फिर नारी-पुरुष में भेदभाव मिट जाता है। क्योंकि जो श्वांस एक नारी में चलता है वही पुरुष में भी जो मांस स्त्री में है वही पुरुष में ही है जो रक्त स्त्री में प्रवाहित होता है वह रक्त पुरुष में भी तथा जो जीवात्मा स्त्री में है वही पुरुष में भी है। तो फिर भेदभाव कैसा? जिस प्रकार से हंस दूध व पानी को अलग-अलग कर देता है दूध ग्रहण कर लेता है और जल त्याग देता है उसी प्रकार से मानव को भी विवेकशील होना चाहिये। सार वस्तु का ग्रहण और असार वस्तु का परित्याग। यही ज्ञान का संदेश है। हे भूले हुए प्राणी! मनमुखी कार्य छोड़ कर सद्गुरु शास्त्र, सज्जन पुरुष कहे वैसा ही करना, क्योंकि तुम तो भूल चुके हो स्वयं तो तुझे कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का विवेक नहीं है।

अइ अमाणों तत समाणों, अइया लो म्हे पुरुष न लेणा नारी।

इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के अन्दर वह सूक्ष्म रूप परब्रह्म समाया हुआ है। इसलिये हे सात्विक लोगों! न तो हम पुरुष रूप है और न ही हम स्त्री रूप है। वह परम तत्व कोई स्त्री या पुरुष रूप में नहीं होता। वह तो सामान्य रूप से दोनों ही है। इसलिये हमारे जैसे पुरुषों के यहाँ स्त्री-पुरुषों में कदापि भेदभाव नहीं है। न तो हम स्त्री से घृणा से परित्याग करते हैं और न ही पुरुष को उत्तमता से अपनाते भी हैं।

सोदत सागर सो सुभ्यागत, भवन भवन भिखियारी।
भीखी लो भिखियारी लो, जे आदि परम तत्व लाधों।

सन्यास लेने के पश्चात् भी सभी को स्त्री-पुरुष का भेदभाव नहीं मिटता। किन्तु वीर पुरुष तो वही होता है जो उस परम तत्व की खोज करता है। वह खोज भी बड़े धैर्य एवं लग्न के साथ बहुत समय तक करता है वही सुभ्यागत है, ऐसे सुभ्यागत साधु की सेवा करने से गृहस्थ को अड़सठ तीर्थों का फल मिलता है। वही सुभ्यागत अभ्यास करते करते उस परम तत्व की प्राप्ति कर लेता है। तो फिर भिक्षा मांगने का अधिकारी हो जाता है। वह चाहे कहीं भी रहे किसी भी अवस्था में रहे भिक्षा मांगकर उदर पूर्ति कर ले, उन्हें किसी प्रकार का मान सम्मान या अपमान नहीं रहता, यही दशा युक्त भिक्षुक होता है।

जांकै बाद विराम विरासों सांसो, तानै कौन कहसी साल्हिया साधों।

जिस साधु के अब तक व्यर्थ का वाद-विवाद अन्दर बैठा हुआ है अर्थात् तर्क-वितर्क रूपी कैंची जिसके पास है जो काटना ही जानता है और जोड़ना नहीं जानता तथा सच्ची बात को भी नष्ट करना जानता है अपने ज्ञानाभिमान के कारण ग्रहण शक्ति नहीं है और प्रत्येक बात मे तथा ईश्वर के अस्तित्व में अब तक संशय है उसे साल्हिया सुलझा हुआ साधु कौन कहेगा, अर्थात् समझदार पुरुष तो कदापि नहीं कह सकते। मूर्खों की तो भगवान ही जाने।

★★★★

''दोहा''

जाट हरष प्रसन्न हुआ, देवजी दिया जिताय।
विश्नोई यों बोलिया, हम नहीं जाणै काय।
सब लोगन कूं देवजी, सबद सुणायो एक।
भूला भेद न जाण ही, समझयां को गुरु एक।

अजाराम जाट ने इस सबद का श्रवण किया और अति हर्षित होकर कहने लगा-कि देवजी ने मुझे विजय दिला दी है। बिश्नोई कहने लगे तुम्हारी विजय किस प्रकार से हुई? अब तक तुम ठीक से समझ नही पाये हो। तब गुरुदेव ने दूसरा सबद का उच्चारण किया-

सबद-18

ओ३म् जां कुछ जां कुछ जां कुछू न जांणी, नां कुछ नां कुछ तां कुछ जांणी।

भावार्थ-जो व्यक्ति कुछ जानने का दावा करता है अपने ही मुख से अपनी ही महिमा का बखान करता है। वह कुछ भी नहीं जानता, अन्दर से बिल्कुल खोखला है और इसके विपरीत कोई व्यक्ति कहता है कि मैं कुछ भी नहीं जानता वह कुछ जानता है। अहंकार शून्यता ही व्यक्ति को ज्ञान का अधिकारी बनाता है। इस दुनिया में अपार ज्ञान राशि है इतनी छोटी सी आयु में कितना ही प्रयत्न करें तो भी व्यक्ति सदा अधूरा ही रहता है। यदि कोई पूर्ण होने का दावा करता है तो वह झूठा ही अहंकार है। उन्होंने ज्ञान प्राप्ति के दरवाजे हमेशा के लिये बन्द कर लिये है।

ना कुछ ना कुछ अकथ कहाणी, ना कुछ ना कुछ अमृत बाणी।

इस महान संसार में भूत, भविष्य, वर्तमान कालिक अनेकों कहानियाँ कही जा चुकी है। अनेकानेक शास्त्र इन्हीं कथाओं से भरे पड़े हैं। सभी कुछ कहा जा चुका है। अब अकथनीय कुछ भी नहीं है किन्तु जो कुछ भी अब तक वाणी द्वारा कहा गया है या लिखा गया है वह तो केवल स्थूल संसार के विषयों तक ही सीमित रहा है। उस अमृतमय सत्चित आनन्द ब्रह्म का निरूपण नहीं हो सका है। अनुभव गम्य वस्तु को शब्दों में बांधना असंभव है। वेद के ऋषियों ने भी नेति-नेति कहकर अपनी वाणी को विराम दिया है।

ज्ञानी सो तो ज्ञानी रोवत, पढ़िया रोवत गाहे।

उस प्राप्य वस्तु अमृत तत्व की प्राप्ति न होने से आचरण रहित केवल शास्त्र ज्ञानी विद्वान और कर्मकाण्डी पंडित ये दोनों ही रोते है। जो व्यक्ति अपनी वस्तु रूप अमृत से वंचित होकर चाहे संसार की कितनी ही भोग-विलास सम्बन्धी सामग्री एकत्रित कर ले, आखिर तो उसे रोना ही पड़ेगा उन आनन्द रहित वस्तुओं में वह परमानन्द कहाँ है।

केल करंता मोरी मोरा रोवत, जोय जोय पगां दिखाही।

आनन्द रहित वह ज्ञानी उसी प्रकार रोता है जैसे श्रावण-भादवा के महिने में नाच क्रीड़ा करते हुऐ मोर मोरनी अपने बैडोल पैरों को देखकर रोते है। शरीर तो इतना सुन्दर दिया परन्तु आनन्द से वंचित क्यों रखा? विद्वान हो चाहे मूर्ख दोनों ही दु:ख में ही अपना जीवन व्यतीत कर देते है अपने समीप में होते हुऐ भी आनन्द की प्राप्ति नहीं कर सकते।

उरध खैणी उनमन रोवत, मुरखा रोवत धाही।

कुछ योगी लोग प्राणायाम द्वारा श्वांसों को ब्रह्माण्ड में स्थिर कर लेते है। श्वांस के साथ ही चंचल मन भी शांत हो जाता है किन्तु उस समाधी अवस्था से बाहर जब जगतमय वृत्ति होगी तो वे योगी लोग भी रोते है, वापिस समाधिस्थ होने की चेष्टा करते है और मूर्ख लोग तो दिन रात संसार के प्रपंच में ही सुख मानकर दौड़ते है किन्तु कहीं कुछ प्राप्ति तो नहीं होती है।

मरणत माघ संघारत खेती, के के अवतारी रोवत राही।

जब पेड़ पौधों पर आया हुआ माघ अर्थात् मंजरी फूल आदि नष्ट हो जाते है तथा पककर तैयार हुई खेती पर तूफान ओले आदि गिरकर खेती आदि को नष्ट कर देते है तो किसान रोता है। उसी प्रकार से हमारे जैसे अवतारी लोग भी रोते है। यदि हमारे कार्य पूर्ण होने में विघ्न पैदा हो जाता है किन्तु हमारा रोना स्वकीय स्वार्थ के लिये न होकर परमार्थ के लिये ही होता है।इस दुखमय संसार में रोना तो सभी को ही पड़ता है।

जड़िया बूंटी जे जग जीवै, तो वेदा क्यूं मर जाही।

इस रोने से छूटने का उपाय जड़ी, बूंटी औषधियां नहीं हो सकती यदि औषधी मन्त्र आदि उपाय हो तो इनसे दु:ख छूट जाये जगत जीवन को धारण कर ले, अमर हो जाये तो वैद्य लोग क्यों मर जाते है, क्यों दुखी होते है क्यों रोते है।

खोज पिराणी ऐसा विनाणी, नुगरा खोजत नाही।

यदि तुझे दु:खों से छूटना है तो हे प्राणी! उस नित्य निरंजन सद्चिद् आनन्द रूप तत्व की खोज करके प्राप्ति कर तथा तन्मय जीवन को बना, यही उपाय है। नुगरा मनमुखी हठी लोग तो उसकी खोज नहीं कर सकते और दु:खों से भी नहीं छूट सकते।

जां कुछ होता ना कुछ होयसी, बल कुछ होयसी ताही।

इस संसार पर कभी भी विश्वास नहीं करना, यह सदा ही परिवर्तनशील है इस संसार में वह नित्य अमृत कहाँ से प्राप्त होगा। जहाँ पर कभी कुछ नगर-गाँव आदि थे वहाँ अब कुछ भी नहीं है और आगे भविष्य में भी हो सकता है फिर कभी वहाँ पर चहल-पहल हो जाये, अन्य ही कोई नगर बस जाये। यही संसार का मिथ्या होने का प्रमाण है।

★★★★

''दोहा''

जम्भेश्वर पे आय कर, यों उठ बोला जाट।

रूप किता क में तुम रहो, हमें बतावो तात।

जम्भेश्वर जी के निकट आकर फिर वह जाट कहने लगा-हे तात! आप कितने रूपों में रहते हो अर्थात् आपके शरीर के कितने रूप है। तब जम्भेश्वर जी ने सबद उच्चारण किया-

सबद-19

ओ३म् रूप अरूप रमूं पिण्डे ब्रह्मण्डे, घट घट अघट रहायो।

भावार्थ-रूपवान अरूपवान प्रत्येक शरीर तथा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में मैं ब्रह्म रूप से रमण करता हूँ।

दृष्ट रूप कण-कण मे तथा अदृष्ट रूप कण-कण में मैं सर्वत्र तिल में तेल, फूल में सुगन्धी की तरह हर जगह प्रत्येक समय में समाया हुआ हूँ। इसलिये सर्व व्यापकत्व परमात्मा स्वतः ही सिद्ध होता है।

अनन्त जुगां में अमर भणीजूं, ना मेरे पिता न मायो।

मैं देश तथा काल से भी परे हूँ, अनन्त युग बीत जाने पर भी मैं अमर ही रहता हूँ ऐसा शास्त्र वेद आदि भी कहते हैं। मेरे माता-पिता भी कोई नहीं है। यदि मेरा जन्म होता तो मृत्यु भी धुव्र थी इसलिये जन्म-मरण रहित अजन्मा आदि-अनादि का योगी हूँ।

ना मेरे माया न छाया, रूप न रेखा, बाहर भीतर अगम अलेखा।
लेखा एक निरंजन लेसी, जहां चीन्हों तहां पायो।

न ही मुझ पर अन्य लोगों की भांति माया का प्रभाव है और न ही माया की छाया से मैं आवृत ही हुआ हूँ, न ही मेरे कोई रूप ही है और न ही किसी प्रकार की आकृति ही है। मैं बाहर-भीतर, गर्मी-सर्दी, भूख-प्यासादि द्वन्द्वों में सदा एक रस ही रहता हूँ। वह चेतन ज्योति की सत्ता अलेखनीय होते हुए भी अनुभवगम्य अवश्य ही होती है। माया रहित होकर उसका पार पाया जा सकता है, जाना जा सकता है। इसको जानने के लिये कहीं भी देश घर छोड़कर जाने की आवश्यकता नहीं है। जहाँ पर भी आप प्रेम पूर्वक एकाग्र मन से ध्यान करोगे, वहीं पर प्राप्त हो जायेगा।

अड़सठ तीर्थ हिरदा भीतर, कोई कोई गुरु मुख बिरला न्हायो।

यदि कोई व्यक्ति ऐसा कहता है कि अड़सठ तीर्थो में जाने से ही परमात्मा की प्राप्ति होती है तो यह बात पूर्णतया सत्य नहीं कही जा सकती। यदि आप लोग सहज रूप से ही प्राप्त परम तत्व की हृदय में खोज करोगे तो अड़सठ तीर्थ हृदय के भीतर ही है। भीतर वाले तीर्थो की अवहेलना करके बाह्य तीर्थो में भटकोगे तो कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकेगा। सर्व साधारण जन के लिये तो बाह्य गंगादि अवश्य ही है। किन्तु भीतर के परमानन्द दायक तीर्थो में स्नान तो कोई-कोई गुरुमुखी सुगरा विरला ही करता है। अन्दर के तीर्थो का स्नान तो सर्वश्रेष्ठ है और बाह्य तीर्थो का स्नान मध्यम श्रेणी का है और जो दोनों से वंचित है वह तो कनिष्ठ श्रेणी का ही कहा जायेगा।

★★★★

''दोहा''

दया धर्म की बात का, सतगुरु कहो विचार।
क्रिया बिहुणा आदमी, तिसका किसा आचार।

हे सतगुरु! आप हमें दया धर्म की बात बतलाइये और यह भी बतलाइये कि सभी कुछ जानते हुऐ भी क्रिया रहित जन की क्या दशा होती है। श्री देवजी ने शब्द सुनाया-

सबद-20

ओ३म् जां जां दया न मया, तां तां बिकरम कया।

भावार्थ-जिस जिस व्यक्ति में दया भाव तथा प्रेम भाव नहीं है, उस व्यक्ति के शरीर द्वारा कभी भी शुभ कर्म तो नहीं हो सकते। सदा ही मानवता के विरुद्ध कर्म ही होंगे। इसलिये दया तथा प्रेम भाव ही शुभ कर्मो का

मूल है।

जां जां आव न वैसूं, तां तां सुरग न जैसूं।

जहाँ-जहाँ पर आये हुऐ अतिथि को आदर-सत्कार नहीं है अर्थात् ''आओ, बैठो, पीयो पाणी ये तीन बात मोल नहीं आणी'' इस प्रकार से नहीं होता है, वहाँ पर उस घर में कभी स्वर्ग जैसा सुख नहीं हो सकता। क्योंकि अतिथि अग्नि स्वरूप होता है। अग्नि जल से ठण्डी होती है। अतिथि सत्कार से ठण्डा होता है नहीं तो अग्नि रूप अतिथि स्वकीय अग्नि को वहीं छोड़कर चला जाता है वह घर सदा ही जलता रहता है।

जां जां जीव न ज्योति, तां तां मोख न मुक्ति।

जिस विद्वान या भक्त ने प्रत्येक जीव में उस पामात्मा की ज्योति का दर्शन नहीं किया है जिसका अब तक द्वेत भाव जनित राग, द्वेष आदि निवृत्त नहीं हुऐ है तब तक उसकी मोक्ष या मुक्ति कदापि नहीं हो सकती। ''ऋते ज्ञानात् न मुक्ति'' ज्ञान बिना मुक्ति संभव नहीं है।

जां जां दया न धर्मू, तां तां बिकरम कर्मू।

जहां पर जिस देश, काल या व्यक्ति में दया भाव जनित धर्म नहीं है वहाँ सदा ही धर्म विरुद्ध पापमय ही कर्म होंगे। दयाभाव, नम्रता, शीलता, धार्मिकता ये मानव के भूषण है। ये धारण करने से मानवता निखर करके सामने आती है।

जां जां पाले न शीलूं, तां तां कर्म कुचीलूं।

जिस मानव ने शीलव्रत का पालन नहीं किया अर्थात् सभी के साथ सुख-दु:ख में सहानुभूति रखते हुऐ नम्रता का व्यवहार नहीं किया तो वहाँ पर उस व्यक्ति में सदा ही कुचिलता ही रहेगी। वह कभी भी सज्जनता से सत्य व्यवहार नहीं करेगा, सदा ही कुटिलता का ही व्यवहार करेगा।

जां जां खोज्या न मूलूं, तां तां प्रत्यक्ष थूलूं।

जिस साधक जन ने उस मूल स्वरूप परमात्मा की खोज नहीं की किन्तु अपने को साधक भक्त-सिद्ध कहता है तो समझो कि उसने प्रत्यक्ष रूप प्रतिमा आदि पर मत्था टेककर समय व्यर्थ ही गंवा दिया। खोज तो सर्वत्र समाहित की ही होती है न कि प्रत्यक्ष स्थूल पदार्थो की।

जां जां भेद्या न भेदूं, तो सुरगे किसी उमेदूं।

अध्ययनशील जिस पुरुष ने भी सत् असत् का सम्यग् प्रकारेण निर्णय नहीं किया, ग्राह्य एवं त्याज्य का ज्ञान प्राप्त नहीं किया तो उसे स्वर्ग सुख की इच्छा कभी नहीं करनी चाहिये। जगत में कर्तव्य कर्म करने चाहिये और अकर्तव्य कर्म त्यागने चाहिये। तभी स्वर्ग सुख प्राप्त होता है।

जां जां घमण्डै स घमण्डूं, ताकै ताव न छायो, सूतै सांस नशायो।

जो अज्ञानी व्यक्ति स्वकीय अभिमान द्वारा ही सभी को दबाना चाहता है। अपने को ही सर्वोपरि समझता है। उस व्यक्ति का ताव यानि तेज सभी उपर नहीं छा जाता। यानि सभी को बल से नहीं जीता जा सकता। यदि किसी के हृदय में अपनी झलक छोड़ना है तो वह बल अभिमान से नहीं, किन्तु प्रेम सज्जनता से ही संभव है। ऐसे अभिमानी पुरुष का श्वांस तो निन्द्रा के वशीभूत होने पर ही निकल जायेगा। अपने अभिमान से तो अपने प्रिय श्वांसों को भी वश में नहीं कर सकता तो अन्य प्राणियों को तो वश में करना दूर की बात है।

★★★★

''दोहा''

जाट प्रच पाऐ लज्ञा, याका घर चालीस।
विश्नोई होते भये, जान लियो जगदीश।

प्रसंग-6 दोहा

देव दवारै चारणी, चल कै आयी एक।
बाललो चाड़यो गले को, लीयो नहीं अलेख।
देव कहै सुण चारणी, मेरे पहरै कोय।
बेटा बहु मेरे न कछु, बाललो पहरै सोय।
चारणी कहै सुण देवजी, ऊंठ दरावों मोय।
घणी दूर मैं नाव को, प्रगट करस्यो तोहि।
बाजा खूब बजाय के, कहूं तुम्हारो जस।
मो दीने बड़पण मिले, नित मिले अजस।
किति एक दूर प्रगट करे, कही समझावो भेव।
आठ कोठड़ी मैं फिरूं, सब जाणै गुरु देव।

गुरु जाम्भोजी के पास सम्भराथल पर एक चारण जाति की स्त्री चारणी आयी। अपने गले का बालला स्वर्ण हार गुरुदेव के चरणों में चढ़ाया किन्तु गुरुजी ने लिया नही और कहा-कि हे चारणी! मेरे ये काम की वस्तु नहीं है, इसको कौन पहनेगा? न तो मेरे बेटे है और न ही बहू है। तब चारणी ने कहा कि हे महाराज! आप मुझे एक ऊंठ दिला दीजिये, जिस पर सवार होकर आपका नाम, यश का प्रचार करूँगी। खूब ढ़ोल बजाऊँगी साथ में आपके नाम का भी गान करूँगी। आप मेरे को ऊँठ देवोगे तो आपको बड़पण मिलेगा नहीं तो आपके यश का प्रचार नहीं होगा। जम्भदेवजी ने कहा-तूँ मेरे नाम यश को कहाँ तक प्रगट करेगी। चारणी ने कहा-हे देव! मैं आठ राजाओं के महलों में आती-जाती हूँ वहाँ पर ही मैं आपके यश को गा सकूँगी इससे ज्यादा तो नहीं। तब श्री देवजी ने सबद रूप से बतलाया-

सबद-21

ओ३म् जिहिं के सार असारूं, पार अपारूं, थाघ अथाघूं।
उमग्या समाघूं, ते सरवर कित नीरूं।

भावार्थ-जो अज्ञानी जन संसार के गाजे-बाजे, कीर्ति, नाम कीर्तन करना, करवाना को ही सार रूप समझते हैं वह हमारे जैसे वीतराग पुरुषों के लिये सार वस्तु नहीं है तथा जो इन मान-यश, बड़ाई को ही मानव का अन्तिम लक्ष्य समझते है, वह हमारे लिये पार नहीं है। संसार में थोड़े से मनुष्यों के सामने अपना यश बखान करके उनसे वाह वाही लूट लेना ही थाघ समझते है, वह हमारे लिये अन्तिम थाघ लक्ष्य कदापि नहीं हो सकता क्योंकि जिसके यहाँ आनन्द उमंग की लहरें समुद्र की तरह उमड़ रही है, उन्हें इन छोटे-छोटे तालाबों के गंदे जल से क्या प्रयोजन है हमारे यहाँ तो आनन्द है और ये सांसारिक लोगों के पास तो अत्यल्प कीर्ति रूपी छोटा

सा तालाब है। जो कभी भी सूख सकता है किन्तु हमारा सनातन उमंग का आनन्द सदा स्थिर रहने वाला है।

बाजा लो भल बाजा लो, बाजा दोय गहीरूं।
एकण बाजै नीर बरसै, दूजै मही बिरोलत खीरूं।

हे चारणी! यदि तेरे को बाजा ही बजाना है तो अब तक इस सृष्टि में दो ही बाजे प्रसिद्ध हुए है। पहला बाजा जब बजता है तो मेघ उमड़ कर आते हैं और अमृतमय वर्षा करते हैं। इसे गर्जना कहते हैं। दूसरा बाजा तो जब देव-दानवों ने मिलकर समुद्र मन्थन किया था तब बजा था जिससे अमृत निकला था। ये दो ही बाजे हैं, तीसरा कोई नजर नहीं आता है। एक छोटा बाजा घर-घर बजता है तो मक्खन घृत की प्राप्ति होती है। यदि तेरे को बाजा ही बजाना है तो उस अमृतमय बाजे को ग्रहण कर जिससे देवता पीकर अमर हो गये तूँ भी उस अमृतमय बाजे को पीकर अमर हो जा।

जिहिं के सार असारूं, पार अपारूं, थाघ अथाघूं।
उमग्या समाघूं, गहर गंभीरूं, गगन पयाले, बाजत नादूं।

वही दो ही बाजे सार रूप है वही सर्वोपरि है तथा वही बाजे अन्तिम थाघ है। उस अमृत की प्राप्ति से शरीर में उमंग की लहरें यानि आनन्द की प्राप्ति होती है। वही प्राप्ति गंभीरता को प्राप्त करवाती है। उन बाजों की ध्वनि गगन पाताल आदि सभी जगहों पर पहुँची थी। ठीक उसी प्रकार से एकाग्र मन से निरोध अवस्था में साधक भी उसी नाद ध्वनि की गर्जन श्रवण के पश्चात् अमृत वर्षा में स्नान करता है।

माणक पायो फेर लुकायो, नहीं लखायो।

हे चारणी! तुझे इस मानव शरीर रूपी अमूल्य माणिक मिला है। स्वकीय पूर्व जन्मों के शुभ कर्मो तथा ईश्वर की महती अनुकम्पा से प्राप्त हो गया किन्तु यह सदा स्थिर रहने वाला भी नहीं है। समय रहते हुऐ इसको तूँ समझ नहीं सकी यही तूंने बड़ी भूल की है।

दुनिया राती बाद विवादूं, बाद विवादे दाणूं खीणां ज्यूं पहुपे खीणां भंवरी भंवरा।
भावै जाण म जाण पिराणी, जोलै का रिप जंवरा।

यह दुनिया तो व्यर्थ के विवाद में रची हुई है। इन्हें हीरे जैसे शरीर का पता ही नहीं है। यह तर्क-वितर्क के बकवाद में पड़कर मनुष्य तो क्या अनेकों दानव नष्ट हो गये। इसका इतिहास पुराण साक्षी देते है जिस प्रकार से-

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं, भास्वानुदिष्यति हसिष्यति पंकज श्री।
इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे हा हन्त हन्त नलिनी गज उज्जहारः।

कमल के फूल में भंवरी-भंवरा रात्रि के समय कैद हो गये और कहने लगे कि रात्रि व्यतीत हो जायेगी सूर्योदय हो जायेगा और यह कमल खिल जायेगा हम उड़ जायेंगे स्वतंत्र हो जायेंगे। किन्तु इस विवाद के बीच में ही उसी तालाब में ही पानी पीने के लिये हाथियों का झुंड आया क्रीड़ा करते हुऐ उस कमल को मसल डाला भंवरा-भंवरी की वहीं मृत्यु हो गयी, यही दशा जीव की भी होती है। समय से पूर्व ही काल रूपी मृत्यु आ जाती है और उसे शरीर से विलग कर देती है। वह चाहे जान में हो चाहे अनजान में। इस शरीर के शत्रु यमदूत अवश्य ही है। जो जीव को निकालकर ले जाते हैं।

भेर बाजातो एक जोजनो, अथवा तो दोय जोजनो।

मेघ बाजा तो पंच जोजनो, अथवा तो दश जोजनो।
सोई उतम ले रे प्राणी, जुगां जुगांणी सत कर जांणी।

बाह्य वाद्यों की ध्वनि तो सीमित है जैसे भेरी की आवाज एक योजन तक सुनायी देती है या यदि ज्यादा जोर से बजी तो दो योजन तक सुनायी दे सकती है। दूसरा बाजा तो वर्षा के समय में गर्जता है वह भी पांच योजन या अधिक तो दश योजन तक ही सुनायी देता है। किन्तु इनसे भिन्न भी एक उत्तम बाजा वह बजता है जिसे हम नाद ध्वनि कहते हैं वह बाजा ही सदा अमृत तत्व से साक्षात्कार कराने वाला है, युगों युगों से बजता आया है और बजता ही रहेगा। ऐसे उत्तम नाद ध्वनि रूप बाजे को श्रवण करो। जिससे शाश्वत शांति प्राप्त हो सके अमृत प्राप्ति का द्वार खुल सके।

गुरु का शब्द ज्यूं बोलो झीणी बाणी, जिहिं का दूरा हूंतै दूर सुणीजै।
सो शब्द गुणां कारूं, गुणां सारूं बले अपारूं।

यदि आप नाद ध्वनि का श्रवण नहीं कर सकते तो ये आपके सामने उपस्थित गुरु के शब्द, इनको सभी एक साथ मिलकर गंभीर मीठी ध्वनि से सस्वर उच्चारण करो, जिससे उच्चारण कर्ता का अन्तः करण पवित्र होगा तथा जितना उच्च स्वर से उच्चारण होगा उतने ही दूर तक वातावरण को शुद्ध करेगा। श्रोतागण श्रवण करके अपने को धन्य समझेगा, वही शब्द गुणाकारी है। शब्द बोलने का फल भी तभी प्राप्त होता है। जिस फल का कोई अन्तपार ही नहीं है। उच्च स्वर से ध्वनि निर्मित होती है वही ध्वनि फलदायक होती है। इसलिये सभी को मिलकर एक स्वर से शब्द बोलना चाहिये।

★★★★

प्रसंग-दोहा

वरसंग आय अरज करी, सतगुरु सुणियें बात।
तब ईश्वर कृपा करी, पीढ़ी उधरे सात।
म्हारै एक पुत्र भयो, झाली बाण कुबाण।
माटी का मृघा रचै, तानै मारै ताण।
बरसिंग की नारी कहै, देव कहो कुण जीव।
अपराध छिमा सतगुरु करो, कहो सत कहैं पीव।
धाड़ेती गऊ ले चले, इक थोरी चढ़ियो बार।
रूतस में प्रभू मैं भई, दृष्ट पड़यों किरतार।
तब सतगुरु प्रसन्न भये, दुभध्या तजे न दोय।
सत बात तुमने कही, सहजै मुक्ति होय।

जांगलू धाम निवासी बरसिंग जी बणिहाल ने सम्भराथल पर आकर जम्भेश्वर जी से प्रार्थना करते हुए कहा-हे देव! आपने तो पहले कहा था कि तुम्हारे पुत्र-पौत्र सहित तुम्हारा सात पीढ़ियों का उद्धार होगा किन्तु हमारे घर में एक पुत्र ने जन्म लिया है अब बड़ा होकर मिट्टी के मृग बनाकर उन्हें बाणों द्वारा मारता है। इससे

पता चलता है कि यह कोई कुजीव है किन्तु हमारे यहाँ पर आगमन क्यों हुआ? इससे तो लगता है कि आपकी बाणी सत्य होने में संदेह है। वरसिंग की धर्मपत्नी कहने लगी-यह जीव कौन है। यदि मेरा कोई अपराध है तो क्षमा करें। वरसिंग की नारी ने सत्य बात बताते हुऐ कहा-एक बार डाकू लोग गऊवों को ले जा रहे थे, तब पीछे से छुड़ाने के लिये बाहर चढ़ी थी। उनमें एक थोरी जाति का शिकारी भी उनके साथ था। उस समय मैं भी ऋतुवंती अवस्था में होते हुऐ भी उनके साथ थी उनकी सेवा में जल पिलाने के लिये मुझे भी जाना पड़ा था। हो सकता है उस शिकारी की दृष्टि मेरे उपर पड़ी हो, ऐसा कोई दृष्टि दोष हो सकता है तो मालूम नहीं किन्तु प्रत्यक्ष दोष तो नहीं हो सकता। इस सत्य को सुनकर श्री देवजी ने कहा-जो भी हो, अब इनके पूर्व जन्म के संस्कार निवृत करके नये अच्छे संस्कार जमाओ, निश्चित ही इसका सुधार होगा। यह सद्मार्ग का अनुयायी बनेगा तथा मुक्ति को प्राप्त करेगा। श्री देवजी ने जीव और देह का विज्ञान इस सबद द्वारा बताया है।

सबद-22

ओ३म् लो लो रे राजिंदर रायों, बाजै बाव सुवायो।
आभै अमी झुरायो, कालर करसण कियो, नैपै कछू न कीयो।

भावार्थ-इस सबद के द्वारा जम्भेश्वर जी ने मानव स्वर्ग सुख भोग लेने के बाद जब वापिस मृत्यु लोक में आता है तो वापिस आगमन का तरीका प्रथम बतलाया है। गीता में कहा है-**''ते तं भुक्त्वा स्वर्ग लोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मृत्यु लोकं विशन्ति''** इसी विषय को छान्दोग्य उपनिषद् में भी इस प्रकार से वर्णित किया है। जब वह जीव वापिस आता है तब अचेत अवस्था को प्राप्त होकर सर्वप्रथम अन्तरिक्ष में आता है। वहाँ से फिर परमात्मा की इच्छा से समुद्र से उठे हुए लहलोर-लो लो रे यानि देवराज इन्द्र स्वरूप बादलों में आता है। वही बादल रूप जल जो वाष्प रूप में रहता है, आकाश में विचरण करता है। उसी समय मानसूनी हवाएं अर्थात् सुवायु चलती है तो बादलों को धकेल कर इधर ले आती है वर्षा का आना या न आना सुवायु पर ही निर्भर करता है। प्रभु की इच्छा से चली सुवायु आकाश में बादलों का गहरा डंबर कर देती है। वही बादल ऊसर भूमि पर बरस जाता है, तो वहाँ पर कुछ भी नहीं होता। बरसा हुआ जल वापिस सूर्य किरणों द्वारा उड़कर बादल बन जाता है। अर्थात् उस जल में रहने वाला सूक्ष्म जीव जल के साथ ही तद्रूप होकर विचरण करता है।

अइया उत्तम खेती, को को इमृत रायो, को को दाख दिखायो।
को को ईख उपायो, को को नींब निंबोली, को को ढ़ाक ढ़कोली।
को को तूषण तूंबण बेली, को को आक अकायो, को को कछू कमायो।

वे ही जल की बूंदें यदि उत्तम उपजाऊ तैयार खेती पर पड़ती है तो बीज निपजा देती है। इसमें जल का कोई दोष नहीं है। जैसा बीज होगा फल भी तो वैसा ही होगा, यदि वह जल दाख में गिरेगा तो अमृतमय दाख पैदा कर देगा और ईख में गिरेगा तो भी गुड़ पैदा कर देगा और वही जल यदि नीम के पेड़ पर बरसेगा तो निंबोली पैदा कर देगा। ढ़ाक पर ढ़कोली तूंबे की बेल पर वर्षा से तूंबा पैदा होगा और आक पर वर्षा से विषमय आक हो जायेगा। जैसा बीज होगा वैसा ही फल होगा। यहाँ जल रूपी माता-पिता का रज-वीर्य है तथा बीज रूपी जीव है। माता-पिता का दावा तो केवल शरीर तक ही सीमित है क्योंकि माता-पिता तो केवल शरीर को

ही पैदा करते है। जीव को पैदा करने का सामर्थ्य नहीं है। माता-पिता के शरीर से उनके बच्चे के शरीर की सादृश्यता है न कि जीव से। जीव अपने पूर्व जन्मों के संस्कार साथ लेकर जन्मता है। इसलिये सुपुत्र या कुपुत्र का जन्म होना माता-पिता के वश की बात नहीं है। सज्जन पुरुष के यहाँ सुजीव ही भेजना यह ईश्वर का ही कार्य है। जिस प्रकार से जल से सिंचित होकर बीज पेड़ का रूप धारण कर लेता है। ठीक उसी प्रकार से सिंचित हुआ बीज रूपी जीव शरीर को धारण कर लेता है और वृद्धि को प्राप्त होता है।

ताका मूल कुमूलूं, डाल कुडालूं, ताका पात कुपातूं।
ताका फल बीज कूबीजूं, तो नीरे दोक्ष किसायो।

नीम, आक, तूंबा आदि इतने कड़वे विषैलै क्यों होते है? जल तो दाख, नींब दोनों में एक जैसा ही वर्षा है। उतर देते हैं-कि उनका मूल ही कुमूल है अर्थात् बीज रूप ही जिनका कड़वाहट से भरा है। तो वैसा ही फल होगा। डाल, पते, फूल, फल, बीज सभी वैसे ही होंगे इसमें जल का क्या दोष है बीज का ही दोष है। इसी प्रकार स्वयं जीव ही दुष्टता से परिपूर्ण है तो उसका विस्तार रूप शरीर तथा कार्य भी वैसा ही होगा। इसमें माता-पिता का क्या दोष है।

क्यूं क्यूं भऐ भाग ऊणां, क्यूं क्यूं कर्म बिहूणां, को को चिड़ी चमेड़ी।
को को उल्लू आयो, ताकै ज्ञान न ज्योति, मोक्ष न मुक्ति।
यांके कर्म इसायो, तो नीरे दोष किसायों।

कुछ-कुछ लोग भाग्य विहीन होते है तथा कुछ कुछ लोग शुभ कर्मो से रहित होते है। जो छोटी-छोटी चौरासी लाख योनियों में भटकते हैं। उन जीवों को वही दुखदायी शरीर प्राप्त होते है। कभी चिड़िया कभी चमेड़ी उल्लू आदि जिनको न तो कभी ज्ञान की ज्योति थी और न ही कभी हो सकती तथा विना ज्ञान के तो ये प्राणी मोक्ष या मुक्ति को प्राप्त नहीं कर सकते। इनके कर्म ही ऐसे है तो फिर जल का क्या दोष है अर्थात् स्वयं जीव ही कुकर्मी है तो फिर जल रूपी शरीर का क्या दोष है।

इसलिये हे बरसिंग! इस बालक के सम्बन्ध में इतना दु:खी नहीं होना। यह पूर्व जन्म का शिकारी है। किसी कारणवश या दृष्टि दोष के कारण यहाँ पर आ गया। अब इसे अच्छे संस्कारों से शुद्ध करो। यही जीव जैसे दुष्ट हुआ था वैसे ही सज्जन भी हो जायेगा। इस समय तुम्हारा यही कर्त्तव्य है। इसलिये माता-पिता ही प्रथम गुरु होते हैं। इस बालक का शरीर तुम्हारा होने से इसमें रहने वाला जीव भी इस समय तुम्हारा सम्बन्धी हो चुका है। इसलिये तुम्हारी बात अवश्य ही स्वीकार करेगा। तुम्हारे द्वारा प्रदत इस शरीर में रहने वाला जीवात्मा भी इस शरीर में रहकर तुम्हारे संस्कारों से पवित्र हो जायेगा।

★★★★

प्रसंग-8 दोहा

विष्णु भक्त गुंणावती, रहे जूं तेली जात।
विश्नोई धर्म आचरै, जम्भेश्वर किया पात।
एक मृघा और तेल पे, आठ सै एक हजार।

खड़े सकल वानै चढ़ै, वह्या करारी धार।
थलसिर हरखे देवजी, साथरियां बूझे बात।
भाग खुलै किस जीव के, कहिये दीना नाथ।

गुणावती नगरी निवासी तेली जाति के कुछ व्यक्ति थे। वे तिलों से तेल निकालने का कार्य करने वाले तथा भगवान विष्णु के उपासक थे। उन्हें सुजीव समझकर श्री देवजी ने पाहल देकर पवित्र किया और बिश्नोई पंथ में सम्मिलित किया था। एक समय उन पर विपत्ति आयी कि शिकारियों ने वन्य जीवों का संहार करते हुए हिरण आदि जीवों को मार डाला था। उन्हें मृत पशुओं को पकाने के लिये उन विष्णु भक्त बिश्नोइयों से तेल मांगा था। बिश्नोइयों ने उनके कार्य का विरोध करते हुए उन्हें तेल नहीं दिया। जीव हत्या के इस प्रकार के अनूठे विरोध को वे लोग राजकर्मचारी सहन नहीं कर सके और एक हजार आठ सौ व्यक्तियों को चोट पहुँचायी थी। वे विष्णु के सच्चे भक्त उनकी तीक्ष्ण तरवार की धारा से कुछ भी भयभीत नहीं हुए और सभी मरने के लिये तैयार थे। इस प्रकार की धर्म में अडिगता देखकर उन राज पुरुषों का हृदय पसीज गया था और वे पीछे हट गये थे। इस घटना को सम्भराथल पर विराजमान गुरु जम्भेश्वर जी ने देखा और हर्षित होते हुए शरीर में उमंग की लहर से प्रकम्पन्न जैसा भाव पैदा हुआ। उस रोमांचित दृश्य को देखकर संत साथरियों ने पूछा कि हे देव! आपकी इस विशेष प्रसन्नता का क्या कारण है। आज कौनसे जीवों के भाग खुले है क्योंकि ऐसी विचित्र क्रिया अप्रयोजन कभी भी नहीं हुआ करती। गुरु जम्भेश्वर जी ने इस घटना का वर्णन करते हुऐ उनके प्रति यह सबद सुनाया–

सबद–23

ओ३म् साल्हिया हुवा मरण भय भागा, गाफिल मरणै घणा डरै।

भावार्थ–ये धर्मवीर पुरुष पवित्र हो चुके हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, द्वेषादि कूड़ा–करकट निकालकर साल्हिया हुए है। अब इन्हें मृत्यु से कुछ भी भय नहीं है। अन्य छोटे–बड़े खतरों से तो डर का सवाल ही कहाँ उठता है। इनके विपरीत जो अल्हिया जन है जिनके अन्दर अब तक मोह मायादि बिमारी विद्यमान है, वे गाफिल है ऐसे अज्ञानी लोग मृत्यु से बहुत ही डरते हैं। वे लोग कभी भी धर्म रक्षार्थ प्राणों की बलि नहीं दे सकते है। साल्हिया जन ही यह कार्य कर सकते हैं।

सतगुरु मिलियो सतपन्थ बतायो, भ्रान्त चुकाई, मरणे बहु उपकार करे।

क्योंकि इन धर्मवीर पुरुषों को सतगुरु मिला है, सतपन्थ बताया है और भ्रान्ति मिटा दी है। इसलिये भ्रमज्ञान रहित ये ज्ञानी जन बड़े आनन्द के सहित मरने के लिये तैयार है। ऐसे लोग अपने प्राणों का बलिदान देकर समाज देश तथा धर्म का बहुत ही उपकार कर जाते हैं। उनकी मृत्यु सफल है क्योंकि आने वाली पीढ़ी तथा वर्तमान दोनों ही उनसे शिक्षा ग्रहण करते हैं।

रतन काया सोभंति लाभै, पार गिराये जीव तिरै, पार गिराये सनेही करणी।

धर्म की रक्षा करते हुऐ प्राण छूट भी जाये तो भी व्यर्थ में नहीं जाता, उसे इस शरीर के छूटने के बाद आगे स्वर्ग में जाने के लिये दिव्य रत्न सदृश काया मिलती है। उस नवीन काया रूपी सूक्ष्म शरीर द्वारा स्वर्ग में सुखों को भोगता हुआ वह जीवन मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। वहाँ तक पहुँचने के लिये जीवात्मा को ऐसा ही परोपकारार्थ कार्य करना पड़ता है तथा परोपकारी कार्य भी तभी हो सकता है। जब सभी जीवों पर स्नेह भाव हो। इसलिये स्नेही करणी होनी चाहिये।

जंपो विष्णु न दोय दिल करणी, जंपो विष्णु न निंदा करणी।

स्नेही करणी के लिये एकाग्र मन प्रेम भाव से विष्णु का स्मरण करो, वही तुम्हारे हृदय में प्रेम भाव जगायेगा। प्रेम-स्नेह की बाधक परायी निंदा करते हुए समय को व्यर्थ में कभी नष्ट मत करो। जितना समय परनिंदा में लगाते हो उतना समय उस परम दयालु समदर्शी परमेश्वर विष्णु के ध्यान भजन स्मरण में व्यतीत करो। इसी में ही तुम्हारा कल्याण है।

मांडो कांध विष्णु के सरणै, अतरा बोल करोजे साचा तो पार गिराय गुरु की वाचा।

विष्णु परमात्मा की संगति ग्रहण करके धर्म तथा जीव रक्षार्थ अपने शरीर को उन हत्यारों के आगे स्थिर कर दो। यदि तुमने सच्चाई में ही विष्णु की शरण ग्रहण की है तो तुम्हारा वे शिकारी कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते और वे हत्यारे नहीं हटते है, आप पर हथियार चला देते है तो भी कोई हानि नहीं है, निश्चित ही तुम्हें विष्णु परमात्मा का सानिध्य प्राप्त होगा। यदि इतने बताये हुऐ गुरु के वचनों पर सत्यता से चलते हो तो यह सद्गुरु का वचन है कि निश्चित ही तुम लोग संसार सागर से पार उतर जाओगे।

रवणां ठवणां चवरां भवणां, ताहि परेरै रतन काया छै, लाभै किसे विचारे।

स्वर्ग में गन्धर्वो द्वारा गायन, अप्सराओं द्वारा नृत्य, आलिशान भवनों में चंवर ढुलाना आदि अस्थायी सुखों से भी परे अन्य लोक है। जहाँ पर दिव्य रतन सदृश काया प्राप्त करके पहुँचा जा सकता है। किन्तु कौनसे विचारों द्वारा उस परमात्मा को प्राप्त कर सकते है आगे बतलाते है।

जे नविये नवणी, खविये खवणी, जरिये जरणी।
करिये करणी, तो सीख हुवां घर जाइये।

यदि इस संसार में नमन करने योग्य व्यक्ति से नमन करते हुऐ अर्थात् निरभिमानी होते हुए, क्षमा करने योग्य जगह पर क्षमा शील होते हुए, जरणा करने योग्य स्थान में जरणा करते हुए और कर्तव्य कर्मो को करते हुए अपना जीवन यापन करो तो आप लोगों को यह सीख है कि अपने घर वापिस जाओ। जिस घर से आप लोग अलग हुए हैं और इस गोवलवास में आ पहुँचे हैं श्री देवजी कहते हैं कि यह मेरी अन्तिम विदाई है अब आप अपने कर्तव्यों का पालन करके वापिस अपने मूल स्थान रूप परमतत्व में लीन हो जाओ।

रतन काया सांचे की ढ़ोली, गुरु प्रसादे, केवल ज्ञाने
धर्म आचारे शीले संजमें, सतगुरु तुठे पाइये।

उस परम तत्व की प्राप्ति के लिये जिस रतन काया की आवश्यकता पड़ती है वह काया सद्गुरु की अपार कृपा से, कैवल्य ज्ञान, धर्म सम्बन्धी आचार-विचार, शील तथा इन्द्रियों के संयम रूपी ढ़ांचे में ढ़लती है। इसलिये रतन काया की प्राप्ति के लिये इन नियमों को अपनाना होगा। इतना होने पर भी उस दिव्य रतन काया को वहाँ तक पहुँचाने में प्रमुख कारण सत्गुरु की प्रसन्नता ही होती है।

★★★★

प्रसंग-9 दोहा

विश्नोवण एक आय कह्यो, आयस तणों विचार।
ढ़ोसी की पहाड़ी हिलावै, ताका कहो आचार।

सम्भराथल पर एक बिश्नोई स्त्री ने आकर जम्भदेवजी से कहा-कि यहाँ ढ़ोसी नाम की पहाड़ी पर एक योगी बैठा हुआ है। वह कभी-कभी ऐसा लगता है कि पहाड़ी को हिला देता है इसमें सच्चाई या झूठ का कुछ पता नहीं है और यह भी मालूम नहीं है कि उसमें सिद्धि है या पाखण्ड, इसका निराकरण कीजिये। इस शंका के निवारणार्थ यह सबद सुनाया-

सबद-24

ओ३म् आसण बैसण कूड़ कपटण, कोई कोई चीन्हत वोजूं वाटे।
वोजूं वाटै जे नर भया, काची काया छोड़ कैलाशै गया।

भावार्थ-योग समाधी के लिये जिस स्थिर सुखमय आसन का योगी लोग प्रयोग करते है। उसी आसन का पाखण्डी लोग भी प्रयोग करके यानि बैठकर झूठ कपट और ठगने का व्यवहार करते हैं, अधिकतर तो ऐसा ही होता देखा गया है। किन्तु कोई कोई विरला ही सन्त शूरवीर वास्तविक रूप से आसन पर बैठकर सत्य मार्ग को अपनाकर इस कच्ची काया को समय पर त्याग करके भगवान विष्णु के सर्वोच्च परम धाम को प्राप्त कर लेते हैं।

★★★

प्रसंग-10 दोहा

एक समै देव पै, आयो महमद खान।
हस्ती घोड़ा अति घणा, मन में बहुत गुमान।
प्रश्न किया तब देव से, करणी कहो तुम पीर।
ऐसे गर्व से बोलियो, गुमर सूं जुग हीर।

नागौर शहर का सूबेदार मुहमद खां जम्भदेवजी के सम्बन्ध में पहले ही सुन चुका था। उनकी महिमा प्रत्यक्ष देखने के लिये एक बार सम्भराथल आया, साथ में हाथी, घोड़ा व सैनिकों को लेकर अभिमान सहित जम्भदेवजी से प्रश्न किया था। जिज्ञासु को तो नम्रशील होना चाहिये था किन्तु मुहमद उदण्डता से गर्वपूर्ण वाणी में बोला था जिसका उतर श्री देवजी ने दिया।

सबद-25

ओ३म् राज न भूलीलो राजेन्द्र, दुनी न बंधै मेरूं।
पवणा झोलै बिखर जैला, धुंवर तणा जै लोरूं।

भावार्थ- हे राजेन्द्र! इस राज्य की चकाचौंध में अपने को मत भूल। अपने स्वरूप की विस्मृति तुझे बहुत ही धोखा देगी तथा दुनिया मेरी है इस प्रकार से दुनिया में मेरपने में बंधना नहीं है। यदि इस समय तुम स्वयं बंधन में आ गये तो फिर छूटने का कोई उपाय नहीं है। यह संसार तो जिसे तुम अपना कहते हो यह धुएं के थोथे बादलों की तरह है। जिसमें न तो स्थिरता है और न ही वर्षा है। ऐसे निरस संसार पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिये। जरा भी पवन का झोंका आते ही इधर-उधर बिखर जायेगा। काल रूपी वायु के झोंके के सामने

इस संसार की भी स्थिति नहीं है।

वोलस आभै तणा लहलोरूं, आडा डंबर केती बार बिलंबण, यो संसार अनेहूं।

आपने देखा होगा कई बार आकाश में उमड़-घुमड़ कर थोथे बादल घटाटोप अन्धकार पैदा कर देते हैं किन्तु न तो उनमें वर्षा ही होती है और न ही स्थिरता। जरा भी हवा चलने से बिखर जाते है। ठीक उसी प्रकार से ही यह संसार की मोह-माया थोड़े दिनों के लिये ही आती है और अपनी चकाचौंध दिखला देती है। किन्तु वास्तविकता से बहुत दूर की बात है। यह माया आती है तो सुख का आभास करा देती है और तुरंत चली जाती है। तो दु:ख पैदा कर देती है। यह किसी की भी नहीं है। जो इससे स्नेह करके अपनी समझेगा वह सदा ही धोखा खायेगा क्योंकि स्नेह न करने योग्य माया से स्नेह करता है।

भूला प्राणी विष्णु न जंप्यो, मरण विसारो केहूं।

मोह माया में भटके हुए प्राणी ने परमात्मा विष्णु का स्मरण तो किया नही और सदा ही यहाँ पर अजर-अमर होकर रहने की ठान ली है। उस अवश्यंभावी मृत्यु को भूल गया है यही गलती मानव करता आ रहा है।

म्हां देखंता देव दाणूं, सुरनर खीणां, जंबू मंझे राचि न रहिबा थेहूं।

देव-दानव, मानव आदि इस संसार में अनेकानेक आये और चले गये। ऐसा मैंने प्रत्यक्ष देखा है और अब भी देख रहा हूँ कि उसी गति से अब भी आ रहे हैं। इस जम्बु द्वीप में तो अब तक कोई स्थिर नहीं रह सका है। स्थायी रहने के लिये किये गये सभी प्रयत्न विफल हो गये है।

नदिये नीर न छीलर पाणी, धूंवर तणां जे मेहूं।

जिस प्रकार से नदी का जल स्थिर नहीं हो सकता वह तो बहेगा ही और छीलर अर्थात् तालाब का थोड़ा पानी भी नहीं टिक सकता तथा ओस की वर्षा भी सूर्य की किरण एवं वायु के सामने स्थिर नहीं रह सकती। उसी प्रकार से यह संसार तथा सांसारिक धन सम्पति भी स्थिर नहीं है। कर्म और काल के अधीन है।

हंस उडाणों पन्थ विलंब्यो, आसा सास निरास भईलो।

यह जीवात्मा रूपी हंस इस शरीर से विलग हो जायेगा तथा अपने कर्मानुसार आगे का मार्ग पकड़ कर जहां पर भी स्वर्ग-नरक या मुक्ति को प्राप्त करेगा वह तो एक दिन होना निश्चित ही है। किन्तु इस जीवन में होने वाली अनेक आशाएं धूमिल हो जायेगी। अन्तिम समय में तो आशाओं से निराश होकर अपने जीवन का सुधार करें ''आसा पास शतैर्बद्धा काम क्रोध परायणा'' गीता।

ताछै होयसी रंड निरंडी देहूं, पवणा झोलै बिखर जैला गैण विलंबी खेहूं।

जब यह जीवात्मा शरीर से निकलकर गमन कर जायेगी तब यह सौभाग्यवान तुम्हारा शरीर विधवा हो जायेगा। जिस प्रकार से आकाश में उठे हुऐ धूल के कण भी हवा चलने से बिखर जाते है। उसी प्रकार से यह जुड़ा हुआ पंचभौतिक शरीर भी बिखर जायेगा। ये पांचों तत्त्व स्वकीय स्वरूप में विलीन हो जायेंगे। इसलिये इस पर अभिमान करना व्यर्थ है।

★★★★

प्रसंग-11 दोहा

साथरियां बैठे जहां, वैरागी चले जो जाह।
महंत जमात पुष्ट अति, विश्नोई सराहै तांह।

सम्भराथल पर जमात सहित जम्भदेवजी विराजमान थे। उसी समय ही वैरागी वैष्णव साधुओं की जमात थल के नीचे से जा रही थी। उस जमात का महंत शरीर से बहुत ही मोटा था। जिसे देखकर बिश्नोई लोग सराहना करने लगे। जम्भेश्वर जी ने उनकी अज्ञानता मिटाने के लिये शब्द कहा-

सबद-26

ओ३म् घण तण जीम्या को गुण नांही, मल भरिया भण्डारूं।
आगे पीछे माटी झूलै, भूला बहैज भारूं।

भावार्थ-यह जमात का महंत अधिक भोजन खाने से मोटा-स्थूल हो गया है। किन्तु अधिक खाकर मोटा होने में कोई गुण नहीं है। यह शरीर रूपी भण्डार मल से ही तो भरा हुआ है। इसके आगे और पीछे चर्बी रूपी माटी ही तो झूल रही है। यह बेचारा अपनी भूल के कारण ही तो भार उठाकर घूम रहा है। बिना परिश्रम के स्वाद के लिये खाया हुआ अत्यधिक गरिष्ठ भोजन करने से यही मोटापा रूप दण्ड शरीर को मिलता है। इसलिये साधक के लिये तो युक्ताहार-विहार ही श्रेष्ठ है।

घणा दिनां का बड़ा न कहिबा, बड़ा न लंघिबा पारूं।
उत्तम कुली का उत्तम न होयबा, कारण किरिया सारूं।

अधिक आयु होने से बड़ा महापुरुष नहीं हो सकता और न ही बड़ा होने से कोई संसार सागर से पार ही उतर सकता। थोड़ी आयु होने से भी यदि गुणी है तो महान और ज्ञानी है। वह अपना कल्याण भी कर सकता है। उत्तम कुल-वंश में जन्म लेने से कोई उत्तम महान नहीं हो सकता। यदि जन्म से तो उत्तम ब्राह्मण है किन्तु कर्म से चाण्डाल है तो उसे ब्राह्मण कदापि नहीं कहना चाहिये। उत्तम और कनिष्ठ होने में क्रिया और कर्म ही कारण है न कि जाति। प्राचीन काल में जन्म से जाति नहीं मानी जाती थी किन्तु कर्म से जातियों का निर्धारण होता था। आज कल इस विधान का व्यक्तिक्रम खत्म हो गया है।

गोरख दीठा सिद्ध न होयबा, पोह उतरबा पारूं।

केवल सिद्ध गोरखनाथ जी के दर्शन करने से ही सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती। यदि गोरखनाथ जी की तरह ही सिद्धि प्राप्त करनी है तो जैसा उन्होंने अपनी वाणी में बतलाया है वही मार्ग अपनाकर साधना करो तभी संभव है। अर्थात् यदि जीवन में महानता प्राप्त करनी है तो उस महानता की सिद्धि के लिये वैसा ही मार्ग अपनाकर कठिन परिश्रम एवं लग्न से कार्य करना ही फलदायी गोरख दर्शन का लाभ है।

कलयुग बरतै चेतो लोई, चेतो चेतण हारूं।

इस समय कलयुग चल रहा है। यह कलयुग समय अति शीघ्रता से व्यतीत हो रहा है क्योंकि कार्य अधिक है, जीवन की आयु थोड़ी है। इस अल्प समय में ही हे लोगों! सावधान हो जाओ! यदि सभी लोग नहीं चेत सको तो चेतने योग्य जन तो अवश्य ही सचेत हो जाओ क्योंकि-

सतगुरु मिलियो सतपन्थ बतायो, भ्रान्त चुकाई, विदगा रातै उदगा गारूं।

इस समय आपको सतगुरु सहज में ही प्राप्त हो चुके हैं। सतपन्थ बता दिया है। भ्रान्ति की निवृति हो चुकी है। क्योंकि सतगुरु की बाणी वेद ग्रन्थों का उद्‌गार रूप ही है। सम्पूर्ण वेद ग्रन्थों का पढ़ना असंभव है इसलिये वेदों की सार रूपी यह वाणी ही तुम्हारे लिये सच्ची ज्ञानदात्री है।

★★★★

प्रसंग-12 दोहा

शेख मनोहर बोलियो, जम्भ तणौ दरबार।
रूह मैं रूह जु उपजै, ताका कहो विचार।
देव दया करि यों कह्यो, तुमरै किताब तणों विश्वास।
शेख मनोहर यों कहै, नाशा पैसे शास।
जम्भगुरु यों बोलियां, कहो इण्डे में किण द्वार।
शेख मनोहर तब कहै, हम नहीं जांणै सार।
शेख मनोहर यूं कहै, हुकमै आवै जाय।
तब जम्भेश्वर शेख कूं, दीनो शब्द सुणाय।

मुहमद खां नागौरी से वार्ता श्रवण करके एक समय शेख मनोहर एवं महमद खां दोनों ही सम्भराथल पर पहुँचे। गुरुदेव के समीप बैठकर शेख कहने लगा-कि यदि आप सूक्ष्म जीव विज्ञान के बारे में जानते है तो कृपया यह बतलाइये कि शरीर धारी स्त्री गऊ आदि के गर्भ में जीव प्रवेश किस द्वार से करता है। शेख मनोहर से जम्भगुरु जी ने कहा-तुम्हारे यहाँ पर कुरान आदि किताबों में विश्वास है तो यह बतलाइये कि उनमें क्या लिखा है। शेख ने कहा हमारा विश्वास तो है कि नासिका से जीव प्रवेश करता है। जम्भदेवजी ने कहा फिर यह बतलाइये कि अण्डे के तो नासिका भी नहीं होती, उसमें क्या जीव नहीं होता ? यदि होता है तो किस द्वार से। यह बात सुनकर शेख चुप हो गया। तब जम्भेश्वर जी ने सबद सुनाया-

सबद-27

ओ३म् पढ़ कागल वेदूं, शास्त्र शब्दूं, पढ़ सुन रहिया कछू न लहिया।
नुगरा उमग्या काठ पखाणों, कागल पोथा ना कुछ थोथा, ना कुछ गाया गीयूं।।

भावार्थ-कागज द्वारा निर्मित वेद, शास्त्र और संत-महापुरुषों के शब्दों को आप लोगों ने पढ़ा है तथा प्रतिदिन पढ़ते भी आ रहे हैं तथा कुछ लोग सुनते भी हैं। किन्तु जब तक पढ़ सुनकर भी कुछ प्राप्ति नहीं करोगे तो कुछ भी लाभ नहीं है। जैसे अनपढ़ अज्ञानी थे वैसे ही पढ़-सुनकर रह गये तथा कुछ नुगरे लोग है। जिन्होंने अब तक गुरु की शरण ग्रहण नहीं की है। ऐसे लोगों की उमंग तो लकड़ी एवं पत्थरों की मूर्ति पर ही है। उन्हीं के सामने जाकर मत्था टेकते हैं इसलिये जब तक उन्हें पढ़कर आचरण में नहीं लाओगे तो कागज पोथा कुछ भी ज्ञान नहीं दे सकेगा, वे तो थोथे ही है और न ही कुछ अन्य गायन करने में ही लाभ है अर्थात् केवल गायन-पठन करना व्यर्थ ही है।

किण दिश आवै किण दिश जावै, माई लखे न पीऊ।

न तो जीवात्मा का आगमन-निर्गमन वेद शास्त्र बता सकते और न ही माता-पिता ही बता सकते हैं क्योंकि शब्द शास्त्र एवं माता-पिता तो स्थूल बुद्धि गम्य को ही बता सकते हैं किन्तु यह जीव विज्ञान तो अनुभव तथा दिव्य दृष्टि द्वारा प्राप्य है। जीव के आने व जाने की दिशा को गुरुजी बतलाते हैं।

इण्डे मध्ये पिंड उपन्ना, पिंडा मध्ये बिंब उपन्ना।
किण दिश पैठा जीऊं, इंडा मध्ये जीव उपन्ना।

माता-पिता के रजवीर्य से शरीर की उत्पत्ति होती है। उस शरीर रूप पिण्ड से जीव पहले से ही विद्यमान रहता है। किन्तु उस अवस्था में वह अशरीरी जीव अचेत अवस्था में रहता है। माता का सुरक्षित अनुकूल गर्भ स्थान पाकर वह शनैः शनैः सचेत होकर बाह्य शरीर का आवरण पाकर उत्पन्न शीलता को प्राप्त करता है। जिसे शरीर की दिनोंदिन वृद्धि होती है तथा इस शरीर के साथ ही सूक्ष्म शरीर भी अन्तःकरण सहित सचेत हो जाता है। इसलिये अण्डे आदि में या अन्य किसी भी शरीर में जीवात्मा का बाहर से किसी भी दिशा से प्रवेश नहीं होता, वह तो शरीर के अन्दर होता है। जीव होने से ही तो शरीर की प्राप्ति है। प्रथम जीव बाद में शरीर होता है।

सुण रे काजी सुण रे मुल्ला, पीर ऋषिश्वर रे मसवासी।
तीरथ वासी, किण घट पैठा जीऊं।

काजी मुल्ला, पीर, महान ऋषि, मठ या श्मशान में निवास करने वाले, तीर्थ में निवास करने वाले सभी लोग अपने को विद्वान धर्माधिकारी कहते हो पुस्तक पढ़ते हो इसलिये आपसे पूछना ठीक ही है कि इस जीव ने किस द्वार से प्रवेश किया।

कंसा शब्दे कंस लुकाई, बाहर गई न रीऊ।
क्षिण आवै क्षिण बाहर जावै, रूतकर बरषत सीऊं।

जिस प्रकार से कांसा के बर्तन में थाली आदि पर चोट करने से एक ध्वनि पैदा होती है। यह ध्वनि कहाँ से पैदा होती है और कहाँ चली जाती है। वह अन्दर ही सर्वत्र छुपी हुई है। चोट पड़ने पर प्रकट हो जाती है तथा वापिस उसी में ही लीन हो जाती है। उसी प्रकार से यह जीव भी सर्वत्र समाया हुआ है। परन्तु अप्रकट है तथा अन्त समय में फिर ब्रह्म में लीन हो जाता है। जीव के आने व जाने में केवल एक क्षण का समय लगता है। ऋतु आने पर ही वर्षा होती है तथा सर्दी गर्मी भी पड़ती है। इसी प्रकार से जीव का शरीर में प्रवेश या जन्म भी अपने कर्मानुसार यथा समय पर ही होता है।

सोवन लंक मन्दोदर काजै, जोय जोय भेद विभिषण दीयो।

जिस प्रकार से विभीषण ने सोने की लंका एवं मन्दोदरी के लिये वहाँ का सम्पूर्ण भेद रामजी को दे दिया था। उसी प्रकार से हे मनोहर! मैंने भी तेरे को यह जीव विज्ञान का सम्पूर्ण गोपनीय भेद दे दिया है। विभीषण के भेद को पाकर रामजी ने विजय प्राप्त कर ली थी। अब तूँ भी इस भेद को समझकर ज्ञान प्राप्त कर ले, तेरे लिये यही विजय का कार्य होगा।

तेल लियो खल चोपै जोगी, तिहिं को मोल थोड़े रो कियो।

तिलों में से तेल निकल जाता है तो पीछे बची हुई खली पशुओं के ही योग्य होती है। उस खली का

मूल्य कम हो जाता है। उसी प्रकार से इस शरीर रूपी तिलों से जब जीवात्मा रूपी तेल निकल जाता है तो पीछे खली के समान व्यर्थ का मृत शरीर ही रह जाता है। इसलिये केवल शरीर को ही अति महत्त्व देना कोई बुद्धिमानी नहीं है। महत्वपूर्ण तो स्वकीय चेतनात्मा ही है।

ज्ञाने ध्याने नादे वेदे जे नर लेणा, तत भी तांही लीयो।

जीवात्मा का ज्ञान तथा स्वरूप की प्राप्ति तो सतगुरु द्वारा व्यवहारिक एवं पारमार्थिक शास्त्रीय ज्ञान श्रवण, नाद ध्वनि, वेद पाठन से ही हो सकती है और जो इन साधनों को अपनाता है वह तत्व को जानता है। या जाना जा सकता है। अन्यथा तो स्थूल संसार को ही जीवात्मा मानकर भटकता है।

करण दधीच सिंवर बलराजा, हुई का फल लीयो।

कर्ण, दधीच, राजा शिवि तथा बलि राजा ये सभी महान दानी थे। उन्होंने अपने शरीर तक दान में दे दिया था। किन्तु ये लोग भी अपने दान कर्म का जितना फल, यश, स्वर्ग आदि होता है, उतना ही मिला-प्राप्त किया। ये लोग भी दान के प्रभाव से परमतत्व को प्राप्त नहीं कर सके अर्थात् दान का फल स्वर्ग ही होता है न कि मुक्ति। आवागमन से छूटने का उपाय परम तत्त्व ही हो सकता है।

तारा दे रोहितास हरिचन्द, काया दशबन्ध दीयो।

इन्हीं दान वीरों की परम श्रृंखला में अयोध्या के राजा हरिश्चन्द्र उनकी पत्नि तारा, एवं सुपुत्र रोहिताश ने भी धर्म सत्य की रक्षार्थ अपना सभी कुछ दान में देकर अपनी काया को भी दान में दे दिया। किन्तु निष्काम भाव से दिया हुआ हरिश्चन्द्र का दान फलीभूत हुआ जिससे अपने आप सहित स्वकीय प्रजा जो सात करोड़ थी उनका भी उद्धार किया। यह उद्धार तो ज्ञान, धन एवं स्वकीय काया समर्पण भाव से ही संभव हुआ।

विष्णु अजंप्या जनम अकारथ, आके डोडे खींपे फलीयो, काफर विवरजत रूहीयूं।

उस परमतत्व की प्राप्ति के लिये विष्णु का जप, स्मरण, ध्यान ही परम कारण है। जो व्यक्ति परमात्मा-स्वामी विष्णु का जप नहीं करता, तत्वान्वेषण नहीं करता, उनका जन्म व्यर्थ ही है। जिस प्रकार से आक के डोडिया तथा खींप वृक्ष की फलियाँ ये दोनों ही पौधे राजस्थान की मरुभूमि में विशेषकर होते हैं। उनका फल किसी कार्य में नहीं आता। जो यह परमतत्व का मार्ग नहीं अपनाता है नास्तिक है। ऐसे नास्तिक लोग खाली ही रह जायेंगे।

सेतूं भातूं बहु रंग लेणा, सब रंग लेणा रूहीयूं।
नाना रे बहुरंग न राचै, काली ऊन कुजीऊं।

सफेद वस्त्र पर तो अनेक भांति के सभी प्रकार के रंग चढ़ जाते है तथा काली ऊन के तो कोई भी रंग नहीं चढ़ सकता है। उसी प्रकार से ही जिसका अन्त:करण अब तक पवित्र तथा निर्दोष शुभ्र है। उसको तो आप जो चाहो वैसा ही ज्ञान दे सकते हो क्योंकि ज्ञान ग्रहण करने की योग्यता उसमें है। अब तक दोष रूपी कालिमा नहीं चढ़ी है और जिस व्यक्ति का हृदय कलुषित हो गया है अनेकानेक दुर्गुणों से अन्त:करण को कलुषित कर लिया है वह काली ऊन की तरह है उसे कभी भी अच्छे संस्कारों से शुद्ध पवित्र नहीं किया जा सकता। जब तक स्वयं वह अपने को बदलने के लिये प्रयत्नशील न हो जाये।

पाहे लाख मजीठी राता, मोल न जिहिं का रूहीयो।

मजीठ रंग से रंजित किये बिना लाख का कोई मूल्य नहीं है। जब लाख रंग जाती है तो उसकी चुड़ियां

आदि बनती है। जिससे श्रृंगार होता है तथा उसकी कीमत बढ़ जाती है। उसी प्रकार से मानव में जब तक अपठितता, असंस्कारितता अज्ञानी मूर्ख है तब तक उसकी कोई कीमत नहीं है। यही पुरुष विद्वान गुणी हो जाता है तो उसका मूल्य और इज्जत बढ़ जाती है।

कबही वो ग्रह ऊथरी आवै, शैतानी साथै लीयो।
ठोठ गुरु वृषलीपति नारी, जद बंकै जद बीरूं।

कभी कभी दुष्ट आदमी भी सचेत हो जाता है। कोई ज्ञान किरण उदित हो जाने से परम तत्व की प्राप्ति के लिये घर से बाहर निकल पड़ता है किन्तु शैतानी-दुष्टता को साथ लेकर ही निकलता है। उसे पीछे छोड़कर नहीं जाता। ज्ञानी गुरु की खोज में भटकता है तो उसे ज्ञानी या पाखण्डी का विवेक तो होता नहीं है और किसी ठोठ गुरु के हाथों चढ़ जाता है। वह गुरु स्वयं ठोठ है तथा झूठ, कपट, नारी प्राप्ति की वासना में लिप्त है। इधर शिष्य भी तो शैतानी लेकर आया है। दोनों में बांकापन है। न तो सीधा शील स्वभाव वाला गुरु है और न ही शिष्य ही है। जब शिष्य अपनी मरोड़ जताता है तो ठोठ गुरु उससे समझौता कर लेता है उस शिष्य को दुर्गुणों से मुक्त नहीं कर सकता।

अमृत का फल एक मन रहिबा, मेवा मिष्ट सुभायो।

स्वाभाविक मेवा सदृश मीठा अमृत का जो फल है। वह फल एकाग्र मन से अर्थात् चित वृति निरोध रूपी योग से प्राप्त किया जा सकता है किन्तु ऐसे ठोठ गुरुओं के पास शैतान शिष्य को वह कहाँ मिलेगा।

अशुद्ध पुरुष वृषलीपति नारी, बिन परचै पार गिराय न जाई।
देखत अन्धा सुणता बहरा, तासों कछु न बसाई।

अपवित्रता से युक्त, झूठ कपटता से पूर्ण, नारी प्राप्ति की वासना से लिप्त, ऐसा पुरुष कभी भी सतगुरु के उपदेश कृपा बिना सुधर नहीं सकता तथा बिना सुधार किये कभी सुख शांति को प्राप्त नहीं कर सकता अर्थात् इह लोक तथा परलोक दोनों ही बिगाड़ लेता है। ऐसा व्यक्ति देखता हुआ भी नहीं देखता अन्धा है। सुनता हुआ भी नहीं सुनता बहरा है। उसका जीना तो केवल आयु पूरी करनी है। वास्तविक जीवन से तो बहुत दूर है।

''दोहा''
शेख मनोहर यों कह्यो, रूह का कैसा वरण।
जम्भेश्वर शब्द उच्चार यों, परम तत्व अवरण।

उपर्युक्त शब्द शेख मनोहर एवं मुहमद खां ने ध्यानपूर्वक श्रवण किया तथा वहाँ से उठकर कुछ दूर चले गये, फिर विचार आया कि हम लोगों ने रूह-जीवात्मा का रूप रंग तो पूछा ही नहीं है। अब न तो आत्मा का रूप रंग जाने विना वापिस घर जाना ही ठीक है और न ही हम लोग वापिस जा सकते, क्योंकि विदाई लेकर आ चुके है। इस प्रकार से संशय में पड़ जाने पर गुरु जाम्भोजी ने उन दोनों को अपना दूत भेजकर वापिस बुला लिया तथा यह सबद सुनाया-

सबद-28

ओ३म् मच्छी मच्छ फिरै जल भीतर, तिहि का माघ न जोयबा।

भावार्थ-मच्छली एवं मगरमच्छ जल के भीतर ही रहते हैं तथा अन्दर ही मार्ग द्वारा घूमते हैं वे जलीय जीव जल की गति से परिचित हैं किन्तु हम पार्थिव उस जल की गति को नहीं जान सकते। उसी प्रकार से परम तत्व को जानने के लिये संसार से पृथक् अध्यात्म वृत्ति को अपनाना होगा अर्थात् जल की गति को जानने के लिये जल में प्रवेश करना पड़ेगा और परम तत्व को जानने के लिये तद्गत होना पड़ेगा।

परम तत्व है ऐसा, आछै उरवार न ताछै पारूं।

वह परम तत्त्व इस प्रकार का है जो न तो अति नजदीक है और न ही दूर ही है अर्थात् देशकाल वस्तु से अपरिच्छिन्न है। वह नजदीक भी विद्यमान है और दूर भी है।

ओवड़ छोवड़ कोई न थीयों, तिहिं का अन्त लहिबा कैसा।

उस परम तत्त्व आत्मा का न तो यह किनारा है और न ही वह किनारा, सीमा है अर्थात् वह असीमित है उसका अन्त पार कैसे पाया जा सकता है। आकाशवत् आर-पार रहित सर्वत्र व्यापक है।

ऐसा लो भल ऐसा लो, भल कहो न कहा गहीरूं।

उस सर्वेश्वर गम्भीर परम तत्त्व की प्राप्ति करो जो सदा एक रस नित्य सनातन है तथा वाणी का विषय न होते हुऐ भी अनुभव द्वारा अवश्य ही प्राप्त होता है।

परम तत्व के रूप न रेखा, लीक न लेहूं खोज न खेहूं।
वरण विवरजत भावै खोजो बावन बीरूं।

उस परम तत्त्व रूह आत्मा के न तो कोई रूप है जो आंखों से देखा जा सके और न ही कोई रेखाएं ही है, यानि आकृति विशेष ही है जो पहचाना जा सके और न ही कोई मार्ग ही है। जिससे पहुँचा जा सके तथा न ही कोई खोज-पद्चिन्ह ही है जिससे खोजा जा सके ,न ही उनके चलनें से खेह-धूली के सूक्ष्म कण ही उड़ते हैं जो अनुमान किया जा सके अर्थात् रंग, रूप, आकृति रहित ही है। अज्ञानी पुरुष चाहे उसे बावन प्रकार के भेरूं चौसठ प्रकार की जोगिणी आदि में, कहीं भी एक देश में मूर्ति आदि में खोजें वहाँ पर परम सत्ता सीमित नहीं हो सकती, न ही मिल सकती।

मीन का पंथ मीन ही जाणै, नीर सुरंगम रहीयूं।
सिध का पन्थ कोई साधु जाणत, बीजा बरतन बहियों।

मच्छली का मार्ग तो मच्छली ही जान सकती है क्योंकि वह जल में ही एकाकार रूप से रहती है। उसी प्रकार से परमतत्व प्राप्त पुरुष की गति तो कोई साधक पुरुष ही जान सकता है क्योंकि दोनों का साधन और साध्य एक ही है। एक तो सिद्ध हो चुका है दूसरा प्रयत्नशील है। सिद्ध तो मार्ग को जान चुका है। अन्य लोग तो केवल व्यवहार में कभी कभी तत्सम्बन्धी बातें ही करके संतोष कर लेते हैं।

★★★★

''दोहा''

शेख मनोहर परचियों, मन में आयो सांच।
देव तणैं पाऐं लग्यो, निरमल गुरु की वाच।

''प्रसंग-13 दोहा''

एक समै हरणाय, देवजी बात चलाई।
कनोज कालपी शहर, समंदा पार की कह समझाई।
कहै हजूरी लोक, देवजी थे कद गया।
म्हे दीठा बीकाणै देश, साथरी पर थया।
आयो जम्भ इलोल, शब्द रूप उच्चरया।
हरि हां शब्द हमारो रूप, शब्द सब विश्व करया।

एक समय जम्भदेवजी संत साथरियों सहित सम्भराथल पर विराजमान थे। उसी समय बिना किसी शंका प्रश्न पूछे ही देवजी ने कन्नौज-कालपी शहर तथा समुद्र पार की वार्ता चलाई। साथरियाँ भक्त जन कहने लगे-कि आप तो यहाँ बीकानेर देश में सम्भराथल पर ही विराजमान रहते हैं। समुद्र पार देशों में कब गये थे। तब देवजी को इलोल यानि उमंग आयी, जिससे स्वत: सबदोच्चारण हुआ। यह इलोल सागर शब्द विशेष आनन्द की आस्था में कहा गया है। इसलिये इसका पठन गायन श्रवण करने से विशेष आनन्द की प्राप्ति होती है।

गुरु जाम्भोजी ने बतलाया कि मैं इस शरीर रूप से भले ही यहाँ पर तुम्हारे पास विद्यमान हूँ। इन शब्दों द्वारा मैं जिस देश में जाता हूँ उनको उन्हीं की भाषा में ज्ञान देता हूँ। शब्द रूप से मेरा विस्तार हो चुका है। प्रहलाद पन्थ के बिछुड़े हुऐ जीवों को खोज लिया है। उन्हें सद्मार्ग का अनुयायी बना दिया है। शब्द रूप परब्रह्म होते हुऐ भी स्वकीय माया से भिन्न भिन्न शरीरों को धारण करता हूँ। इस समय मैंने यही किया है।

सबद-29 ''इलोल सागर''

ओ३म् गुरु के शब्द असंख्य प्रबोधी, खार समंद परीलो।
खार समंद परै परै रे, चौखण्ड खारूं, पहला अन्त न पारूं।

भावार्थ-''स तु सर्वेषां गुरु कालेनानवच्छेदात्''''योग दर्शन' वह परम पिता परमात्मा ही सभी का गुरु है तथा काल से परे है। ऐसे सतगुरु के शब्द व्यर्थ नहीं हुआ करते, वे तो असंख्य जनों को प्रबोध-ज्ञान कराने वाले होते हैं। गुरु जाम्भोजी कहते हैं कि इन मेरे शब्दों ने असंख्य जनों को ज्ञानी बनाया है। इस जम्बू दीप भारत खण्ड से बाहर खार समुद्रों से परे भी तथा उनसे भी आगे अनेकानेक देशों में मेरे इन शब्दों की गुंजार पहुँची है। इन चारों खण्ड समुद्रों से पार तो इस समय लोगों को शुद्ध सात्विक बनाया है। अब से पूर्व भी समय-समय पर अनेकों शरीर धारण करके लोगो को चेताया है। जिसकी कोई गिनती भी नहीं है।

अनन्त कोड़ गुरु की दावण बिलंबी, करणी साच तरीलो।
सांझे जमो सवेरे थापण, गुरु की नाथ डरीलो।

सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर अब तक अनन्त करोड़ प्राणियों ने गुरु की दावण यानि नियम बद्ध जीवन

स्वीकार किया है और सत्य धर्म मय जीवन स्वीकार करके संसार सागर से पार उतर गये। सतगुरु ने उन्हें उद्दण्डता से निवृत करके सांय समय जागरण सत्संग तथा प्रातः काल कलश स्थापना करके हवन-पाहल रूपी नाथ पहनायी। वही धर्म साधक नाथ जीवन को संयमित करती है। वे लोग सदा ही गुरु के नियमों पर तत्पर रहकर पापमय जीवन से डरते हैं।

भगवी टोपी थलसिर आयो, हेत मिलाण करीलो।
अम्बाराय बधाई बाजै, हृदय हरि सिंवरीलो।

वही सतगुरु जो देश देशान्तरों में भ्रमण करके अनन्त करोड़ों को पार उतारने वाले है। यहाँ सम्भराथल पर भगवीं टोपी पहन कर आये हैं। यदि कोई अपना हित चाहता है तो मिलाप कर सकता है। जो भी मिलाप करेगा वह निश्चित ही हृदय में हरि विष्णु परमात्मा का स्मरण करता हुआ आनन्दमय लोक को प्राप्त करेगा। जब वह वहाँ पहुँचेगा तो देवता लोग स्वागत सहित अपने यहाँ वास देंगे।

कृष्ण मया चौखण्ड कृषाणी, जम्बू दीप चरीलो।
जम्बू दीप ऐसो चर आयो, इसकन्दर चेतायो।
मान्यो शील हकीकत जाग्यो, हक की रोजी धायों।

परमात्मा श्री कृष्ण की त्रिगुणात्मिका माया का ही यह दृश्य अदृश्य जगत रूप है। एक बीज रूपी माया का यह जगत रूप पसारा है। किन्तु इसके कृषक स्वयं परमात्मा है। श्री देवजी कहते हैं कि इस विशाल सृष्टि के अन्दर भ्रमण करते हुऐ भी मैं यहाँ विशेष रूप में ही विचरण करता हूँ। तथा इसमें विचरण करते हुऐ दिल्ली के बादशाह सिकन्दर को चेताया है। उसे अधर्म मार्ग से निवृत्त करके शील व हक की कमाई करने का उपदेश दिया है। वह बादशाह होते हुए भी यह स्वीकार किया है। अब वह हक की कमाई करके ही अपना जीवन निर्वाह करता है।

ऊनथ नाथ कुपह का पोहमा आण्या, पोह का धुर पहुंचाया।

जो लोग अति उदण्ड थे उनको तो सज्जन बनाया तथा जो लोग कुमार्ग पर चलते थे उनको सुमार्ग में प्रवृत करवाया तथा जो लोग सुमार्ग में चलते थे अपनी क्रिया कर्म में पक्के थे उनको परम पद की प्राप्ति करवा दी, यही मेरा परम कर्त्तव्य है, यह मैने ठीक से सम्पूर्ण किया है और आगे भी करूँगा।

मोरे धरती ध्यान वनस्पति वासों, ओजूं मण्डल छायों।
गीन्दूं मेर पगाणै परबत, मनसा सोड़ तुलायो।

गुरु जाम्भोजी अपने भ्रमण की व्यापकता को दर्शाते हैं कि मेरे इस सर्वत्र व्यापक रूप में यह धारण शक्ति सम्पन्ना धरती ही ध्यान है। किसी वस्तु विशेष को निरंतर चित में रखने को ही ध्यान कहते है तथा धरती ही निरंतर सभी जड़-चेतन प्राणियों को धारण करती है। इसलिये मेरा ध्यान तो धरती की तरह अडिग है अर्थात् धरती रूप ही है। जिस प्रकार इस धरती से ही भोजन प्राप्त करके वनस्पति धरती के आधार पर खड़े है और कण-कण में विद्यमान है। उसी प्रकार से श्री देवजी कहते हैं कि मैं भी ध्यान रूप से अडिग होकर वनस्पति रूप में सर्वत्र व्यापक हूँ तथा वनस्पति की तरह परोपकारी भी हूँ। सत्य सनातन रूप से सम्पूर्ण मण्डल में छाया हुआ हूँ। उसी सत्य के बल पर यह मण्डल टिका हुआ है।

सुमेरू पर्वत ही मेरा तकिया है तथा अन्य सभी छोटे-मोटे पहाड़ पैरों के नीचे ही रहने वाले छोटे गद्दे

है अर्थात् जब मेरा शयन होता है तो वह भी इस पार से लेकर उस पार तक सम्पूर्ण सृष्टि को नीचे दबाकर ही होता है। मनसा-इच्छा ही मेरी सोड़ है। उसी सोड़ को ओढ़कर जब मैं सोता हूँ तो इन जीवों को कर्म करने की पूरी छूट मिल जाती है। उस समय यह संसार अनेकानेक वासनाओं से परस्पर तुल जाता है। अनेक व्यक्तियों की परस्पर वासनाएँ संघर्ष पैदा करती है, स्नेह पैदा करती है, वासना पूर्ति के लिये मानव कार्यरत होता है। जिससे इस संसार की उतरोतर वृद्धि होती है। सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदि अनेक लोक भी परमात्मा की इच्छा से ही एक-दूसरों के आकर्षण से तृप्त हुऐ है इसलिये अपने अपने स्थान में स्थित है।

ऐ जुग चार छतीसा और छतीसां, आश्रा बहै अंधारी, म्हे तो खड़ा बिहायो।

सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलयुग ये चार युग बीत गये तथा इसी प्रकार से चार युग नौ बार इससे पहले बीत चुके है तथा इनसे पूर्व भी नौ बार ये चार युग बीत चुके, अर्थात् दो बार छत्तीस युग बीत चुके हैं ये सभी मेरे परमात्मा के आश्रय से ही व्यतीत हुआ है। उससे पूर्व तो अन्धकार ही था। सूर्य आदि की उत्पत्ति भी नहीं हुई थी। तब तो चेतन ब्रह्म रूप में ही स्थित था। यह मैंने व्यतीत होते हुऐ देखा है तो फिर मेरे भ्रमण के बारे में क्या पूछते हो।

तेतीसां की बरग बहां म्हे, बारा काजै आयो।
बारा थाप घणा न ठहर मतांतो डीले डीले कोड़ रचायो, म्हे ऊंचै मण्डल का रायों।।

सतयुग में प्रह्लाद भक्त के समय में तेतीस करोड़ देव-मानवों का उद्धार करने के लिये भी मैंने ही नृसिंह रूप धारण किया था। उसको दैत्यों के त्रास से मुक्ति दिलवाई थी। सतयुग में तो केवल पाँच करोड़, त्रेता में सात, द्वापर में नौ करोड़ का ही उद्धार हो सका, अब कलयुग में उनसे बचे हुऐ बारह कोटि जीवों का कल्याण करने के लिये यहाँ पर मेरा आगमन हुआ है। इन बारह कोटि जीवों का उद्धार करके ज्यादा दिन नहीं ठहरूँगा। यहाँ पर आने का मुख्य प्रयोजन प्रहलाद पंथी जीवों का उद्धार करना ही है। यदि मैं चाहूँ तो प्रत्येक शरीर धारी जीवात्मा में परमात्मा के प्रति तथा शुभ कार्य के प्रति कोड-प्रेम भाव पैदा कर सकता हूँ। कुछ लोग तो अब तक मुक्ति प्राप्ति की योग्यता भी नहीं रखते। हम तो सर्वोच्च मण्डल ब्रह्मलोक के राजा है। असंभव को भी संभव कर देते है।

समन्द बिरोल्यो वासग नेतो, मेर मथाणी थायों।
संसा अर्जुन मारयो कारज सारयो, जद म्हे रहंस दमामा वायो।

समयानुसार हमने और भी अनेक कार्य किये है जैसे-जब देव दानवों ने मिलकर समुद्र को बिलोया था तब हमारी आज्ञा से वासुकी नाग का नेता-रस्सी बनायी थी और सुमेरू पर्वत की मथानी बनायी थी। यह सभी सामान जुटाने पर भी उनका कार्य सिद्ध नहीं हो सका तो कछुवे का रूप धारण करके उनका कार्य सिद्ध किया था। परशुराम का रूप धारण करके मुझे ही दुष्ट संहस्रार्जुन जैसे क्षत्रियों का विनाश करके पृथ्वी के भार को हल्का करना पड़ा था। उस समय मैने ही दुष्ट क्षत्रियों पर ब्राह्मण की विजय का यह रहस्यमय डंका बजाया था।

फैरी सीत लई जद लंका, तद म्हे ऊथे थायो।
दशसिर का दश मस्तक छेद्या, बाण भला निरतायो।

त्रेता युग में जब राम रूप हो करके दशसिर रावण के दशों सिरों को छेदन अच्छे अच्छे नुकीले बाणों

द्वारा किया। उस समय दोनो ओर से बाणों का महान नृत्य हुआ था। उन्हीं बाणों द्वारा रावण को मार करके सीता को वापिस लाये तथा लंका को अपने अधीन किया था। उस समय कुछ समय के लिये मुझे लंका में ही रहना पड़ा था।

म्हे खोजी थापण होजी नाही, लह लह खेलत डायों।

हम खोज करने वाले सच्चे पारखी हैं। कहीं भी भूल से गलत निर्णय नहीं लेते हैं। समय-समय पर अनेक लोगों को पहले तो उन्हें अत्याचार करने का पूरा मौका देते हैं बाद में खेल के मैदान में आमन्त्रित करके जड़मूल से ही उखाड़ देते हैं। हमारे लिये तो यह एक प्रकार का खेल ही है। दुष्टों का विनाश करते समय भी हम निर्दोष ही बने रहते हैं।

कंसा सुर सूं जूवै रमिया, सहजै नन्द हरायो।

इसी प्रकार द्वापर में भी कंस असुर के साथ मैंने वैसा ही खेल किया था। बिना खेल किये आनन्द नहीं आता है। दुनिया वाले उन्हें सच्चा मान लेते हैं। उसी प्रकार से पहले तो मैं नन्दजी के घर पर मक्खन खाकर बड़ा हुआ। गऊवें चराई, बंशी बजाई तथा बाद में वृन्दावन गोकुल छोड़कर मथुरा जा बसा फिर वापिस लौटकर देखा तक नहीं। प्रथम तो नन्द जी को अति प्रसन्नता प्रदान की किन्तु बाद में दुःखी करके मैंने ही हरा दिया।

कूंत कंवारी कर्ण समानों, तिहिं का पोह पोह पड़दा छायो।

उसी समय जब मैं कृष्ण के रूप में था तब कुमारी कन्या कुन्ती के ऋषि वरदान से सूर्यदेव की परछाया रूप कर्ण जैसा बलवान दानी बालक जन्मा था। किन्तु कुन्ती जिन्हें समाज के भय से स्वीकार नहीं कर सकी थी तब मैंने ही पर्दे को हमेशा इस घटना पर डालकर रखा था। इस रहस्य का पता कर्ण की मृत्यु पर्यन्त किसी को भी नहीं लग सका था। यह असंभव बात भी संभव करके दिखायी था। अब आगे दूसरा पर्दा बतलाते है।

पाहे लाख मजीठी पाखों, बनफल राता पीझूं पाणी के रंग धायो।
तेपण चाखन चाख्या भाख न भाख्या,जोय जोय लियो फल फल केर रसायो।

गुरु जम्भेश्वर जी कहते हैं- कर्ण की घटना को तो पर्दे में छिपा दिया था। किन्तु अब कलयुग में कुछ लोग वैसे ही तरह तरह के वेश बनाकर अपने वास्तविक जीवन पर पर्दा डालना चाहते हैं। जैसे लाख की चूड़ियाँ बनने से पूर्व अवस्था में सौन्दर्यमय नहीं होती है किन्तु मजीठ रंग चढ़ जाने पर पूर्व का रूप ढ़क जाता है और लाल वर्ण वाली हो जाती है। मरुभूमि में होने वाला जाल वृक्ष का फल भी गर्मी के मौसम में पकता है। पकने से पूर्व वह भी हरे रंग का होता है, पककर के लाल रंग धारण कर लेता है। जाल वही है किन्तु पककर लाल रंग का हो जाता है। उसी प्रकार से मरुभूमि में होने वाला केर का पेड़ उसका फल भी पकने से पूर्व हरे रंग का तथा कड़वा ही होता है वही पककर लाल वर्ण वाला हो जाता है तथा कुछ मीठापन भी आ जाता है। ये सभी ऊपर से देखने में तो अति सुन्दर मालूम पड़ते हैं किन्तु खाने में इनका असली भेद खुल जाता है उसी प्रकार से बाह्यवेश तो संत, योगी, भक्त का बना लेते हैं दूर से देखने में तो सच्चे योगी ही मालूम पड़ते हैं किन्तु व्यवहार करने पर कोरे ही केरिया, पील, लाख जैसे ही निकल आते है। इसी बात को आगे फिर से कहते हैं।

थे जोग न जोग्या भोग न भोग्या, न चीन्हों सुर रायो।

कण बिन कूकस कांस पीसों, निश्चै सरी न कायों।

इस समय तो केवल बाह्य दिखावे के ही योगी है। योगी कहलाने पर भी आपने योग साधना नहीं की तो फिर बिना साधना के कैसे योगी हो सकते हो। इसलिये न तो तुमने योग ही किया और न ही भोग ही भोगा तथा न ही परमात्मा विष्णु का स्मरण ही किया अन्य सांसारिक कार्य करने में ही अपना समय व्यर्थ में गमाया तो समझो, बिना धान अनाज का भूसा-चांचड़ा ही पीसते रहे उससे कुछ भी प्राप्ति नहीं हो सकी। अपने कर्तव्य कर्म की सिद्धि नहीं हो सकेगी, घास से भूख नहीं मिटेगी।

म्हे अवधूं निरपख जोगी, सहज नगर का रायों।
जो ज्यूं आवै सो त्यूं थरपा, साचा सूं सत भायो।

हम तो अवधूं पक्षपात रहित योगी है। सदा ही स्वकीय सहज अवस्था में ही रहते हैं। हमें संसार की मोह-माया आच्छादित नहीं कर सकती। इस परमावस्था में रहते हुए भी जन-कल्याणार्थ जो कोई भी जैसी भी शंका तथा भावना लेकर आता है उसे उसी प्रकार की ही भाषा में समझाकर दुर्गुणों की निवृत्ति करते हैं और जो वास्तव में सच्चे लोग है वे मुझे बहुत प्रिय है।

मोरै मन ही मुद्रा तन ही कंथा, जोग मारग सहडायों।
सात शायर म्हे कुरलै कीयो, ना मैं पीया न रह्या तिसायों।

मैं आदि अनादि युगों का योगी होते हुऐ भी न तो मेरे कानों में मुद्रा है और न ही शरीर पर कंथा गुदड़ी है। मैंने योग मार्ग को सहज ही में स्वीकार कर लिया है। बाह्य दिखावे की आवश्यकता नहीं है। सात चक्रों को मैंने भेदन किया है अर्थात् मूलाधार चक्र से ऊर्जा शक्ति का ऊर्ध्व गमन प्रारम्भ करके सहस्रार तक पहुँचा हूँ। मूलाधार चक्र के चलते समय ही एक एक चक्र का रस मैंने चखा है। उसका अल्प मात्रा में ही स्वाद लेकर वहीं नहीं रूका, आगे का और इन सात समुद्रों को तैरकर पार किया है। बीच में आने वाली आनन्द की झलक वैसी थी जैसे कोई प्यासा व्यक्ति जल को होठों पर लगा ले उस समय न तो वह प्यासा ही रहेगा और न ही पूर्णरूपेण जल पी ही सकेगा। अर्थात् बीच में पड़ने वाले चक्रों में आनन्द तो है परन्तु पूर्ण नहीं, केवल प्यास को मन्द ही कर सकता है। इसलिये योगी को अन्तिम सप्त सहस्रार में जाकर स्थिर होना चाहिये, वहीं पर ही शाश्वत आनन्द की प्राप्ति होगी।

डाकण शाकण निंद्रा खुध्या, ये म्हारै तांबै कूप छिपायों।

आशा रूपी डाकणी, तृष्णा रूपी शाकणी और निन्द्रा आलस्य तथा भूख प्यास आदि द्वन्द्वों को तो मैंने इसके विपरीत, निराश, संतोष, आलस्य रहित, जागृत, युक्ताहार, विहार आदि से नष्ट प्रायः कर दिया है। सूर्य के सामने अन्धकार छिप जाता है। उसी प्रकार से तृष्णा भी शक्तिशाली निराशा व संतोष के सामने छुप जाती है।

म्हारै मन ही मुद्रा तन ही कंथा, जोग मारग सहलियो।
डाकण शाकण निंद्रा खुध्या, ऐ मेरे मूल न थीयों।

इसलिये हमारा मन ही मुद्रा है और तन ही कंथा है। इन्हीं द्वारा मैने योग मार्ग को आत्मसात् कर लिया है। न तो मेरे डाकणी आसा है और न ही शाकणी तृष्णा है तथा भूख-प्यासादि द्वन्द्वों की सर्वथा निवृत्ति हो चुकी है। ये सभी मेरे मूल स्वरूप जीवन में नहीं है।

★★★★

प्रसंग-14 दोहा

शब्द कहो करणी कहो, ज्यूं खुलै मोक्ष द्वार।
नार पुरुष एकै मतै, चालै करणी सार।
क्रिया करणी दृढ़ रहै, आठ धर्म ले जान।
हस्त लगाया उघड़े, सतगुरु कही बखान।
तीन पुनै सतगुरु कही, शरणागति कही च्यार।
रूंख पोलियां जान ले, ऐसे कह्यो विचार।

एक समय अनेकों नारी पुरुष सम्भराथल पर एकत्रित हुए तथा सभी एक स्वर से कहने लगे-हे देव! हम सभी आपका कहना लोप नहीं करेंगे, आप हमें करणीय कार्य बताइये, जिससे हम लोग शरीर को छोड़कर प्रस्थान करेंगे तभी आगे स्वर्ग का द्वार खुल जाये, इसलिये ऐसी कूंची आप हमें देने की महती कृपा करें। जम्भगुरु जी ने कहा-कि चार प्रकार की शरणागति जिसको प्रहलाद, हरिश्चन्द्र, युधिष्ठिर तथा इस समय विष्णु रूप परमात्मा ने अपनायी है और तीन प्रकार के पुण्य अर्थात् सतगुरु की अमर वाणी का पठन-पाठन, मनन निदिध्यासन तथा शुभ कर्म और ज्ञान ही पुण्य है। इसे जीवन में धारण करो और आठवां वृक्षों की रक्षा रूप पोलिया जो द्वारपाल है वे सभी आपको स्वर्ग द्वार में प्रवेश अवश्य ही दिला देंगे। यही स्वर्ग द्वार खोलने की कुंजी है। यहाँ से प्रस्थान करते समय साथ अवश्य ही लेकर जायें। इस प्रकार का आश्वासन देकर यह शब्द सुनाया-

ध्यान रहे कि यह कुंचीवाला शब्द जब कोई व्यक्ति मरणासन्न अवस्था में होता है तभी विशेष रूप से सुनाया जाता है, ऐसी परंपरा है। इससे अन्तिम अवस्था में सुनने से ज्ञान की प्राप्ति होती है और जीव मोह माया से छूट जाता है तथा प्राण सरलता से निकल जाते हैं और परलोक में सुखमय मुक्ति को प्राप्त करता है।

सबद-30 ''कूंचीवाला''

ओ३म् आयो हंकारो जीवड़ो बुलायो, कह जीवड़ा के करण कमायो।
थर हर कंपै जीवड़ो डोलै, उत माई पीव न कोई बोलै।

भावार्थ-मृत्युकाल रूपी हंकारो जब आता है तो इस जीव को शरीर से बाहर बुला लेता है। आगे स्वर्ग या नरक रूपी न्यायालय में पेश किया जाता है, वहाँ पर न्यायाधीश यमराज या धर्मराज उसे पूछते हैं कि जीवड़ा तूँ सच्ची बात बतला दे कि संसार में रहकर तुमने क्या कर्म किये? वैसे तो कर्मो की सूचि पहले ही उनके पास पहुँच जाती है। किन्तु जीव के द्वारा भी उनके हिसाब-किताब को पेश करवाया जाता है। वहाँ शुभ कर्म कर्ता जीव तो धर्मराज के सामने अपने जीवन की कहानी आनन्द सहित बखान करता है किन्तु पापी जीव तो यमराज का भयंकर रूप देखकर पाप कर्मो का हिसाब देता हुआ थर थर कांपने लगता है। वहाँ पर उसे डर से छुटकारा दिलाने के लिये न तो माता बोलती है और न ही पिता ही छुटकारा दिला सकता है क्योंकि वे तो पीछे ही रह जाते है।

सुकरत साथ सगाई चालै, स्वामी पवणा पाणी नवण करंतो।
चंदे सूरे शीस निवंतो, विष्णु सूरां पोह पूछ लहन्तो।

अन्तिम समय में भी गवाह के रूप में साथ रहने वाले परमपिता परमेश्वर सबके स्वामी पवन देवता चन्द्र देवता आदि ही है। जीवन यापन करते हुए तुमने इनको कभी नमन नहीं किया। क्योंकि जो देता है वही देवता है ये तो सभी हर क्षण हमें अपनी ऊर्जा शक्ति देते ही रहते हैं। जिससे हमारा जीवन चलता रहता है। इनके बिना तो जीवन जीने की कल्पना ही नहीं की जा सकती। इसलिये ये सभी जीवनदाता देव नमन करने योग्य है। संसार में जीवन निर्वाह करने के लिये कर्म करते हुए भी यमदूतों से छूटने के लिये विष्णु लोक की प्राप्ति का मार्ग किसी सद्गुरु से पूछना चाहिये था। यह भी इस अभागे जीव ने नहीं किया।

इहिं खोटे जनमन्तर स्वामी, अहनिश तेरो नाम जपंतो।

हे जीव! जब तूँ अनेकानेक दुखदायी छोटी-मोटी जीया योनियों में भटक रहा था कि हे प्रभो! आप मुझे इस नरकीय जीवन से जल्दी छुटकारा दिला दीजिये। मैं मनुष्य जीवन धारण करके दिन-रात तुम्हारा ही स्मरण करूँगा कभी नहीं भूलूँगा।

निगम कमाई मांगी मांग, सुरपति साथ सुरासूं रंग।
सुरपति साथ सुरां सूं मेलो, निज पोह खोज ध्याइये।

इस संसार के न्यायाधीशों को तो कोई चतुर व्यक्ति धोखा दे सकता है। किन्तु वहाँ पर मृत्यु उपरांत देवराज इन्द्र तथा उनकी परिषद् के समूह के सामने झूठ कपट पूर्ण व्यवहार नहीं चल सकता। इह लोक में तो हो सकता है राजा प्रजा अन्यायकारी हो किन्तु परलोक में तो अन्याय होना संभव नहीं है। जो भी व्यक्ति न्याय द्वारा शुद्ध पवित्र धार्मिक सिद्ध हो जायेगा उसे तो देवताओं के साथ ही स्थान प्राप्त होगा उन्हीं के रंग में, सुख शान्ति में सम्मिलित हो जायेगा। इसलिये यह जीवन रहते हुए ही स्वकीय सद्मार्ग जो स्वर्ग तक पहुँचा दे उसकी खोज करके, उस पर अति शीघ्रता से चलें। यही जीवन का सार है। यमदूत से छूटने का परम उपाय है।

भोम भली कृषाण भी भला, बूठो है जहां बाहिये।
करषण करो सनेही खेती, तिसियां साख निपाइये।

यह जीवन ऋषि की तरह फलदायी है। जिस प्रकार से किसान बीज बोने से पूर्व खेती को सुधारता है तथा स्वयं तो सचेत रहता है, समय पर खेती के लिये तैयार रहता है वर्षा होने पर तुरंत जोताई करके बीज बो देता है। फिर उसमें परिश्रम करके कम वर्षा के बावजूद ही खेती को निपजा देता है। उससे फल प्राप्त कर लेता है। ठीक उसी प्रकार से ही यह शरीर ही खेत है। यह जीवात्मा ही किसान है। ये दोनों ही अति पवित्र अन्तःकरण वाले होंगे कि जहाँ कहीं भी वर्षा रूपी ज्ञान चर्चा होगी वहीं पर जाकर निरंतर अभ्यास करेगा तभी यह परिश्रम की खेती का आनन्द रूप फल प्राप्त होगा।

लुण चुण लीयो मुरातब कीयो, कण काजै खड़ गाहिये।
कण तुस झेड़ो होय नवेड़ो, गुरु मुख पवन उड़ाइये।
पवणां डोलै तुस उड़ेला, कण ले अर्थ लगाइये।

जब फसल पककर तैयार हो जाती है तो चुन-चुन करके एकत्रित की जाती है। फिर डूर यानि भूसा

के अन्दर से अन्न निकालने के लिये गाहन-गाहटा किया जाता है। बाद में पवन देवता के वेग से थोथा घास उड़ा दिया जाता है। तो पीछे कण रूप अन्न ही शेष रह जाता है। जो भोजन बन करके भूख की निवृत्ति करता है। उसी प्रकार से किसान सदृश साधक को भी साधना द्वारा साध्य तैयार हो जाये तब उसे इधर-उधर जहाँ से भी ज्ञान प्राप्त हो सके वहीं से करना चाहिये। जब अधिक ज्ञान की सामग्री एकत्रित हो जाती है तब अपने जीवनोपयोगी सामग्री का प्रयोग कर लेना चाहिये। सत्य असत्य के विवेक के लिये गुरु मुख से निकले हुए शब्द ही वायु है, जो कण और तुस के झगड़े को नवेड़ा-निर्णय कर देता है। जब गुरु मुख से विवेक होगा तो व्यर्थ की असत् बातें उड़ जायेगी। कण रूपी तत्व ज्ञान ही शेष रह जायेगा। उसी कण तत्त्व को अपने जीवन में अपनाओगे तो जीवन आनन्दमय अवस्था को प्राप्त हो जायेगा।

यूं क्यूं भलो जे आप न फरिये, अवरां अफर फराइये।
यूं क्यूं भलो जे आप न डरिये, अवरां अडर डराइये।

इसमें भलाई कैसे हो सकती है जो आप स्वयं तो करता नहीं है अर्थात् फल प्राप्ति पर्यन्त कर्म करता नही औरों को ही फरमाता है तथा स्वयं तो पाप कर्मो से परमात्मा से डरता नहीं है और दूसरों को ही डराता है। भयजनक कथाओं से भयभीत करता है।

यूं क्यूं भलो जे आप न जरिये, अवरां अजर जराइये।
यूं क्यूं भलो जे आप न मरिये, अवरां मारण धाइये।

ऐसे भला कैसे हो सकता है जो स्वयं तो जरणा रखता नहीं है तथा दूसरों को जरणा रखने का उपदेश देता है तथा स्वयं तो मरना चाहता नहीं है किन्तु दूसरों को मारने के लिये दौड़ पड़ता है।

पहलै किरिया आप कमाइये, तो औरां न फरमाइये।
जो कुछ कीजै मरणै पहले, मत भल कहि मर जाइयै।

क्योंकि किसी दूसरों को कहने से पहले वही कार्य स्वयं करके दिखाइये फिर दूसरों के प्रति कहिये। जब तक स्वयं अपने जीवन में शुभ कर्मो को नहीं अपनाओगे तब तक आप दूसरों को कहने के अधिकारी नहीं है। यदि आप कहते हैं तो उसका कोई महत्त्व नहीं हुआ करता। यदि कुछ करना है तो मृत्यु से पूर्व ही कर लीजिये। बाद में करेंगे, फिर करेंगे इस भूल में ही समाप्त नहीं हो जाना।

शौच स्नान करो क्यूं नाही, जिवड़ा काजै न्हाइये।
शौच स्नान कियो जिन नाही, होय भैंतूला बहाइये।

इसी शरीर व जीवात्मा की पवित्रता के लिये शौच यानि बाह्य आन्तरिक मल त्याग के बाद जल मृतिका से पवित्रता तथा स्नान क्यों नहीं किया। यह तो तुझे इस जीव की भलाई के लिये करना चाहिये था। जिस व्यक्ति ने शौच स्नान नहीं किया उसे भूत-प्रेत की अपवित्र योनि प्राप्त होगी जो भैंतूला वायु की गांठ विशेष होकर दु:खी जीवन व्यतीत करते हुऐ विचरण करना पड़ेगा।

शील विवरजित जीव दुहेलो, यमपुरी ये सताइये।
रतन काया मुख सुवर बरगो, अबखल झंखे पाइये।

शील से रहित यह जीव इह लोक में दु:खी होता हुआ यम की पूरी नरक में दुख रूप दण्ड से दंडित

किया जायेगा। तेरी यह काया रतन सदृश थी, इस मुख से अमृतमय सत्य प्रिय हित कर वचन बोलना चाहिये था किन्तु अबखल झूठ, निंदा व्यर्थ का बकवास ही बोला तो तेरा यह मुख सूवर के मुख जैसा ही है और आगामी जीवन में भी होने की पूरी सम्भावना है।

सवामण सोनो करणै पाखो, किण पर वाह चलाइये।
एक गऊ ग्वाला ऋषि मांगी, करण पखों किण सुरह सुबच्छ दुहाइये।

सवा मण सोने का दान कर्ण नित्य प्रति करता था। कर्ण के अतिरिक्त कौन ऐसा होगा जिसे वाह वाह दी जाय। कर्ण ने ग्वालों से ऋषि की प्रार्थना पर अच्छी दुधारू छोटे बच्छे वाली गाय उनको तुरंत प्रदान की थी। कर्ण के बिना ऐसा दानवीर कौन हो सका था तथा-

करण पखों किन कंचन दीन्हों, राजा कवन कहाइये।
रिण ऋद्धे स्वामी करण पाखों, कुण हीरा डसन पुलाइये।

दानवीर कर्ण के अतिरिक्त इतना कंचन किसने दिया और इस पृथ्वी पर शूरवीर राजा भी कौन कहलाया। कर्ण ने दान रूपी ऋण सदा ही दिया फिर भी रिद्धि-सिद्धि का स्वामी कर्ण के समान और कौन हुआ। कर्ण ने ही तो युद्ध भूमि में घायलावस्था में ही कृष्ण अर्जुन के मांगने पर हीरे स्वर्ण जड़ित दांतों को तोड़कर समर्पित किया था। कर्ण के बिना ऐसा कौन कर सकता था।

किहिं निस धर्म हुवै धुर पुरो, सुर की सभा समाइये।
जे नविये नवणी, खविये खवणी, जरिये जरणी।
करिये करणी, तो सीख हुयां घर जाइये।

कर्ण महादानी तो था किन्तु एकदेशीय धर्म का पालन करने वाला था। केवल दान ही सम्पूर्ण धर्म नहीं है। सम्पूर्णता के लिये तो अन्य आवश्यक कर्म भी अपनाने होते है। जो व्यक्ति नम्रता, योग्य स्थान में नमन करते हुऐ, क्षमा स्थान में क्षमाशील होते हुऐ, जरणीय दोषों की जरणा रखते हुऐ ही पूर्ण धर्म को अपना सकता है। वही देव सभा में सुशोभित होकर वहाँ स्थायी रूप से रह सकता है। यही अन्तिम विदाई भी दी जाती है। कि तुम अपने घर वापिस जाओ।

अहनिश धर्म हुवै धुर पूरौ, सुर की सभा समाइये।

इस प्रकार से दिन रात प्रति क्षण धर्म पूर्णता से निभाया जा सके तो देवताओं की सभा में सम्मिलित हो सकता है। यदि अधूरा रहा तो फिर उस क्षणिक सुख फल को भोग करके वापिस आना पड़ेगा।

किहिं गुण विदरों पार पहुंतो, करणै फेर बसाइये।
मन मुख दान जु दीन्हों करणै, आवागवण जु आइयै।
गुरु मुख दान जु दीन्हों बिदुरै, सुर की सभा समाइये।

विदुर ने कौनसा गुण धारण किया जिससे पार पहुँच गया और कर्ण ने कौनसा अवगुण धारण किया जिससे वह वापिस जन्म-मरण के चक्कर में आ गया। इसका कारण बतलाते हैं कि गुरु मुखी होकर दान विदुर ने दिया तथा नम्रता-शीलता, निरभिमानता आदि गुण धारण किये जिससे विदुर तो देव सभा में सुशोभित हुआ, जन्म-मरण के चक्कर से छूट गया तथा कर्ण ने दान तो बहुत ज्यादा दिया किन्तु मनमुखी होकर अभिमान सहित दिया तथा नम्रता शीलता आदि गुणों को धारण नहीं किया। इसलिये आवागवण के चक्कर से छूट नहीं सका।

निज पोह पाखों पार असी पुर, जाणी गीत विवाहे गाइयै।
भरमी भूला वाद विवाद, आचार विचार न जाणत स्वाद।

कुछ लोग पार उतरने के लिये सद्मार्ग को तो जानते नहीं तथा इस संसार से पार उतरने की बात को सामान्य ही मानते हैं। जैसे विवाह में गीत गाये जाते हैं। उनका कुछ भी अर्थ, सत्यता, गंभीरता नहीं होती वैसे ही राग मात्र ही होती है। इतना सरल मार्ग दर्शन शास्त्र नहीं है ये शास्त्र तथा धर्म मार्ग विवाह के गीत जैसे नहीं है कुछ भ्रम के अन्दर भूले हुए लोग वाद-विवाद में ही समय व्यतीत कर देते है। वे आचार विचार के स्वाद को नहीं जानते।

कीरत के रंग राता मुरखा मन हट मरे, ते पार गिराये कित उतरै।

आचार-विचार के स्वाद रहित भ्रम में पड़कर वाद-विवाद करने वाले जन वे अपनी ही कीर्ति चाहते हैं। मेरा ही इस संसार में नाम हो, आदर सत्कार हो ऐसे अभिमान रूपी कीर्ति के रंग में रचे हुए महामूर्ख जन इस संसार से पार कैसे उतरेंगे। वे तो अत्यधिक गहराई में डूब चुके है।

★★★★

''दोहा''

जम्भगुरु असौ कह्यौ, जमात सुणौं चित लाय।
करणी कर सुरगै जहै, विन करणी नरके जाय।

प्रसंग-15 ''अरिल''

देव तणै दरबार, जमाती यौं कही।
दावै जकै नै दीयै, पुन होत है क नहीं।
भूखी आतमा जाण, दीजियै यों रही।
परिहां विसन भगत है, जांण सुवेद मै हि कही।

सम्भराथल पर आकर जमाती लोगों ने इस प्रकार से कहा-कि जिस किसी देव को तन, मन, धन अर्पण करने से पुण्य होता है या नहीं? हमने तो यह सुना है कि इस शरीर में स्थित जीवात्मा को जब भी कोई कष्ट हो तो देवताओं को प्रसन्न किया जाता है। उन्हें नाना प्रकार की भेंट भी चढ़ाते है, यह ठीक ही होगा या नहीं। यहाँ पर कुछ लोग यों भी कहते हैं कि सर्वोपरि देव तो विष्णु परमात्मा ही है। वेद में भी ऐसा ही कहा है। इस सम्बन्ध में आप हमें सत्य मार्ग का निर्देश दें। तब यह सबद उच्चारण किया-

सबद-31

ओ३म् भल मूल सींचो रे प्राणी, ज्यूं का भल बुद्धि पावै।
जामण मरण भव काल जु चूकै, तो आवागवण न आवै।
भल मूल सींचो रे प्राणी, ज्यूं तरवर मेल्हत डालूं।

भावार्थ-हे प्राणी! इन कल्पित भूत, प्रेत, देवी, देवता को छोड़कर भगवान विष्णु की ही सेवा तथा

समर्पण करो। जिस प्रकार से सुवृक्ष के मूल में पानी देने से डालियाँ, पते, फल, फूल सभी प्रफुलित प्रसन्न हो जाते हैं। उसी प्रकार सभी के मूल रूप परमात्मा विष्णु का जप, स्मरण करने से अन्य सभी प्रकार के देवी देवता स्वत: ही प्रसन्न हो जायेंगे तथा कुमूल रूप भूत-प्रेत जोगणी आदि को कभी मत सींचो। वे तो सदा ही दुष्ट प्रकृति के हैं इनका फल भी दुखदायी ही होगा। उस भले मूल को सींचने से प्रथम तो भली बुद्धि पैदा होगी उससे विवेक द्वारा हम सदा ही जीवन में शुभ कर्म करेंगे, जिससे संसार का भय, मृत्यु, भय मिट जायेगा और जन्म मृत्यु के चक्कर से सदा के लिये छूट जायेंगे। इसलिये भले मूल की ही सिंचाई करो। जिस प्रकार से सिंचाई किया हुआ वृक्ष डालियाँ पते निकालता है तथा फलदायी होता है। उसी प्रकार से तुम्हारा किया हुआ यह शुभ कर्म उतरोतर वृद्धि को प्राप्त होगा।

हरि परि हरि की आंण न मानी, झंख्या झूल्या आलूं।
देवां सेवां टेव न जांणी, न बंच्या जम कालूं।

हरि विष्णु परमेश्वर की आशा तो छोड़ दी तथा जगत एवं कल्पित देवों से आशा जोड़ ली है तथा हरि का बताया हुआ शुभ मार्ग और मर्यादा को तोड़ दिया उसे स्वीकार नहीं किया। इस संसार के लोगों की कुसंगति प्राप्त करके आल-बाल, झूठ-कपट, व्यर्थ की बाणी बोलता रहा। न ही तुमने कभी परम देवों की पूजा-सेवा करने का तरीका विधि-विधान जाना तो फिर यमदूतों की फांसी से कैसे बचेगा। तेरे को तो इस जीवन में ही यमदूतों ने पकड़ रखा है। तूने कभी छूटने का विचार भी तो नहीं किया तो तुझे कौन मुक्ति दिलायेगा।

भूलै प्राणी विष्णु न जंप्यो, मूल न खोज्यो, फिर फिर जोया डालूं।
बिन रैणायर हीरे नीरे नग न सीपै, तके न खोला नालूं।

भूले भटके प्राणी! सृष्टि के मूल रूप विष्णु परमात्मा का तो स्मरण भजन जप नहीं किया तथा डाल-पात रूप देवी देवताओं का ही सहारा लिया। ये डाल पते मूल पर ही टिके हुए है। स्वत: ही समर्थ नहीं है। इसलिये कमजोरों का आधार तुम्हें लेकर डूब जायेगा क्योंकि जिस प्रकार से समुद्र के बिना हीरा अन्य जल में मिलता नहीं है। स्वाति नक्षत्र की बूंद प्राप्ति बिना सीपी के मुख में भी मोती नहीं आता तथा छोटे मोटे नदी नालों में भी बहने वाले जल में स्थिरता नहीं होती, जल्दी ही सूख जाते हैं। उसी प्रकार से परमात्मा विष्णु के बिना इन कल्पित देवताओं में भी वह अमूल्य दिव्य ज्योति तथा स्थिरता गांभीर्य कहाँ है।

चलन चलंते वास वसंतै, जीव जीवंते सास फुरंतै।
काया निवंती कांयरे प्राणी विष्णु न घाती भालूं।

जब तक शरीर स्वस्थ है, कार्य करने में समर्थ है, तब तक चलते-फिरते, उठते-बैठते जीवन सम्बन्धी अन्य कार्य करते हुए तथा श्वांस चलते हुए श्वांसो ही श्वांस तेने परमात्मा का स्मरण नहीं किया। इस शरीर को अहंकार रहित करके किसी के आगे झुकाया तक नहीं। तो हे प्राणी! तुमने परमात्मा विष्णु से सम्बन्ध नहीं जोड़ा। ऐसी कौनसी विपत्ति तेरे उपर आ पड़ी थी। जिससे तुमने संसार से तो मेल कर लिया था किन्तु परमपिता परमात्मा से नहीं कर सका।

घड़ी घटन्तर पहर पटन्तर रात दिनंतर, मास पखंतर, क्षिण ओल्हरबा कालूं।
मीठा झूठा मोह बिटंबण, मकर समाया जालूं।

यह समय घड़ी, पहर, रात, दिन, पक्ष महिना, वर्ष, उतरायन, दक्षिणायन करते हुए व्यतीत हो जाता है। इन खंडों में बंटा हुआ समय मालूम पड़ता है। किन्तु काल का कोई बंटवारा नहीं होता है। वह जब चाहे तब

आपके जीवन का अन्त कर सकता है। यह संसार उपर से देखने से तो मीठा प्रिय किन्तु झूठा है। यह अपने मोह जाल में इस प्रकार से फंसाता है जैसे झींवर मच्छली को जाल में फंसा लेता है। मछली तो मीठे आटे की गोली खाने के लोभ में आकर जाल में फंस जाती है। फिर छटपटाते हुए प्राणों को गंवा बैठती है। उसी प्रकार मानव भी संसार सुख के लिये पहले तो फंस जाता है और फिर छटपटाता है किन्तु निकल नहीं पाता है। उस मोह माया के जाल को काट नहीं सकता। वैसे ही अमूल्य जीवन को नष्ट कर देता है।

कबही को बांइदो बाजत लोई, घड़िया मस्तक तालूं।
जीवां जूणी पड़ै परासा, ज्यूं झींवर मच्छी मच्छा जालूं।

कभी ऐसा भयंकर वायु का झोंका आयेगा जो इस शरीर को तोड़-मरोड़ करके इस जीव को ले जायेगा। जिस प्रकार से असावधानी के कारण सिर पर रखा हुआ घड़ा हवा के झौंके से नीचे ताल पर गिरकर फूट जाता है। इसलिये तुम्हारा शरीर भी कच्चे घड़े के समान ही है। शरीर से निकले हुए जीव के गले में यमदूत फांसी डालेगा और चौरासी लाख योनियों में भटकायेगा। जिस प्रकार झींवर मच्छली को मारने के लिये जाल डाल देता है और उन्हें पाश में जकड़ लेता है तो उसकी मृत्यु निश्चित ही है।

पहले जीवड़ो चेत्यो नांही, अब ऊंडी पड़ी पहारूं।
जीव' र पिंड बिछोड़ो होयसी, ता दिन थाक रहे सिर मारूं।

समय रहते हुए यह जीव सचेत नहीं हुआ और अब समय व्यतीत हो चुका है। वापिस वही समय बहुत दूर चला गया है। बीता हुआ समय वापिस लौटकर नहीं आयेगा। इस वृद्धावस्था में शरीर रक्षा के अनेकों उपाय करने पर भी इस जीव और शरीर का अलगाव तो निश्चित होगा। उन दिनों जब मृत्यु आयेगी तो सभी उपायों से थककर सिर कूट करके ही रह जायेगा। कोई भी रक्षा का उपाय नहीं जुटा पायेगा। एक मूल रूप विष्णु परमात्मा ही अन्तिम समय में रक्षक है। इसलिये वन्दनीय, पूजनीय है।

★★★★

''प्रसंग-16 दोहा''

रामों सुराणों बाणियों, बसै शहर नागौर।
जमात गई नागौर में, करने लाग्यो झोर।
विश्नोईयां सों दान को, कह्यो महातम ऐन।
क्रिया संजम बहुत सा, तऊ न पायों चैन।

एक समय बिश्नोइयों की जमात नागौर पहुँची, वहाँ पर सुराणा गोत्र का रामों नाम का बनिया ने बिश्नोइयों से कहा-कि आप लोग स्नान, हवन, विष्णु का जप, क्रिया कर्म पर जोर ज्यादा देते हो, इससे कुछ भी फल मिलने वाला नहीं है। यदि इह लोक तथा परलोक में सुख चाहते हो तो दान करो। बिना दान के कहीं पर भी कुछ भी प्राप्त होने वाला नहीं है। इस विवाद को सुलझाने के लिये बिश्नोइयों सहित रामोजी भी सम्भराथल पर जम्भदेवजी के पास पहुँचा तब इस शंका का निवारण करने के लिये जम्भदेवजी ने सबद सुनाया-

सबद-32

ओ३म् कोड़ गऊ जे तीरथ दानों, पंच लाख तुरंगम दानों।
कण कंचन पाट पटंबर दानों, गज गेंवर हस्ती अति बल दानों।

भावार्थ-यदि कोई तीर्थों में जाकर करोड़ों गऊवों का दान कर दे तथा किसी अधिकारी अनधिकारी को पाँच लाख से भी अधिक घोड़ों का दान कर दे या अन्नादि खाद्य वस्तु, स्वर्ण, अलंकार सामान्य ऊनी वस्त्र एवं कीमती रेशमी वस्त्रों का भी दान कर दे और सामान्य हाथी तथा हौंदा आदि से सुसज्जित करके भी अत्यधिक दान कर दे तो भी (ताथै सभ सीरि सील सिनानूं) सबसे श्रेष्ठ तो शील, धर्म स्नान, हवन, जप आदि ही है। अभिमान सहित किया हुआ अत्यधिक दान भी जन्म मृत्यु से नहीं छुड़ा सकता। (हुई का फल लीयूं)।

करण दधीच सिंवर बल राजा, श्री राम ज्यूं बहुत करै आचारूं।

कर्ण, दधीच, शिवि तथा बलि राजा ये सभी महान दानी थे। आप लोग तो उनकी तुलना कभी नहीं कर सकते। वे भी अपने कर्मों के सीमित फल को ही प्राप्त कर सके थे। उन्होंने भी दान के बल पर श्री राम जैसा महान बनने का प्रयत्न किया था किन्तु केवल दान के बल पर तो विश्व की सम्पूर्ण कीर्ति हासिल नहीं की जा सकती। राम तो तभी हो सकते हो यदि राम की तरह सम्पूर्ण धर्मों के अंगों सहित धर्म का आचरण करोगे।

जां जां बाद विवादी अति अहंकारी, लबद सवादी।
कृष्ण चरित बिन, नाहि उतरिबा पारूं।

जब तक व्यर्थ का वाद विवाद करने की चेष्टा है। अत्यधिक अहंकारी होकर लोभी तथा हठी हो गया है। तब तक चाहे कितना ही दान दिया जाय वह लक्ष्य तक तो नहीं पहुँच सकता। परम गति की प्राप्ति के लिये तो अपने जीवन में कृष्ण परमात्मा के दिव्य चरित्र को अपनाना होगा, बिना कृष्ण चरित्र के कभी भी पार नहीं उतर सकता, यानि जन्म मरण के चक्र से नहीं छूट सकता।

★★★★

''दोहा''

रामों कहै सुण देवजी, आवागवण विचार।
जीव के जन्मे न मरै, ताका करो निरधार।

उपर्युक्त शब्द को श्रवण करके रामों फिर से कहने लगा-कि देवजी! हमें यह उपाय बतलाइये जिससे यह शरीर ही अमर हो जाय क्योंकि मृत्यु से भय लगता है मृत्यु पश्चात् तो यह आवागवण वाली बात समझ में नहीं आती है। गुरु जाम्भोजी ने रामोंजी को सम्बोधित करके जन समुदाय के प्रति सबद कहा-

सबद-33

ओ३म् कवण न हुवा कवण न होयसी, किण न सह्या दुख भारूं।

भावार्थ-कौन इस संसार में नहीं हुआ तथा कौन फिर आगे नहीं होंगे अर्थात् बड़े बड़े धुरन्धर राजा, तपस्वी, योगी, कर्मठ इस संसार में हो चुके हैं और भी भविष्य में भी होने वाले है। इनमें से किसने भारी दु:ख

सहन नहीं किया अर्थात् ये सभी लोग दु:ख में ही पल कर बड़े हुए है तथा जीवन को तपाकर कंचनमय बनाया है। दु:खों को सहन करके भी कीर्ति की ध्वजाएँ फहराई है।

कवण न गइयां कवण न जासी, कवण रह्या संसारूं।
अनेक अनेक चलंता दीठा, कलि का माणस कौन विचारूं।

इस संसार में स्थिर कौन रहा है और कौन आगे भविष्य में रहने का विचार कर रहा है। यह पंच भौतिक शरीर प्राप्त करके कौन अजर-अमर रहा है। अनेकानेक इस संसार से जाते हुए मैंने देखा है। यह मैंने तुझे सृष्टि के आदि से लेकर अब तक की कथा सुनाई है। जब उन युगों की भी यही दशा थी तो इस कलयुग के मानव का तो विचार ही क्या हो सकता है। यह तो वैसे ही अल्पायु, शक्तिहीन तथा ना समझ है।

जो चित होता सो चित नाही, भल खोटा संसारूं।
किसकी माई किसका भाई, किसका पख परवारूं।

यह संसार परिवर्तनशील है क्योंकि जो विचार बुद्धि पहले थे वे अब नहीं रहे। जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि यही सिद्धान्त है। स्थिरता तो कैसे हो सकती है क्योंकि यह संसार तो अच्छी प्रकार से खोटा-मिथ्या है। इस संसार में लोग सम्बन्ध स्थापित करने की कोशिश करते हैं किन्तु बीच में ही टूट जाते हैं। वास्तव में तो न तो किसी के माता है, न ही पिता, भाई, कुटुम्ब परिवार ही है। यह जीवन तो अकेला ही आया था और अकेला ही जायेगा। बीच में थोड़े दिनों का सम्बन्ध सत्य कैसे हो सकता है।

भूली दुनिया मर मर जावै, न चीन्हों करतारूं।
विष्णु विष्णु तूं भण रे प्राणी, बल बल बारम्बारूं।

ये भूल में भटकी हुई दुनिया मृत्यु को प्राप्त करके दिनों दिन चली जा रही है। समाप्त होते हुए लोग देखते हैं फिर भी स्वयं जीने की आशा करते हैं। कर्त्ता सर्वेश्वर स्वामी को नहीं पहचानते। इस जीवन रहस्य को जानने तथा जन्म मृत्यु से छूटने के लिये पूरा बल लगाकर बारम्बार अबाध गति से हे प्राणी! तूँ विष्णु परमात्मा का जप स्मरण कर, वही तेरे पापों को काटेगा और तुझे संसार के चक्र से बाहर निकालेगा।

कसणी कसबा भूल न बहबा, भाग परापति सारूं।
गीता नाद कविता नाऊं, रंग फटारस टारूं।

यदि तुझे जीवन में कुछ प्राप्ति करनी है तो सदा सचेत होकर परिश्रम करते हुए हर समस्या कठिनाइयों से झूझने के लिये कमर कसकर तैयार रहो। जरा सी भी भूल, असावधानी सम्पूर्ण शुभ कर्मो को डूबो देगी। तुम्हें कर्मानुसार फल अवश्य ही मिलेगा। इसलिये निष्काम भाव से शुभ कर्मो में तपस्या में रत रहो।

भगवान कृष्ण के मुख से निकली हुई गीता अनहद नाद बाणी है। यह कोई किसी कवि द्वारा कल्पित कविता नहीं है। इस गीता ने ही तो रुके हुऐ महाभारत को पुन: प्रारम्भ करवा दिया था। अर्जुन के मोह की निवृत्ति गीता ज्ञान द्वारा ही हुई थी। यह गीता ही निष्काम कर्म का उपदेश देती है। इसलिये तुम्हारे अन्दर बैठे हुए मोह, भ्रम जनित अज्ञानता की औषधि यह गीता ही है और यही मैं आपको सुना रहा हूँ।

फोकट प्राणी भरमें भूला, भल जे यो चीन्हों करतारूं।
जामण मरण बिगोवो चूकै, रतन काया ले पार पहुँचे।

तो आवागवण निवारूं।

दिन रात आलस्य में ही पड़े रहने वाले बिना किसी परिश्रम साधना के ही परम तत्त्व या सांसारिक भोग पदार्थ प्राप्ति की आशा करते हो। वे लोग भ्रम में है तथा भूल में ही पड़कर व्यर्थ का अभिमान करते हैं। ऐसे लोगों को सुख शांति की आशा छोड़ देनी चाहिये। अच्छा होता यदि वो आलस्य, भ्रम को छोड़कर शुभ कर्म करते हुए परमात्मा स्वामी दृष्टा का एकाग्र मन से स्मरण करते तो जन्म मरण की धारा टूट जाती और इस रतन सदृश काया से किये हुए शुभ कर्म और पुण्य कमाई को लेकर संसार सागर से पार पहुँच जाते तो उनका बार बार जन्मना और मरना मिट जाता। यही एक उपाय है। इस संसार में रहकर अजर अमर होने का और कोई उपाय नहीं है।

''दोहा''

रामों सुराणों यों कहै, सतगुरु सेती भेव।
जाप किता दिन जीव करै, हमें बतावों भेव।

उपर्युक्त सबद सुनकर रामा ने यह तीसरा प्रश्न किया कि हे देव! साधना में लगा हुआ मानव कितने दिनों तक साधना, जप, तप क्रिया करें इसका भेद हमें बतलाओ। गुरुदेव ने सबद कहा–

सबद–34

ओ३म् फुंरण फुंहारे कृष्णी माया, घण बरसंता सरवर नीरे।
तिरी तिरन्तै तीर, जे तिस मरै तो मरियो।

भावार्थ – भगवान श्री कृष्ण की त्रिगुणात्मिका माया फुंहारों के रूप में वर्षा को कहीं अधिक तो कहीं कम बरसाती है। जिससे तालाब नदी नाले भर जाते हैं। इन भरे हुए तालाबों में कुछ लोग स्नान करते हैं। उनमें तैरू तो स्नान करके पार भी निकल जाते हैं और जिसे तैरना नहीं आता है वह डूब जाता है तथा कुछ ऐसे लोग भी हैं जो डर के मारे पानी के नजदीक ही नहीं जाते, प्यासे ही रह जाते हैं।इस प्रकार से तीन तरह के लोग इस माया मय संसार में रहते हैं।उसी प्रकार से ही भगवान कृष्ण की माया ने यह जगत जाल फैलाया है, कहीं अधिक तो कहीं कम। किन्तु फुहारों की तरह ही एक एक बूंद से यह जगत पूर्ण हुआ है तथा जीवन निर्वाह के लिये भी परमात्मा ने धन धान्य भोग्य वस्तुओं से जगत पूर्ण किया है।

इसी धन के मोह में कुछ लोग तो जो अज्ञानी है तैरना नहीं जानते वे तो डूब जाते हैं। धन को ही सभी कुछ समझकर ही मर मिटते हैं तथा कुछ लोग जो तैरना जानते हैं वे भोगों को प्राप्त करके, भोग करके फिर त्याग करके, ज्ञान से तिर जाते हैं। वे लोग तिरना जानते हैं। अन्य वे लोग जो तीसरी श्रेणी में आते हैं जो न तो उन्हें भोग ही प्राप्त हो पाता है और न ही छोड़ सकते। भोग्य वस्तु की प्राप्ति की वासना सदैव बनी रहती है। वे न तो पार ही हो सकते और न ही अपने जीवन को सुखमय बना सकते। प्यासे ही रह जाते हैं। संसार में सभी कुछ होते हुए भी वंचित रह जाते हैं।

अन्नों धन्नों दूधूं दहीयूं, घीयूं मेऊ टेऊ जे लाभंता।
भूख मरै तो जीवन ही बिन सरियो।
खेत मुक्तले कृष्णों अर्थो, जे कंध हरे तो हरियो।

यदि आपको भरपूर अन्न, धन, दूध, दही, मेवा आदि सुलभ है तो इनका अवश्यमेव उपभोग करो। आनन्द करो। यदि ये मिलने पर भी इनको छोड़कर अखाद्य मदिरा, मांस, तम्बाकू आदि का सेवन करते हो और दूध आदि से वंचित रहकर भूखे मरते हो तो इस जीवन से क्या लाभ ले रहे हो। यह जीवन समाप्त हो रहा है, तो हो जाने दो तथा ये खाद्य पदार्थ पवित्र वस्तु की प्राप्ति के लिये शरीर को कष्ट भी उठाना पड़े तो भी कोई चिन्ता नहीं। शरीर मिला भी तो इसलिये ही है तथा परिश्रम भी स्वकीय खेती में परमात्मा के समर्पण भाव से करोगे तो तुम्हें जरा भी शारीरिक मानसिक कष्ट नहीं होगा।

विष्णु जपन्ता जीभ जु थाकै, तो जीभड़ियां बिन सरीयूं।
हरि हरि करता हरकत आवै, तो ना पछतावो करियो।

विष्णु विष्णु का जप करते हुए यदि जीभ थक जाती है तो थकने दीजिये। फिर भी जप तो बिना जीभ के मानसिक ही प्रारम्भ रखिये। अजपा जाप तो विना जिह्वा के भी करते रहिये। यदि हरि हरि विष्णु विष्णु का नाम जप स्मरण करते हुए भी कोई कष्ट विपत्ति आवे तो पछतावा नहीं करना क्योंकि पूर्व जन्मों के कर्म का फल इसी प्रकार से भोगने से ही निवृत्त होगा। इसी प्रकार से यदि कर्म कटते हैं तो कट जाने दीजिये फिर पछतावा किस बात का करना।

भीखी लो भिखीयारी लो, जे आदि परम तत लाधों।
जांकै बाद विराम विरांसो सांसो, तानै कौण कहसी साल्हिया साधों।

साधना करते करते जब परम तत्त्व की प्राप्ति हो जाये तथा द्वेतभाव की निवृत्ति हो जाये। सर्वत्र एक परमात्मा की ही अखण्ड ज्योति का ही दर्शन होने लगे तब चाहे उदर पूर्ति के लिये भिक्षुक बनकर के भिक्षा भी मांग सकते हो। परम तत्त्व की प्राप्ति के बिना तो हाथों से कमाई करके खाना ही अच्छा है। जिस साधक के अब तक व्यर्थ का वाद विवाद करने की चेष्टा है। निरंतर साधना का अभाव है। अशान्त तथा मृत्यु का संशय है उसे साल्हिया सज्जन शुद्ध सात्विक साधु कौन कहेगा। यदि कोई कहेगा तो कहने वाला भी अज्ञानी ही होगा, समझदार तो गुणों रहित जन को कभी गुणी नहीं कहेगा।

★★★★

प्रसंग-17 दोहा

जोगी आयो देव पे, पूछी बात करूठ।
वेद में कह्यो सो कथा, साची है कि झूठ।

योगी वेशधारी एक व्यक्ति जम्भदेवजी के पास आया और पूछा-कि वेद में जो बात कही है। वह सत्य है या आपकी बात सत्य है। वेद के विधि विधान से आपका विधान भिन्न ही नजर आता है। तब जम्भदेवजी ने सबद सुनाया।

सबद-35

ओ३म् बल बल भणत व्यासूं, नाना अगम न आसूं, नाना उदक उदासूं।

भावार्थ-वेद में जो बात कही है वह सभी कुछ व्यवहार से सत्य सिद्ध नहीं होते हुए भी उस समय

जब कथन हुआ था तब तो सत्य ही थी तथा वे मेरे शब्द इस समय देशकाल परिस्थिति के अनुसार कलयुगी जीवों के लिये कथन किये जा रहे हैं। इसलिये इस समय तुम्हारे लिये वेद ही है। वैसे तो व्यास लोग गद्दी पर बैठकर बार-बार वेद का कथन करते हैं वे लोग अन्तिम प्रमाण वेद को ही स्वीकार करते हैं। कहते हुए भी कथनानुसार जीवन को नहीं बनाते। बात तो वेद की, त्याग, तपस्या की करते हैं। किन्तु आशा तो संसार की ही रहती है। फिर उस कथन से क्या लाभ। स्वयं व्यास ही नाना प्रकार की उदक प्रतिज्ञा को तोड़ देते हैं फिर सामान्य जनों की क्या दशा होगी। गुरुदेवजी कहते हैं कि मेरा ऐसा विचार नहीं है, कथनी और करनी एक ही है। अत: मेरा कथन वेद ही है। इसलिये मेरे यहाँ सदा ही आनन्द रहता है और व्यासों के यहाँ तो सदा उदासीनता ही छायी रहती है।

बल बल भई निरासूं, गल में पड़ी परासूं, जां जां गुरु न चीन्हों।
तइया सींच्या न मूलूं, कोई कोई बोलत थूलूं।

कथनी और करनी में अन्तर होने से उन्हें बार-बार मानव शरीर मिलने का भी निराश-विफल होगा पड़ता है। इस जीवन की बाजी को हारना पड़ता है और उनके गले में बार बार यमदूतों की फांसी पड़ती है जब तक गुरु की शरण ग्रहण करके उनके सत वाक्य ग्रहण करके कथनी-करणी में एकता स्थापित नहीं करेगा तब तक वह मूल को पानी नहीं दे रहा है। डालियों पतों को ही पानी पिला रहा है तथा कुछ कुछ लोग तो स्थूल बातें बोल कर ही अपना कार्य कर लेते है। वे तो वेद, शास्त्र सतगुरु की वाणी जानते भी नहीं है। फिर भी अपने को व्यास या पण्डित कहते हैं।

★★★★

''दोहा''

काजी कथै कुरान कूं, पण्डित वाचै वेद।
इनके ज्ञान उपज्या नहीं, मिटा न संसृत खेद।

हे देव! काजी कुराण की बात का कथन करता है और पण्डित वेद की बातों का प्रमाण देता है। किन्तु इनको अब तक ज्ञान क्यों नहीं हुआ? सांसारिक दु:खों की निवृत्ति क्यों नहीं हुई? तब श्री देवजी ने इस प्रकार से कहा-

सबद-36

ओ३म् काजी कथै कुराणों, न चीन्हों फरमांणों, काफर थूल भयाणों।

भावार्थ-काजी लोग तो केवल कुरान का पाठ करना तथा कहना ही जानते हैं पर उपदेश कुशल ही होते हैं। जो पर उपदेश देने में रस लेगा वह उसे धारण नहीं कर सकेगा और जब तक यथार्थ कथन को स्वयं स्वीकार करके वैसा जीवन यापन नहीं करेगा तब तक वह कथा वाचक स्वयं नास्तिक-काफिर है तथा स्थूल व्यर्थ का बकवादी नास्तिक है उनका जन्म मृत्यु संसार भय निवृत्त नहीं हुआ है। अन्य लोगों की भांति ही वह पण्डित तथा काजी है।

जइया गुरु न चीन्हों, तइया सींच्या न मूलूं, कोई कोई बोलत थूलूं।

ऐसा मनमुखी काजी पण्डित जब तक गुरु की शरण ग्रहण करके उनके कथनानुसार जीवन यापन नहीं करेगा तब तक वह मूल को पानी नहीं पिला रहा है। व्यर्थ में ही डाल पते ही जल से सिंचित कर रहा है। स्वयं अपने पैर पर ही कुल्हाड़ी मार रहा है। कुछ लोग तो वेद शास्त्र की वार्ता जाने बिना ही लोगों को भ्रम में डालते है। स्वयं तो स्थूल की पूजा करते हैं कहते भी है तथा अन्य साधारण जनों को भी वैसा कर देते हैं।

★★★★

''दोहा''

दूजो जोगी बोलियो, सुणिये सतगुरु बात।
एक ब्रह्म अद्वैत अज, सो यह कैसी गाथ।

उपर के सबदों को श्रवण करके उनमें दूसरे योगी ने पूछा-कि हे देव! मैंने सुना है कि ब्रह्म एक ही अद्वैत, अज, अविनाशी आदि कहा जाता है। यह कैसी बात है। सत्य है या असत्य है इसका निर्णय कीजिये। सबद द्वारा श्री देवजी ने उतर दिया।

सबद-37

ओ३म् लोहा लंग लुहारूं, ठाठा घड़ै ठठारूं, उत्तम कर्म कुम्हारूं।

भावार्थ-धरती एक तत्त्व रूप से विद्यमान है इसी धरती का अंश लोहा, पीतल, चांदी तथा कंकर पत्थर है इसी धरती रूप लोहे को लेकर लुहार उसे तपाकर के घण की चोट से घड़कर लोहे के अस्त्र-शस्त्र औजार बना देता है। लोहा एक था औजार आदि अनेक हो जाते हैं उसी प्रकार से ठठेरा उसे धरती का अंश रूप पीतल लेता है उसे कूट-पीट तपा करके अनेकानेक बर्तन बना देता है तथा कुम्हार भी उसी धरती का अंश मिट्टी लेता है उसे जल के संयोग से तरल करके अनेकानेक घड़े-मटके आदि बना देता है। ये सभी उत्तम सृष्टि की रचना कर रहे है। जिस प्रकार से लोहा पीतल और मिट्टी ये तीनों मूल रूप से एक ही धरती ही थी तथा लोहार, ठठेरा, कुम्हार ने इसी धरती का अलग अलग अस्त्र-शस्त्र, बर्तन, मटका आदि नामकरण कर दिया।

उसी प्रकार से इस विस्तृत सृष्टि के मूल रूप में तो एक, अज, अनामय, निर्विकार, ईश, ब्रह्म एक ही है। इसी ब्रह्म की माया देश काल द्वारा इस भिन्न भिन्न नाम रूप से संसार में विस्तार हुआ है तथा जिस तरह से विस्तार हुआ है प्रलय अवस्था में उसी प्रकार से लीन हो जायेगा जैसे घट शस्त्र बर्तन का होता है।

जइयां गुरु न चीन्हों, तइयां सींच्या न मूलूं, कोई कोई बोलत थूलूं।

जब तक गुरु को नहीं पहचानेगा तब तक इन गूढ़ रहस्य को नहीं जान पायेगा। विना गूढ़ रहस्य जाने मूल रूप परमेश्वर तक नहीं पहुँच सकेगा। केवल स्थूल रूप डाल पतों को पानी देने से कोई लाभ नहीं है अर्थात् कल्पित देवों की खोज सेवा में कुछ भी लाभ नहीं है।

★★★★

प्रसंग-18 दोहा

गुंसाई एक आय के, बोला ऐसी बात।
ठुमरा पहरा गले में, भेख हमारा साच।

एक गुंसाई साधु ने आकर श्री देवजी से कहा कि आपके पास कोई साधुता का चिह्न जैसे ठुमरा कंठी माला तिलक आदि नहीं है।बिना चिह्न के हम आपको कौनसे पंथ का साधु स्वीकार करें। मेरे गले में तो आप देखिये यह ठुमरा पहना हुआ है। मेरा भेख ही सच्चे साधु का है। इसलिये मैं तो सच्चा साधु भी हूँ। जम्भदेव जी ने उनके प्रति सबद कहा-

सबद-38

ओ३म् रे रे पिण्ड स पिण्डूं, निरघन जीव क्यूं खंडूं, ताछै खंड बिहंडूं।

भावार्थ-अरे गोंसाई! जैसा तुम्हारा यह पंचभौतिक पिण्ड अर्थात् शरीर है वैसा ही अन्य सभी जीवों का शरीर है। कोई ठुमरा, माला तिलक से शरीर में परिवर्तन आने वाला नहीं है। हे निरघृण! तूने इस पार्थिव दुर्गन्धमय शरीर को ही संवारा इसी को ही महता दी है तथा इसमें रहने वाले जीव को खण्डित कर दिया है। इसकी अवहेलना कर दी है। इसलिये तेरा जीवन खण्डित होकर टुकड़े टुकड़े हो चुका है। तुमने स्वयं ही अपनी हत्या कर डाली है।

घड़िये से घमण्डूं, अइयां पन्थ कु पन्थूं, जइयां गुरु न चीन्हों।
तइयां सींच्या न मूलूं, कोई कोई बोलत थूलूं।

तुमने परम तत्त्व की खोज तो नहीं की परन्तु कच्चे घड़े सदृश इस शरीर पर ही अभिमान किया। यह सद्पन्थ नहीं कुपन्थ है। इस मार्ग से तो तुम मुक्ति को प्राप्त नहीं कर सकोगे। यदि गन्तव्य धाम को पहुँचना है तो गुरु के बताये हुऐ मार्ग का अनुसरण करो। उस परम तत्त्व की खोज करो यही मूल है कुछ लोग तो स्वयं को ही सिद्ध बताकर भी स्थूल ही बोलते हैं।

★★★★

''दोहा''

तब ही आयस यूं कही, जम्भगुरु सूं बात।
जोग जुगत श्रीय हुवै, हमें बतावो तात।

ऊपर के सबद को श्रवण करके वह गोंसाई कहने लगा-कि हे देव! हमें आप ही योग की युक्ति बतलाइये जिससे हमारा कल्याण हो सके। श्री देवजी ने इस प्रकार से शब्द सुनाया-

सबद-39

ओ३म् उत्तम संग सूं संगूं, उत्तम रंग सूं रंगूं, उत्तम लंग सूं लंगूं।

भावार्थ-यदि तुम्हें भवसागर से पार होना है तो सर्वप्रथम तुम्हारा कर्तव्य बनता है कि उत्तम संगति करना। उतम पुरुष के साथ वार्तालाप करना ही अच्छा संग है और यदि कोई रंग ही अपने उपर चढ़ाना है तो वह

भी उत्तम ही ग्रहण करना अर्थात् यदि अपने जीवन को शुद्ध संस्कृत करना है तो अच्छे संस्कारों को ही धारण करना। संसार से पार लांघना है तो फिर वापिस मृत्यु-जन्म के चक्कर में न आना पड़े। ऐसा उत्तम लोक ही प्राप्त करना। जो भी शुभ कार्य करना हो तो पूर्णता से करना। अधूरा किया हुआ कर्तव्य बीच में ही लटका देता है।

उत्तम ढ़ंग सूं ढ़ंगूं, उत्तम जंग सूं जंगूं, तातै सहज सुलीलूं।
सहज सुं पंथूं, मरतक मोक्ष दवारूं।

जीवन जीने का ढ़ंग भी यदि उत्तम शालीनता से हो तो वही जीना है। यदि तुम्हें युद्ध ही करना है अर्थात् मन इन्द्रिय बलवान शत्रु है इन्हें जीतना ही उत्तम जंग है इससे तुम्हारे जीवन में सहज ही सुलीला का अवतरण होगा, यानि तुम्हारा जीवन आनन्दमय हो जायेगा। यही सहज सुमार्ग है। इसी मार्ग पर चलने से मृत्यु काल में मोक्ष की प्राप्ति होगी।

''दोहा''

शब्द सुन प्रसन्न हुआ, द्विविधा नाही कोय।
तब सो विश्नोई हुवा, मन का धोखा खोय।

प्रसंग-19 दोहा

लोहा पांगल वाद कर आवही गुरु दरबार।
प्रश्न ही लोहा झड़ै, बोलेसी गुरु आचार।
प्रश्न एक ऐसे करी, काहां रहो हो सिद्ध।
तुम तो भूखे साध हो, हमरै है नव निध।

लोहा पांगल नाथ पंथ का प्रसिद्ध साधु था। वह वाद-विवाद करने के लिये तथा जम्भदेवजी का आचार विचार देखने के लिये सम्भराथल पर आया और विचार किया कि यदि सच्चे गुरु परमात्मा है तो उनके वचनों से यह मेरा लोहे का कच्छ झड़ जायेगा। उसे यह वरदान था कि लोहे का कच्छ तुम्हारा तभी छूटेगा जब किसी महापुरुष से साक्षात्कार एवं वार्तालाप होगी। अपने इस लोहे से जकड़े शरीर के अंग को मुक्त करवाकर दु:ख से छूटने एवं वाद विवाद करने की इच्छा से प्रश्न किया कि आप सिद्ध पुरुष मालूम पड़ते हो किन्तु आपका निवास स्थान कहाँ पर है। जाम्भोजी ने अपना स्थान इस प्रकार से बतलाया-

सबद-40

ओ३म् सप्त पताले तिहूं त्रिलोके, चवदा भवने गगन गहीरे।
बाहर भीतर सर्व निरंतर, जहां चीन्हों तहां सोई।

भावार्थ-मैं कहाँ रहता हूँ, यह सुनो! अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, पाताल, महातल इन सातों पातालों में तथा भू:, भुव:, स्व: मह जन तप सत्यम् इन उपर के सात लोकों में और स्वर्ग मृत्यु ब्रह्म लोक इनमें भी नित्य निरंतर विद्यमान रहता हूँ और निराकार आकाश जल परिपूर्ण समुद्र में भी मेरा निवास है। बाह्य दृष्ट अदृष्ट संसार तथा भीतर के अन्त:करण में भी मैं सभी समय में लगातार ही रहता हूँ। जहाँ पर भी याद करोगे, खोजोगे वहीं

पर ही मैं सदा ही प्राप्त हूँ।

सतगुरु मिलियों सतपंथ बतायो, भ्रान्त चुकाई, अवर न बुझबा कोई।

अब तुम्हें सतगुरु मिल चुका है और भ्रान्ति मिटा दी है। इसलिये अब किसी अन्य से पूछने की आवश्यकता नहीं है। इस शब्द को श्रवण करके लोहा पांगल विचार मग्न हो गया। थोड़ी देर के लिये शांत चित्त ही बैठा रहा। इसी बीच में एक अन्य प्रसंग चल पड़ा।

★★★★

प्रसंग-20 दोहा

राजा एक कनौज को, पांच सिद्ध लिया साथ।
पांचां ने ई पिछाण ल्यै, तो ल्यां सतगुरु का हाथ।
ऐसेई मने विचार कै, आये जम्भ दरबार।
बैठत ही बोलत भये, ताका सुणों विचार।

एक कन्नौज का राजा पांच सिद्धों को साथ में लेकर सम्भराथल की तरफ रवाना हुआ। मार्ग में विचार किया कि यदि जम्भेश्वर जी पांचों को ही विना गाँव नाम बताये पहचान लेंगे तो हम जानेगे कि अन्तर्यामी है और उनकी शरण ग्रहण करके उपदेश ग्रहण करेंगे। वे पाँचों ही व्यक्ति जम्भदेवजी के पास आकर बैठे। तब उनके प्रति इस प्रकार से कहा-

सबद-41

ओ३म् सुण राजेन्द्र, सुण जोगेन्द्र, सुण शेषिन्द्र, सुण सोफिन्द्र।
सुण काफिन्द्र, सुण चाचिन्द्र, सिद्धक साध कहाणी।

भावार्थ- हे राजेन्द्र, हे योगीन्द्र, हे शेखेन्द्र, हे सूफीन्द्र, हे काफिरेन्द्र, हे चिश्ती आप लोग सभी ध्यानपूर्वक सुनों! आप लोग अपने को सिद्ध, साधु, धर्माधिकारी कहते हो। अपने शिष्यों को पार उतारने के लिये प्रतिज्ञा करते हो किन्तु-

झूठी काया उपजत विणसत, जां जां नुगरे थिती न जांणी।

यह तुम्हारी झूठी मिथ्या काया बार-बार पैदा होती है और विनाश को भी प्राप्त होती है। यदि तुम लोग जन्म मरण के चक्कर से छूट नहीं सको तो फिर अपने शिष्यों को कैसे छुड़ा सकोगे। आप लोग स्वयं नुगरे गुरु रहित मनमुखी हो तो इस रहस्य को कैसे जान सकोगे।

★★★★

प्रसंग-19 दोहा

भसम लगाई हमने, सोधा तत्व विचार।
नगर में पैसे नहीं चालै यह आचार।

सबद संख्या 40 का श्रवण करने के पश्चात् कुछ समय मौन रहकर फिर जाम्भोजी से लोहापांगल ने कहा कि हमारा आचार-विचार और साधना मोक्षपूर्ण है क्योंकि हमने शरीर पर भस्म लगाई है। कपड़े पहनते नहीं है। न ही कभी नगर गाँव में ही निवास करते हैं। यही तो पूर्ण योगी के लक्षण है। इसलिये हम पूर्ण योगी है। आप इसके बारे में क्या कहते हो तब श्री देवजी ने प्रचलित पाखण्ड खण्डनार्थ सबद सुनाया-

सबद-42

ओ३म् आयसां काहे काजै खेह भकरूड़ो, सेवो भूत मसाणी।
घड़ै ऊंधै बरसत बहु मेहा, तिहिमां कृष्ण चरित बिन पड़यो न पड़सी पाणी।

भावार्थ-हे आयस् योगी! इस शरीर पर राख की विभूति किसलिये लगायी है। इससे तो यह तेजोमय काया धूमिल हुई है जैसा परमात्मा ने रूप रंग दिया है उसे तूने क्यों छिपाया है और श्मसानों में बैठकर भूत-प्रेतों की सेवा करते हो तो इस खेह से शरीर भकरूड़ो करने से क्या लाभ है। यह अन्त:करण जो ज्ञान को ग्रहण करके भरने वाला था, इसको तो उल्टा कर रखा है अब बताओ ज्ञान यहाँ कहाँ ठहरेगा? जिस प्रकार से उल्टे घड़े में पानी नहीं भरता चाहे कितनी ही वर्षा हो। किन्तु कृष्ण की दिव्य लीला ज्ञान तथा असीम कृपा हो तो तुम्हारे उल्टे हृदय में ज्ञान ठहर सकता है अन्यथा नहीं इसलिये इन बाह्य दिखावे को छोड़कर कृष्ण की अपार महिमा कृपा प्राप्ति का प्रयत्न करो।

योगी जंगम नाथ दिगंबर, सन्यासी ब्राह्मण ब्रह्मचारी
मनहट पढ़िया पण्डित, काजी मुल्ला खेलै आपदवारी।

हे आयस्! इस समय तुम अकेले ही भटके हुऐ नहीं हो, तुम्हारे अलावा अन्य भी जैसे योगी, जंगम यानि चलता-फिरता संन्यासी समाज, नंगे रहने वाले दिगम्बरी, सन्यासी, मठधारी, एवं परिब्राजक, ब्राह्मण, ब्रह्मचर्य व्रत धारी, अपने आप ही मन हठ पढ़े हुऐ मनहटी किन्तु पढ़े लिखे पण्डित तथा काजी मुल्ला ये सभी मनमुखी होकर अपने अभिमान में रचे हुऐ इसी प्रकार का खेल खेल रहे है। इनके लिये तो यह खेल ही है। इसमें रस ले रहे है किन्तु दुनिया को तो तबाह कर रहे है। इनका यह पाखण्डवाद कब तक चलेगा।

निश्चै कायों वायों होयसी, जै गुरु विना खेल पसारी।

निश्चित ही यह भेद खुलेगा और दूध का दूध और पानी का पानी यह निर्णय हो जायेगा। यदि गुरु के बिना मनमुखी होकर ये लोग इस प्रकार का पाखण्ड करेंगे, लोगों को ठगने का खेल खेलते रहेंगे तो यह काया सदा ही स्थिर रहने वाली नहीं है। आगे पहुंचने पर अपने कर्मानुसार निश्चित ही फल भोगना पड़ेगा।

★★★★

''दोहा''

जोगी कहै देवजी, हमारा जोग अपार।
जोग निधी हमने लई, यांका सुणों विचार।

फिर लोहा पांगल कहने लगा कि हे देवजी! हमारा अपार योग है हम ऐसे वैसे नाम मात्र के योगी नहीं है। इस मेरी मण्डली में तो मुझे तो सिद्धि प्राप्त हो चुकी है। अन्य लोग भी प्राप्त करने में तत्पर है। जाम्भेजी ने

उन्हीं के प्रति पुनः सबद सुनाया-

सबद-43

ओ३म् ज्यूं राज गये राजिन्दर झूरै, खोज गऐ न खोजी।
लाछ मुई गिरहायत झूरै, अरथ बिहूणां लोगी।
मोर झड़ै कृषाण भी झूरै, बिंद गये न जोगी।

भावार्थ-जिस प्रकार से राजा का राज्य हाथ से चला जाता है तो वह अति दुःखी होता है। खोजी यानि पारखी का खोज नष्ट हो जाये तो वह अपने कार्य में विफल हो जाता है और दुःखी होकर विलाप करता है। गृहस्थ पुरुष की गृहिणी युवती पत्नी मर जाती है तो भारी कष्टों को झेलना पड़ता है। इस संसार के लोगों का तो यहां धन नष्ट हो जाता है या किसी प्रकार की हानि हो जाती है तो उन्हें भी रोना पड़ता है। किसान की खेती में जब फल आने की तैयारी के समय मोर, फूल मंजरी तूफान आदि से झड़ जाती है, तो उसे भी झुरता देखा गया है और योग साधना में रत योगी का ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है तो वह भी निष्तेज हो जाता है। उसे उदासी आ जाती है। उसी प्रकार से हे लोहा पांगल! तूझे भी अपने योग रहित जीवन को देखकर रोना-पछतावा करना चाहिये था। किन्तु तुम लोग सिद्ध नहीं होते हुए भी अपनी कमजोरी के उपर पर्दा डाल कर हंसने का नाटक कर रहे हो। तुम्हारे जीवन में सच्चाई नहीं है क्योंकि तुम्हारा जीवन योगी जैसा प्रफुल्लित नहीं है। तुम्हारी चिंताओं ने तुम्हें जर्जरित कर दिया है इसको छिपाने के लिये तुमने राख लगा रखी है।

जोगी जंगम जपिया तपिया, जती तपी तक पीरूं।
जिहिं तुल भूला पाहण तोलै, तिहि तुल तोलत हीरूं।

योग साधना करने वाले योगी, भ्रमणशील सन्यासी, जंगम, जप करने वाले जपिया, तपस्या करने वाले तपियां, तकिये में रहने वाले मुसलमान फकीर, इन्हीं सभी ने यह भेष नाम, साधना रूपी तराजू ले रखी है। इस तराजू से हीरा तोलना चाहिये था, हीरों का व्यापार करना था। परमानन्द की प्राप्ति करनी थी, किन्तु ये लोग इस तरह से पत्थर तोल रहे है ये लोग सांसारिक भोग पदार्थो में लिप्त होकर उन्हीं का आचार-विचार अपनाते है इन लोगों ने इस अमूल्य तराजू का दुरुपयोग किया है। इसलिये इनसे वापिस ले लेनी चाहिये।

जोगी सो तो जुग जुग जोगी, अब भी जोगी सोई।

यदि वास्तव में कोई योगी होगा तो युगों-युगों से योगी ही रहा है। वह अब भी योगी ही है और भविष्य में भी योगी ही रहेगा अर्थात् एक बार कोई योगी परम तत्व का साक्षात्कार कर लेता है तो वह सदा ही उसी में ही लीन हो जाता है फिर कभी भी उसकी वृत्ति बाह्य विषयाकार नहीं होती है और वह काल को भी जीत लेता है। इसलिये दीघार्यु होता है किन्तु तुम लोग अपने को इस जर्जरित अवस्था में भी योगी कैसे कहते हो।

थे कान चिरावों, चिरघट पहरो, आयसां यह पाखण्ड तो जोग न कोई।
जटा बधारों जीव सिंघारो, आयसां इहि पाखण्ड तो जोग न होई।

और आप लोग तो कान चिराके यानि छेद करवाके उसमें मुद्रा पहनते हो और उसी के बल पर अपने को योगी कहते हो तो हे आयस्! यह पाखण्ड तो योग नहीं हो सकता। यदि आप लोग जटा बढ़ा कर अपने को योगी कहते हो और जीव हत्या करते हो तो हे आयस्! यह भी पाखण्ड ही है। इस पाखण्ड से योग की सिद्धि

नहीं हो सकती और न ही योगी कहलाने के अधिकारी ही हो सकते।

★★★★

''दोहा''

जटा राख जोगी हुवा, टोपी डोरी भेख।
कंथा पहरी गले में, सतगुरु नेत्रां देख।

ऊपर के सबदों को सुनकर के लोहा पांगल ने फिर से कहा-हे देव! हमने अपने जीवन में योगी के सभी चिन्हों को धारण कर रखा है। जैसे सिर पर लम्बी लम्बी जटाएँ, अपने योग पहचान की टोपी, गले में डोरा, भगवां भेष तथा कंधे पर गूदड़ी आप आँखों से देख रहे हैं। फिर भी हमें योगी स्वीकार नहीं करते। क्या बात है? जाम्भोजी ने बात यूं बतलाई।

सबद-44

ओ३म् खरतर झोली खरतर कंथा, कांध सहै दुख भारूं।
जोग तणी थे खबर नहीं पाई, कांय तज्या घर बारूं।

भावार्थ- भिक्षा मांगने की झोली और ओढ़ने की गूदड़ी ये खरतर ही होनी चाहिये अर्थात् यदि तुम्हें भिक्षा के लिये झोली रखना है तो ऐसी शुद्ध पवित्र रखो जिसमें सत्य रूपी भिक्षा ग्रहण की जा सके। ऐसी उत्तम भिक्षा ही तुम्हें आनन्द देने वाली होगी और यदि ओढ़ने के लिये गूदड़ी कन्धे पर रखनी है तो प्रकृति पर विजय करके अपने को सुरक्षित कर लीजिये यही कंथा होगी। प्रकृति यानि आकाश, वायु, तेज, जल, धरणी से समझौता कर लेने पर ये ही गुदड़ी रूप आवरण का कार्य करेंगे। यही वास्तव में झोली और कंथा है जो योगी को धारण करनी चाहिये। इनसे अतिरिक्त वस्त्र की बनी हुई झोली और कंथा से तो कंधे को भार ही मारना है। सदा पास में रखने योग्य तो यह वस्त्र निर्मित स्थूल झोली कंथा नहीं है। हे लोहा पांगल! तथा अन्य मण्डली के लोगों तुमने योग की खबर तो जानी नहीं अर्थात् योग का मार्ग तो जाना नहीं तो फिर घरबार, स्त्री को क्यो छोड़ दिया।

ले सूई धागा सीवण लागा, करड़ कसीदी मेखलियों।
जड़ जटा धारी लंघै न पारी, बाद विवाद बे करणों।

सूई धागा ले करके वस्त्र की सिलाई करने लगे तथा सिलाई करते करते अनेकों प्रकार का कसीदा निकालकर एक मेखलिया जो काख में दबाकर रखा जाता है जिसमें सुलफा गांजा आदि रखा जाता है बना दिया है। सूई द्वारा धागों से उलझन पैदा कर दी है किन्तु तुम्हें तो जगत, माया, जीव, ईश्वर की उलझन को सुलझाना था। किन्तु उल्टा कार्य करते हुए समय का दुरुपयोग ही किया है। केवल जटाएं बढ़ा कर जोगी, तपस्वी कहलाने से तो पार नहीं उतर सकता, जब तक व्यर्थ का वाद विवाद तर्क-वितर्क करते हुऐ कुकर्म में ही प्रवृत्त रहेगा।

थे वीर जपो बेताल धियावो, कांय न खोजो तत कणों।

आप लोग भूत, प्रेत, भेरू, बेताल आदि का जप ध्यान करते हो तथा अपने को योगी सिद्ध कहते हो, किन्तु उस परमात्मा तत्व को क्यों नहीं खोजते? तत्व प्राप्ति बिना अपने को योगी कहना यह तो पाखण्ड है, जो

पाप का मूल है।

आयसां डंडत डंडूं मुंडत मूंडूं, मुंडत माया मोह किसो।
भरमी वादी वादे भूला, कांय न पाली जीव दयों।

हे आयस्! आपने हाथ में डंडा ले लिया है इससे तो हाथ को दण्ड मिला है किन्तु चंचल मन को तो दण्डित नहीं किया। इस सिर को तो मुंडवा लिया किन्तु मन को तो मुण्डित नहीं किया। यदि मन को मुंडित करते तो फिर मोह-माया में नहीं फंसते। आप लोग मोह-माया में फंसे हुऐ होने से भ्रम से भ्रमित होकर वाद विवाद करते हो, जिससे तुम्हारी श्रद्धा समाप्त हो गयी है। इसलिये जीवों पर दया भाव भी नहीं रहा। निर्दयी होकर जीवों का संहार करना प्रारम्भ कर दिया है योगी होकर फिर ऐसा क्यों और यदि ऐसा ही करना है तो फिर योगी कैसे हो सकते हो।

★★★★

''दोहा''

लोहा पांगल यों कहै, मेरे है यह चित।
लोह झड़ै मम काछ का, तो आवै प्रतीत।
मेरे सतगुरु यों कह्यो, लोह झड़ै तुम तात।
सोवनी नगरी प्रगटे पुरुष, तब आवै तोहै शांत।

लोहा पांगल ने इस प्रकार से कहा कि हे देव! मेरा यह विचार था कि मुझे महापुरुष कोई मिलेगा तो मेरा यह लोहे का कच्छ झड़ जायेगा। ऐसा ही मेरे सतगुरु ने आदेश भी दिया था। इस सोवन नगरी सम्भराथल पर ही प्रगट होने का संकेत था। किन्तु अब मुझे निरासा हो रही है क्योंकि मेरा यह लोहे का कच्छ अब तक टूटा क्यों नहीं है। इसलिये आपके विषय में भी मेरा ऐसा ही संदेह हो रहा है। आप इसका निवारण कीजिये। जम्भदेवजी ने इस प्रकार से कहा-

सबद-45

ओ३म् दोय मन दोय दिल सिवी न कंथा, दोय मन दोय दिल पुली न पंथा।
दोय मन दोय दिल कही न कथा, दोय मन दोय दिल सुणी न कथा।

भावार्थ-संकल्प विकल्पात्मक मनः, मन का स्वभाव संकल्प तथा विकल्प करना है। जब तक मन एक विषय पर स्थिर नहीं होगा तब तक कोई भी कार्य ठीक से नहीं हो सकेगा तथा इसके साथ-साथ दिल अर्थात् हृदय में जब तक कोई बात स्वीकार नहीं होगी तब तक वह कभी भी कुशलता से परिपूर्ण नहीं हो सकता। इस बात को लोहापांगल के प्रति बतला रहे हैं।

दोय मन तथा दोय दिल से किया हुआ कार्य गुदड़ी की सिलाई का कार्य भी ठीक प्रकार से नहीं हो सकता। उसी प्रकार से द्विविधा वृत्ति से अचेतनावस्था में तो मार्ग भी पथिक भूल जाता है तथा दोय मन तथा दोय दिल से कथाकार कथा भी नहीं कह सकता और न ही श्रोता लोग श्रवण ही कर सकते।

दोय मन दोय दिल पंथ दुहेला, दोय मन दोय दिल गुरु न चेला।

दोय मन दोय दिल बंधी न बेला, दोय मन दोय दिल रब्ब दुहेला।

दोय मन दोय दिल से तो पन्थ भी दुखदायी हो जाता है क्योंकि पन्थ पर चलना चाहता नहीं जबरदस्ती चलाया जा रहा है। गुरु तथा शिष्य भी एकता बिना न तो गुरु ज्ञान ही दे सकता और न ही शिष्य ले ही सकता है। जब एक मन तथा एक दिल होगा तभी प्रेम श्रद्धा का उदय होगा और यही ज्ञान ग्रहण करवाने में हेतु है।

एकाग्रता के बिना समयानुसार उठना, बैठना, चलना, कार्य विशेष करना भी नहीं हो सकेगा अर्थात् नियमित जीवन नहीं जी सकेगा। दुविधा वृत्ति से तो परमात्मा का स्मरण भी नहीं हो सकेगा।यदि हठात् माला लेकर बैठ भी जायेंगे तो वह आनन्द दाता परमात्मा का स्मरण नहीं होगा किन्तु दुखदायी हो जायेगा।

दोय मन दोय दिल सूई न धागा, दोय मन दोय दिल भिड़े न भागा।
दोय मन दोय दिल भेव न भेऊं, दोय मन दोय दिल टेव न टेऊं।

मन तथा दिल इन दोनों की एकता-शांति बिना तो सूई में धागा भी नहीं पिरोया जा सकता तथा योद्धा लोग भी युद्ध के मैदान में पहुँच जाते हैं परन्तु जब तक घर, स्त्री, परिवार की मोह माया में वृत्ति लगी है तब तक न तो वे ठीक प्रकार से युद्ध ही कर सकते और न ही भाग सकते। बीचो बीच में पड़कर जीवन को नष्ट कर लेते हैं। एकाग्र वृत्ति के बिना तो किसी प्रकार का रहस्य भी नहीं जाना जा सकता और न ही व्यवहार में ही किसी के मन की बात उसका भेद विचार ही जाना जा सकता तथा उसी प्रकार से ही द्विधा वृत्ति यानि द्वेष भाव से न तो आप किसी को प्रेम भाव से सेवा कर सकते और न ही किसी से करवा ही सकते।

दोय मन दोय दिल केल न केला, दोय मन दोय दिल सुरग न मेला।

कुछ समय के लिये मनोरंजन के लिये खेल भी द्विविधा वृत्ति से अर्थात् निश्चित हुए बिना नहीं खेला जा सकता और न ही खेल में आनन्द आयेगा तथा यदि स्वर्ग या मुक्ति चाहते हो तो भी एकाग्रता की परम आवश्यकता है। केवल लोक प्रतिष्ठा के लिये हाथ में माला या आसन मुद्रा से तो द्विविधा वृत्ति बनी रहती है। उससे यह जीवन दु:खमय होकर रह जायेगा, न तो स्वर्ग है और और न ही परमात्मा से मिलान ही संभव है।

रावल जोगी तां तां फिरियो, अण चीन्हैं के चाह्यो।
काहै काजै दिसावर खेलो, मन हठ सीख न कायों।

हे जोगियों के रावल! तुम लोग कहाँ-कहाँ भटके हो तथा क्यों भटके हो, क्या चाहते हो, यदि कुछ बिना साधना स्मरण जप तप के ही केवल निरंतर भ्रमण द्वारा ही सभी कुछ चाहते हो तो यह तुम्हारी बड़ी भूल होगी। किसलिये दिशावरों में जाकर पाखण्ड का खेल रचते हो, यह शरीर यात्रा तो बिना पाखण्ड के ही चलती रहेगी। तुम्हें भ्रमण काल में भी किसी गुणी सतगुरु के पास बैठकर सीख पूछनी चाहिये थी किन्तु तुमने मन के हठिले स्वभाव के कारण कभी भी किसी से भी अच्छी सीख नही पूछी तो फिर भटकना व्यर्थ ही सिद्ध हुआ।

थे जोग न जोग्या भोग न भोग्या, गुरु न चीन्हों रायों।
कण विन कूकस कांये पीसों, निश्चय सरी न कायों।

न तो आप लोगों ने योग को ही पूर्णतया सिद्ध करके योगी बन सके और न ही पूर्णतया ही भोग ही भोग सके तथा गुरु की शरण ग्रहण करके परमात्मा विष्णु का स्मरण एवं भक्ति भी नहीं कर सके तो तुम्हारा यह अमूल्य जीवन कण-धान से रहित कूकस को ही पीसता है। उस भूसे से ही धान निकालता रहा, ऐसा क्यों किया? निश्चित ही तुम्हारा कार्य सिद्ध नहीं होगा। अर्थात् न तो तुम भूसे के अन्दर से धान ही निकाल सके और

न ही इस साधन रहित भ्रमण शील जीवन से ही कण तत्व की प्राप्ति हो सकेगी।

बिण पायचियें पग दुख पावै, अबधूं लोहै दुखी सकायों।
पार ब्रह्म की सुद्ध न जांणी, तो नागे जोग न पायो।

हे अवधूं! तुमने पावों में जूते नहीं पहन रखे हैं, इनके बिना तुम्हारे पैर दु:ख पा रहे हैं। यही इस मिथ्या त्याग का फल है और तुम्हारा लोहे से निर्मित कच्छ भी कम दु:खदायी नहीं है। फिर अपने को सिद्ध किस आधार पर कहते हो। योगी या सिद्ध भी क्या कभी दु:ख का अनुभव करता है क्या? जब तक परब्रह्म परमात्मा की सुधी निरंतर नहीं रहेगी तब तक नंगे रहने से कोई योगी नहीं बन जाता है।

★★★★

''दोहा''

हम योगी है आद के, तुमरै मुदरा नांहि।
कंथा भेख दीसै नही, मो मन मांनै जांहि।

फिर लोहा पांगल कहने लगा-कि आपके न तो मुद्रा है और न ही कंथा है और न ही योगियों के जैसी वेशभूषा ही है। मेरा मन तो तभी मानेगा जब ये चीन्ह आप धारण कर लो तथा हम तो आदि के योगी नाथ है। सभी योग के चिन्ह हमारे पास है तो फिर आप हमें योगी क्यों नहीं मानते है। तब जम्भेश्वर जी ने सबदोच्चारण किया।

सबद-46

ओ३म् जिहिं जोगी के मन ही मुद्रा, तन ही कंथा पिण्डे अगन थंभायो।
जिहिं जोगी की सेवा कीजै, तूठों भव जल पार लंघावै।

भावार्थ-जिस योगी के मन मुद्रा है, शरीर ही गुदड़ी है और धूणी धूकाना रूप अग्नि को शरीर में स्थिर कर लिया है अर्थात् नाथ लोग कानों में मुद्रा डालते है जो गोल होती है यदि किसी का मन भी बाह्य विषयों से निवृत्त होकर केवल ब्रह्माकार हो जाये अर्थात् ब्रह्म के बाहर भीतर लय के रूप में स्थित रहे तो उसके लिये वही मुद्रा है तथा मुद्रा का अर्थ भी यही है।

आत्मा की रक्षा के लिये शरीर रूपी गुदड़ी जिसने धारण कर ली है और परमात्मा की ज्योति रूपी अग्नि को जिसने अन्दर धारण कर लिया है, सर्वत्र परमात्मा का दर्शन करता है ऐसे महान गुरु योगी में अपार शक्ति होती है। वह शिष्य को पार उतारने में सक्षम है।

नाथ कहावै मर मर जावै, से क्यों नाथ कहावै।
नान्ही मोटी जीवां जूणी, निरजत सिरजत फिर फिर पूठा आवै।

तुम अपने को नाथ कहलाते हो फिर भी बार-बार जन्म-मरण के चक्कर में पड़ते हो तो फिर अपने को नाथ कभी नहीं कहना चाहिये क्योंकि नाथ का अर्थ तो स्वामी, मालिक, परमात्मा, ईश्वर होता है। आप लोग अपने को ईश्वर की बराबरी में रखकर भी छोटी मोटी जीवों की योनियों में बार बार आवागमन करते हो तो ऐसा नाम रखने से भी क्या लाभ है तथा लोगों को भ्रमित क्यों करते हो।

हम ही रावल हम ही जोगी, हम राजा के रायों।
जो ज्यूं आवै सो त्यूं थरपां, सांचा सूं सत भायों।

हे लोहापांगल! मैं ही रावल हूँ, मैं ही योगी हूँ तथा मैं ही राजाओं का राजा भी हूँ इसलिये मेरे यहाँ सभी वर्गों के लोग आते है। जो भी जिस विचार भावना, कार्य, शंका को लेकर आता है, मैं उसी को उसकी भाषा में, शैली, काल अनुसार वैसा ही ज्ञान, उपदेश, धन, दौलत, सुख शांति प्रदान करता हूँ। मैं ही राजाओं का भी राजा हूँ। योगियों का भी शिरोमणि योगी हूँ। मेरे पास सभी कुछ विद्यमान है तथा मुक्त हाथों से वितरण भी करता हूँ। किन्तु जो सच्चे लोग है वे मुझे अति प्रिय है। उन्हें मैं सांसारिक सुख शांति के अतिरिक्त मोक्ष भी देता हूँ जो दूसरों के लिये अति दुर्लभ है।

पाप न छिपां पुण्य न हारा, करां न करतब लावां बारूं।
जीव तड़े को रिजक न मेटूं, मूवां परहथ सारूं।

मानव पूर्व जन्मों के कर्मो को लेकर इस संसार में आता है तथा अपने कर्मो का फल ही यहाँ पर भोगता है। गुरु जम्भेश्वरजी कहते हैं कि मेरे पास बहुत लोग आते हैं किन्तु मैं उनके न तो पाप को छिपाता हूँ और न ही पुण्य का हरण करता हूँ अर्थात् उन्हें पाप-पुण्य कर्मो के फल भोगने की पूरी छूट-स्वतंत्रता है। उनके अपने निजी जीवन में दखल देना नहीं चाहता। उन्हें अपने कर्मो के फल का भुगतान पूरा करवा देता हूँ। मैं ऐसा कर्तव्य करना नहीं चाहता जिससे उनके कर्म फल शेष रह जाये और वापिस जन्म-मरण के चक्र में आना पड़े। इसलिये मेरे द्वारा ज्ञान ग्रहण दशा में भी यदि दु:ख आता है तो उन्हें रोकना ठीक नहीं है। आयेगा तो चला जायेगा यदि ठहरेगा तो बार-बार विपत्ति पैदा करेगा। इसीलिये जीव के लिये जैसा विधान हो चुका है उसको मैं नहीं मिटाता। जीवन काल में तो यह अवसर स्वयं जीव के हाथ में है परन्तु मृत्यु के पश्चात् तो यह जीव दूसरे के हाथ चला जायेगा। फिर कुछ भी नहीं कर सकेगा।

दौरे भिस्त बिचालै ऊभा, मिलिया काम सवारूं।

इस संसार में जीवन धारण करने वाले लोग स्वर्ग और नरक के बीच में खड़े हुए हैं चाहे तो स्वर्ग की और प्रस्थान कर सकते है और यदि चाहे तो नरक की तरफ भी जा सकते है। किन्तु मनमुखी तो नीचे की ओर ही जायेगा यह निश्चित ही है और जो मेरे से आकर मिलेगा उसका कार्य तो मैं सिद्ध कर दूंगा अर्थात् स्वर्ग या मोक्ष की ओर प्रस्थान करवा दूंगा।

★★★★

''दोहा''

लोहा पांगल यूं कहै, जाम्भेजी सूं भेव।
जोग कछोटी हम लई, सुणिये पूर्ण देव।

जाम्भोजी से पुन: लोहापांगल ने योग रहस्य को जानने के लिये प्रश्न किया कि हे पूर्णदेव! हम अन्य साधारण योगियों जैसे नहीं है हमने अपनी साधना को पूर्णतया किया है और हम लोग योग की कसौटी पर खरे उतरे हैं। कई बार हमारी परीक्षा हो चुकी है। फिर आप स्वीकार क्यों नहीं करते। तब यह सबद सुनाया-

सबद-47

ओ३म् काया कंथा मन जो गूंटो, सीगी सास उसासूं।
मन मृग राखले कर कृषाणी, यूं म्हे भया उदासूं।

भावार्थ-वस्त्र से बनी हुई भार स्वरूप कंथा रखना योगी के लिये अत्यावश्यक नियम-कर्म नहीं है तथा गले में गूंटो हाथ में सीगी रखना तथा बजाना कोई नित्य नैमितिक कर्म नहीं है तथा क्योंकि यह तुम्हारा पंचभौतिक शरीर ही कंथा गुदड़ी है जो आत्मा के उपर आवरण रूप से स्वत: ही विद्यमान है तथा तुम्हारा यह चंचल मन जब स्थिर हो जायेगा तो हृदयस्थ गूंटा ही होगा। मन की एकाग्रता को ही गूंटो मान लेना और तुम्हारा श्वांस प्रश्वांस ही सीगी है। जो सदा ही बजती रहती है। तुमने केवल बाह्य प्रतीकों को ही सत्य मान रखा है। असलियत से दूर हट गये है इस प्रकार से इस मन रूपी चंचल मृग से स्वकीय साधना रूपी खेती की रक्षा करना तभी तुम्हारा योग रूपी फल पककर सामने आयेगा। इसलिये मैंने तो इन आन्तरिक योग के चिह्नों को धारण कर लिया है जिससे बाह्य चिह्नों से उदासीन हो चुका हूँ।

हम ही जोगी हम ही जती, हम ही सती, हम ही राखबा चीतूं।
पंच पटण नव थानक साधले, आद नाथ के भक्तूं।

जो बाह्य चिह्नों से उदासीन होकर केवल आन्तरिक चिह्नों को धारण करेगा वही सच्चा योगी होगा। वही पूर्ण यती होगा और वही सती तथा समाधिस्थ होकर ब्रह्म का साक्षात्कार करने वाला होगा। हे योगी! मैंने तो यह सभी कुछ धारण कर लिया है। इसलिये मैं अपने को योगी, यति, सति तथा सिद्ध पुरुष कह सकता हूँ। किन्तु हे अनादि नाथ के भक्त! तुम्हारे में अभी ये लक्षण नहीं आये है। यदि तुम्हें भी सच्चा योगी बनना है तो सर्वप्रथम तो पाँच प्राणों की गति अवरोध कर क्योंकि ये पाँच ही शरीर को जीने की शक्ति देते हैं। ये जब निकल जाते हैं तो यह शरीर मृत हो जाता है इसलिये ये पट यानि श्रेष्ठ है। जब प्राणों की गति में प्राणायाम द्वारा अवरोध होगा तब इनसे जुड़े हुऐ मन, बुद्धि, चित, अहंकार स्वत: ही शांत हो जायेंगे तथा इन चतुर्विध अन्त:करण से जुड़ी हुई पांच ज्ञानेन्द्रियाँ भी साधित हो जायेगी। इसलिये पाँच पटण एवं नव थानकों की साधना करनी होगी।

★★★★

''दोहा''

लोहा पांगल परचियों, जटा दई उतराय।
मन में यहै नहचो भयो, गुरु कर परसै पाय।
बारै सैं को महंत है, चेला पड़ चेला साथ।
नाथ नांव मेटत भयो, लीन्हा सतगुरु हाथ।
नाव जु सतगुरु फेरियो, रूपो सही प्रभाव।
टहल करे निज संत की, सुध हृदो हो जाव।
धरणोंक गांव तुम को दियो, पो पावो तुम वीर।

जाप जपो निज तत को, पावन होय शरीर।

सबद संख्या 40 से प्रारम्भ करके सबद संख्या 47 तक धारा प्रवाह से लोहा पांगल ने श्रवण किया। सबदों के श्रवण से अन्त:करण पवित्र हुआ जिससे सद्मार्ग का अनुसरण करने के लिये शिष्यत्व स्वीकार किया। लम्बी उलझी हुई जटाओं को उतरवा दिया। बारह सौ शिष्यों का गुरु स्वयं जाम्भोजी का शिष्य बन गया। तो अन्य लोगों ने भी ऐसा ही अनुसरण किया। सतगुरु ने लोहापांगल नाथ नाम बदलकर के रूपो नामकरण कर दिया और धरनोक गांव में जाने की आज्ञा प्रदान की और कहा आज से तुम संतों-भक्तों की सेवा करो इतने दिनों तक सेवा करवायी थी किन्तु अब तुम स्वयं करो, तभी तुम्हारे पाप कटेंगे। प्याऊ लगा कर प्यासों को पानी पिलाओ और भूखों को भोजन से सेवा करो। इससे तुम्हारा हृदय पवित्र होगा तथा परमात्म परम तत्व का जाप करते रहो।इन्हीं शुभ कर्मों से तुम्हारा हृदय पवित्र होगा तथा पापों का प्रायश्चित होगा। इस प्रकार से रूपे ने आज्ञा लेकर यह सेवा कार्य प्रारम्भ किया। इसका विवरण आगे सबद 55 में फिर से आयेगा।

प्रसंग-21 दोहा

नाथ एक विश्नोई भयो, करै भण्डारै सेव।
टोघड़ी सोधण टीले गयो, जोगी भुक्त करैव।
जोगी आया भुक्त ले, विश्नोई लेवे नांहि।
जोगी इण विध बोलियो, हमारी भुक्त में औगुण काहि।
घर छोड़या तै नाथ का, हम सूं कीवी भ्रान्त।
गेडी ले जोगी उठयो, स्याह मूंढ़े की कांत।
और जोगी झालियो, छिमा करो तुम वीर।
इसकै मारै क्या हुवै, बुझेंगे गुरु पीर।
जोगी सब भेला हुवा, चाल्या जम्भ द्वार।
दवागर उन मेल्हियो, आय र करो जुहार।
पग चालो तुम देवजी, कह्यो दुवागर जाय।
बालै लखमण साम्हा, चलकै लागो पाय।
क्या इजमत है गुरु कहै, बाले लछमण मांहि।
तब जोगी ऐसे कहै, तृधा रूप रहाहि।
बाल तरण वृद्ध हुवै, ऐसै धारै देह।
तब विश्नोई ऐसे कह्यो, ऐहे वेश्वा ग्रेह।

एक नाथ पंथ का साधु जाम्भोजी के सम्पर्क में आकर बिश्नोई हो गया। उसे गो सेवा में नियुक्त कर दिया था। एक समय एक बछिया खो गयी। उसे खोजने के लिये वह दूर चला गया था। रात्रि हो चुकी थी। वहीं पर पास में ही लक्ष्मण नाथ की मण्डली डेरा डले हुऐ थी। जब वह बिश्नोई उनके पास जाकर ठहर गया

तो योगियों ने उसे भूखा समझकर भिक्षा का अवशिष्ट भोजन दिया तो उस बिश्नोई ने भोजन नहीं लिया। योगी कहने लगे कि इसमें क्या अवगुण है। तूँ भोजन ग्रहण क्यों नहीं करता, तब बिश्नोई ने कहा कि अब मैंने संस्कार रहित जनों द्वारा बनाया हुआ भोजन करना छोड़ दिया है। तब उसमें से एक साधु लट्ठी लेकर मारने के लिये दौड़ा और कहने लगा कि प्रथम तो तुमने नाथ पंथ का घर छोड़ दिया और अब हमसे भ्रान्ति करता है। उसी समय ही दूसरे साधुओं ने उसे पकड़ लिया और कहा कि इसके मारने से क्या होगा? हम सभी अभी चलते हैं इसके गुरु पीर को देखते हैं। जिसने भी इस नाथ को बिश्नोई बनाया है उसकी खबर लेंगे। इस प्रकार से सभी एकत्रित होकर वहाँ से रवाना हुए।

लक्ष्मण नाथ ने तो मण्डली सहित दूर ही डेरा लगा दिया और अपने एक दूत को भेजा और कहा-कि उस जम्भदेव से जाकर कहो कि लक्ष्मणनाथ यहाँ आया हुआ है, उनके सामने पैदल चलकर क्षमा याचना करो। तुम्हारे कर्मो की गलती की वो क्षमा कर सकते हैं तब जम्भेश्वर जी ने उस दूत से कहा कि लक्ष्मण नाथ में क्या विशेषता है जो मैं उनसे माफी मांगूं। तब दूत ने कहा कि वे अपार शक्ति वाले सिद्ध है। दिन में चाहे तो बाल, वृद्ध, युवा तीन रूप धारण कर लेते है। तब समीप में बैठे हुऐ बिश्नोइयों ने कहा ऐसा नाटक तो वैश्या दिखाया करती है। उस दूत के प्रति श्री देवजी ने इस प्रकार से कहा-

सबद-48

ओ३म् लक्ष्मण लक्ष्मण न कर आयसां, म्हारे साधां पड़ै बिराऊं।
लक्ष्मण सो जिन लंका लीवी, रावण मार्‌यो ऐसो कियो संग्रामूं।

भावार्थ-हे आयस्! तूँ बार-बार लक्ष्मण-लक्ष्मण मत कह, ऐसा कहने से हमारे जो श्रोता साधु-भक्त जन है, उन्हें संदेह पैदा होता है। लक्ष्मण ऐसा कहने से ये लोग राम का भाई लक्ष्मण भी समझ सकते हैं। यह लक्ष्मण नाथ तो एक साधारण व्यक्ति ही है, वह राम का भाई लक्ष्मण कदापि नहीं हो सकता। उस राम के भाई लक्ष्मण ने तो महाबलशाली रावण को मारा था तथा अन्य राक्षस मेघनादादि को मारकर लंका पर विजय हासिल की थी। लक्ष्मण तो ऐसा योद्धा था जिसने लंका में ऐसा भयंकर युद्ध किया था। वह लक्ष्मण साधारण व्यक्ति लक्ष्मण नाथ नहीं हो सकता।

लक्ष्मण तीन भवन का राजा, तेरे एक न गाऊं।
लक्ष्मण के तो लख चौरासी जीया जूणी, तेरे एक न जीऊं।

वह श्री राम का भाई लक्ष्मण तो मृत्यु लोक, स्वर्ग लोक एवं वैकुण्ठ लोक इन तीनों भवनों के राजा है किन्तु हे आयस्! तेरे लक्ष्मण के पास तो एक गाँव भी नहीं है। तुम्हारा लक्ष्मण नाथ तो स्वयं भिक्षुक है तथा श्री राम के भाई लक्ष्मण के तो चौरासी लाख जीवों का समूह उनका अपना परिवार है वे सब के स्वामी है। किन्तु तुम्हारा तो अपना कोई जीव भी साथी नहीं है अर्थात् तुम्हारा लक्ष्मणनाथ किसी का भी स्वामी नहीं है।

लक्ष्मण तो गुणवंतो जोगी, तेरे बाद विराऊं।
लक्ष्मण का तो लक्षण नांही, शीस किसी विध नाऊं।

श्री राम का अनुज लक्ष्मण तो महान गुणवान योगी था किन्तु तुम्हारे लक्ष्मणनाथ के अन्दर तो अब तक वाद-विवाद संशय वासना बैठी हुई है। इसलिये तुम्हारे इस लक्ष्मणनाथ में तो एक भी लक्षण अच्छा नहीं है। तो

फिर सिर क्यों झुकाऊँ तथा क्यों ही उनके सामने जाऊँ। यदि वास्तव में होता तो अवश्य ही जाता।

★★★★

''दोहा''

जोगी सतगुरु यूं कहै, वाता तणा विवेक।
सतगुरु हमने भेटियों, दर्शन किया अलेख।

वह जोगी दूत बनकर आया था, कहने लगा–हे महाराज! वे हमारे लक्ष्मण नाथ तो बड़े विवेकी है। उन्होंने हमें ज्ञान बताया है। इसलिये हमने सतगुरु परमात्मा का दर्शन कर लिया है। तब गुरु जाम्भोजी ने सबद द्वारा इस प्रकार से बतलाया।

सबद–49

ओ३म् अबधू अजरा जारले, अमरा राखले, राखले बिन्द की धारणा।
पताल का पानी आकाश को चढ़ायले, भेंट ले गुरु का दरशणा।

भावार्थ–हे अवधूं! जो तुम्हें नित्य प्रति जलाने वाला काम, क्रोध, मोह, राग–द्वेष आदि ये तुम्हारे अब तक जले नहीं है। समाप्त नहीं हुए है। अब इनको तूँ जला दे। भस्म कर दे। तब तुम्हारा अन्तःकरण पवित्र होगा। अमरा राखले अर्थात् दया, प्रेम , करूणा, नम्रता, शील आदि सद्गुणों को धारण कर ले। इनको सदा ही अमर रख ले। कभी भी इनसे विछोह न हो। इतना रखने के पश्चात् योगी की मुख्य अमूल्य वस्तु है ब्रह्मचर्य की रक्षा करना वह भी यत्न करके अर्थात् ऊर्ध्वरत ब्रह्मचारी हो जा।

ब्रह्मचर्य सदा ही नीचे की ओर बहता है, यह तो इसका स्वभाव है तथा इनका स्थान भी नीचे ही है। इसे सहस्रार ऊर्ध्व की ओर चढ़ाने का प्रयत्न करें। इस ऊर्जा शक्ति का अपव्यय रोककर इसे परमात्मा के दर्शन में सहायक बना अथवा ये तुम्हारी वृत्तियाँ है ये सदा ही नीचे विषयों की तरफ भटकती है इन्हें इन विषयों से ऊपर उठाकर परमात्मा की तरफ स्थिर करेगा तो सद्गुरु परमात्मा का दर्शन स्वतः ही हो जायेगा। योगी के लिये तो परमात्मा का दर्शन करना ही प्रथम कर्तव्य है।

★★★★

''दोहा''

जोगी कहै सुण देवजी, बाला लक्ष्मण योग अपार।
मुख नहीं देखे त्रियां को, बचै नेक प्रकार।
शान्त चित आई तवै, विषय निवारै सोय।
अब विषय धारण करै, जोग भ्रष्ट सो होय।

वह योगी फिर कहने लगा–हे देव! बाल योगी लक्ष्मण नाथ का तो योग अपार है। वह तो स्त्री का मुख भी नहीं देखता तथा अनेक प्रकार से बचने की कोशिश करता है क्योंकि जब तक विषयों का निवारण नहीं करेगा तब तक योगी का चित शान्त नहीं हो सकता और यदि विषयों की तरफ योगी की दृष्टि चली जाये तो

उसका योग भ्रष्ट हो जाता है। इसलिये नाथजी बड़ी ही सावधानी से रहते हैं। इस वार्ता को श्रवण करके उनके प्रति सबद सुनाया।

सबद-50

ओ३म् तइयां सासूं तइया मासूं, तइया देह दमोई।
उत्तम मध्यम क्यूं जाणिजै, बिबरस देखो लोई।

भावार्थ-जब तक योगी की दृष्टि में स्त्री-पुरुष का भेदभाव विद्यमान रहेगा तब तक वह सच्चा योगी सफल योगी नहीं हो सकता। जब तक सर्वत्र एक ज्योति का ही दर्शन करेगा तो फिर भेद दृष्टि कैसी? और यदि भेद दृष्टि बनी हुई है तो फिर वह योगी कैसा। इसलिये कहा है-कि जो श्वांस एक पुरुष में चलता है वही स्त्री में भी चलता है तथा जो मांस एक पुरुष के शरीर में है वही स्त्री में भी है और यह पंचभौतिक देह स्त्री पुरुष दोनों की बराबर है तथा जीवात्मा में भी कोई भेद नहीं है। परमात्मा का अंश प्रतिबिम्ब रूप जीव भी सभी का एक ही है। तो फिर अपने को योगी कहते हुऐ भी उत्तम और मध्यम क्यों जानता है। स्त्री को मध्यम अदर्शनीय क्यों कहता है हे लोगों! अब आप ही विचार करके देखिये।

जाकै बाद विराम बिरासों, सरसा भेला चालै, ताकै भीतर छोत लकोई।

यह भेद दृष्टि क्यों है? क्योंकि जिस योगी को अब तक व्यर्थ के विवाद द्वारा विजय की लालसा, साधना रहित, निष्क्रिय जीवन जीते हुऐ विषयों में रमण, अपनी प्रसिद्धि और धन के लिये योग का झूठा दिखावा या नाटक करना तथा संशय की निवृत्ति न होना, प्रत्येक विषय में ही रस लेना इत्यादि भूलों में ही जीवन व्यतीत होगा तो उसके भीतर यह भेदभाव, छोटे-बड़े स्त्री-पुरुष छोत अन्दर छुपी हुई रहेगी इस भेद दृष्टि को मिटा नहीं सकता। इसलिये समान दृष्टि के लिये इन ऊपर के एक एक दोषों को बाहर निकालना ही होगा।

जाकै बाद विराम बिरासों सांसो, सरसा भोलो भागो, ताकै मूले छोत न होई।

और जिस सच्चे योगी के बाद विराम, विरासों, संशय, सरसपना तथा यह भोलापन मिट जाता है उसके मूल में कभी छोत भेदभाव दृष्टि नहीं हो सकती। तुम्हारे लक्ष्मणनाथ की भेद दृष्टि अब तक निवृत्त नहीं हुई है इसलिये पूर्ण योगी भी नहीं है।

दिल दिल आप खुदायबन्द जाग्यो, सब दिल जाग्यो सोई।
जो जिंदो हज काबै जाग्यो, थल सिर जाग्यो सोई।

इस समय प्रत्येक दिल रूपी हृदय में वह सोई हुई जीवात्मा जागृत हो गई है उनके सुषुप्त संस्कारों को जागृत कर दिया जाता है तथा उन सोई हुई जीवात्माओं के रूप में वह स्वयं परमेश्वर ही था और अब जागृत होने वाला भी वही परमात्मा ही है। अब ये लोग परमात्मा के समिपस्थ होने से सचेत हो चुके हैं। इन्हें आप ठग नहीं सकते तथा जो महापुरुष कभी हज काबै में जागृत हुआ था, परमात्मा से साक्षात्कार किया था, वही परमात्मा जागृत होने वाला अब यहाँ सम्भराथल पर जगाने आया है। इसलिये यह सम्भराथल पर स्थित पुरुष स्वयं जागृत है तथा अनेकानेक लोगों को जागृत किया है।

नाम विष्णु के मुसकल घातै, ते काफर सैतानी।

विष्णु नाम जपने वालों को जो अड़चन पैदा करता है वे या तो काफिर-नास्तिक है या फिर जोर जबरदस्ती करने वाले शैतान है, ऐसे लोगों से बचकर रहना ही श्रेष्ठ है।

हिन्दू होय कर तीरथ धोकै, पिण्ड भरावै तेपण रह्या इवाणी।

जोगी होय के मूंड मुंडावै, कान चिरावै, गोरख हटड़ी धोकै।
तेपण रह्या इवाणी, तुरकी होय हज काबो धोकै, भूला मुसलमानों।

हिन्दू होकर भी जो घर बैठा-बैठा ही तीर्थो को धोक लगाता है अर्थात् प्रणाम कर लेता है तथा गयाजी में जाकर मृत्यु के पश्चात् गया जी में परिवार के लोग पिण्ड दान करते हैं उस मृतात्मा को स्वर्ग में भेजना चाहते हैं। ऐसे पाखण्ड में रत होकर फिर भी अपने को हिन्दू कहते हो। ऐसे हिन्दू बनने से तो कोई लाभ नहीं है। वे तो खाली ही रह गये। न तो घर में बैठे हुए तीर्थो की धोक लगाने से लाभ होगा और न ही पिण्ड भराने से ही मुक्ति मिल सकेगी। हिन्दू का कर्तव्य यहीं पर ही समाप्त नहीं हो जाता।

तथा योगी होकर भी सिर मुंडा लेते हैं कान चिरवा करके मुद्रा डाल लेते हैं और कोई योगिक साधना तो करते नहीं किन्तु गोरख नाथ जी के धूंणें पर ही जाकर पूजा-प्रणाम कर लेते हैं। ऐसे योगी भी भूल में ही है जीवन में कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकते। उसी तरह मुसलमान भी हज काबै की धोक लगा लेते हैं। इन तीनों की न तो तीर्थ, गोरख हटड़ी और काबै की हज रक्षा करती। यदि ये ऐसे समझते है तो भारी भूल में है।

के के पुरुष अवर जागैला, थल जाग्यो निज बाणी।
जिहिं के नादे वेदे शीले शब्दे, लक्षणें अन्त न पारूं।
अंजन मांही निरंजन आछै, सो गुरु लक्ष्मण कंवारूं।

इस धरती पर कई तरह के और भी पुरुष जागेंगे। उनका जागृत होने का अपना एक भिन्न ही तरीका होगा वह तो भविष्य ही बतायेगा। यह जागृत होने की धारा सदा ही चली आई है। उसी प्रवाह में ही इस सम्भराथल पर अपनी सबदवाणी के सहित गुरु जाम्भोजी कहते है कि मैं आया हूँ। अन्य अवतारी पुरुषों में तो कोई एक विशेषता रही होगी किन्तु इस समय सम्भराथल पुरुष के तो इस वाणी में विशेषत: अनहद नाद विद्या का बखान, वेद के विस्तृत ज्ञान की चर्चा शीलता, नम्रता आदि गुणों का, नाद विद्या का बखान इत्यादि सुन्दर लक्षणों का अन्त पार ही नहीं है तथा जैसा भी मैं शब्दों द्वारा बखान करता हूँ। वह मेरा अपना निजि अनुभव ही है।

प्रथम तो मैं किसी बात को अनुभव रूपी तराजू से तोलता हूँ, फिर दूसरों को कहता हूँ। मुझे इन गुणों को धारण करने में कोई कठिनाई भी नहीं होती क्योंकि इस शरीर रूपी अंजन माया में ही वह निरंजन माया रहित ज्योति ही प्रकाशित है इसलिये मैं ही वही लक्ष्मण कुमार हूँ जो विष्णु के अंश रूप से अवतार प्रसिद्ध है तथा हे आयस्! इन सद्गुणों से विभूषित ही लक्ष्मण कुमार हो सकता है।

★★★★

''दोहा''

जोगी शब्द मांनै नहीं, सतगुरु कही विचार।
देवजी न्हयालै साध न, हुकम कियो तिण बार।
न्हयालै ने सतगुरु कह्यो, आयसां ने समझावों।
बैठो आसन अधर कर, लखमण सो जसवावों।
मारग में पतियो लियो, आसण टिक्यो न कोय।

तब जाण्यो नहीं जीतस्यूं, पूठो आयो सोय।
मैं प्रभु जाऊं नहीं, सिद्धि मोपे नांहि।
मारग में पतियो लियो, गिर पड़ियो भूंय मांहि।
पूठ थापली जम्भगुरु, रहो जु मन में सेंठो।
तब जन न्हयालै जाय कै, अधर सूं आसण बैठो।
अवनी सूं इकीस गज, बैठो दीखे सोय।
इह सिद्ध म्हां सुं अधिक है, देख डरे सब कोय।
बैठ वचन ऐसो कह्यो, लखमण सूं सवायो।
कै आसण मोपै करो, कै पूठा उठ ज्यावो।
जोगी हारे उठ चले, कहे आदेश आदेश।
जम्भेश्वर पूरा गुरु, मन आयो उपदेश।

सतगुरु ने बहुत ही विचारपूर्ण बात कही परन्तु उस योगी ने स्वीकार नहीं किया। तब देवजी ने उस योगी को तो अपने पास में बैठा लिया और निहालदास साधु को अपनी सिद्धि देकर लक्ष्मण के पास भेजा और कहा कि इन आयसों को समझा करके मेरे पास ले आओ। निहालदास ने चलते चलते ही सिद्धि की परीक्षा करनी चाही कि मेरा आसन धरती के उपर उठता है कि नहीं यह देखना चाहिये। नहीं तो आगे जाकर कहीं बदनामी तो न हो जाये। ज्योंहि आसन उछाल करके आसन उपर उठाने की कोशिश की त्योंहि धरती पर गिर पड़ा। निहालदास वहीं से वापिस लौट आया और कहने लगा–

हे सतगुरु मैं तो नहीं जा सकता क्योंकि सिद्धि मेरे पास में नही है। यह मार्ग में मैंने देखा है। तब जम्भगुरु ने पीठ पर थापी लगायी और कहा–अब तुम फिर वापिस जाओ किन्तु मार्ग में परीक्षा नहीं करना। लक्ष्मण नाथ के डेरे में पहुँचकर निहालदास ने धरती से इक्कीस गज ऊँचा आसन लगाकर सिद्धि बल से स्थिर हो गया। तब योगी लोग देखकर डर गये और कहने लगे– यह सिद्ध तो हमारे से ज्यादा है। निहालदास ने उनसे कहा–या तो तुम मेरे से ऊपर आसन करके दिखाओ या हार मानकर जम्भदेवजी के पास चलो। तब लक्ष्मण नाथ सहित सभी लोग आदेश आदेश कहते हुए वहाँ से सम्भराथल चल पड़े।

इस प्रकार से सम्भराथल पर पहुँचकर जाम्भोजी को चारों तरफ से घेरकर बैठ गये और कहने लगे कि हमने सुना है कि जाम्भोजी निराहारी है। किन्तु हम इस बात को कदापि स्वीकार नहीं कर सकते। या तो स्वयं कहीं भोजन कर आते हैं या कोई रात्रि में भोजन दे जाता है इसी परीक्षा के लिये तीन दिन रात जाम्भोजी को घेर कर बैठे रहे। तीसरे दिन सूर्यदेव की किरणें अति तीक्ष्ण हो गयी जिससे योगी लोगों को करारी ताप लगी। कई तो इधर–उधर छाया ताकने लगे और कई भूख के मारे बेहाल होकर गाँवों में भिक्षा के लिये चले गये, किन्तु जम्भदेवजी वहीं पर ही स्थिर रहे।

उन सभी को विपत्ति में पड़े हुऐ देखकर श्री देवजी ने उनके लिये भिक्षा भोजन की व्यवस्था करवायी। सभी को भोजन परोसा गया तब लक्ष्मणनाथ कहने लगा–आप भी आइये भोजन कीजिये क्योंकि बड़े–बड़े अवतार हुऐ है उन्होंने सभी ने भोजन किया है। यदि आप भोजन नहीं करोगे तो हम भी नहीं कर सकते। तब जम्भेश्वर जी ने कहा–कि तुम लोग विवाद मत करो। इसमें भी फिर तुम्हारी ही हार होगी। मुझे

भूख होती तो अवश्य ही भोजन करता। आप लोग भूख से व्याकुल है इसलिये भोजन कीजिये। ऐसा कहते हुऐ सबद सुनाया।

सबद-51

ओ३म् सप्त पताले भुंय अंतर अंतर राखिलो, म्हे अटला अटलूं।
अलाह अलेख अडाल अजूनी शिंभू, पवन अधारी पिंड जलूं।

भावार्थ-इस शरीर के अन्दर ही सप्त पाताल है जिसे योग की भाषा में मूलाधार चक्र जो गुदा के पास है इनसे प्रारम्भ होकर इससे उपर उठने पर नाभि के पास स्वाधिष्ठान चक्र है इससे आगे हृदय के पास मणिपूर चक्र, कण्ठ के पास अनाहत चक्र, भूमण्डल में विशुद्ध चक्र तथा उससे उपर आज्ञा चक्र है। इन छः पाताल यानि नीचे के चक्रों को भेदन करता हुआ सातवें सहस्रार ब्रह्मरध्र में प्राण स्थित हो जाते है तब योगी की समाधी लग जाती है। जम्भदेवजी कहते हैं कि मैंने तो अपने प्राणों को इन सात चक्रों के अन्दर ही रख लिया है।

प्राणों का धर्म है भूख-प्यास लगना। वे प्राण तो समाधिस्थ होकर सहस्रार-ब्रह्मरध्र से झरते हुऐ अमृत का पान करते हैं। फिर मुझे आवश्यकता अन्न की नहीं है। इसलिये मैं स्थिर होकर यहाँ बैठा हुआ हूँ। यह पृथ्वी जल का बना हुआ शरीर अवश्यमेव जल और अन्न की मांग करेगा। किन्तु प्राणों को जीत करके समाधी में स्थित हो जाने पर तो फिर शरीर से उपर उठकर यह आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप को जो अलाह, अडाल, अयोनी, स्वयंभू के रूप में ही स्थित हो जाती है। यही आत्मा का शुद्ध स्वरूप है।

काया भीतर माया आछै, माया भीतर दया आछै।
दया भीतर छाया जिहिं कै, छाया भीतर बिंब फलूं।

क्योंकि इस पंच भौतिक शरीर के भीतर ही माया है अर्थात् माया प्रकृति शरीर के कण-कण में समायी हुई है क्योंकि माया से ही यह शरीर निर्मित है। उसी शरीर रूपी माया के अन्दर हृदय है। वही इसी शरीर के अन्दर ही है। उसी हृदय में भी माया की छाया में ढ़का हुआ वह परमपिता परमात्मा का प्रतिबिम्ब रूप आत्मा स्थित है वही फल रूप है। उसी फल की प्राप्ति के लिये प्रथम तो ज्ञान द्वारा माया का छेदन होगा तो उसकी छाया भी निवृत्त हो जायेगी फिर आत्म साक्षात्कार होगा।

पूरक पूर पूर ले पोंण, भूख नहीं अन्न जीमत कोंण।

यही आत्म साक्षात्कार और माया का भेदन मैंने प्राणायाम द्वारा किया है। पूरक, रेचक, कुम्भक इन्हीं विधि से प्राणों को अधीन किया है। अब मुझे भूख ही नहीं लगती तो फिर बताओ भूख के बिना क्या अन्न खाया जाता है।

★★★★

''दोहा''

जोगी इस विधि समझिया, आया सतगुरु भाय।
देव तुम्हारे रिप कहो, म्हानै द्यो फुरमाय।
सतगुरु कहै विचार, तुम्हारा तुम पालों।

जोगी कहै इण भाय, नहीं दुसमण को टालों।
देव कहै खट् उरमी, थारे दुसमण जोर।
भूख तिस निद्रा घणी, तुम जांणों कई और।
तुम्हारा तुम पालो सही, हमारा हम पालेस।
सतगुरु शब्द उचारियो, जोग्या कियो आदेश।

उपर्युक्त सबदों की बात योगियों के कुछ समझ में आयी, सभी ने प्रेम पूर्वक भोजन किया सतगुरु सभी को अच्छे भी लगे। भोजन के बाद में लक्ष्मणनाथ ने कहा कि हे देव! यदि आपके कोई शत्रु है तो आप हमें बतला दीजिये। हम उनको नष्ट करके आपको निर्भय कर देंगे। तब श्री देवजी ने कहा कि हमारे यहाँ तो कोई दुश्मन नहीं है। किन्तु तुम्हारे ये जन्म-मरण, क्षुधा, तृषा, हर्ष, शोक, षट् उर्मिया जबरदस्त दुश्मन है। आप इनकों रोकिये मेरी चिंता न कीजिऐ। ऐसा कहते हुऐ शब्द उच्चारण किया।

सबद-52

ओ३म् मोह मण्डप थाप थापले, राख राखले, अधरा धरूं।
आदेश वेसूं ते नरेसूं, ते नरा अपरंपारूं।

भावार्थ-इस विशाल संसार में मनुष्य अपना मोह जाल फैलाता है यही कहता है कि यह मेरा है और यह पराया है जो मेरा है उससे मोह हो जाता है वह मुझे प्राप्त हो मेरे पास रहे। एक वस्तु प्राप्त हो जाती है तो दूसरी पर दृष्टि दौड़ाता है सभी वस्तुएँ तो प्राप्त होनी असंभव है तो फिर दु:खी हो जाता है। जम्भदेवजी कहते हैं कि इस मोह-माया के फैलाव को समेट कर मण्डप बना लें। एक जगह परमात्मा में ही मोह को एकत्रित कर लें। वही तुम्हारे लिये भवन बन जायेगा। जो तुम्हें सहारा भी देगा।

उसी दिव्य मोह निर्मित भवन के नीचे इन पांच ज्ञानेन्द्रियों सहित मन को स्थिर करो। जब तुम्हारा मोह परमात्मा विषयक हो जायेगा तो वह प्रेम में परिवर्तित हो जायेगा। उसी प्रेम में यह मन भी लीन होकर स्थिर हो जायेगा। जब मोह का विस्तार समाप्त हो जायेगा तो फिर मन बेचारा कहाँ जायेगा इसे भी परमात्मा की छत्र छाया में विश्राम मिलने लग जायेगा। वह चंचल मन अधर होते हुऐ भी धैर्यवान शांत हो जायेगा। फिर वह इन्द्रियों सहित आपके आदेशानुसार चलेगा, बैठेगा, शांत रहेगा। वही नरेश वही स्वकीय इन्द्रियों का, मन का राजा है तथा वही नर श्रेष्ठ है। जिसकी महिमा का कोई आर-पार नहीं है। वही व्यक्ति पूजनीय होता हुआ जीवन को सफल बना लेता है।

रण मध्ये से नर रहियों, ते नरा अडरा डरूं।
ज्ञान खड़गूं जथा हाथे, कौण होयसी हमारा रिपूं।

मोह को जीत करके उसे जो सदुपयोग में लगा दे अर्थात् परमात्मा के प्रेम रूपी मण्डप में परिवर्तित कर दे, ऐसा नर ही संसार रूपी युद्ध के मैदान में संघर्ष करता हुआ भी उससे बाहर हो जाता है। यह संसार दु:ख तो मोह लिप्त प्राणी के लिये ही है निर्मोही जन तो संसार में जीवन यापन करता हुआ भी दु:खों से दूर रहता है। ऐसे जन न तो कभी किसी से डरते हैं और न ही किसी को डराते हैं। इसलिये हे लक्ष्मण! मैंने तो इस प्रकार के दिव्य-अलौकिक ज्ञान रूपी खड़ग हाथ में ले ली है। यह खड़ग हाथ में रहते हुऐ हमारा शत्रु कौन हो सकता

है। आप भी इन लोहे के अस्त्र-शस्त्र को छोड़कर यह ज्ञान रूपी तलवार ही धारण कीजिये। आपके सभी शत्रु स्वत: ही नष्ट हो जायेंगे।

★★★★

''दोहा''

सुणते ही जोगी गया, सतगुरु के सुण वाच।
दुभद्या मन की सब गई, आयो तन में साच।
प्रसंग-22 दोहा
तब ही जमाती बोल उठे, समझावो गुरु ज्ञान।
ज्ञान पाय गुरु आप से, सुखी भये कति जान।
भूत भावी यह काल की, हम नहीं जाणै सार।
लक्ष्मण पांगल की सुणी, जानन चहि कछु पार।

लोहा पांगल और लक्ष्मण नाथ को सबद श्रवण करवा रहे थे तभी अन्य साधु भक्तों की जमात ने भी ध्यान पूर्वक वार्तालाप को श्रवण किया। जब योगी लोग चले गये तब सभी जमाती लोग एक स्वर से बोल उठे कि हे देव! हमने अभी अभी लोहा पांगल तथा लक्ष्मण नाथ को दिया हुआ उपदेश श्रवण किया है तथा ज्ञान को प्राप्त करके खुशी से भर चुके हैं किन्तु यह नहीं जान सके कि इनसे अतिरिक्त अन्य तीनों कालों में आपसे इसी प्रकार से ज्ञान वार्ता श्रवण करके कितने लोग कब-कब आनन्दित हुए है। अन्य लोगों के बारे में विस्तार से जानना चाहते हैं, ऐसी दिव्य वार्ता श्रवण से हमें आनन्द मिलता है इसलिये कृपा करके आप हमें बतलाइये, तब जम्भेश्वर जी ने सबद उच्चारण किया।

सबद-53

ओ३म् गुरु हीरा बिणजै, लेहम लेहूं, गुरु नै दोष न देणा।

भावार्थ-जो सतगुरु होगा वह तो हीरों का व्यापार करेगा इसलिये मैंने भी यही किया है अर्थात् उत्तम ज्ञान ही लोगों को दिया है जिससे जीवन में युक्ति सिखलाई है। जीवन की कला में प्रवीण करके अन्त में युक्ति का मार्ग प्रशस्त किया है। यदि कोई लेना चाहता है तो ले सकता है। यहाँ पर किसी से कोई भेदभाव नहीं है और इसी प्रकार घर में आयी हुई गंगा में स्नान नहीं किया तो फिर गुरु को दोष नहीं देना।

पवणा पाणी, जमी मेहूं, भार अठारै परबत रेहूं।
सूरज जोति परै परेरै, एति गुरु के शरणै।

यह दृष्ट-अदृष्ट, पवन, पानी, धरती, वर्षा, अठारह भार वनस्पति, पर्वत श्रेणियां, सूर्य तथा सूर्य की ज्योति जहाँ तक पहुँचती है वहाँ तक तथा उससे भी आगे तक पहुँचती है वहाँ तक तथा उससे भी आगे तक जहाँ तक शून्य है वहाँ तक सभी कुछ गुरु ईश्वर परमात्मा के ही शरण में है उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय गुरु के ही अधीन है।

केती पवली अरू जल बिम्बा, नवसै नदी निवासी नाला, सायर एति जरणां।

तथा जिस प्रकार से कई छोटे तथा बड़े तालाबों का जल, झरनों का जल एवं अनेकों प्रकार की नयी तथा पुरानी नदियों का जल, जिनमें नालों का जल समाहित हो जाता है। यह सभी प्रकार का जल अन्त में नदी द्वार से जाकर समुद्र में ही मिल जाता है और समुद्र उसे अपने अन्दर स्थान दे देता है। उसी प्रकार से ही पर्वत, पवन, पानी, आदि सभी उसी परम तत्त्व रूप गुरु में ही समाहित हो जाते है। उसी से ही उत्पत्ति तथा स्थिति भी होती है।

कोड़ निनाणवै राजा भोगी, गुरु के आखर कारण जोगी।
माया राणी राज तजीलो, गुरु भेंटीलो जोग सझीलो, पिण्डा देख न झुरणां।

सृष्टि प्रारम्भ से लेकर अब तक निनाणवे करोड़ राजा जो भोग विलास में लिप्त थे। वे सभी सचेत होकर गुरु की शरण में आये। सतगुरु ने उन्हें सदुपदेश दिया जिससे उन्होंने मोह माया, रानी, राज आदि सभी कुछ छोड़कर योग की साधना की। तपस्या काल में अनेकों कष्ट उठाये। शरीर को सूखा दिया किन्तु उस थके हुऐ शरीर को तथा कष्ट को देखकर परवाह नहीं की। वे लोग भोग की पराकाष्ठा से योग की पराकाष्ठा तक पहुँच गये।

कर कृषाणी बेफांयत संठो, जो जो जीव पिण्डै नीसरणा।
आदै पहलूं घड़ी अढ़ाई, स्वर्गे पहुंता हिरणी हिरणा।
सुरां पुनां तेतीसां मेलों, जे जीवन्तां मरणों।

हे मानव! यदि साधना रूपी खेती करनी है तो हिम्मत धैर्य रखकर के बहुत समय तक लगातार कर तभी यह फलदायक होगी। खेती तथा योग साधना, जप, तप, साधना दोनों ही समय और धैर्य परिश्रम की मांग करते हैं तथा यह साधना निरंतर तब तक करते रहो जब तक शरीर से प्राण न निकल जाये अर्थात् अन्तिम समय तक।

एक शिकारी ने वन में हिरणी को पकड़ लिया था। उस हिरणी ने शिकारी को वचन देकर अपने बच्चों को बहन को सौंपने के लिये पहुँची तथा वापिस अपने बच्चों तथा बहन तथा बहन के पति सहित आकर शिकारी के सामने उपस्थित हो गई थी। उसने वचन देकर निभाया था। सत्य का पालन करने से अढ़ाई घड़ी में ही वो छः जनों का पूरा परिवार स्वर्ग का अधिकारी बन गया था और शरीर त्याग करके तेतीस करोड़ देवताओं से जाकर भेंट किया था। उन्होंने अपने वचनों का पालन प्राण देकर भी किया था। इसके फलस्वरूप कहावत है कि अब भी आकाश में नक्षत्रों के रूप में विचरण कर रहे हैं।

के के जीव कुजीव, कुधात कलोतर बाणी।
बादीलो हंकारीलो, वै भार घणां ले मरणो।

इस लोक में सभी तरह के जीव है। कुछ सज्जन तो कुछ कुजीव। दुर्जन भी यहीं रहते है। वे लोग शरीर के अंग प्रत्यंग से कुधात है। उनकी बनावट भी ऐसी ही है। जिससे वे लोग शुद्ध वाणी भी बोलना नहीं जानते। जब कभी भी बोलते हैं, तो कलहकारी बाणी ही बोलेंगे। बात बात पर व्यर्थ का विवाद उठायेंगे तथा अहंकार का ही पोषण करने वाले कार्यों का ही बढ़ावा देगे। ऐसे लोग अत्यधिक भार लेकर ही इस धरती से जायेंगे, पापों के बोझ तले दबे हुए रहेंगे तथा दबे हुए ही चले जायेंगे।

मिनखा रै तैं सूतै सोयो, खूलै खोयो, जड़ पाहन संसार विगोयो।
निरफल खोड़ भरांति भूला, आस किसी जा मरणों।

रे मानव! तूँ गहरी निंद्रा में सोता रहा, युवावस्था में तेने खुलकर शक्ति का नाश किया। उस शक्ति को तूँ परमात्मा में लगाता तो अच्छा था किन्तु तुमने अधिकतर ऊर्जा का तो विषय भोगों में नष्ट किया तथा कुछ अवशिष्ट शक्ति को परमात्मा के नाम पर या तो पत्थर की मूर्तियों पर मथा पटका या फिर पेड़ पौधों पर विश्वास करके अपने जीवन को व्यर्थ कर दिया। जैसे खेती रहित उजाड़ वन में कोई धान फल फूल खोजता फिरे किन्तु वहाँ फल कहाँ से मिलेगा। उसी प्रकार से इस संसार के विषयों में तूँ सुख रूपी फल खोजता रहा वहाँ सुख कहाँ था। तब यह बतलाओ फिर किस आशा से मृत्यु को प्राप्त कर रहे हो। आगे कौनसा सुख मिलने वाला है। जब यहीं पर ही कुछ नहीं मिला तो आगे के लिये आशा करना व्यर्थ ही है।

वेसाही अंध पड़यो गल बंध, लियो गलबंध गुरु बरजंतै।
हैलै श्याम सुन्दर के टोटै, पारस दुस्तर तरणों।

हे अन्ध! तेरी गर्दन में वैसे ही बिना प्रयोजन के यह मोह माया रूपी फांसी पड़ गई है तूने देखा नहीं था। यदि देखता तो क्यों पड़ती तथा सद्गुरु ने जब गले में फांसी पड़ रही थी तो बताया भी था। सचेत भी किया था। किन्तु तुमने परवाह नहीं की अब क्या होगा। श्याम सुन्दर श्री कृष्ण ने श्री गीता में उद्घोषणा की थी किन्तु तुमने उनकी नहीं सुनी तो अब घाटा तुम्हारा ही पड़ेगा। इस महान घाटे को लेकर तो पार उतरना अति कठिन है।

निश्चै छेह पड़ेलो पालो, गोवलवास जु करणों।
गोवलवास कमाय ले जिवड़ा, सो सुरगा पुर लहणा।

इस मानव देह के रहते हुए यदि नहीं चेतेगा तो निश्चय ही परमात्मा से दूर हो जायेगा फिर कभी मिलन भी दुर्लभ हो जायेगा। गोवलवास अर्थात् घर से दूर अन्यत्र जगह पर कुछ दिनों के लिये निवास करना ऐसी स्थिति आ जायेगी। परिस्थितिवश वापिस घर आना मुश्किल हो जायेगा। इसलिये यही अच्छा रहेगा कि मानव जीवन में रहते हुए इस संसार को ही गोवलवास समझना। इसको अपना सच्चा घर समझकर मोह मत बढ़ाना। यहाँ पर तो कुछ दिनों का मेहमान ही मानना तो निश्चित ही अपने घर स्वर्ग से ऊपर परमात्मा के धाम में पहुँच सकेगा।

★★★★

''दोहा''

अज्ञानी हम अन्ध भये, नहिं जानत दिन रैण।
कृपा करो यदि पूर्ण गुरु, खुल जाये दिव्य नैण।
तत विवेक ज्ञाता बने, रहे शांत प्रभु चित।
रवि स्वयं ही रमण करे, या कछु और उगात।

ऊपर के शब्द को श्रवण करके फिर उन्हीं जमाती लोगों ने प्रार्थना की और कहने लगे-हे प्रभु! आप तो अन्तर्यामी सर्व समर्थ हैं किन्तु हम तो सांसारिक अज्ञानी जीव हैं। हमें तो सत्य असत्य का कुछ भी विवेक नहीं है और न ही शुभ कर्मो या अशुभ कर्मो का ही ज्ञान है। हम तो अन्धे के समान हैं। यदि आप हम पर कृपा

करो तो हमें दिव्य दृष्टि प्रदान करो तो हमारा चित शांत हो सकता है तथा शांत चित से ही हम आपकी दिव्य ज्योति का दर्शन कर सके हैं। हे प्रभु! हमें यह शंका सदा ही सताती रहती है कि यह प्रगट सूर्य देव नित्य प्रति समय से उदित हो जाता है तथा पूरे दिन रमण करता हुआ सांयकाल में फिर अस्त हो जाता है। इसके पीछे कोई और शक्ति कार्य कर रही है या स्वयं ही गति, प्रकाश तथा गर्मी देने में समर्थ है। तब जम्भेश्वर जी ने सबद सुनाया।

सबद-54

ओ३म् अरण विवाणे रै रिव भांणे, देव दिवाणें, विष्णु पुराणें।
बिंबा बांणे सूर उगाणें, विष्णु विवाणे कृष्ण पुराणे।

भावार्थ-यहाँ पर प्रथम तो सूर्योदय का सुन्दर वर्णन है। जैसे आपने देखा ही होगा सूर्योदय से पूर्व ही आकाश में पूर्व की ओर लालिमा छा जाती है तथा ज्योंहि सूर्य प्रगट होता है तो सूर्य की किरणें प्रथम जमीन ऊपर नहीं पड़ती किन्तु वनस्पति, पेड़, पौधों पर टिकती है वही अरणी ही सूर्यदेव का विमान है। जिनके ऊपर चढ़कर सर्वप्रथम प्रकाशित होता है। सूर्य स्वयं देवता है, क्योंकि वह देता है। हम से लेता कुछ भी नहीं है। सभी देवता भगवान विष्णु के कार्यकर्त्ता सेवक हैं तथा सभी को अलग अलग कार्य एवं पद सौंपा है। यह सूर्यदेव परमात्मा विष्णु का दीवान है। दीवान यानि संदेश वाहक का यही कार्य होता है कि वह देश देशान्तर में जाकर खबर पहुंचा दे। इसलिये सूर्यदेव रोज हमें खबर देने के लिये प्रकाशमय होकर आता है और जगा देता है।

स्वयं सूर्य अपनी ज्योति से प्रकाशित नहीं है। उसमें ज्योति तो अनादि पुराण सर्वेश्वर विष्णु की ही है उसी बिम्ब रूप विष्णु का यह प्रतिबिम्ब रूप यह सूर्य नित्य प्रति उदित होता है अपने कार्य हेतु परमात्मा विष्णु ने सूर्य को ज्योति प्रदान की है।वह जब चाहे तब वापिस भी ले सकते हैं तथा स्वयं विष्णु ही विवाण रूप में सूर्य का परम आधार है। प्राचीन काल में जब सृष्टि की रचना नहीं हुई थी, तब सूर्य भी प्रकाशमय नहीं था। तब तो इस संसार में अन्धकार ही छाया हुआ था। उस दयालु देव ने प्रथम सूर्य को ही प्रकाशित किया फिर जगत की रचना की थी।

कांय झंख्यो तै आल पिराणी, सुर नर तणों सबेरूं।
इंडो फूटो बेला बरती, ताछै हुई बेर अबेरूं।

हे प्राणी! इस संसार में परमात्मा द्वारा भेजा गया यह दीवान रूपी सूर्य जब उदित होता है तो उस समय ब्रह्ममूहुर्त में उठकर तेरे को उस दयालु परमात्मा विष्णु को धन्यवाद देते हुए, कृतज्ञता प्रगट करते हुए उनके प्रतिनिधि रूप सूर्य को नमन प्रणाम करना चाहिये था। किन्तु तूँ तो सोता रहा और यदि जग भी गया तो आल-बाल, झूठ-कपट, निंदा भरे वचन बोलने लगा। दिन से रात्रि, रात्रि से दिन के रूप में समय व्यतीत हो गया। इस ब्रह्माण्ड में कभी दिन का आवरण छाया रहता है और कभी रात्रि का। वह अण्डे की तरह उपर का आवरण सदा ही बना रहता है। किन्तु कभी कभी सूर्यदेव रात्रि का आवरण भंग करके दिन का आवरण चढ़ा देता है और दिन का आवरण समाप्त होता है तो रात्रि का आवरण छा जाता है। इसी प्रकार से वेला व्यतीत होती है।

मेरे परे सो जोयण बिंबा लोयण, पुरुष भलो निज बाणी।
बांकी म्हारी एका जोती, मनसा सास विवांणी।

गुरु जम्भेश्वर जी कहते हैं कि हम जैसे अवतारी पुरुषों से परे भी निराकार पुरुष परमात्मा जो ज्योति स्वरूप से सदा सर्वदा रहता है। जिसके सूर्य चन्द्र आदि ही नेत्र है। इनसे वो सदा सर्वदा ब्रह्माण्ड को देखता है तथा उनकी वाणी भी दिव्य अनहद नाद ओंकार ही है। उन ज्योति स्वरूप ब्रह्म और हमारी एक ही ज्योति है तथा सम्बन्ध भी सदा ही जुड़ा हुआ रहता है। उस सम्बन्ध को हम मन और श्वांस रूपी विवाण से जोड़ते है। प्राण वायु तथा मन की गति अतिशीघ्र होती है उनसे हम सदा सर्वदा निरंतर सम्बन्ध स्थापित करा सकते है।

को आचारी आचारे लेणा, संजमें शीले सहज पतीना।
तिहि आचारी नै चीन्हत कौण, जांकी सहजै चूकै आवागौण।

कुछ लोग तो उपर्युक्त निराकार ब्रह्म से ज्ञान योग द्वारा सम्बन्ध जोड़ लेते हैं तथा कुछ लोग सगुण साकार शरीर धारी आचार विचारवान को ही चाहते हैं तथा सम्बन्ध स्थापित करते हैं। उनके लिये श्री देवजी कहते हैं-कि मैं यहाँ पर शुद्ध आचार विचारवान, संयमी, शीलव्रत धारी सहज विश्वासी यहाँ पर स्थित हूँ यदि कोई मेरे से सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं तो उन्हीं नियमोंको जीवन में अपनाकर मेरे पास आओ। मुझ आचारवान को पहचानोंतो तुम्हारा आवागवण सहज ही मेंमिट जायेगा। इस प्रकार से साकार निराकार ये दोनों ही रूपों के द्वारा मानव गन्तव्य स्थान को प्राप्त कर सकता है। उनमें सगुण साकार रूप सहज है।

★★★★

प्रसंग-23 दोहा

खड़ बाढ़ण भेला हुआ, सहजे मांग्यो नीर।
जोगी चिंत्या मति करो, म्हांसूं राखो सीर।
रूपे सब सूं यूं कह्यो, मति दुखरावो मोहि।
हम छेड़या दुख भोगस्यों, परचौ देसूं तोहि।
विश्नोईयां का कापड़ा, रूपै दिया जलाय।
अन्द्र वन्ही उपनी, मन में नहीं समाय।
तब विश्नोई जायके, कहि सतगुरु सों बात।
क्रोध अग्नि याकै बहु, वस्त्र फूंकेऊ तात।
तब रूपे ऐसे कह्यो, सतगुरु सेती भेव।
दुखत प्रभु मोंसो कियो, सुणिये पूरण देव।

इससे पूर्व सबद प्रसंगों में बताया था कि लोहा पांगल को बिश्नोई बनाकर रूपा नाम रख करके धरनोक गांव में प्याऊ पर पानी पिलाने के लिये भेजा था। कुछ समय के पश्चात् धरनोक गाँव के निवासी तथा रूपाराम सभी लोग अमावस्या को सम्भराथल पर आये। वहाँ पर बैठकर जम्भदेवजी से शिकायत करते हुए कहा हे देव! आपने यह कैसा आदमी हमारे यहाँ रखा है। हम लोग घास काटने के लिये इकट्ठे हुए थे। इनसे पीने के लिये जल मांगा था और इससे हमने कहा भी कि पहले तो तुम महन्त थे किन्तु अब तुम्हारी महन्ताई कहाँ गई? कोई बात नहीं हम तुम्हारे साथ है हम लोगों से प्रेम भाव रखोगे तो तुम्हें हम कोई कष्ट नहीं होने देंगे। हे प्रभु! इसका तो अब तक क्रोध शांत नहीं हुआ है। जिसके फलस्वरूप इसने हमारे कपड़े जला दिये। यह व्यक्ति अब तक भूत-प्रेतों की सेवा करता है। यह हम लोगों को नुकसान पहुँचा सकता है।

इस शिकायत का समाधान देते हुऐ रूपाराम ने कहा–हे प्रभु! इन लोगों ने मुझे बहुत ही दु:खी कर दिया था। ऐसे कटु वचन मुझसे सहन नहीं हो सके थे और क्रोधाग्नि ने इनके कपड़े जला दिये थे। इसमें केवल मेरा ही दोष नहीं है कुछ इनका भी तो है। इस विवाद का समाधान श्री देवजी ने सबद द्वारा इस प्रकार से किया।

सबद–55

ओ३म् रणघटिये कै खोज फिरन्ता, सुण सेवन्ता, खोज हस्ती को पायो।
लूंकड़िये को खोज फिरंता, सुण सेवन्ता, खोज सुरह को पायो।

भावार्थ–हे रूपाराम! इस जीवन से पूर्व लोहापांगल के रूप में खरगोश की खोज में घूमा करता था, उसी खोज में ही तुम्हें हाथी मिल गया है अर्थात् भूत, प्रेत, भेरू, जोगणी आदि की सेवा में ही दिन व्यतीत करता था, मैंने तुम्हें हाथी रूपी परम तत्त्व की प्राप्ति के लिये तैयार कर दिया है तथा पहले तूँ लोमड़ी की खोज में घूमा करता था किन्तु यहाँ पर आने से तुम्हें सुरह दुधारू गाय मिल गई है अर्थात् सांसारिक विषय वासनाओं में सदा भटकता था। मैने गऊ दूध रूपी अमृत पान करवा दिया है। अब तुम्हें तृप्ति का अनुभव होना चाहिये था।

मोथड़िये के गूंढ़ खणंन्ता सुण सेवन्ता, लाधों थान सुथानों।
रांघड़ियों को घाट घड़न्ता, सुण सेवन्ता कंचन सोनो डायो।

तथा पूर्व में तूँ मोथ (एक जंगली घास है जो मरू भूमि में होती है।) की जड़ खोदा करता था तथा उसकी ही सेवा करता था। अब तुम्हें अमृतदायी फलदायी आम का वृक्ष मिल चुका है अर्थात् पूर्व अज्ञानावस्था में दूसरों की निंदा, व्यर्थ का तर्क–वितर्क वाद–विवाद द्वारा दूसरों के धर्म की जड़ खोदता था। अब तुम्हें परम तत्व रूपी उत्तम फलदायक वृक्ष बता दिया है। इसकी जड़ों को खोज, मजबूत कर तथा पानी पिला तथा रांग घड़ते हुऐ मैंने तुझे सोना घड़ने के लिये दिया अर्थात् पाखण्ड में ही प्रवृत्त रखने वाले को मैने पाखण्ड, असत्यता, झूठ, कपट व्यवहार से हटाकर के सत्य स्वर्णमय दिव्य ज्योति स्वरूप परमात्मा के साथ व्यवहार सम्बन्ध स्थापित करवा दिया।

हस्ती चड़न्ता गेवर गुड़न्ता, सुणही सुणहा भूंकत कायों।

हे रूपाराम! मैंने तुझे हाथी तथा ऊंचे पर्वत पर चढ़ा दिया है। अब तूँ हाथी पर बैठा हुआ निर्भय विचरण कर। तुझे देख करके यदि कुत्ते–कुत्तिया भोंकते है तो भोंकने दे। तेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। अर्थात् मैंने तुझे वह परम ज्ञान दिया है जिससे तुम्हें सर्वोच्च पद की प्राप्ति होगी। तूँ ऐसा मानों कि उस पद पर बैठ ही चुका है। तेरी वृत्ति उसमें स्थिर हो चुकी है तो फिर अब सांसारिक लोग तुझे कुछ भी कहते रहे। बुरा या भला तुझे चिंता क्रोध नहीं करना चाहिये।

★★★★

''दोहा''

दियो भण्डारो रूपै ने, वस्यों खिंदासर गांव।
जीया तो जुगती भली, मूवा मुक्ति सिधाव।

धरणोक गांव से हटाकर के रूपे को खिंदासर गांव में बसाया तथा सिंवर गोत्र रखी। वहाँ पर भण्डारे

का कार्य रूपे को सौंपा और कहा कि जीवन तो युक्ति से व्यतीत होगा और मृत्यु पर मोक्ष मिलेगा। ध्यान रहे कि उस समय चौबीस जगहों पर सदावृत भण्डारे चला करते थे। जिसमें जन साधारण की सेवा होती थी।

प्रसंग-24 दोहा

जमात कहै सुण देवजी, सुपात्र कहो विचार।
कुपात्र अरू दान को, निर्णय करो निरधार।

एक समय जमाती के लोग सम्भराथल पर एकत्रित हुए और जम्भदेवजी से प्रार्थना करते हुए कहा-हे देव! आप हमें सुपात्र और कुपात्र के बारे में बतलाइये तथा हम किसको दान दे और किसको न दें। इसका भी निर्णय कीजिये। तब जाम्भोजी ने यह सबद सुनाया-

सबद-56

ओ३म् कुपात्र कूं दान जु दीयो, जाणै रैण अंधेरी चोर जु लीयो।
चोर जु लेकर भाखर चढ़ियो, कह जिवड़ा तै कैने दीयो।

भावार्थ-कुपात्र को दिया हुआ दान निष्फल ही होता है। जैसे अंधेरी रात्रि में चोर ने ही मानों धन चुरा लिया है धन लेकर पर्वत पर चढ़ गया हो। वह धन न तो वापिस ही प्राप्त कर सकते और न ही आपने अपनी खुशी से सुपात्र को दिया है, इस संसार को छोड़कर जीव अब आगे पहुँचेगा तो उससे पूछा जरूर जायेगा, तब वह कहेगा कि मैंने अपने जीवन में बहुत दान दिया था किन्तु उससे फिर यह भी पूछा जायेगा कि तुमने दिया तो अवश्य ही परन्तु किसको दिया। यदि सुपात्र को दिया है तो देना है किन्तु कुपात्र तो जबरदस्ती छीन के ले जाता है तथा आपके अन्न धन का वह दुरूपयोग करेगा तो उस पाप के फल में भी तुम्हारा भाग होगा तथा आपका अन्न धन खाकर के शुभ कर्म करेगा तो उसमें भी आपको भाग जरूर मिलेगा।

दान सुपाते बीज सुखेते, अमृत फूल फलीजै।
काया कसोटी मन जो गूंटो, जरणा ढ़ाकण दीजै।

इसलिये दान तो सुपात्र को ही देना चाहिये। वही दान फूलता-फलता है और अमृतमय बन जाता है। जिस प्रकार से अच्छी साफ सुथरी जोताई गुड़ाई की हुई उपजाऊ भूमि में समय पर बोया हुआ बीज अनन्त गुण वाला हो जाता है। उसी प्रकार से सुपात्र को दिया हुआ दान भी। जिस सज्जन पुरुष ने अपनी काया को तपस्या रूपी कसौटी पर लगा दी हो, उस कसौटी-पारख में काया खरी उतरी हो तथा मन को एकाग्र कर लिया हो। संतोष धारण कर लिया हो। मन को एकाग्र करके जो ईश्वर ध्यान में मग्न होता हो, अर्थात् चंचल मन को स्थिर कर लिया हो, अजर जो सदा ही जलाने वाले काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, द्वेष, ईर्ष्या आदि जला दिया हो तथा उनकी राख पर भी संतोष, शांति, दया, कारूण्य रूपी ढक्कन लगा दिया हो, ताकि फिर कभी प्रगट न हो सके। ऐसा ही गुणों से सम्पन्न सुपात्र हो सकता है। यही सुपात्र की परीक्षा है। ऐसे लोगों को दिया हुआ दान अमृतमय फल वाला होता है।

थोड़े मांहि थोड़ेरो दीजै, होते नाह न कीजै।
जोय जोय नाम विष्णु को बीजै, अनन्त गुणां लिख लीजै।

सुपात्र अधिकारी को तो आपके पास यदि कम है तो भी उसी में से थोड़ा ही दीजिये, पर्याप्त है किन्तु पास में अन्न, धन, वस्त्र आदि होते हुए ना नहीं कहना चाहिये। यदि सुपात्र कभी अपनी आवश्यकता पूर्ति हेतु आता है तो आप अपना सौभाग्य ही समझिये। इसी प्रकार से सुपात्र कुपात्र का निर्णय करके आप के द्वारा सुपात्र अधिकारी को दिया हुआ दान विष्णु परमात्मा के अर्पण हो जाता है। वही विष्णु समर्पण दान अनन्तगुणा विस्तार वाला हो जाता है। तो उसे स्वर्ण अक्षरों में लिखा जायेगा। वह सुफल अमिट हो जाता है।

★★★★

प्रसंग-25 दोहा

सैसों सतगुरु सूं कहै, सुणिये सतगुरु भेव।
सामों बोहता म्हे कियो, सुरगा तणों ज देव।

नाथुसर गांव का सैंसा शिवराम गुरु जम्भेश्वर जी का परम भक्त था। यदा कदा सम्भराथल पर आया करता था। जब दान की चर्चा चली तो सैंसा भक्त कहने लगा-हे देव! मैंने स्वर्ग प्राप्ति के लिये बहुत ही दान पुण्य किया है। सैंसा भक्त तो था किन्तु धनी होने से धन-दान का अभिमान भी बहुत ही ज्यादा था। उस अभिमान को तोड़ने के लिये गुरु जाम्भोजी रूप बदलकर उसके घर से भिक्षा भी मांगी थी। सैंसे की धर्मपत्नी ने भिक्षा तो नहीं दी किन्तु भिक्षा-पात्र चिंपी को अवश्य ही खण्डित कर दिया। जो अब भी जांगलू के मन्दिर में विद्यमान है। श्री देवजी ने सबद सुनाया।

सबद-57

ओ३म् अति बल दानों सब स्नानों, गऊ कोट जे तीरथ दानों, बहुत करै आचारूं।

भावार्थ- ''अति सर्वत्र वर्जयेत'' अत्यधिक दिया हुआ दान भी फलीभूत नहीं होता क्योंकि उसमें सुपात्र कुपात्र का विचार किये बिना ही दिया जाता है तथा वह दान केवल इह लोक में यश बढ़ाने के लिये ही दिया जाता है सभी तीर्थों में स्नान कर लिया जाय और वहाँ करोड़ों गऊवें भी दान में दे दी जाय अन्य भी सभी तीर्थों के आचार-विचार पूर्ण कर लिया जाय तो भी दान का अन्तपार नहीं पाया जा सकता।

ते पण जोय जोय पार नहीं पायो, भाग परापति सारूं।
घट ऊंधे बरक्कत बहु मेहा, नीर थयो पण ठालूं।

केवल अति दान के बल पर तो पार नहीं पाया जा सकता अर्थात् सर्वोच्च पद को प्राप्त नहीं कर सकते। मिलेगा तो उतना ही जितना तुमने दिया है। पूर्व जन्म का कर्म ही दूसरे जन्म में भाग्य बनकर आता है। उस सर्वोच्च पद के लिये तो दान के साथ ही साथ अन्य उपासना, ध्यान आदि क्रियाओं की भी आवश्यकता है। किन्तु तुमने शरीर रूपी घड़ा तो धारण कर लिया है, शरीर रूपी घट तो तुझे दान के प्रभाव से प्राप्त हो गया है, किन्तु इसको तुमने उल्टा कर रखा है। अब चाहे इस पर कितनी ही ज्ञान रूपी वर्षा हो इसमें एक बूँद भी जल-ज्ञान नहीं गिरेगा तथा जब तक इसमें अमृतमय जल-ज्ञान नहीं भरेगा, तब तक सुख की आशा कदापि नहीं करनी चाहिये।

को होयसी राजा दुर्योधन सो, विष्णु सभा महलाणो।

तिण ही तो जोय जोय पार नहीं पायो, अधविच रहीयो ठालूं।

राजा दुर्योधन अति अभिमानी था क्योंकि मद के साधन सभी उसके पास उपलब्ध थे। उस दुर्योधन ने भगवान कृष्ण-विष्णु को अपनी सभा में बुलाया था। श्री कृष्ण को अति निकट से दुर्योधन ने देखा था तथा सुना था किन्तु वह पार नहीं पा सका। कृष्ण को अच्छी तरह से जान नहीं सका था क्योंकि राज मद में मस्त जो था, कैसे जान पाता ? इसलिये दुर्योधन अधविच में ही रह गया, न तो ऊपर जा सका और न ही नीचे ही पूर्णतया गिर सका। न तो परमात्म तत्व को प्राप्त कर सका और न ही राज्य ही भोग सका बीच में ही मृत्यु का ग्रास बन गया।

जपिया तपिया पोह बिन खपिया, खप खप गया इवाणी।
तेऊ पार पहुंता नाही, ताकी धोती रही अस्मानी।

तथा अन्य भी जप करने वाले, तप करने वाले, तपस्वी इन्होंने भी बिना मार्ग जाने वैसे ही जीवन बर्बाद कर दिया। उन्हें जप-तप का अभिमान था, तो कैसे सद्मार्ग को ग्रहण करते बिना सद्मार्ग पार भी कैसे पहुँचते। पार तो वे भी नहीं पहुँचे जिनकी धोती आकाश में सूखा करती थी, अर्थात् वे लोग अपने को सिद्ध मानते थे किन्तु सिद्धि भी तो मुक्ति के लिये बाधा ही है। इसलिये अभिमान वृद्धि कारक सभी कार्य सफलता को प्राप्त नहीं करवा सकते।

''दोहा''

जमात कहै तब देव सूं, अचरज भयो मन मांहि।
कोई पार पहुंतो है क नांही, च्यार जुगां के मांहि।

उपर्युक्त वार्ता को जमात सहित सैंसे ने सुना था तब जमाती लोगों के मन में यह शंका उत्पन्न हुई कि इन चार युगों में कोई पार पहुंचा है कि नहीं ? क्योंकि आश्चर्य की बात तो यह है कि जम्भदेव जी ने जपिया, तपिया, महादानी, सिद्ध सभी को ही विफल बता दिया। ये लोग भी पार नहीं पहुँच सके। इधर ही रह गये तो फिर कौन पहुँचेगा। इसका समाधान शब्द द्वारा इस प्रकार से किया।

सबद-58

ओ३म् तउवा माण दुर्योधन माण्या, अवर भी माणत माणों।
तउवा दान जूं कृष्णी माया, अवर भी फूलत दानों।

भावार्थ-अहंकारी व्यक्ति कभी भी इह लोक एवं परलोक में उन्नति नहीं कर सकता। किन्तु जीवों का यह दुर्भाग्य ही है जो सृष्टि के आदि से लेकर अब तक छोटे से बड़ा मानव अपनी योग्यतानुसार अहंकार करता ही आया है। जितना अभिमान दुर्योधन ने किया उतना और किसी ने भी नहीं किया। दुर्योधन के अहंकार ने महाभारत करवा दिया था किन्तु अन्य दूसरे छोटे मोटे लोग भी नित्य प्रति महाभारत करवाते ही रहते है। भगवान विष्णु की त्रिगुणात्मिका माया ने भी इस प्रकार संसार रूप में फैलाव किया है। उसके बराबर तो अन्य कोई और फैलाव कर ही नहीं सका। यद्यपि और भी छोटे-बड़े फैलाव उत्पत्ति होती है तो भी कृष्ण की माया के बराबर कहाँ।

तउवा जाण जो सहस्र झूझ्या, अवर भी झूझत जाणों।
तउवा बाण जो सीता कारण लक्ष्मण खेंच्या, अवर भी खेंचत बाणों।

परशुराम जी के साथ युद्ध करते हुए जितना संघर्ष सहस्रार्जुन ने किया था उतना दूसरे नहीं कर सके। वैसे तो संसार के लोग विपत्तियों से झूझ रहे हैं। रावण को मारकर सीता की वापसी के लिये लक्ष्मण ने खींच खींच करके बाण चलाये थे। उतने और कोई नहीं चला सके थे। कभी कभी संसार के कमजोर लोग वाक् युद्ध कर लेते हैं किन्तु वह तो सामान्य ही होता है। इनमें अहंकार की ही झलक दिखाई दे रही है तो लोग स्थिर कहाँ रह सके तथा शांति भी प्राप्त नहीं कर सके।

जपी तपी तकपीर ऋषीश्वर, तोल रह्या शैतानों।
तिण किण खैंच न सके, शिंभु तणी कमाणूं।

जनकपुर के राजा जनक के यहाँ सीता स्वयंवर में बड़े बड़े राजा, जति, तपि, ऋषि तथा उनमें भी श्रेष्ठ महर्षि आये थे। वे सभी अपना अपना बल तोलकर चले गये थे किन्तु उनमें से कोई भी धनुष उठा नहीं सका था। वे अपना अभिमान, शैतानी लेकर आये थे तो शिव धनुष उनसे कैसे उठता।

तेऊ पार पहुंता नांहि, ते कीयों आपो भाणों।
तेऊ पार पहूंता नांही, ताकी धोती रही अस्माणों।

वे लोग इस संसार सागर से पार नहीं पहुँच सके जिन्होंने अपनी मनमानी की। न तो वे लोग सतगुरु के शरण में आये और न ही कभी शुभ कर्म ही किया तथा वे सिद्ध लोग जिनकी धोती सिद्धि के बल से आकाश में अधर सूखा करती थी, वे भी पार नहीं पहुँच सके। क्योंकि उनको अपनी सिद्धि का अभिमान था वही ले डूबा।

बारां काजै हरकत आई, अध बिच मांड्यो थाणों।
नारसिंह नर नराज नरवों, सुराज सुरवों, नरां नरपति सुरां सुरपति।

जब नृसिंह अवतार हुआ था, वह तो नरों में श्रेष्ठतम, देवताओं में शूरवीर, मनुष्यों का राजा, देवताओं के भी देवता थे। उन्होंने हिरण्यकश्यपु को मार डाला था, उसी समय प्रहलाद को तेतीस करोड़ देव-मानवों के उद्धार का वचन दिया था। उनके वचनानुसार इक्कीस करोड़ तो तीन युगों में प्रहलाद, हरिश्चन्द्र और युधिष्ठिर के साथ पार पहुँच गये किन्तु बारह करोड़ नहीं पहुँच सके। इस कमी की पूर्ति के लिये श्री देवजी कहते है कि मैंने इस पाताल एवं स्वर्ग के बीचोबीच मृत्युलोक में आसन जमाया है।

ज्ञान न रिंदो बहुगुण चिंदो, पहलूं प्रहलादा आप पतलीयों।
दूजा काजै काम बिटलीयो, खेत मुक्त ले पंच करोड़ी।

परमात्मा विष्णु ने प्रथम तो प्रहलाद को अति कष्ट सहन करवाया तथा हिरण्यकश्यपु से अत्याचार द्वारा प्रहलाद की परीक्षा करवायी। जब परीक्षा में प्रहलाद सर्वगुण सम्पन्न, ज्ञानवान, परोपकारी, सिद्ध हो गया तभी विष्णु परमात्मा ने नृसिंह के रूप में दर्शन दिया तथा तेतीस करोड़ के उद्धार का वचन दिया। जिनमें पांच करोड़ उसी समय प्रहलाद के साथ ही पार हो गये। प्रहलाद भक्त ने स्वयं का तथा अपने साथियों का भी उद्धार किया।

सो प्रहलादा गुरु की वाचा बहियो, ताका शिखर अपारूं।
ताको तो वैकुण्ठे वासो, रतन काया दे सौंप्या छलत भण्डारूं।

जो वे लोग प्रहलाद के वचनों के अनुसार चले, प्रहलाद को सतगुरु स्वीकार किया। उन पांच करोड़ों को तो उसी समय अपार सर्वोच्च शिखर मुक्ति धाम की प्राप्ति हो गई। उनको तो अपार आनन्द प्राप्त हुआ। वहाँ पर पहुँचने पर उन्हें दिव्य रत्न सदृश अलौकिक दूसरी काया प्राप्त हुई तथा उन्हें अमृत से भरे हुऐ भण्डार

सौंप दिये। यहाँ संसार में लोग एक बूंद अमृतपान के लिये तरसते हैं। वह मिल नहीं पाता किन्तु वहाँ तो भण्डार भरे हुऐ सौंप दिये गये। जिससे सदैव तृप्ति बनी रहे।

तेऊ तो उरवारे थाणों, अई अमाणों, तत समाणों, बहु परमाणों पार पहुंचण हारा।

जो प्रहलाद के साथ पार पहुँच गये उनका निवास स्थान यहीं पर मृत्युलोक में ही था। वे अपने बीच के ही लोग थे। यहीं रहकर वे लोग तत्व में समा गये। ज्योति से ज्योति मिला ली। इसके अनेकानेक शास्त्र सुविज्ञजन, पुराण आदि प्रमाण है। वे पार तो इसलिये पहुँचे क्योंकि पार पहुँचने के योग्य थे।

लंका के नर शूर संग्रामें घणा विरामें, काले काने भला तिकंट।
पहले झूझ्या बाबर झंट, पड़े ताल समंदा पारी, तेऊ रहिया लंक दवारी।

त्रेतायुग में राम-रावण के युद्ध के समय में लंका के राक्षस युद्ध करने में अति शूरवीर राम से विरूद्ध द्वेष भाव से युक्त, काले रंग के बेहूदे, एक आँख वाले काने, बड़े ही चतुर चालाक योद्धा थे। प्रथम तो उन्होंने राम-लक्ष्मण, बानरी सेना के साथ भयंकर युद्ध किया। युद्ध के समय में जब ताल ठोककर युद्ध के मैदान में उतरते थे तो समुद्र पार तक ताल की ध्वनि सुनाई देती थी। वे लोग भी लंका के दरवाजे तक ही सीमित रह गये। लंका से बाहर नहीं जा सके। वहीं पर युद्ध के मैदान में ढ़ेर हो गये।

खेत मुक्तले सात करोड़ी, परशुराम के हुकम जे मूवा।
से तो कृष्ण पियारा, ताको तो वैकुण्ठे वासो।

त्रेतायुग में परशुराम जी ने अनेकों दुष्ट क्षत्रियों का विनाश किया था तथा राम लक्ष्मण ने भी राक्षसों का विनाश किया था उनमें से जो परशुराम तथा राम की आज्ञा का पालन करने वाले थे। वे सात करोड़ ही वैकुण्ठ को प्राप्त हो गये क्योंकि वे परमात्मा के प्यारे थे। हरिश्चन्द्र से लेकर राम रावण युद्ध तक इसी बीच में जो प्रहलाद पंथी बिछुड़े हुए जीव थे, वे ही सात करोड़ पार हो सके थे। अन्य तो वापिस जन्म-मरण के चक्कर में आ गये।

रतन काया दे सौंप्या छलत भण्डारूं, तेऊ तो उरवारे थाणों।
अई अमाणों, पार पहुंचन हारा।

इस लोक से जीवात्मा की विदाई के बाद जब वे पार पहुँच गये तो वहाँ पर रत्न सदृश दिव्य काया की प्राप्ति हुई और आगे अनेकानेक अमृत से भरे हुऐ भण्डार सौंप दिये गये, क्योंकि वे लोग इस संसार से पार पहुँचने के योग्य ही थे इसलिये पहुँच गये। उनका भी निवास स्थान यहीं पर ही था।

काफर खानों बुद्धि भराड़ो, खेत मुक्तले नव करोड़ी।
राव युधिष्ठिर से तो कृष्ण पियारा, ताको तो वैकुण्ठे वासो।

द्वापर युग में युधिष्ठिर और कृष्ण के समय में कौरव-पाण्डवों के बीच में महाभयंकर महाभारत हुआ था, उसमें अठारह अक्षौहिणी सेना समाप्त हो गई थी। उस समय दुर्योधन की अध्यक्षता में अनेकानेक लोग नास्तिक, बुद्धिहीन, कपटी हो गये थे। युद्ध में तो सज्जन दुर्जन सभी मारे जा चुके थे। किन्तु युधिष्ठिर और कृष्ण के प्यारे उनकी आज्ञा में चलने वाले नौ करोड़ ही पार पहुँचकर मुक्ति प्राप्त कर सके थे।

रतन काया दे सौंप्या छलत भण्डारूं, तेऊ तो उरवारे थाणों।

अई अमाणों बहु परमाणों, पार पहुंचन हारा।

जो इस संसार के जन्म-मरण के चक्कर से छूट गये उन्हें आगे रतन सदृश दिव्य काया की प्राप्ति होती है। अमृत से भरे हुए भण्डार सौंप दिये गये। उनका भी यहीं पर मृत्यु लोक में ही निवास था। वे हमारे बीच में से ही गये है। इसमें शास्त्र महाभारत आदि बहुत प्रमाण है जो पार होने योग्य थे वे मुक्ति धाम को प्राप्त कर गये।

बारा काजै हरकत आई, तातै बहुत भई कसवारूं।

पांच सात नव मिलाकर इक्कीस तो अब तक पार पहुँच गये। किन्तु बारह करोड़ अभी शेष है। जब तक वे नहीं पहुँचते है तब तक कमी रह ही जायेगी। इसी कमी की पूर्ति के लिये मुझे भी आना पड़ा है। क्योंकि मैं पहले वचन दे चुका हूँ। अब उस वचन को पूरा करना मेरा कर्तव्य है।

★★★★

''दोहा''

जमात कहै सुण देवजी, कृपा करो महाराज।
विन शास्त्र कछु है नहीं, ता विन सझे न काज।
वेद कुराण पढ़िया बहु, शास्त्र रहिया विचार।
भजन विना यूं ही गया, संतो लहो विचार।

जमाती के लोगों ने फिर से कहा-हे देवजी! आप हमें शास्त्र वेद पुराण के बारे में बतलाइये। कुछ लोग कहते हैं कि इनके पढ़ने से ही मुक्ति होती है तथा कुछ लोग ऐसा भी कहते हैं कि भजन करने से मुक्ति होती है तथा कुछ लोग अन्य उपायों से भी मुक्ति बतलाते है। श्री देवजी ने बतलाया कि न तो केवल शास्त्र पढ़ने से ही और न ही केवल अज्ञानता में रहकर भजन करने से ही। वेद शास्त्र पढ़कर, मनन, निदिध्यासन करके फिर जीवन को तन्मय बनावें, तभी संभव है। इस सम्बन्ध में यह सबद सुनाया-

सबद-59

ओ३म् पढ़ कागल वेदूं शास्त्र शब्दूं, भूला भूले झंख्या आलूं।
अह निश आव घटंती जावै, तेरा सास सबी कसवारूं।

जिन्होंने भी कागज निर्मित वेद, शास्त्र पूर्णतया पढ़ लिया है किन्तु शास्त्रों के अनुसार जीवन को बनाया नहीं है। कथनी और करनी में अन्तर रखता हुआ स्वयं भूला हुआ मानव दूसरों को भी आल-बाल झूठ भरे वचनों को बोलकर भूल डाल कर ठगता है तो उनके लिये पढ़ना व्यर्थ ही है तथा जो व्यक्ति शास्त्र पढ़कर उनके अनुसार जीवन को ढ़ालता है तो उसके लिये वेद-शास्त्र शब्द सार्थक है। हे प्राणी! तेरी आयु दिन-रात्रि करके व्यतीत हो रही है। तेरा एक एक श्वांस बड़ा ही मूल्यवान है। उन श्वांसों के चलते हुऐ श्वांसो ही श्वांस उस परमात्मा का स्मरण करो।

कइया चंदा कइया सूरूं, कइया काल बजावत तूरूं।
उर्द्धक चन्दा निरधक सूरूं, सुन घट काल बजावत तूरूं।

ताछै बहुत हुई कसवारूं।

सभी का काल निश्चित है। यह बहुत ऊँचा एवं संसार को संतप्त करने वाला सूर्यदेव तथा उससे नीचे संसार को ठण्डक औषधी रस आल्हाद प्रदाता चन्द्रमा इनकी भी आयु निश्चित है। सूर्य भी कुछ वर्षों बाद ठण्डा हो जायेगा तथा चन्द्रमा भी काल से ग्रसित हो जायेगा। जब चन्द्र और सूर्य के ऊपर भी काल अपनी तुरही बजा करके उन्हें सूचित करता है कि सावधान! अब आयु बहुत ही कम रह गई है। तो फिर हे मानव! तेरी क्या औकात है। इस छोटी सी आयु को लेकर क्यों झूठे झगड़े फैलाता है। जरा कभी एकान्त में बैठकर हृदय के भीतर वृत्ति को करके देख। जब तुम्हें असलियत का पता चल जायेगा क्योंकि स्वयं काल ही तेरे अन्दर बैठा हुआ तुरही बजा रहा है। तुम्हें सावधान कर रहा है। यदि समय रहते हुए इस तुरही को नहीं सुना तो बहुत बड़ी हानि हो जायेगी।

रक्तस बिन्दू परहस निंदू, आप सहै तेपण बूझे नहीं गवारूं।

हे मानव! यह रक्त का बना हुआ तेरा शरीर रजवीर्य की ही उपज है। जैसा तेरा शरीर है, वैसा तेरा अन्य साथी का भी है तो फिर इस क्षणिक शरीर को धारण करके क्यों तूँ किसी की हंसी उड़ाते हो और क्यों किसी की निंदा करते हो। तूँ अपने आप तो आने वाले दु:खों को अवगुणों को सहन कर लेगा किन्तु शर्मवश किसी को पूछेगा नहीं। अपने आप समस्या का समाधान नहीं कर सकता तो फिर दूसरों से पूछना सज्जनता ही है किन्तु मूर्ख गंवार कभी नहीं पूछेगा।

★★★★

प्रसंग-26 दोहा

दल आया जब राम का, दीठी लंका जोर।
रावण पूछै पिंडवा, मोत जु सूझै मोर।
रावण राम दला विसै, है मारणियो मोहि।
जोतकी ऐसे कहै, लक्ष्मण मारे तोहि।
दुखित भये श्री राम तब, बाण लग्यो जब ताक।
सतगुरु शब्द उचारिया, तिसो समय का वाक।

एकत्रित जन समूह ने राम रावण युद्ध तथा लक्ष्मण के शक्ति बाण लगने की वार्ता श्री देवजी से जाननी चाही। जन समूह ने प्रार्थना करते हुए कहा कि हे देव! आप ही तो जब राम रूप में थे इसलिये आपने सभी कुछ प्रत्यक्ष देखा है। उस महा भंयकर संग्राम में जो सबसे अधिक दुखदायक घटना तो लक्ष्मण के शक्ति बाण लगने की थी। उसका आपने नजदीकी से अनुभव किया होगा। वही अनुभव बतलाइये। अपने प्रिय भ्राता की मृत्यु दशा देखकर आपने भी तो विलाप किया होगा वह कैसा करूणामय दृश्य रहा होगा, हमें भी बतलाइये।

रावण ने जब पण्डितों से अपनी मृत्यु का कारण पूछा था तब पण्डितों ने भी लक्ष्मण को ही कारण बताया था। उन्होंने कहा था कि जो यति, ब्रह्मचारी, सदाचारी होगा वही रावण को मार सकता है। तो फिर रावण युद्ध से विरत क्यों नहीं हुआ। तब जाम्भोजी ने उस समय राम रूप दशा का वर्णन सबद द्वारा किया-

सबद-60

ओ३म् एक दुख लक्ष्मण बंधू हइयों, एक दुख बूढ़े घर तरणी अइयो।
एक दुख बालक की मां मुइयों, एक दुख औछे को जमवारूं।

भावार्थ-भगवान राम उस समय मर्यादा पुरूषोत्तम थे। संसार की सभी मर्यादाएँ निभाना अपना कर्त्तव्य समझते थे। इसलिये एक छोटा भाई अपने बड़े भाई के लिये प्राण न्यौछावर कर दे, वह भी लंका युद्ध जैसी परिस्थिति में तो राम का विलाप करना अति उत्तम ही था। राम पुरुषोत्तम होने से विलाप करना अच्छी प्रकार से जानते थे। इसलिये बड़ी खूबी से विलाप किया था। वही यहाँ पर बतला रहे है। राम विलाप करते हुऐ लक्ष्मण से कह रहे हैं-

हे लक्ष्मण! दुनिया में दु:ख कई तरह के होते हैं। इनमें से एक तो भयंकर दु:ख तब होता है जब भाई की मृत्यु हो जाती है। दूसरा दु:ख बूढ़े पुरुष के घर युवती पत्नी का आना, ऐसी स्थिति में दोनों दु:खी रहते हैं तथा तीसरा दु:ख छोटे दूध पीते हुए बालक की मां मर जाना। वह बालक समेत पूरा परिवार दु:खी हो जाता है। चौथा दु:ख धनवानों, बड़े लोगों के बीच में गरीब आदमी का जीवन। ये सभी दु:ख असहनीय है।

एक दुख तूठे से व्यवहारूं, तेरे लक्षणें अन्त न पारूं, सहैं न शक्ति भारूं।

पाँचवाँ दु:ख यह है कि कोई आदमी टूट चुका है, जिसका नैतिक पतन हो चुका है। उससे व्यवहार मेल-मिलाप रखेगा तो वह सदा ही दु:खदायी है। हे लक्ष्मण! इन महान दु:खों से भी यह तुम्हारा दु:ख अत्यधिक है। मेरे लिये असहनीय है। तूँ यह मेघनाद की भारी शक्ति सहन नहीं कर सका। मूर्च्छित क्यों हो गया, तुमने कौनसा दोष किया था।

कै तै परशुराम का धनुष जे पइयों, कै तैं दाव कुदाव न जाण्यों भइयूं।

हे लक्ष्मण! तुमने युद्ध के मैदान में कौनसी भूल कर दी, क्या तुमने परशुराम जी द्वारा दिया हुआ धनुष नहीं उठाया। क्या यह महान धनुष इस भयंकर युद्ध काल में पड़ा रहा या तुमने उस मेघनाद के दावों, कुदावों को नहीं समझ सका। क्योंकि राक्षस मायावी होते हैं। अनेकों प्रकार के पैंतरे बदलते हैं।

लक्ष्मण बाण जे दहशिर हइयों, ऐतो झूझ हमें नहीं जाण्यो।

मैंने तो यही सोचा था कि लक्ष्मण के बाण से रावण बड़ी आसानी से मारा जायेगा। इतना भयंकर युद्ध होगा, राक्षस काबू में नहीं आयेंगे और लक्ष्मण के शक्ति बाण लग जायेगा। यह मैंने नहीं जाना था।

जे कोई जाणें हमारा नाऊं, तो लक्ष्मण ले वैकुण्ठै जाऊं।

यदि कोई इस संसार में रहते हुए हमारी तरह ही जानेगा अर्थात् जैसा मेरा और लक्ष्मण का परस्पर व्यवहार है, हमने अपने माता-पिता, भाई, पत्नी के साथ जैसा व्यवहार मर्यादा का पालन किया है ऐसा यदि कोई भी करेगा तो हे लक्ष्मण! मैं उसको अपने ही समान मानकर साथ में सीधा वैकुण्ठ परमधाम को ले जाऊँगा। इस मर्यादा की स्थापना करके जीवों को परम धाम पहुँचाना ही मेरा कर्तव्य है इसलिये मेरा यहाँ आना हुआ है।

तो विन ऊभा पह प्रधानों, तो विन सूना त्रिभुवन थानों।

हे लक्ष्मण! तूझे मूर्छा अवस्था आ जाने के बाद तो ये सेनानायक कर्त्तव्य विमूढ़ हो गये कुछ भी करने में असमर्थ हो रहे है और तुम्हारे विना मेरे लिये तो तीनों भवन ही शून्य हो गये। मेरी समझ में तो कोई ऐसा आज्ञा

पालक अनुज ही इस संसार में है और न ही कोई ऐसा शूरवीर ही है।

कहां हुओ जे लंका लइयों, कहां हुओ जे रावण हइयों।

अब यदि मैं रावण को मार दूँ तो भी क्या लाभ तथा लंका को ले लूँ तो भी क्या लाभ है। लक्ष्मण भ्राता के बिना तो मेरा लड़ना ही व्यर्थ है।

कहां हुओ जे सीता अइयों, कहा करूं गुणवंता भइयों।
खल के साटै हीरा गइयों।

सीता को लेकर अब मैं क्या करूँगा। सीता हस्तगत करने पर भी मेरा भाई तो मुझे नहीं मिल सकेगा। तो उस सीता से भी क्या? हे मेरे गुणवान भाई! अब मैं अकेला क्या करूँ, मुझे कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा है। मैंने तो यहाँ लंका में आकर खली प्राप्त करने के लिये अमूल्य हीरा खो दिया। मेरे लिये लक्ष्मण बिना तो रावण को मारकर लंका तथा सीता पर अधिकार तो खली के समान है। कहाँ तो अमूल्य रत्न हीरा रूपी लक्ष्मण तथा कहाँ यह विजय रूपी तेल विहीन खली है। यह सोदा तो मेरा घाटे का हो गया है।

★★★★

अरिल

दोषण अठारे एह कह्या, जम्भ हुय राम जी।
लक्ष्मण लागी चोट, कहो किण काम जी।
कहो कियो काहा पाप, सक्त लागी सही।
कहै जमाती जंभ, वाणी सच्ची वही।
मानुष जोनी पायके, इह नहि करिये पाप।
राम रूप होय बोलिया, सच्चे सतगुरु आप।

ऊपर के सबदों को श्रवण करके जमाती लोगों ने फिर पूछा कि हे देव! आप यह बतलाने की कृपा करें कि लक्ष्मण को शक्ति बाण क्यों लगा? लक्ष्मण यति से क्या भूल हो गई। जिसके पाप से इतना कष्ट सहन करना पड़ा। तब जम्भेश्वर जी ने अठारह दोष गिनाए हैं और बताया है कि उनमें से एक भी दोष को मानव कर देता है उसे उसी प्रकार से भुगतना पड़ता है। इसलिये ऐसा दोष-पाप युक्त कर्म न करें। उसी समय श्री देवजी ही राम रूप में थे। वहाँ की घटना का सबद द्वारा चित्रण कर रहे हैं-

सबद-61

ओ३म् कै तै कारण किरिया चुक्यौ, कै तै सूरज सामों थूक्यों।
कै तै उभै कांसा मांज्या, कै तै छान तिणूका खैंच्या।

भावार्थ-हे लक्ष्मण! तुमने कौनसी क्रिया शुद्ध आचार विचार में चूक कर दी या तुमने सूर्य देवता को प्रात:कालीन वेला में सूर्य नमस्कार न करके सामने थूक दिया अर्थात् अपमानित किया है। क्या तुमने खड़े खड़े भोजन किया तथा खड़े ही कांसी के बर्तन साफ किये। क्या तुमने किसी गरीब की झोंपड़ी बिखेर डाली। इनमें से

कौनसा दोष किया है जिसके कारण से तेरे को यह कष्ट आया है।

कै तै ब्राह्मण निवत बहोड़या, कै तै आवा कोरंभ चोर्‌या।
कै तै बाड़ी का वन फल तोड़या, कै तै जोगी का खप्पर फोड़या।

क्या तुमने ब्राह्मण को निमंत्रण देकर फिर भोजन नहीं कराया। क्या तुमने कच्चे घड़े कुम्हार के चुरा लिये। क्या तुमने बाग बगीचे से फल बिना पूछे ही तोड़ लिये। क्या तुमने योगी का खप्पर फोड़ दिया। इनमें से कौनसा दोष किया है।

कै तै ब्राह्मण का तागा तोड़या, कै तै बैर विरोध धन लोड़या।
कै तै सूवा गाय का बच्छ बिछोड़या, कै तैं चरती पिवती गऊ बिडारी।

ब्रह्म के ज्ञाता ब्राह्मण को वस्त्र दान न देकर क्या तुमने उसके वस्त्र ही फाड़ डाले। क्या तुमने अन्य किसी से वैर विरोध करके धन इकट्ठा किया। क्या तुमने नयी ब्याही हुई गऊ का बच्छा अलग कर दिया। अपनी मां के दूध से वंचित करके गऊ और बच्छे का अपराध किया है। क्या तुमने कभी वन में घास चरती पानी पीती हुई गऊ को किसी भयंकर आवाज से डरा कर भगा दिया। इनमें से कौनसा दोष तुमने किया है।

कै तैं हरी पराई नारी, कै तै सगा सहोदर मार्‌या।
कै तै तिरिया शिर खड़ग उभार्‌या, कै तै फिरतै दांतण कीयो।

क्या तुमने कभी किसी पराई स्त्री का हरण किया है। क्या तुमने कभी अपने सगे-सम्बन्धी और सहोदर-भाई को मारा है। क्या तुमने अबला स्त्री के सिर ऊपर उसे मारने के लिये तलवार उठायी है। उसे मारने पीटने धमकाने की कोशिश की है। क्या तुमने चलते-फिरते घूमते हुए दांतुन किया है क्योंकि इस प्रकार से दांतुन करने से झूठे छींटे शरीर पर पड़ सकते है तथा अन्य कई हानियाँ होने की भी संभावनाएँ हैं।

कै तै रण में जाय दों दीयो, कै तै बाट कूट धन लीयो।
किसे सरापे लक्ष्मण हुइयूं।

क्या तुमने युद्धभूमि में जाकर युद्ध नहीं किया पीछे भाग आया तथा अपने स्वामी को धोखा दिया। क्या तुमने जबरदस्ती अपने बाहुबल से किसी को लूटकर धन प्राप्त किया है। हे लक्ष्मण! तो बता तुझे इनमें से ही कोई दोषपूर्ण कार्य करने से यह शक्ति बाण लगा है। या कोई और शाप लगा है। जिस वजह से आज तुम्हारी इस नाजुक घड़ी में यह दशा हो गई। इस प्रकार से राम के दु:ख भरे वचनों को लक्ष्मण ने अर्द्ध मूर्च्छा अवस्था में सुना था। संजीवनी बूंटी से स्वास्थ्य ठीक हो गया था। तब लक्ष्मण ने अपने भ्राता राम से कहा-वही बातें श्री जाम्भोजी सबद द्वारा बतलाते है।

सबद-62

ओ३म् ना मैं कारण किरिया चूक्यौ, ना मैं सूरज साम्हों थूक्यों।
ना मैं ऊभै कांसा मांज्या, ना मैं छान तिणूका खैंच्या।

भावार्थ-लक्ष्मण ने उपर्युक्त अठारह दोषों के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा-हे राम! न तो कभी भी भूल करके किसी कारण क्रिया में ही चूक की है, न ही कभी सूर्यदेव के सामने थूक करके अपमान ही किया है। न ही खड़े होकर भोजन करके बर्तन ही साफ किये हैं और न ही किसी गरीब की झोंपड़ी ही तोड़ी है।

ना मैं ब्राह्मण निवत बहोड़या, ना मैं आवा कोरंभ चोर्‌या।
ना मैं बाड़ी का वन फल तोड़या, ना मैं जोगी का खप्पर फोड़्या।

न तो मैने ब्राह्मण को निमंत्रण देकर भूखा रखा है, न ही मैंने कभी कोई कुम्हार का कच्चा घड़ा ही चुराया है। न ही मैंने कभी किसी बाड़ी का फल बिना पूछे तोड़ा है और न ही योगी का खप्पर ही फोड़ा है।

ना मैं ब्राह्मण का तागा तोड़या, ना मैं वेर विरोध धन लोड़या।
ना मैं सूवा गाय का बच्छ बिछोड़या, ना मैं चरती पिवती गऊ बिडारी।

न ही मैने ब्राह्मण को वस्त्र दान देने से मुख मोड़ा है। सदा देना ही मेरा धर्म रहा है और न ही वेर विरोध द्वारा धन प्राप्त किया है अर्थात् अनीति द्वारा धन प्राप्त कभी नहीं किया। न ही मैंने नयी ब्याही हुई गऊ से उसके बच्चे को विछोह किया। ना ही मैंने वन में निर्द्वन्द्व घास चरती जल पीती हुई गऊ को ही डरा कर भगाया है।

ना मैं हरी पराई नारी, ना मैं सगा सहोदर मार्‌या।
ना मैं तिरिया सिर खड़ग उभार्‌या, ना मैं फिरतै दांतण कियो।
ना मैं रण में जाय दों दीयो, ना मैं बाट कूट धन लीयो।

न तो मैने पराई नारी का हरण किया। न ही मैंने कभी किसी सगे-सम्बन्धी को ही मारा। न ही मैंने कभी किसी स्त्री को मारने के लिये उसके सिर पर घातक तलवार उठाई। न ही मैंने कभी चलते फिरते बातें करते भोजन किया या दांतुन की। न ही मैंने युद्ध भूमि में जाकर अपने स्वामी को धोखा देकर वापिस भागा और न ही मैंने कभी किसी से अपने बाहुबल से धन ही लूटा है। हे राम! इन अठारह दोषों में से मैने एक भी दोष नहीं किया।

एक जूं ओगण रामै कीयो, अणहुंतो मिरघो मारण गइयो।
दूजो ओगण रामै कीयो, एको दोष अदोषां दीयो।

लक्ष्मण को यदि शक्ति बाण लगने से मूर्च्छा आ जाती है तो उस स्थिति में लक्ष्मण से भी अधिक दु:ख राम को होता है। इसलिये लक्ष्मण तो कुछ भी विलाप नहीं करते किन्तु राम बहुत ही विलाप करते हुए दिखाई देते है। पाप या दोष का फल दु:ख होता है यहाँ पर लक्ष्मण से भी ज्यादा दु:ख राम को हुआ है। इसलिये ऐसा मालूम पड़ता है कि दोष लक्ष्मण ने नहीं किये। यदि कोई दोष या असावधानी हुई है तो राम से हुई है। लक्ष्मण के शक्ति बाण लगना तो राम को उनके कर्मो का फल भोगाने के लिये ही था। कहा भी है-

असंभवं हेम मृगस्य जन्म तथापि रामों लुलुभे मृगाय।
प्राय: समापन्न विपति काले धीयोअपि पुसां मलिनां भवन्ति।

स्वर्ण मृग नहीं हो सकता फिर भी राम के लोभ ने उसकी प्राप्ति के लिये प्रेरित किया। प्राय: यह देखा गया है कि विपत्ति काल में बुद्धिमान मनुष्यों की बुद्धि भी मलीन हो जाती है। इसी बात को गुरु जम्भेश्वर जी कहते हैं कि उस समय लक्ष्मण ने कहा कि हे राम! मैंने कोई अवगुण नहीं किया है। हाँ आपने तो पहला दोष ना समझी तो यह की कि सोने का मृग नहीं हो सकता परन्तु आप इतनी सी बात नहीं समझ सके और उसे मारने के लिये दौड़ पड़े तथा दूसरी भूल यह की कि उस राक्षस की करूणामयी पुकार को न तो आप समझ सके और न ही सीता ही। मुझे सीता माता ने कटु वचन कहे, मैं भी निर्दोष था। मुझे दोष रहित जन को आपने तथा सीता ने दोष दिया। मैं क्या करता? आपकी आज्ञा स्वीकार करता या सीता की? सीता ने मुझे विशेष रूप से वचन बाणों द्वारा घायल किया। जिससे मैं आपके पास आ गया, सीता अकेली रह गई। इसी कारण से सीता

का हरण हुआ और हमें यहाँ इन परिस्थितियों से सामना करना पड़ा।

वन खंड में जद साथर सोइयों, जद को दोक्ष तदो को होइयों।

तथा सबसे बड़ा दोष तो हम लोगों का यह था कि वहाँ वन में हम निवास करते हुए, साथ में रहते हुए सचेत नहीं हो सके। हमें मालूम ही था कि यहाँ पर राक्षसों का भी साथ में ही निवास है तथा उनसे वैर भाव ही मोल ले चुके हैं। हमें निर्भय होकर नहीं सोना है। सदा सचेत रह करके अपनी रक्षा करनी थी। वह हम नहीं कर सके। इसीलिये हमें आज यह दिन देखने को मिला। हम दोनों भाई, जानकी तथा यह वानर सेना सभी विपत्ति में पड़ चुके हैं। थोड़ी सी असावधानी बहुत बड़ी विपत्ति का कारण बनी है। हे राम! उस वनवास समय की भूल ही हमारे दु:ख का कारण है। आप चाहे मुझे दोष दे या निर्दोष सिद्ध करें मुझे स्वीकार है। इन शब्दों द्वारा जम्भेश्वर जी ने रामायण के इस महत्त्वपूर्ण पहलू का समाधान किया है। जो एक नयी उद्‌भावना युक्ति मालूम पड़ती है।

★★★★

प्रसंग-27 दोहा

विश्नोई पूरब का, बालद लादी ओड़।
परखंड भूमि को मतो, चाल गया चितौड़।
सांगै मांग्यो डाण तब, विश्नोई दे नांह।
झाली राणी यूं कह्यो, वीर कहो गुरु तांह।
विश्नोई दो आविया, सतगुरु के दरबार।
बात कही तब अर्ज कर, शब्द कह्यो तिण बार।

पूर्व भाग कन्नौज कालपी के बिश्नोइयों ने व्यापार करने के लिये बैल तथा गाड़ियों पर बहुमूल्य सामान लाद करके चितौड़ पहुँचे। वहाँ पर चितौड़ की सीमा में प्रवेश करते ही उनसे राज कर्मचारियों ने कर-डांण मांगा। तब बिश्नोइयों ने कहा कि हम जाम्भोजी के शिष्य बिश्नोई है। हमारा डाण (टैक्स) बीकानेर, जोधपुर आदि अनेक राज्यों में माफ है। इसलिये आपको भी नहीं देंगे। वाद-विवाद बढ़ चुका था। तब बिश्नोई स्वयं ही चितौड़ के राजा शासक सांगा राणा संग्राम सिंह व उनकी माता झाली राणी के सामने उपस्थित हुऐ। झालीराणी ने दयावश उन्हें माफ करवा दिया तथा अपने विश्वास पात्र सेवकों को जाम्भोजी के पास सम्भराथल भेजा। इस बात का पता लगाने के लिये कि वास्तव में जाम्भोजी कोई अवतारी पुरुष है या पाखण्डी ही है। ये लोग बिश्नोइयों सहित सम्भराथल पहुँचे और उन्होंने कहा कि आप अवतारी पुरुष होकर भी यहाँ पर विकट स्थान में निवास करते हो तथा अवतारी पुरुष राम कृष्ण के तो अयोध्या द्वारिका जैसे दिव्य भवन रानिया और अन्य चकाचौंध थी किन्तु यहाँ पर तो ऐसा कुछ भी नहीं दिखाई देता, तब श्री जम्भेश्वर जी ने सबदोच्चारण किया।

सबद-63

ओ३म् आतर पातर राही रूक्मण, मेल्हा मन्दिर भोयों।
गढ़ सोवनां तेपण मेल्हा, रहा छड़ा सी जोयो।

भावार्थ-हे सेवक गणों! यह कहना सत्य ही है कि द्वापर में कृष्ण अवतार के समय तो ऐसा ही था। उस समय तो अनेकानेक दास दासियों से घिरी हुई पवित्रा सौम्या रानी रूक्मणी थी। जो सदा ही सेवा में संलग्न रहा करती थी और द्वारिका में बड़े बड़े महल मनभावन थे। वह स्वर्णमय दिव्य द्वारिका रानी रूक्मणी सभी कुछ वहीं छूट गये।अब मैं यहाँ अकेले जैसा ही हूँ, हालांकि यदा कदा कुछ लोग समिपस्थ रहते भी है किन्तु फिर भी मैं अकेला ही हूँ।

रात पड़न्ता पाला भी जाग्या, दिवस तपंता सूरूं।
उन्हां ठंडा पवना भी जाग्या, घन बरषंता नीरूं।

यह भी कटु सत्य है कि इस देश में रात्रि पड़ते ही सर्दी प्रारम्भ हो जाती है। यह मरुभूमि की विशेषता है तथा कभी गर्मियों में भयंकर लू चलती है तथा सर्दियों में ठण्डी- बर्फिली हवाएँ चलती है और वर्षा ऋतु में कभी भयंकर वर्षा तो कभी सूखा पड़ जाता है। जो भी ऋतु बदलती है वह वहीं पूर्ण रूपेण अपना प्रभाव जमाती है। इस बदलते हुए वातावरण को इस हरि कंकेहड़ी के नीचे व्यतीत करना पड़ता है।

दुनी तंणा औचाट भी जाग्या, के के नुगरा देता गाल गहीरूं।

तथा इतने कष्टमय वातावरण में मैं निवास करता हूँ फिर भी यहाँ के लोग मेरे पास में अपना दु:ख दर्द लेकर आते हैं। अनेकों प्रकार की कष्टमय व्यथा कथा मुझे सुनाते हैं। उनके कष्टों का निवारण मुझे करना पड़ता है तथा कुछ नुगरे लोग मुझे बहुत ही भद्दी गहरी गालियाँ देते हैं। उनकी वे गालियाँ भी मुझे सुननी पड़ती है।

जिहिं तन ऊंना ओढ़ण ओढ़ा, तिहिं ओढ़ंता चीरूं।
जां हाथे जप माली जपां, तहां जपंता हीरूं।

मैंने इस शरीर पर जो यह ऊन का भगवां वस्त्र ओढ़ रखा है कभी इसी शरीर पर मल मल के दिव्य वस्त्र ओढ़ा करता था तथा इस समय मैंने जो हाथ में काष्ठ की माला ले रखी है, कभी जप करने के लिये इन्हीं हाथों में हीरों की माला रहा करती थी।

बारा काजै पड़यो बिछोहो, संभल संभल झूरूं।
राघों सीता हनवत पाखो, कौन बंधावत धीरूं।

मुझे यहाँ मरुप्रदेश में इस सम्भराथल भूमि पर अनेकानेक कष्टों का सामना इसलिये करना पड़ा क्योंकि प्रहलाद के वचनों का पालन करते हुए इक्कीस करोड़ तो पार पहुँच गये तथा बारह करोड़ का उद्धार करना अब शेष था। वे लोग भाग्यवश इसी देश में यत्र तत्र बिखरे हुए थे। इनकी खोज करके वापिस परमात्मा के लोक में पहुँचाना है। जब जब भी मुझे वह प्रह्लाद वचन याद आता है तो मुझे भी दु:ख होता है कि अब तक मैं वचनों को निभा नहीं सका हूँ। इसलिये यहाँ पर डटा हुआ हूँ।

राम को भी वनवास काल में अति कष्टों का सामना करना पड़ा था। उस समय भी रावणादि राक्षसों को मारने का प्रयोजन था। उस समय तो राम के साथ में लक्ष्मण सीता के अतिरिक्त हनुमान जैसा स्वामी सेवक महावीर साथ में था। जब कभी अयोध्या की याद आती, कष्टों का अनुभव होता, तो ये लोग धैर्य बंधाया करते थे। किन्तु यहाँ पर तो मुझे धैर्य बंधाने वाला कोई नहीं है क्योंकि धैर्य ही दु:ख को निवृत्त करता है।

मागर मणिया काच कथिरूं, हीरस हीरा हीरूं।

विखा पड़ता पड़ता आया, पूरस पूरा पूरूं।

ऊपर से देखने में तो मगरे की कंकरीली भूमि में मिलने वाले पत्थर के मनके, काच के मनके, मणिया, कथीर आदि के गहने हीरे जैसे ही लगते हैं। किन्तु जब विवेकी पुरुष द्वारा परीक्षा की जाती है तो भेद खुल जाता है। हीरा तो हीरा ही रहता है और काच पत्थर के नकली हीरे अलग हो जाते हैं। उसी प्रकार से जब तक आदमी को कष्ट की परीक्षा नहीं आती तब तक पूर्ण पुरुष या अधूरे पुरुष का पता नहीं चलता। इसलिये वियोग तो सृष्टि के आदि काल से ही होता आया है। लेकिन विछोह दु:ख से जो भी दुखित न हो वही पूरा पुरुष है।

जे रिण राहे सूर गहीजै, तो सूरस सूरां सूरूं।
दुखियां है जे सुखियां होयसै, करसै राज गहीरूं।

यदि अपनी शूरवीरता दिखानी है तो घर में बैठकर नहीं दिखाई जा सकती। उसे शूरवीरता दिखाने के लिये रण भूमि में ही जाना होगा तथा वहीं जाकर यदि आप अन्य शूरवीरों द्वारा सराहनीय होंगे तभी वह सच्चा शूरवीर है। उसी प्रकार से धर्मवीर, कर्मवीर, धैर्यवान व्यक्ति की परीक्षा भी तो संकट की घड़ी में ही हो सकती है। जो वर्तमान काल में सत्य धर्म का पालन करते हुए दुखी दिखाई दे रहे हैं। वे कभी सुखी होंगे, इन्हें धर्म का फल मिलेगा। आज जो कंगाल है वे कभी सम्राट होंगे बहुत काल तक अकंटक राज्य करेंगे प्रकृति का ऐसा ही नियम है।

महा अंगीठी बिरखा ओल्हो, जेठ न ठंडा नीरूं।
पलंग न पोढ़ण सेज न सोवण, कंठ रूलंता हीरूं।

कभी गर्मी ऋतु आती है तो कभी महान अंगीठी की तरह यह जगत संतप्त हो जाता है। वर्षा ऋतु में भयंकर वर्षा तथा ओले पड़ जाते है और ज्येष्ठ के महीने में ठण्डा जल भी नहीं मिलता, जबकि वर्षा, सर्दी में ठण्डे ओले पड़ जाते है। यही यहाँ मरुभूमि में होता है। इसे हम सभी सहन करते हैं। न तो यहाँ पर बैठने के लिये पलंग है और न ही सोने के लिये कोमल शय्या ही है और न ही गले में सुन्दर मोतियों की माला ही है। पहले ये सभी कुछ सुलभ थे।

इतना मोह न मानै शिम्भू, तही तही सूसीरूं।

इतना संयोग वियोग होने पर भी हमें इसमें कुछ भी मोह या द्वेष नहीं है। क्योंकि जैसा जहाँ पर सुसीर भाग्य होता है वहाँ हमें भी सुखों को छोड़कर विशेष कार्य के लिये निवास करना पड़ता है। राम अवतार के समय में भी यही सभी कुछ सहन करते हुऐ राक्षसों का विनाश किया था तथा अभी भी ऐसा ही करने के लिये यहाँ पर आये हैं।

घोड़ा चोली बाल गुदाई, श्री राम का भाई, गुरु की वाचा बहियों।
राघो सीता हनवंत पाखो दुख सुख कासूं कहियों।

समय परिवर्तनशील है। कभी बाल्यावस्था में राम का भाई लक्ष्मण घोड़ों को दौड़ाया करता था तथा अन्य भी बाल्य विशेष खेल कूदना दौड़ना आदि साथ में ही किया करते थे किन्तु समयानुसार परिवर्तन आया और राम को वनवास हुआ। तब लक्ष्मण ने वे सभी बाल सुलभ क्रिड़ाओं को छोड़कर भाई राम का साथ दिया तथा राम को ही परम गुरु मानकर के उनके वचनों पर चला। लक्ष्मण सीता तथा हनुमान ने सदा ही सुख दु:ख

में राम का साथ दिया धैर्य बंधाया। उनके बिना राम अकेलों को वनवास काटना दुभर हो जाता। गुरु जाम्भोजी कहते हैं कि यहाँ मेरे पास में तो कोई नहीं है जो धैर्य बंधा सके सुख दु:ख की बात मैं उनसे कह सकूँ।

इस प्रकार से झाली राणी के विश्वसनीय सेवकों को यह सबद सुनाया। यही सबद रूपी भेंट तथा झारी, माला और सुलझावणी देकर उन्हें विदा किया। झालीराणी ने ये वस्तुएँ सहर्ष स्वीकार की तथा जम्भेश्वर जी के दर्शन की लालसा से जीवन व्यतीत करने लगी। कुछ समय पश्चात् श्री देवजी ने चितौड़ जाकर झाली को दर्शन दिया। सांगा राणा एवं झाली को शिष्य बनाया और उन बिश्नोइयों को सांगा राणा की प्रार्थना पर वहीं चितौड़ के राज्य में बसाया जो अब भी पुर, दरीबा, संभेलिया आदि गांवों में बिश्नोई बसते हैं।

★★★★

प्रसंग-28 दोहा

लूणकरण से जैतसी, अश्व ज मांग्यो एक।
लूणकरण दीन्हों नहीं, मन में राखी टेक।

बीकानेर नरेश लूणकरण ने नारनौल को जीतने के लिये उस पर चढ़ाई की। उनका छोटा पुत्र प्रताप तो युद्ध में साथ गया था। उसको तो एक घोड़ा दिया किन्तु बड़े पुत्र जेतसी को उसके मांगने पर भी घोड़ा नहीं दिया और न ही युद्ध में साथ ले गये। वह राजकुमार खिन्न मन होकर श्री देवजी के पास सम्भराथल पर आ गया था। वहाँ आकर उसने अपनी व्यथा कथा सुनाई। तब जम्भेश्वर जी ने उसको राज्य प्राप्ति का आशीर्वाद देते हुऐ सबद सुनाया-

सबद-64

ओ३म् मैं कर भूला मांड पिराणी, काचै कन्ध अगाजूं।
काचा कंध गले गल जायसैं, बीखर जैला राजूं।

भावार्थ-हे जेतसी! तुम्हारे पिता लूणकरण आदि सैनिक किसी कमजोर को दबाकर के राज्य हस्तगत करना चाहते है। यह कोई मानवता नहीं है। ये लोग अपने झूठे अहंकार के कारण वास्तव में अपने को, देश को तथा मानवता को भूल गये है। इसलिये जबरदस्ती किसी दूसरे ऊपर बल प्रयोग करते है। इनको यह पता नहीं है कि यह कच्चा शरीर प्राप्त हुआ है। इससे अकाज नहीं करना चाहिये। क्योंकि मिट्टी के घड़े की तरह यह जल से गल जायेगा अर्थात् समय आने से पूर्व ही यह नष्ट भ्रष्ट हो जायेगा। यदि यह शरीर ही नहीं रहेगा तो फिर यह राज्य कौन करेगा तथा राज्य की भी तो सत्ता स्थायी नहीं है। तो फिर ऐसा व्यर्थ का प्रयत्न किसलिये।

गड़बड़ गाजा कांय बिबाजा, कण विन कूकस कांय लेणा।
कांय बोलो मुख ताजो।

जब यह सभी कुछ स्थायी रहने वाला ही नहीं है तो फिर युद्ध में जाते समय ढ़ोल, तुरही, शंख आदि बाजे किसलिये बजाये जा रहे हैं। ऐसी कौनसी विजय हासिल करने जा रहे हैं। जिस विजय की प्राप्ति का प्रयत्न किया जा रहा है वह तो सभी कुछ कण के विना थोथा भूसा घास ही लेना है। तो फिर इस निरर्थक घास चांचड़ा के लिये क्यों मुख से कटु अप्रिय झूठे वचन बोल रहे हो। क्या मुख से बोलने मात्र से ही सफलता मिल

जायेगी।

भरमी वादी अति अहंकारी, लावत यारी, पशुवां पड़े भिरांति।
जीव विणासै लाहै कारणै, लोभ सवारथ खायबा खाज अखाजूं।

जो लोग नित्य युद्ध में ही रत रहते है वे लोग सदसद् विवेक रहित झूठे वाद विवाद में रत तथा अत्यधिक अहंकारी हो जाते हैं तथा अपने जैसे लोगों से ही मित्रता रखते है। कभी किसी सज्जन पुरुष के पास भी नहीं बैठते। जिससे पशुओं में भी इनका अपनत्व प्रेम, दया भाव नहीं रहता। जिस कारण से अपने लाभ के लिये जीवों को मारते हैं। जिह्वा का रस लोभ, स्वकीय उदर पूर्ति तथा स्वार्थ के लिये अखाद्य तथा पशुओं जीवों को मार कर खा जाते है। जब ये लोग पहले पशुओं को मार डालते हैं तो पीछे मनुष्यों को भी मारने में जरा भी दया नहीं करते।

जो अति काले ले जम काले तेपण खीणा, जिहिं का लंक गढ़ था राजों।
बिन हस्ती पाखर विन गज गुड़ियों, बिन ढ़ोला डूमा लाकड़ियो।

जिसने भी देशकाल मर्यादा का अतिक्रमण किया है वह अतिशीघ्र समय से पूर्व ही यमदूतों के हाथ चढ़कर मृत्यु को प्राप्त हो गया। ऐसे लोग इस संसार में बहुत हो चुके है। किन्तु उदाहरण के लिये रावण लंका जैसे राज्य में सम्पन्न था। लंका सो कोट समंद सी खाई। लंका जैसा कोट समुद्र जैसी चारों तरफ जिसके खाई थी। किन्तु वह भी नहीं बच सका। इतने साधन सम्पन्न व्यक्ति के भी मृत्यु समय में न तो रथ में जूते हुऐ घोड़े पाखर कसे हुऐ हाथी ढ़ोल बजाने वाले डूम तथा न ही अर्थी में कंधा देने वाले पीछे शेष बच पाये थे।

जाकै परसण बाजा बाजै, सो अपरंपर काय न जंपो।
हिन्दू मूसलमानों, डर डर जीव के काजै।

हे हिन्दू मुसलमानों! जिस अपरंपर परमपिता परमात्मा के दर्शन, स्पर्श से अनेकों प्रकार के अनहद बाजे बजने लग जाते है। उन बाजों को सुनते हुऐ साधक समाधिस्थ हो जाते है। ऐसे बाजों को क्यों नहीं सुनते। मृत्यु दु:ख से डरते हुऐ अपने जीव की भलाई के लिये अमृतमय परमात्मा की शरण ग्रहण करो।

रावां रंका राजा रावां रावत राजा, खाना खोजा, मीरा मुलकां घंघ फकीरां।
घंघा गुरवां सुर नर देवा, तिमर जु लंगा, आयसा जोयसा, साह पुरोहितां।
मिश्र ही व्यासां रूंखां बिरखां आव घटंती, अतरा माहे कूण विशेषों।
मरणत एको माघों।

सामान्य राजा, रंक, राजाओं के राजा, सर्वोपरि सम्राट, खान, खोजी, मीर, जमीदार, गंगा के निवासी फकीर, गंगा गुरु, सुर, नर, नरश्रेष्ठ, कौपीनधारी, नंगे सन्यासी, योगी, ज्योतिषी, साहू, सेठ, पुरोहित, मिश्रा, व्यास, रूंख, वर्षा इत्यादि सभी की आयु घटती जाती है। इनमें काल के सामने किसकी विशेषता है। सभी को काल बराबर क्षीण कर रहा है। विना हरि की भक्ति के सभी को एक ही मार्ग या तरीके से मरना पड़ेगा।

पशु मकेरूं लहै न फेरूं, कहे ज मेरूं सब जग केरूं।
साचै से हर करै घणैरूं।

बन्धन से मुक्त हुआ पशु भी वापिस बन्धन में नहीं आना चाहता तो फिर मनुष्यों को बन्धन में कैसे रख

सकता है। किन्तु हे मानव! तूँ कहता है कि यह सम्पूर्ण संसार ही मेरा है, मेरे ही अधीन रहे मैं ही सभी का स्वामी सदा ही बना रहूँ यह कैसे हो सकता है। इसके लिये तेरे को अत्यधिक संघर्ष करना ही पड़ेगा। फिर भी तूँ विफल ही रहेगा। जिस वस्तु को तुम उतम अच्छी मानता है। उसकी प्राप्ति की इच्छा अधिक करता है। वह वस्तु प्राप्त होना या न होना तुम्हारे अधीन नहीं है।

रिण छाणै ज्यूं बिखर जैला, तातै मेरू न तेरूं।
बिसर गया ते माघूं, रक्तूं नातूं, सेतूं धातूं कुमलावै ज्यूं शागूं।

जो वस्तु तुम्हें प्यारी लगती है वह तो वन में पड़े हुऐ उपले-छाणें की तरह ही है। जो थोड़े दिन बाद ही बिखर जाता है। इसीलिये वह धन दौलत न तो मेरा है और न तेरा है। यह तेरा मेरा कुछ भी नहीं है। ऐसे धन यश के लोभी लोग अपने गन्तव्य स्थान जाने के मार्ग को भूल जाते हैं। जिस शरीर को तुम नित्य समझते हो। यह तो रक्त, हड्डी, वीर्य आदि सप्त धातुओं से बना हुआ है। जब तक इसको ये वस्तुएँ उपलब्ध रहेगी तथा इनके ग्रहण करने की शरीर में योग्यता रहेगी, तभी तक यह जिंदा है नहीं तो वनस्पति की भांति कुम्हला कर समाप्त हो जायेगा।

जीव र पिंण्ड बिछोवा होयसी, ता दिन दाम दुगाणी।
आड न पैको रती विसोवो सीझै नाही, ओ पिण्ड काम न काजूं।

जिस दिन जीव तथा शरीर का विछोह होगा उस दिन यह तेरा धन दौलत रूपये कुछ भी काम नहीं आयेंगे। न तो मृत्यु समय में रति पैसा रूपया सहायता करेगा न ही ये परिवार का सम्बन्ध ही सहायक होगा तथा यह तेरा पंचभौतिक शरीर भी किसी काम का नहीं रहेगा। एक क्षण भी उस घर में रखने लायक नहीं होगा।

आवत काया ले आयो थो, जातै सूकौ जागो।
आवत खिण एक लाई थी, पर जातै खिण न लागो।

जब इस संसार में पंचभौतिक शरीर लेकर आया था तो एक क्षण भर का समय लगा था किन्तु वापिस जाते समय वह काया भी छोड़ कर जायेगा और एक क्षण का भी समय नहीं लगेगा। इस संसार में आते समय तो लाभ में था किन्तु छोड़कर जाते समय में हानि में है।

भाग परापति कर्मा रेखा, दरगै जबला जबला माघों।
बिरखे पान झड़े झड़ जायला, तेपण तई न लागूं।

पूर्व जन्म के कर्मो के अनुसार ही यह जीवन मिलता है तथा इस जीवन में किये हुऐ कर्मो की रेखाऐं खींचती है। अर्थात् कर्मो के संस्कार स्थिर होते है। उन्हीं कर्मो के अनुसार आगे स्वर्ग, नरक या मुक्ति का मार्ग न्यारा-न्यारा हो जाता है। किन्तु यह सत्य है कि वृक्ष के पते एक बार जो झड़ जाते है वे पुनः वापिस नहीं लगते। उसी प्रकार से यह जीवन एक बार व्यतीत हो गया तो यही जीवन दुबारा लौटकर नहीं आ सकता। आने वाला जीवन इससे सर्वथा नवीन ही होगा।

सेतूं दगधूं कवलज कलियो, कुमलावै ज्यूं शागूं।
ऋतु बसंती आई और भलेरा शागूं।

जिस प्रकार से भयंकर सर्दी ऋतु में कमल की कलियां जल जाती है तथा वनस्पति भी कुम्हला जाती

है। किन्तु वही बसन्त ऋतु वापिस आने पर फिर से पते फूल फल सम्पन्न हो जाती है। उसी प्रकार से कमल व वनस्पति की भांति निर्लेप तथा परोपकारी व्यक्ति यदि एक बार कष्ट में पड़ जाये तो भी समय आने पर फिर प्रफुल्लित हो जाता है।

भूला तेण गया रे प्राणी, तिहिं का खोज न माघूं।
विष्णु विष्णु भण लई न साई, सुर नर ब्रह्मा को न गाई।

हे भूले भटके हुऐ प्राणी! तुमने उस परमात्मा तथा मुक्ति का मार्ग नहीं खोजा, व्यर्थ में ही समय व्यतीत कर दिया। तुझे उस परमात्मा की प्राप्ति के लिये बार-बार विष्णु का स्मरण जप एकाग्र मन से करना चाहिये था। उस विष्णु का गुणगान किस देवता, मानव तथा ब्रह्मा ने नहीं किया अर्थात् विपति काल में सभी ने विष्णु को ही याद किया है तथा विष्णु ने ही विपति से छुटकारा दिलाया है।

तातै जंवर बिन डसीरे भाई, बास बसंते कीवी न कमाई।
जंवर तणां जमदूत दहैला, तातै तेरी कहा न बसाई।

हे प्राणी! तूने इस संसार में रहते हुऐ यदि शुद्ध कमाई नहीं की तो तुझे इस जीवन के समाप्त होने पर कष्ट उठाना पड़ेगा। क्योंकि तेरे पास वह शुभ कर्मो का पुण्य नहीं होगा जिससे तूँ छूट सकता था। वहाँ पर तुझे बड़े भयंकर विकराल यमदूत जलायेंगे काटेंगे तब तूँ रोयेगा तो तुझे छुड़ाने वाला कोई नहीं मिलेगा और न ही तेरा वश चलेगा।

★★★★

''दोहा''

जेतसी कहै सुण देवजी, पिता कह्यो मम सोई।
मम कह्यो माने नहीं, भाठा देसूं तोही।
भाठा देवण उन कह्यो, म्हे गढ़ दीन्हों तोहि।
अन धन लक्ष्मी भजन विन, भाठाई सम होई।

लूणकरण के पुत्र जेतसी ने जम्भदेवजी से पुनः कहा-कि मेरे पिताजी ने मुझे अश्व की जगह पत्थर दिया, मैने तो उनसे घोड़ा मांगा था किन्तु उन्होंने क्रोधवश मुझे कहा कि घोड़े की जगह तूँ भाटा-पत्थर ले। क्या अर्थ है। आपने मुझे राज्य प्राप्ति का आशीर्वाद दिया था। इसका भी मैं मतलब नहीं समझ सका। गुरु जाम्भोजी ने बताया कि लूणकरण नारनौल से वापिस लौट करके नहीं आयेंगे वहीं पर वीर गति को प्राप्त करेंगे। मैंने उन्हें जाते समय रोका था किन्तु नहीं माने। अब तुम्हें राज की प्राप्ति तो होगी ही साथ में ध्यान रखना अन्न, धन, लक्ष्मी, यश ये सभी कुछ ज्ञान, भजन, जनसेवा बिना पत्थर के समान ही है। इस प्रकार से सचेत करते हुए सबद सुनाया।

सबद-65

ओ३म् तउवा जाग जु गोरख जाग्या, निरह निरंजन निरह निरालंब।
जुग छतीसों एकै आसन बैठा बरत्या, अवर भी अवधूं जागत जागूं।

भावार्थ- अवधू को सदा जागृत रहना चाहिये तथा कुछ अवधू रहते भी है। वे कभी समाधी अवस्था को प्राप्त होते है किन्तु जितने जागृत गोरख रहे उतना कोई नहीं रहा। वे कैवल्य अवस्था में माया रहित बिना किसी सहारे के केवल एक स्वयं समर्थ होकर समाधिस्थ हुए। उनकी इतनी लम्बी समाधि लगी जो छतीस युगों तक एक ही आसन पर बैठे हुए व्यतीत कर दिये। वास्तव में जागना तो यही होता है। ऐसे जागृत तो कोई विरले ही होते है।

तउवा त्यागज ब्रह्मा त्यागा, अवर भी त्यागत त्यागूं।
तउवा भाग जो ईश्वर मस्तक, अवर भी मस्तक भागूं।

संसार में अनेकानेक त्यागी हुए हैं। किसी ने कुछ ज्यादा तो किसी ने कुछ कम त्याग किया है। किन्तु जितना त्याग प्रजापति ब्रह्मा जी ने किया है उतना किसी ने भी नहीं किया अर्थात् ब्रह्माजी ने सम्पूर्ण सृष्टि की रचना की। इसलिये सभी के पिता है तो भी उन्हें अपने पुत्रों से मोह नहीं है और न ही उनसे कुछ प्राप्ति की ही आशा रखते हैं। सदा निर्लिप्त भाव से रहते हैं।

जितना भाग्य ईश्वर के मस्तिष्क में लिखा है उतना अन्य दूसरों को कहां है। ईश्वरत्व की प्राप्ति तो ज्ञान तपस्या शुभ कर्मो से ही होती है। वह सम्पति जिसके पास अधिक है वही ईश्वर है।

तउवा सीर जो ईश्वर गौरी, अवर भी कहियत सीरूं।
तउवा वीर जो राम लक्ष्मण, अवर भी कहियत बीरूं।

पति-पत्नी का सम्बन्ध संसार में कहीं कहीं देखा जाता है। किन्तु जितना सम्बन्ध प्रेम भाव अटल शिव पार्वती का है उतना अन्य दूसरों में कहाँ है तथा भाई भाई में आपस में प्रेम भाव मधुर सम्बन्ध कहीं कहीं देखने को मिलता है किन्तु जितना राम लक्ष्मण में प्रेम भाव था उतना अन्यत्र कहाँ है।

तउवा पाग जो दश सिर बांधी, अवर भी बांधत पागूं।
तउवा लाज जो सीता लाजी, अवर भी लाजत लाजूं।

सिर पर पगड़ी बांधना महत्ता तथा अहंकार का होना द्योतित करता है। संसार में पगड़ी बांधने वाले तो अनेक है जो अपनी सामर्थ्यानुसार बांधते ही है। किन्तु जितनी अहंकारता से पगड़ी रावण ने बांधी, ऐसी किसी ने नहीं बांधी क्योंकि जिसके एक सिर होता है वह भी अपना कुछ अस्तित्व रखता है तथा जिसके दश सिर हो उसकी तो क्या दशा होगी। जीवन को बर्बाद करने के लिये तो एक सिर (अहंकार) ही प्राप्त है जिसके दश सिर हो उसकी तो रावण जैसी ही हालत होती है।

इस दुनिया में सती, लज्जावन्ती अनेक स्त्रियां है किन्तु जितनी सती लज्जावन्ती सीता थी उतनी और नहीं हो सकती। स्त्रीत्व जाति का लज्जा सतीत्व ही भूषण है इन्हीं भूषणों से सीता ही पूर्ण रूपेण विभूषिता थी।

तउवा बाजा राम बजाया, अवर बजावत बाजूं।
तउवा पाज जो सीता कारण लक्ष्मण बांधी, अवर भी बांधत पाजूं।

मानव जीवन धारण करके कुछ लोग इस जीवन में शुभ कार्य करने की घोषणा करते हैं। दुनिया को यह बात बाजा बजाकर के बता देते हैं किन्तु उनमें से सफल कितने होते हैं? किन्तु जिस प्रकार से श्री राम ने बाजा बजाया जीवन सफल करने करवाने की समाज में प्रतिज्ञा पूर्ण की, ऐसा कौन कर सकता है।

इस संसार में अनेक लोग नदी नाले पार करने के लिये छोटे-मोटे पुल बांधते हैं अर्थात् संसार सागर

पार उतरने के लिये छोटे-मोटे धर्म-कर्म तथा मर्यादा का पुल बांधते हैं। किन्तु जैसा पुल सीता की प्राप्ति के लिये लक्ष्मण ने बांधा वैसा कौन बांध सका है अर्थात् मर्यादा धर्म की स्थापना के लिये जैसा तप लक्ष्मण ने किया ऐसा अन्य से असंभव है अथवा जैसी पंचवटी में सीता के रक्षार्थ रेखा लक्ष्मण ने खींची वैसी कौन खींच सकता है।

तउवा काज जो हनुमत सारा, अवर भी सारत काजूं।
तउवा खागज जो कुम्भकरण महरावण खाज्या, अवर भी खावत खागूं।

संसार में स्वामी सेवक बहुत देखे गये किन्तु जितनी सेवा निस्वार्थ भाव से हनुमान ने श्री राम जी की थी, उतनी और कौन कर सकता है। निस्वार्थ भाव से सेवा कार्य से ही आज हनुमान पूजनीय हो गये है।

भोजन भट्ट तो बहुत देखे गये किन्तु जितना भोजन कुम्भकरण महिरावण ने किया उतना और कौन कर सकता है। किन्तु वे भी अधिक भोजन के बल पर जीवन को स्थिर नहीं कर सके काल में समा गये।

तउवा राज दुर्योधन माण्या, अवर भी माणत राजूं।
तउवा राग ज कन्हड़ बांणी, अवर भी कहिये रागूं।

राजा तो अनेक हुऐ है तथा राज काज में मद मस्त भी हुऐ है किन्तु जितना अभिमान दुर्योधन ने किया, वैसा किसी ने भी नहीं किया। दुर्योधन के अभिमान ने ही महाभारत युद्ध करवाया जिससे सर्वनाश हुआ। बाल्यावस्था में गऊवें चराते हुऐ बंशी तो अनेक बालक बजाते है। किन्तु जितनी मधुर ध्वनि में बंशी कृष्ण ने बजाई, ऐसी और कौन बजा सकता है। अन्य लोगों की बंशी में खिंचाव कहाँ है जैसा कृष्ण की बंशी में था।

तउवा माघ तुरंगम तेजी, टटू तणां भी माघूं।
तउवा बागज हंसा टोली, बगुला टोली भी बागूं।

कुछ लोग सवारी के लिये टटू का उपयोग करके मार्ग तय तो कर लेते हैं किन्तु उन टटुओं में घोड़े जैसी तेजी कहाँ है जो अतिशीघ्र से मार्ग तय कर सके। वैसे तो बगुले भी टोली बनाकर किसी तालाब के किनारे में बैठते हैं। किन्तु जो मानसरोवर झील एवं हिमालय के देवदारू का बाग हंसों की टोली को उपलब्ध है वह मानसरोवर बगुलों को कहाँ मिल पाता है अर्थात् जो धर्म साधना में मंदगामी है उन्हें तो इस संसार रूपी बाग में अल्प सुख तालाब ही मिल पाता है तथा जो शीघ्रगामी है साधना तत्परता से करते है उन्हें हंसों की भांति दिव्य स्वर्गीय सुख मान सरोवर की प्राप्ति होती है।

तउवा नाग उद्यावल कहिये, गरूड़ सीया भी नागूं।
तउवा सागज नागर बेली, कूकर बगरा भी सागूं।

सर्पो में अनेक ऐसे छोटे-बड़े सर्प है जो गरूड़ से भयभीत रहते है तथा उनका भोजन बन जाते है। किन्तु शेष नाग, वासुकि जैसे उत्तम जाति के नाग बहुत ही कम दिखाई देते है। वासुकि जैसी करामात इनमें कहाँ है तथा मरूस्थल देश में होने वाली कूकर बगरा अत्यन्त कंटीली विषमय वनस्पति उस नागर बेली तथा अमृत फलमय वनस्पति की बराबरी कैसे कर सकती है अर्थात् जो सज्जन गुणवान, मधुर वक्ता है उसकी बराबरी दुर्जन गुण रहित झूठ कुवचन वक्ता पुरुष कैसे कर सकता है।

जां जां शैतानी करै उफारूं, तां तां महंत ज फलियो।

जुरा जम राक्षस जुरा जुरिन्द्र, कंश केशी चंडरूं।
मधु कीचक हिरणाक्ष, हीरणाकुश।

हे जेतसी! जहाँ-जहाँ पर भी शैतान लोग उफार करते हैं। अपनी दुष्ट वृत्ति से कार्य करके उसका फैलाव करते हैं, त्यूं त्यूं ही दुष्टता अधिक बढ़ती है। ऐसी वृत्ति के कारण ही जबरदस्त यम के समान राक्षस पैदा हो गये हैं। इन राक्षस वृत्ति धारी राजाओं ने सभी को जबरदस्ती से अपने वश में करने की कोशिश की थी। उसी प्रकार से अब भी तुम्हारे पिता करने जा रहे हैं। जब राक्षस वृतिधारी कंश, केशी, चंडरू, मधु, कीचक, हिरणाक्ष तथा हिरण्यकश्यपु भी नहीं बच सके तो तुम्हारे इन सैनिकों सहित अन्यायकारी पिता की क्या दशा होगी।

चक्रधर बलदेऊं, पावत वासुदेवों।
मंडलिक कांय न जोयबा, इहिं धर उपर रती न रहीबा राजूं।

अन्त समय में इन रावण सदृश कंश आदि मानवों ने भी चक्रधारी श्री कृष्ण एवं हलधर श्री बलराम को ही सामने देखा था अर्थात् इनकी मृत्यु परमात्मा के हाथों ही हुई थी। उन सम्राट राजाओं को क्यों नहीं देखते जिनका इस धरती पर सार्वभौम राज्य था किन्तु जब अन्याय किया तो क्षण भर में ही चला गया। इस समय के इन छोटे मोटे राजाओं की तो क्या औकात है। किस बलबूते पर ये झूठा अभिमान करते हुऐ अन्याय से किसका हक छीन रहे है। यह अन्याय न तो कृष्ण के रहते हुऐ चल सका और न ही मेरे यहाँ रहते हुऐ चल सकेगा।

★★★★

प्रसंग-29 दोहा

नैते को पकड़यो सही, अरू टोडो मार्‌यो आय।
चारण सूं ऐसे कह्यो, उलटा गीत कहाय।
नैते कागज भेजियो, राव ज सांतल पास।
म्हां मामा बेला पड़ी, माने थारी आस।
रावज कागद मेलियो, द्वादस कोटड़ी मांहि।
नेतो पकड़यो खान ने, ताहि छुडावण जाहि।
लड़ाई करां पड़पा नहीं, दाम न द्यां म्हे टेव।
दूदै तब ऐसै कह्यो, चालों प्रशां देव।
डेरो सो व्हांई कियो, काकोलाव तालाब।
थांवलै प्रगटे देवजी, आय ज प्रशे पांव।
फौज जु आई खान की, आय विलज्ञो पांय।
महलूखान कर जोड़ के, खड़यो रह्यों एक पांय।

अजमेर के सूबेदार महलूखान और टोडा के राजा नेतसी सौलंकी, उन दोनों में सामान्य लड़ाई हुई थी। जिसमें नैतसी को बन्दी बनाकर अजमेर जेल में बन्द कर दिया था। नेतसी जोधपुर नरेश अपने मामा सांतल को अपनी स्थिति से अवगत करवाने में सफल हो गया। सांतल ने कागज पढ़कर अपने सम्बन्धियों को जो बारह छोटी मोटी रियासतों में रहते थे, उनसे सम्पर्क स्थापित किया गया तथा उन्हें सेना लेकर अजमेर पर चढ़ाई करने का आदेश दिया। स्वयं भी राजा सेना सहित थांवले ग्राम के तालाब पर डेरा डाल दिया। (यह गांव मेड़ते तथा अजमेर की सीमा पर स्थित है) वहाँ पर बैठकर सभी लोग विचार करने लगे, आगे की योजना बनाने लगे।

किसी ने कहा कि महलूखान से युद्ध करके नेतसी को छुडाना असंभव है क्योंकि शत्रु हार कर जेल में नेतसी की हत्या भी कर सकता है। अन्य दूसरे सरदार ने कहा-कि महलूखान को कुछ धन देकर सन्धि कर ली जाय तो ठीक रहेगा। युद्ध में हजारों लोगों के प्राण जा सकते है। तब मेड़ताधीश राव दूदा ने कहा कि इस समय न तो संधि ही हो सकती और न ही रूपये ही दे सकते और नेतसी के छूटने में इन उपायों से तो संदेह ही मालूम पड़ता है। अब तो एक ही उपाय है हम सभी मिलकर सम्भराथल जम्भदेवजी के पास पहुंचे। वे ही हमें संकट से उबार सकते हैं, तब श्री देवजी को वहीं पर ही याद किया तो जम्भदेवजी प्रकट हुए।

तथा उधर से महलूखान भी सेना सहित थांवले के निकट ही आ गया था। युद्ध की इस विभीषिका के बीच में श्री देवजी आये। महलूखान श्री देवजी के दर्शन करके एक पांव पर खड़ा रहा। तब जाम्भोजी ने उन्हें नम्रशील देखकर यह सबद सुनाया और नैतसी को मुक्त करवाया तथा नर संहार को रोककर वापिस आपस में मेल मिलाप करवाया। उसी समय का यह सबद है।

सबद-66

ओ३म् ऊमाज गुमाज पंज गंज यारी, रहिया कुपहिया शैतान की यारी।

भावार्थ-हे महलूखान! तूं नित्य प्रति नमाज पढ़कर ईश्वर को याद करने वाला व्यक्ति होकर भी इस प्रकार से नेतसी को पकड़कर के कैद कर दिया और अब युद्ध के लिये तैयार होकर आ गया, यह तेरा कैसा उन्माद एवं अहंकार है। तूने सदा मन इन्द्रियों की बात को स्वीकार किया है। बुद्धि से भलाई नहीं सोची। इसलिये तुम्हें इस स्थिति में पहुंचा दिया है। अब तूं इनकी मित्रता छोड़कर विवेकशील बन कर जनता की भलाई का कार्य कर। तुमने शैतान लोगों से मित्रता करके यह कुमार्ग अपना लिया है।

शैतान लो भल शैतान लो, शैतान बहो जुग छायों।
शैतान की कुबध्या न खेती, ज्यूं काल मध्ये कुचीलूं।

हे राजन्! तुम्हारा यह तो कर्तव्य बनता है कि जो वास्तविक में ही शैतानी करते हैं, जो बदमाशों के भी बदमाश, चोर, अपराधी है उन्हें तो आप अपने अधिकार में लेकर के उन्हें दण्डित कर सकते है। किन्तु जो अनपराधी लोग है उन्हें बिना प्रयोजन ही युद्ध के लिये ललकारना तुम्हारी बुद्धिमानी नहीं है। जो स्वभाव से ही अपराधी लोग है उनकी तो कुबध्या यानि समाज में किसी प्रकार का उपद्रव करना और करवाना ही खेती-धन्धा है। जिस प्रकार से शांत वातावरण में कभी कोई दैविक उपद्रव जैसे तूफान ओले अनावृष्टि अतिवृष्टि आदि आते है और सभी कुछ तहस नहस कर देते है। उसी प्रकार से ये शैतान लोग होते है।

वे राही वै किरियावन्त कुमती दौरे जायसी, शैतानी लोड़त रलियों।

जां जां शैतानी करै उफारूं, तां तां महंत न फलियो।

वे शैतान लोग शुद्ध सच्चे मार्ग हीन, धर्म क्रिया रहित, कुमति वाले होते है। इसलिये यह उनका जीवन भी दु:खमय होता है और परलोक भी नरकमय बन जाता है। शैतान लोगों का स्वभाव ही होता है जब उन्हें आवश्यकता पड़ती है तो वे झट अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिये आपसे मेल मिलाप भी कर लेंगे और उनका स्वार्थ सिद्ध होते ही आपसे मुंह मोड़ लेंगे। जहाँ-जहाँ पर भी शैतान लोगों ने अपनी करतूत दिखाई है वहाँ-वहाँ पर समाज, देश, व्यक्ति तथा अहंकार कर्त्ता शैतान भी पूर्णतया फलीभूत नहीं हो सकेगे। वे लोग न तो स्वयं ही उन्नति कर सकते है और न ही औरों को करने ही देते है।

नीले मध्ये कूचील करबा, साध संगीणी थूलूं।
पोहप मध्ये परमला जोति, यूं सुरग मध्ये लीलूं।

शैतान लोग नीले वस्त्र पहनकर अपनी हृदय की कालुष्यता को कुकर्म करके प्रगट कर देते है। वे लोग अन्दर तथा बाह्य परिवेश नील अभद्रता को ही पसन्द करते है। उसी वेश में रहकर दुष्ट कार्य अच्छी तरह से कर सकते हैं तथा साधु सज्जन पुरुषों के साथ स्थूल वार्ता तथा दुष्टता ही करेंगे। तो वे लोग ज्ञान कहाँ से प्राप्त करेंगे। जिस प्रकार से पुष्प में सुगन्धी सर्वत्र समायी हुई है। उसी प्रकार से परमात्मा की ज्योति भी सर्वत्र समायी हुई है तथा वही ज्योति उन दुष्ट जनों में भी है किन्तु उस ज्योति को प्राकट्य वो लोग नही कर सके हैं। उसी प्रकार से स्वर्ग में भी परमात्मा की लीला सर्व समायी हुई है। अर्थात् स्वर्ग तो वही हो सकता है जहाँ पर परमात्मा की दिव्य लीला का सर्वत्र अनुभव किया जाय। ऐसा होने पर ही मनुष्य के अन्दर से दुष्टता निकल सकती है।

संसार में उपकार ऐसा, ज्यूं घण बरषंता नीरूं।
संसार में उपकार ऐसा, ज्यूं रूही मध्ये खीरूं।

हे राजन्! इस संसार में तो उपकार ऐसा करना चाहिये जिस प्रकार से बादल जल बरसाते है तथा संसार में परोपकार तो उस प्रकार से करना चाहिये जिस प्रकार से गाय-भैंस आदि के शरीर मध्य से दूध उत्पन्न होता है उससे जीवन का विकास होता है।बादल निष्प्रयोजन आकर वर्षा करते हैं तथा गऊ आदि घास खाती है उससे दूध पैदा करती है। वह भी परमार्थ के लिये होता है। उसी प्रकार से मानव को भी निस्वार्थ भाव से सेवा करनी चाहिये। किसी का धन अपहरण करके उसे दुखी नहीं करना चाहिये।

★★★★

प्रसंग-30 दोहा

दूणपुर वीदो रहे, जोधावत तिणवार।
साध छुड़ावण कारणै, आवहि सिरजण हार।
मोती मेघ जु गुरु भक्त, रहै दूणपुर गांम।
ताहि छुड़ायो जम्भगुरु, शांमी यों कहै जु नाम।

जोधपुर नरेश जोधाजी का पुत्र वीदा राठौड़ दूणपुर का राज्य करता था। उसी नगरी में मोती नाम का

जाति से मेघवाल भी रहता था। वह जाम्भोजी का शिष्य बन गया था और नियम-धर्म को स्वीकार कर लिया था। आचार हीन ब्राह्मण क्षत्रियों से भी छूआ छूत रखने लग गया था। यह बात वीदे के पास पहुंची वीदा बहुत ही क्रोधित हुआ तथा उसे बुलाकर प्राण दण्ड देने के लिये तैयार हुआ, परन्तु किसी दयावान ने उसका कुछ समय के लिये दण्ड रूकवा दिया था।

मोती मेघवाल जेल में पड़ा हुआ गुरु जम्भेश्वर जी का स्मरण करने लगा। अपने भक्त की करुणामय पुकार सुनकर जम्भदेवजी वहाँ दूणपुर के पास ही रेत के टीले पर जाकर विराजमान हुए। प्रातः काल वीदा यह जानकर कि जम्भेश्वर जी आ गये हैं। उनसे मिलने के लिये अभिमान सहित आया और मार्ग में आते हुए विचार किया कि इस पुरुष को सिर नहीं झुकाऊंगा किन्तु लात अवश्य ही मारूंगा। जब वह समीप में आ गया और जाम्भोजी के दर्शन किये तो बुद्धि बदल गई और बिना प्रणाम तथा लात लगाये ही पास में बैठ गया और कहने लगा-

दुनिया में बड़े-बड़े योगी हुए है किन्तु किसी ने भी अपने आप स्वयं को भगवान नहीं कहा किन्तु तुम तो अपने आप को स्वयं ही भगवान कृष्ण कहते हो, अब मैं आपकी परीक्षा लूंगा यदि भगवान का अवतार है तो मानूँगा, नहीं तो यहाँ से भगा दूँगा। श्री देवजी ने कहा-आप क्या चाहते हो। तब वीदे ने कहा-कि इस समय यहाँ पर आकों के आम और नींबों के नारियल तथा जल से दूध करके दिखलाओ तो मैं सच्चा मानूँगा। गुरु जी ने सिद्धि के बल से वैसा करके दिखाया तथा सभी को ही खिलाकर स्वाद से परिचय भी करवाया और कहा-यह कोई बाजीगर या अन्य सिद्ध नहीं कर सकता। यह तो अनहोनी कृष्ण चरित्र से संभव हुई है। इससे प्रभावित होकर वीदे ने मोती को मुक्त कर दिया।

वीदे ने यह जानना चाहा कि इसका मन्त्र मुझे प्राप्त हो, तब श्री देवजी ने कहा कि यह तुम्हारे लिये असंभव है। वीदा कहने लगा-कि आप यदि सत्य परमेश्वर कृष्ण हो तो हमें श्री कृष्ण की भांति ही सहस्र रूप दिखाइये। जम्भगुरु जी ने यह भी स्वीकार किया। तब चालीस व्यक्तियों को अलग अलग स्थान में भेजा गया और उन्हें उतने ही स्थानों पर उसी प्रकार से हवन करते हुऐ दिखाई दिये। इस बात से वीदा अवगत हुआ और विश्वास प्राप्त किया किन्तु सन्तुष्ट नहीं हो सका और कहने लगा-

कि इन जम्भेश्वर की चादर खींच करके देखों, यह स्त्री है या पुरुष या नपुंसक है। वीदे के संकेत पर एक पुरुष द्वारा पल्ला खींचने पर भी पार नहीं पा सका। वह वस्त्र बढ़ता ही गया। तब वीदे को यह शुक्ल हंस सबद सुनाया-यह सबद अपवित्र जीव को पवित्र करके हंस सदृश बना देता है। ऐसा वीदे के प्रति किया था। इसलिये हम नित्य प्रति इसका अन्तिम पाठ अवश्यमेव करते हैं। जिससे हमारे पापों की निवृत्ति हो सके तथा सम्पूर्ण सबदों के पाठ एवं ज्ञान का फल मिल सके। दूसरे सबदों से इस सबद की ध्वनि लय विशेष है। वेद मन्त्रों की भांति सबद लय भी ध्वनि प्रदूषण को समाप्त करती है तथा हृदय पर विशेष प्रभाव डालती है। इसलिये समवेत स्वर में धीमी गति तथा प्रेम से बोलना चाहिये। तभी फल दायक है।

सबद-67 (शुक्ल हंस)

ओ३म् श्री गढ़ आल मोत पुर पाटण भुंय नागोरी, म्हे ऊंडे नीरे अवतार लीयो।

भावार्थ-संसार के सभी गढ़ों में भगवान विष्णु का धाम वैकुण्ठ लोक सर्वश्रेष्ठ गढ़ है। उसी श्री गढ़ से आल-हाल चल करके इस मृत्यु लोक में आया हूँ तथा इस मृत्युलोक में भी नागौर की भूमि में स्थित

पींपासर में जो भूमि ग्रामपति लोहट पंवार क्षत्रिय के अधिकार में है यह उत्तम भूमि है जहाँ पर अत्यधिक गहराई में जल मिलता है। उस उत्तम जल वाले देश में मैंने अवतार लिया है। अर्थात् उस परम धाम को अकस्मात् छोड़कर इस भूमि में मुझे आना पड़ा है। आगे यहाँ पर आने का मुख्य कारण बतला रहे है।

अठगां ठंगण अदगां दागण, अगजा गंजण, ऊनथ नाथन, अनू निवावण।

जो पुरुष पाखण्ड करके दूसरों को ठगते है, किन्तु स्वयं किसी अन्य से नहीं ठगे जा सकते ऐसे ऐसे चतुर लोगों को ठगने के लिये अर्थात् उनकी ठग-पाखण्ड विद्या हरण करने के लिये, जिसने अब तक धर्म का दाग-चिह्न विशेष धारण नहीं किया है उन्हें धर्म के चिह्न से चिह्नित करके सद्मार्ग में लाने के लिये, जो दूसरों के तो सच्चे धर्म का भी अपनी बुद्धि चातुर्य से खण्डन कर देते है तथा अपने झूठे पाखण्ड मय धर्म मार्ग को भी अपने स्वार्थ वश सत्य बतलाते है ऐसे लोगों का विश्वास नाश करने के लिये, उद्दण्डता से अपनी इच्छानुसार विचरण करने वाले लोगों के मर्यादा रूपी नाथ डालने के लिये और अभिमान में जकड़े हुऐ लोग जो किसी के सामने सिर झुकाना नहीं जानते नम्रता, शीलता नहीं जानते उन्हें झुकाने के लिये नम्रशील बनाने के लिये मैं यहाँ मरुभूमि में आया हूँ।

कांहि को मैं खैंकाल कीयों, कांही सुरग मुरादे देसां, कांही दौरे दीयूं।

यहाँ पर आकर मैंने किसी को तो समय-समय पर नष्ट ही कर दिया अर्थात् कृष्ण नृसिंह आदि रूप में तो दुष्टों को नष्ट ही किया तथा किसी सज्जन ज्ञानी ध्यानी भक्त पुरुष को तो उसकी इच्छा व कर्मानुसार स्वर्ग या मोक्ष की प्राप्ति करवाई। यह इस समय भी तथा इससे पूर्व अवतारों में भी और अन्य किसी को भयंकर नरक भी दिया क्योंकि उन लोगों के कर्म ही ऐसे ही थे। इसलियें कर्म करना मानव के अधीन है। किन्तु फल देना ईश्वर के अधीन है।

होम करीलो दिन ठाविलो, सहस रचीलो, छापर नीबी दूणपूरूं।
गांव सुंदरियो छीलै बालदियो, छन्दे मन्दे बाल दीयों।

हे वीदा! तूं अपने आदमियों को दिन निश्चित करके जहाँ-जहाँ पर भेजेगा मैं वहीं हजारों रूप धारण करके यज्ञ करता हुआ दिखाई दूंगा। बीदा हजारों जगहों पर तो नहीं भेज सका किन्तु जहाँ-जहाँ पर भेजा गया था वहाँ-वहाँ पर बतलाते हैं। जैसे छापर, नीबी, द्रोणपुर, सुन्दरियो, चीलो, बालदियो, छन्दे, मन्दे बालदियो तथा-

अजम्हे होता नागो बाड़ै, रैण थंभै गढ़ गागरणों।
कुं कुं कंचन सोरठ मरहठ, तिलंग दीप गढ़ गागरणों।

अजमेर, होता, नागौर, बाड़ै, रैण थंभौर, गढ़ गांगरणों, कुं कुं कश्मीर, कंचन, कच्छ, सौराष्ट्र, महाराष्ट्र, मेरठ, तिलंग, तेलंगाना, तैलंगुदेश, द्वीप, रामेश्वरम्, गढ़ गागरोन तथा और भी।

गढ़ दिल्ली कंचन अर दुणायर, फिर फिर दुनिया परखे लीयो।
थटे भवणिया अरू गुजरात, आछो जांई सवा लाख मालवै।
पर्वत मांडू मांही ज्ञान कथूं।

दिल्ली गढ़, कंचन नगरी और देहरादून आदि स्थानों में यज्ञ किया है मैने वहाँ व्यापक भ्रमण किया है और लोगों को जांचा-परखा है तथा थट्ट, बांभणियां, गुजरात, आछो जाई, श्यालक, मालवा, पर्वत, मांडू, जैसलमेर इत्यादि स्थानों में जाकर ज्ञान का कथन किया। उन लोगों को चेताया है।

खुरासाण गढ़ लंका भीतर, गूगल खेऊं पैर ठयो।
ईडर कोट उजैणी नगरी, काहिंदा सिंध पुरी विश्राम लीयो।

खुरासाण तथा लंका में जाकर वहाँ पर हवन किया और हवन समाप्ति पर अंगारों पर गूगल चढ़ाया था। जिससे वहाँ का वातावरण पवित्र हुआ था। ईडर गढ़, उज्जयिनी नगरी तथा कुछ समय तक समुद्र किनारे बसी हुई जगन्नाथ पुरी में भी विश्राम किया था।

कांय रे सायरा गाजै बाजै, घुरै घुर हरै करै इवांणी आप बलूं।
किहिं गुण सायरा मीठा होता, किहिं अवगुण हुआ खार खरूं।

(जब श्री देवजी जगन्नाथपुरी समुद्र के किनारे विराजमान थे। उसी समय ही वहाँ पर लोगों में एक महामारी फैल गई। जिसको वहाँ की स्थानीय भाषा में गूड़िंचा कहते है। इधर शीतला चेचक कहते है लोग आकर जम्भदेवजी से प्रार्थना करने लगे तब उन लोगों को अभिमंत्रित जल-पाहल पिलाया, जिससे उनकी बीमारी मिट गई। उसी महान घटना की यादगार में मन्दिर बनाने की प्रार्थना उन लोगों ने गुरुदेव से की। तब उन्हें मन्दिर बनाने की आज्ञा तो दी परन्तु उसमें कोई मूर्ति विशेष रखने की मनाही कर दी। अब भी जगन्नाथपुरी में वह मन्दिर ज्यों का त्यों विद्यमान है। वह मन्दिर जम्भेश्वर महादेव के नाम से प्रसिद्ध है। जो जगन्नाथ जी के मुख्य मन्दिर से थोड़ी दूरी पर उतर पश्चिम में स्थित है। वहाँ पर पंच महादेवों में एक जम्भेश्वर महादेव है। जिनकी मूर्ति जगन्नाथ जी के मुख्य मन्दिर के पास एक छोटा सा मन्दिर है उसमें रखी हुई है। उन स्वर्ण मूर्तियों पांचों में एक जम्भेश्वर महादेव है। मेरे कहने का भाव यही है कि कोई जगन्नाथ जी जाये तो अवश्य ही देखकर जानकारी करके आवें। मैंने देखा तो अवश्य ही था किन्तु समयाभाव के कारण पूरी जानकारी प्राप्त नहीं कर सका।)

श्री देवजी वीदे से कह रहे है - हे वीदा! मैंने उस जगन्नाथपुरी के समुद्र को देखा है तथा उसकी महान ऊंची ऊंची लहरों को भी देखा है। वे लहरें दूर से अत्यधिक भयावनी लगती है स्नानार्थी को डरा देती है। किन्तु जब हिम्मत करके अन्दर पहुँच जाता है तो वे लहरें कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती, बाहर लाकर छोड़ देती है। मित्रवत् व्यवहार करती है गुरु जाम्भोजी कहते है कि उस समय मैंने समुद्र से पूछा था कि हे सायर! तूँ क्यों गर्जना करके यह व्यर्थ की ध्वनि करता है। इस घुर घुराने से तो तेरा अभिमान ही बढ़ेगा किन्तु बल घटेगा। जब तूँ बलहीन हो जायेगा तो फिर क्या कर सकेगा तथा यह भी बता कि पहले तेरे में कौनसा गुण था जिस कारण तूँ मीठा था और फिर कौनसा अवगुण हो गया जिससे तूँ खारा हो गया। जब तेरे में अभिमान नहीं था तो तूँ मधुर अमृतमय था और जब अभिमान आ गया तो कड़वा हो गया। मानव के लिये भी यही नियम लागू होता है।

जद वासग नेतो मेर मथाणी, समंद बिरोल्यो ढ़ोय उरू।
रैणायर डोहण पाणी पोहण, असुरां बेधी करण छलूं।

देव दानवों ने मिलकर समुद्र मन्थन द्वारा अमृत प्राप्ति का प्रयत्न किया था। उस समय वासुकि नाग की तो रस्सी बनायी थी। सुमेरू पर्वत की मथाणी-झेरणा बनाया था तथा देव दानवों ने मिलकर मंथन प्रारम्भ किया तो वह मथानी वजनदार होने से देव दानव नहीं संभाल सके थे। नीचे धरती पर जाकर टिक गई थी, तब दोनों पक्षों ने ही जाकर भगवान विष्णु से पुकार की थी। उस समय भगवान विष्णु ने कछुवे का रूप धारण करके सुमेरू रूपी मथानी को उठा लिया था। फिर मन्थन कार्य चलने लगा तब समुद्र से अनेकानेक दिव्य रत्न

निकलने लगे किन्तु उन पर असुरों ने कुछ भी ध्यान नहीं दिया। जिस कारण से अनेक रत्न तो देवताओं को प्राप्त हो चुके थे।

चौदहवां रत्न अमृत निकला उसके लिये देव-दानव आपस में बंटवारा नहीं कर सके। उसके लिये भगवान ने मोहिनी रूप धारण करके अमृत देवताओं को पिलाकर अमर करना चाहते थे। किन्तु राहु दैत्य भी पी चुका था वह भी अमर हो चुका था। भेद खुलने पर देवताओं ने सिर काट डाला, तब एक के दो हो गये। अब भी राहु और केतु ये दोनों अमर है। सूर्य और चन्द्रमा को समय समय पर ग्रसित करते हैं। जब समुद्र से अमृत निकाल लिया तो पीछे कड़वा ही शेष रह गया। इसलिये हे वीदा! वह इतना महान अमृतमय समुद्र भी अभिमान करने से अमृत खो बैठा और दयनीय दशा को प्राप्त हो गया। उसके सामने तेरी क्या औकात है। तेरा भी यह अभिमान करना व्यर्थ ही है और भी ध्यान पूर्वक श्रवण कर।

दहशिर ने जद वाचा दीन्ही, तद म्हे मेल्ही अनंत छलूं।
दहशिर का दश मस्तक छेद्या, ताणूं बाणूं लडूं कलूं।

लंकापति रावण ने प्रथम कठोर तपस्या की थी और शिव को तपस्या द्वारा प्रसन्न करके वरदान प्राप्त किया था। गुरु जाम्भोजी कहते हैं कि उस समय वरदान देने वाला भी मैं ही था तथा रावण का राज्य विशालता को प्राप्त हो चुका था। तब मैं राम रूप में सीता लक्ष्मण सहित वन में आ गया था और मैंने ही रावण को छलने के लिये सीता को भेजा था। रावण जबरदस्ती नहीं ले गया था। रावण को मारने के लिये सीता को तो निमित बनाया था। वैसे बिना अपराध किये रावण को कैसे मार सकते थे। सीता वापसी के बहाने से मैंने रावण के वरदान स्वरूप प्राप्त दश सिरों को बाणों द्वारा काट डाला था तथा रावण सहित पूरे परिवार को तहस-नहस कर डाला था।

सोखा बाणूं एक बखाणूं, जाका बहु परमाणूं, निश्चय राखी तास बलूं।

जब रावण को मारने के लिये चढ़ाई की थी तब बीच में समुद्र आ गया था। तीन दिनों तक प्रतीक्षा करने पर भी वह दुष्ट नहीं माना तो फिर धनुष पर बांण का संधान कर लिया था और उसे सुखाने का विचार पक्का ही हो गया था। उस समय समुद्र अपनी सठता भूल कर हाथ जोड़कर सामने उपस्थित हुआ था। इसका बहुत प्रमाण है। यदि तुझे विश्वास नहीं है तो शास्त्र उठाकर देख ले। उस सठ समुद्र तथा रावण ने अपना बल निश्चित ही तोल करके देखा था तथा उस अभिमान के बल पर ही गर्व किया करते थे। किन्तु उन दोनों का ही गर्व चूर-चूर कर डाला था। हे वीदा! जब रावण एवं समुद्र का अभिमान स्थिर नहीं रह सका, अहंकार के कारण दोनों को ही लज्जित होना पड़ा तो तेरी कितनी सी औकात है। किसके बल पर तूं अभिमान करता है।

राय विष्णु से वाद न कीजै, कांय बधारो दैत्य कुलूं।
म्हे पण म्हेई थे पण थेई, सा पुरूषा की लच्छूं कुलूं।

हे वीदा! तुम्हारे सामने प्रत्यक्ष देवाधिदेव विष्णु विराजमान है। व्यर्थ का वाद विवाद न करो। ऐसा करके दैत्य कुल को क्यों बढ़ाता है। तुम्हारे देखा देखी और कितने मानव से दानव हो जायेंगे। फिर तूं जानता है कि दानवों की क्या गति हुई है और क्या हो रही है। हम तो अपनी जगह पर हम ही है। तूं हमारी बराबरी नहीं कर सकता और तूं अपनी जगह पर तूं ही है। हम लोगों को तुम अपने जैसा नहीं बना सकता। उन महापुरुषों के तो लक्षण बहुत ऊंचे थे। जिसका तूं नाम लेता है वे तेरे सदृश अधम नहीं थे।

गाजै गुड़कै से क्यूं वीहै, जेझल जाकी संहस फणूं।
मेरे माय न बाप न बहण न भाई, साख न सैण न लोक जणों।

तुम्हारे इस प्रकार के झूठे गर्जन तर्जन से कौन डरता है तथा डरने का कोई कारण भी नहीं है क्योंकि तुम्हारे पास कुछ शक्ति तो है ही नहीं केवल बोलना ही जानता है। जिसके पास शेष नाग के हजारों फणों की फुत्कार के सदृश शक्ति की ज्वाला है, वह तेरे इस मामूली क्रोध की ज्वाला से भयभीत कभी नहीं होगा। कोई सामान्य गृहस्थ जन हो सकता है तेरे से कुछ भयभीत हो जाये क्योंकि उसका अपना परिवार घर हैं उनको तूं कदाचित उजाड़ भी सकता है। किन्तु जिसके माता-पिता, बहन-भाई, सखा, सम्बन्धी कोई नहीं है। उसका तूं क्या बिगाड़ेगा।

वैकुण्ठे विश्वास विलंबण, पार गिराये मात खिणूं।
विष्णु विष्णु तूं भण रे प्राणी, विष्णु भणन्ता अनन्त गुणूं।

हम तो वैकुण्ठ लोक के निवासी है। ऐसा तूं विश्वास कर तथा उस अमर लोक की प्राप्ति का प्रयत्न कर। जिससे तेरा सदा के लिये जन्म-मरण का चक्कर छूट जायेगा। इस अवसर को प्राप्त करके भी मृत्यु को प्राप्त न हो जाना। कुछ शुभ कमाई कर लेना। हे प्राणी! विष्णु के पास परम धाम में पहुँचने के लिये उसी परमात्मा विष्णु का स्मरण कर। उसका स्मरण भजन करने में अनन्त फलों की प्राप्ति होती है। विष्णु के भजन से परम पुरुषार्थ रूप मोक्ष की प्राप्ति होती है। यही अनन्त फल है।

सहंसे नावें, सहंसै ठावै, सहंसै गावै, गाजे बाजे हीरे नीरे।
गगन गहीरे चवदा भवणें, तिहूं तृलोके, जम्बू दीपे, सप्त पताले।

विषलृ-व्यापके, धातु से विष्णु शब्द की व्युत्पति होती है अर्थात् ''विवेष्टि व्यापनोति इति विष्णु'' जो सर्वत्र कण-कण में सत्ता रूप से व्यापक हो वही विष्णु है ऐसे विष्णु के स्मरण करने का अर्थ हुआ कि सर्वत्र सत्ता के साथ सम्बन्ध स्थापित कर लेना है। उसी सत्ता को गुरुदेवजी सर्वत्र बताते हुऐ कहते हैं कि उस विष्णु रूप सत्ता के हजारों अनगिनत नाम है हजारों अनन्त स्थान है तथा उसी प्रकार से उतने ही गांव है और भी सत्ता व्यापक होती हुई गर्जना, वाद्यों, हीरे, जल, गगन, गंभीर समुद्र मे तथा चवदा भवनों में तीनों लोकों मे तथा इस जम्बूदीप में और सप्त पातालों में उसकी सता विद्यमान है।

अई अमाणों तत समाणों, गुरु फरमाणों, बहु परमाणों।
अइयां उइयां निरजत सिरजत।

इस पंच भौतिक जड़मय शरीर में वह ज्योति स्वरूप तत्त्व समाया हुआ है। उस परम तत्त्व की ज्योति से ही यह सचेतन होता है। यह गुरु परमात्मा का ही कथन है। इसलिये सत्य है। इसमें बहुत ही शास्त्र वेद पुराण आप्त पुरुष प्रमाण है। यह जड़ चेतन मय संसार उसी परम तत्व रूपी परमात्मा की सृजन कला का कमाल है और उसकी ही जब वापिस समेटने की इच्छा होगी तो वह वापिस लय को भी प्राप्त हो जायेगा। वह भी उसी की ही करामात है।

नान्ही मोटी जीया जूणीं, एति सास फुरंतै सारूं।
कृष्णी माया घन बरषंता, म्हे अगिणि गिणूं फूहारूं।

इस विश्व में कुछ छोटी तथा कुछ बड़ी जीवों की जातियां है। छोटी जाति की उत्पत्ति स्थिति तथा मृत्यु

का काल अत्यल्प होता है और बड़ी जाति जैसे मानवादिक का समय अधिक होता है। गुरु जम्भेश्वर जी कहते हैं कि मैं अपनी माया द्वारा इनका सृजन करता हूँ। किन्तु उत्पत्ति में समय तो एक श्वांस बाहर निकलना और अन्दर जाने का ही लगता है अर्थात् जीवन और मृत्यु के बीच का फैसला तो एक श्वांस का ही होता है। यदि श्वांस आ गया तो जीवन है, नहीं आया तो मृत्यु है। जिस प्रकार से कृष्ण परमात्मा की माया बादलों द्वारा जल बरषाती है किन्तु अनगिनत बूंदें भी गिन गिनकर डाली जाती है अर्थात् जहां जितना बर्षाना है वहाँ उतना ही बर्षेगा न तो कम और न ही ज्यादा। उसी प्रकार से सृष्टि की छोटी-मोटी जीया जूणी भी पानी की बूंदों की तरह अनगिनत होते हुए भी परमात्मा के द्वारा गिनी जाती है। परमात्मा की दृष्टि से बाह्य कुछ भी नहीं है।

कुण जाणै म्है देव कुदेवों, कुण जाणै म्है अलख अभेवों।
कुण जाणें म्है सुरनर देवों, कुण जाणै म्हारा पहला भेवों।

वीदे द्वारा जब वस्त्र विहीन करके यह देखने का प्रयत्न किया गया कि ये स्त्री है या पुरुष है। तब इस प्रसंग का इस प्रकार से निर्णय करते हुऐ कहा कि कौन जानता है कि मैं देव हूँ या कुदेव हूँ। कौन जानता है कि मैं अलख हूँ या लखने योग्य हूँ। यह भी कौन जान सकता है कि मैं देवाधिदेव भगवान विष्णु हूँ या सामान्य देवता हूँ। तुम्हारे पास मेरा आदि व अन्त जानने का भी क्या उपाय है।

कुण जाणै म्हे ग्यानी के ध्यानी, कुण जाणै म्हे केवल ज्ञानी।
कुण जाणे म्हे ब्रह्म ज्ञानी, कुण जाणें म्है ब्रह्माचारी।

बुद्धि द्वारा अगम्य को कैसे जाना जा सकता है। इसलिये मैं ज्ञानी हूँ या ध्यानी हूँ। इस बात को तुम नहीं जान सकते। मैं केवल ज्ञानी हूँ या अज्ञानी हूँ। यह तुम किस प्रकार से जान पाओगे। मैं ब्रह्मज्ञानी हूँ या ब्रह्मचारी हूँ यह तुम्हारे समझ से बाहर की बात है। ध्यान रहे कि इन विषयों को केवल जाना नहीं जा सकता तदनुसार जीवन बनाया जाता है। न ही केवल बुद्धि द्वारा जानने से रस ही आ सकेगा।

कुण जाणै म्हे अल्प अहारी, कुण जाणै म्हे पुरुष क नारी।
कुण जाणै म्हे बाद विवादी, कुण जाणै म्हे लुब्ध सवादी।

यह कौन जानने का दावा करता है और बता सकता है कि मैं कम भोजन करने वाला हूँ या निरहारी हूँ या अधिक भोजन करने वाला हूँ। मैं पुरुष हूँ या नारी यह भी तुम कैसे जान सकते हो, कौन जानता है कि मैं वाद विवादी हूँ या लोभी हूँ या सत्य मितभाषी हूँ या बकवादी हूँ।

कुण जाणै म्हे जोगी के भोगी, कुण जाणै म्हे आप संयोगी।
कुण जाणै म्हे भावत भोगी, कुण जाणै म्है लील पती।

कौन जानता है कि मैं योगी हूँ या भोगी हूँ। यह भी कौन जान सकता है कि मैं दुनिया से सम्बन्ध रखने वाला हूँ या निर्लेप हूँ। कौन जान सकता है कि मैं जितना चाहता हूँ उतना ही मुझे भोग्य वस्तु प्राप्त है या नहीं। यह सांसारिक सामान्य व्यक्ति नहीं जान सकते है कि मैं इस संसार का स्वामी हूँ।

कुण जाणें म्हे सूम क दाता, कुण जाणें म्हे सती कुसती।
आपही सूम र आप ही दाता, आप कुसती आप सती।

कौन जानता है कि मैं सूम कंजूस हूँ या महान दानी हूँ तथा यह भी कौन जान सकता है कि मैं सती हूँ

या कुसती हूँ। मैं क्या हूँ इस विचार को छोड़ो और जो मैं कहता हूँ इस पर विचार करोगे तो सभी समस्या स्वत: ही सुलझ जायेगी और यदि विना कुछ धारण किये केवल बौद्धिक अभ्यास ही करते रहोगे तो कुछ भी नहीं समझ पाओगे। इसलिये गुरुदेव कहते हैं कि मैं ही सभी कुछ हूँ और सभी कुछ होते हुऐ भी कुछ भी नहीं हूँ। मैं ही सूम और मैं ही दाता हूँ और मैं ही सती रूप में ही तथा कुसती भी मैं ही हूँ। जैसा जो देखता है मैं उसके लिये वैसा ही हूँ। चाहे तो मुझे जिस रूप में देखें वह तो उसकी दृष्टि पर निर्भर करता है।

नव दाणूं निरवंश गुमाया, कैरव किया फती फती।

मैंने समय-समय पर अनेको अवतार धारण करके धर्म की स्थापना की है तथा राक्षसों का विनाश किया है। उनमें नौ राक्षस अति बलशाली थे। वे कुम्भकरण, रावण, कंस, केशी, चण्डरू, मधु, कीचक, हिरणाक्ष तथा हिरण्यकश्यपु। इनके लिये विशेष अवतार लेने पड़े तथा कैरव समाज जो साथ में मिल करके उपद्रव किया करते थे। उनको भी बिखेर दिया। मृत्यु के मुख में पहुँचा दिया। यह तो कृष्ण का एक राजनैतिक योद्धा का रूप था।

राम रूप कर राक्षस हड़िया, बाण के आगे वनचर जुड़िया।
तद म्हे राखी कमल पती, दया रूप म्हे आप बखाणां।
संहार रूप म्हे आप हती।

राम रूप धारण करके मैंने अनेकानेक राक्षसों को मारा और लंका में जाकर रावण को मारने के लिये बाण खींचा था। तब भी हनुमान सुग्रीव आदि वानर सेना मेरे आगे आकर सेना के रूप में जुड़ गयी थी तथा उस भयंकर संग्राम में भी कमल फूल सदृश कोमल स्वभाव वाले विभीषण एवं कमला सीता की उन राक्षसों से रक्षा की थी। वे मदमस्त हाथी सदृश उन कोमल कमल कलियों को कुचलना चाहते थे।मेरे दोनों ही रूप प्रसिद्ध है। जब मैं दया करता हूँ तो परम दयालु हो जाता हूँ और राक्षसों से जब मैं युद्ध करता हूँ तो महाभयंकर हत्यारा हो जाता हूँ।

सोलै सहंस नवरंग गोपी, भोलम भालम टोलम टालम।
छोलम छालम, सहजै राखीलों, म्हे कन्हड़ बालो आप जती।

भौमासुर ने सोलह हजार गोपियों को जेल में डाल दिया था और यह प्रण कर रखा था कि जब बीस हजार हो जायेगी तब इनसे विवाह करूँगा। वे कन्यायें ही थी, गोप बालाएँ, भोली-भाली थी तथा सभी साथ में रहकर मेल-मिलाप वाली थी। अब तो उनके खेलने का, शारीरिक मानसिक विकास करने का समय था। किन्तु दुष्ट भौमासुर ने उन्हें कैदी जीवन जीने के लिये मजबूर कर दिया था। मैंने भौमासुर को मार करके उन्हें सहज में ही मुक्त करवा दी थी तथा उन्हें शरण भी प्रदान की थी। वे गोपियाँ मुझे पति परमेश्वर के रूप में स्वीकार कर चुकी थी। फिर भी मैं कृष्ण रूप में यति बाल ब्रह्मचारी रूप में ही था। इतनी पत्नियाँ होते हुऐ भी कृष्ण का बाल ब्रह्मचारी होना यह ईश्वरीय करामात ही है।

छोलवियां म्हे तपी तपेश्वर, छोलब कीया फती फती।
राखण मतां तो पड़दै राखां, ज्यूं दाहै पांन बणास पति।

उन गोपियों के साथ रमण करने वाला मैं स्वयं तपस्वियों का तपस्वी हूँ। वही गोप ग्वाल बालों का प्रिय मैं जब उनके साथ खेल खेला करता था तब तो मण्डली जुड़ी थी किन्तु मैं जब वृन्दावन को छोड़कर चला

गया तो पुनः उस मण्डली को भिन्न भिन्न कर दिया यही तोड़ फोड़ करने वाला मैं यदि रक्षा करना चाहूँ तो भयंकर अग्नि में से एक सूखे पते की भी रक्षा कर सकता हूँ और यदि मैं न चाहूँ तो रक्षा के सभी उपाय निष्फल हो जाते हैं।

★★★★

प्रसंग-31 दोहा

लूणकरण को पुत्र जु, घोड़ो फेरत जोर।
साथरियां सब कहत है, देखहुं अस नही और।
जम्भगुरु ऐसे कह्यो, राखो ज्ञान विचार।
देव कहै क्यां को कंवर, पर है नरक मंझार।

बीकानेर नरेश लूणकरण को पुत्र अपने पिता के साथ सम्भराथल पर देव दर्शनार्थ आया था। वही सम्भराथल के समीप ही घोड़े को नचा रहा था। साथरियों ने श्री देवजी से कहा-हे देव! यह राजकुमार देखिये घोड़े को नचाता-घूमाता कितना अच्छा लगता है। ऐसा हमने तो कहीं पर भी नहीं देखा। जम्भगुरु जी ने कहा-कि कुछ तो आप लोग विचार रखा करो। यह कंवर कैसा जो नरक में पड़ जाय किन्तु इसकी तो यही दशा होगी। ऐसा कहते हुऐ सबद सुनाया।

सबद-68

ओ३म् वै कंवराई अनंत बधाई, वै कंवराई सुरग बधाई।
यह कंवराई खेह रलाई, दुनिया रोलै कंवर किसों।

भावार्थ-वास्तव में कंवर तो प्रह्लाद, हरिश्चन्द्र, युधिष्ठिर आदि थे जिनके पैदा होने पर स्वर्ग तथा इहलोक में बधाई बांटी गई भी। कंवर तो वही हो सकता है जो सत्य धर्म से प्रजा का पालन करे तथा ये जो आजकल के राजपुत्र हैं जिन्हें तुम कंवर कहते हो ये तो इस धरती की ही मिट्टी में मिल जायेंगे। इनके कर्मो की महिमा स्वर्ग तक नहीं पहुँच पायेगी। सम्पूर्ण दुनिया उस एक ही मार्ग से जा रही है। तो फिर इस कंवर की भी तो यही दशा होगी, तो फिर कंवर कैसा।

कण विण कूकस रस विण बाकस, विन किरिया परिवार किसो।
अरथूं गरथूं साहण थाटूं, धूंवें का लहलोर जिसो।

जिस प्रकार से कण-अन्न के बिना थोथा घास और रस के बिना थोथी खली या रस हीन गन्ना होता है उसी प्रकार से शुद्ध सात्विक क्रिया कर्म के बिना परिवार भी रसहीन, धर्महीन थोथा ही है। यह जो संसार में दिखाई देने वाला दौलत, घोड़ा, हाथी, पशुओं का ठाट समूह है यह भी धूंवे के बादल के समान ही है कब पवन का झोंका आये और कब बिखर जाये तथा उसी प्रकार से धन-दौलत भी कब काल का झौंका आये और कब उन्हें उड़ा दे कुछ भी मालूम नहीं है।

सो सारंगधर जप रे प्राणी, जिहिं जपिये हुवै धरम इसों।
चलण चलंतै वास बसंतै, जीव जीवंतै काया निवंती।

सास फुरंतै किवी न कमाई, तातै जंवर विन डसी रे भाई।

इसलिये हे प्राणी! उस धनुषधारी दिव्य परमात्मा विष्णु का स्मरण भजन हर समय उठते बैठते कार्य करते जीवन यापन करते हुए तथा जब तक तेरी श्वांस चल रही है तब तक तूँ इस कार्य को कर सकता है। परमात्मा को शीश झुका सकता है। नमन कर सकता है। इस स्वस्थ शरीर में श्वांसों का आवागमन चलते हुए यदि तुमने विष्णु को याद नहीं किया, जीवन का सुधार नहीं किया तो काल रूपी यमदूत तुझे बिना किसी अस्त्र-शस्त्र के ही काट डालेंगे। इस शरीर को तोड़कर जीवात्मा को ले जायेंगे। तब तेरा कुछ भी नहीं चलेगा। विष्णु का स्मरण करने से ही धर्म की उत्पति होगी, वही तेरा धर्म साथ देगा और यमदूतों से छुटकारा दिलायेगा।

सुर नर ब्रह्मा कोउ न गाई, माय न बाप न बहण न भाई।
इंत मिंत न लोक जणों, जंवर तंणा जमदूत दहैला।
लेखो लेसी एक जंणों।

बिना कोई शुभ कर्म किये ही यह पंचभौतिक शरीर तो यहीं छूट जायेगा किन्तु इस शरीरस्थ जीवात्मा को यमदूत सांकलों में जकड़कर ले जायेंगे। वहाँ पर भयंकर घोर दु:खमय नरक में जब इस जीव को यातना दी जायेगी तो उस समय वहाँ पर तुझे कोई नहीं छुड़ा सकेगा। न तो वहाँ पर देव, मानव, ब्रह्मा ही तेरी गवाही देकर छुड़ा पायेंगे और न ही वहाँ पर प्रियजन माता-पिता, बहन-भाई, सगा-सम्बन्धी, मित्र या अन्य कोई अपना पराया ही छुड़ा सकेगा।उस समय तो केवल एक धर्म कर्म ही गवाही के रूप में साथ जाता है या शारंगधर भगवान विष्णु ही छुड़ा सकते हैं वहाँ पर तेरे से हिसाब किताब पूछा जायेगा। तब उस एक पुरुष यमराज के सामने तूँ ये सम्पूर्ण चालाकियां भूल जायेगा। यहाँ मृत्यु लोक की तरह वहाँ पर रिश्वत नहीं चलेगी और न ही बड़पण, जाति, धन या अन्य किसी का चारा चलेगा।

★★★★

प्रसंग-32 दोहा

जमात कहै सुण देवजी, यह बतावो भेव।
मृत्यु जरा सब से जबर, कोई बंच है कि नहीं देव।
तीन देव अवतार सब, राजा रंक फकीर।
रवि शशी पाणी पवन धर, कोइय न धर है धीर।

यमदूत काल के भय से भयभीत जमात ने पूछा-कि हे देव! हमें यह रहस्य बतलाओ कि ये जबर बलवान यमराज तथा उनके दूतों से कोई इस संसार में बच सका है या नहीं। क्या ये तीन देवता ब्रह्मा, विष्णु, महेश, नृसिंह, राम, कृष्ण, सभी अवतार राजा, रंक, फकीर, सूर्य, चन्द्रमा, जल, पवन, धरती आदि भी काल से ग्रसित हो जायेंगे। क्या इनकी स्थिरता नहीं है। क्या ये काल से उपर नहीं है। इस शंका के समाधानार्थ यह सबद सुनाया।

सबद-69

ओ३म् जबरा रै तै जग डांडीलो, देह न जीती जाणों।
माया जालै ले जम काले, लेणा कोण समाणों।

भावार्थ-एक परम पिता परमात्मा को छोड़कर उनसे भिन्न सम्पूर्ण चराचर सृष्टि में काल रूपी मृत्यु ही सर्वोपरि है। इस महाकाल के गाल में यह जगत एक दिन अवश्य ही समाहित हो जायेगा। इस महा बलशाली काल ने ही जगत को दण्ड दिया है कि न तो कभी इसे स्थिर रहने देता और न ही कभी अमर होने देता। इस काल के रहते हुए देह को जीता नहीं जा सकता। यह सांसारिक माया जाल सभी कुछ यम के फंदे में अवश्य ही पड़ेगा। ऐसी स्थिति रहते हुए कौन परमात्मा से आत्मा का मिलन कर सकेगा। परमात्मा का साक्षात् किये बिना तो अजर-अमर कैसे हो सकते हो अर्थात् जब तक माया, देह, दृष्टि रहेगी निश्चित ही काल से नहीं बच सकोगे।

काचै पिण्डे किसी बड़ाई, भोलै भूल अयाणों।
म्हां देखंता देव दाणु सुरनर खीणां, बीच गया बेराणों।

इस कच्चे शरीर की कौनसी बड़ाई है। इसे स्थिर अजर-अमर करने की चेष्टा तो कोई बुद्धिमानी नहीं है। यदि भूला हुआ कोई अज्ञानी करता है तो वह उसकी नादानी होती है। क्योंकि काल रूपी मृत्यु ने अब तक बड़ों बड़ों को भी नहीं छोड़ा। मेरे देखते हुऐ देव दानव तथा देवराज इन्द्र मानवेन्द्र समाप्त हो गये। वे लोग राज भोग की अभिलाषा को बीच में ही छोड़कर चले गये। वे राज करना चाहते थे परन्तु काल ने उन्हें नहीं छोड़ा।

कुम्भकरण महारावण होता, अबली जोध अयाणों।
कोट लंका गढ़ विषमा होता, कांयदा बस गया रावण राणो।

इसी संसार में कभी कुम्भकरण एवं महिरावण जैसे प्रथम दर्जे के योद्धा हुआ करते थे। तथा उसी समय ही रावण जैसा राजा था जिनके लंका जैसा चारों और से समुद्र से घिरा हुआ विचित्र अद्वितीय कोट-किला था। उसी महान स्वर्ण महल में रावण कुछ दिन रहा था तथा और भी रावण की कुछ विशेषताएं थी-

नौ ग्रह रावण पाऐ बन्ध्या, तिस बिह सुर नर शंक भयाणों।
ले जम काले अति बुधवंतो, सीता काज लुभाणंो।

रावण ने नव ग्रहों को महल के एक कोने में बांध रखा था क्योंकि उसे इन-रवि, सोम मंगल, बुद्ध, वृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु इनसे ही भय रहता था कि ये कभी भी तेरे उपर हावी हो सकते हैं। इसलिये इनको तो बांधकर वश में कर लिया था। रावण मृत्यु से निडर हो चुका था। रावण किसी से भी भयभीत नहीं था। किन्तु रावण से देवता, मनुष्य, राक्षस सदा ही भयभीत रहा करते थे। वह रावण चारों वेदों का ज्ञाता महान पण्डित था। वेदों को जानकार होते हुऐ भी जीवन में विद्या का सदुपयोग नहीं करता था। बुद्धि का अतिक्रमण करते हुए अनेक रानियाँ महल में होते हुऐ भी सीता की प्राप्ति का लोभ हुआ। जिस कारण से वह भी कुम्भकरण, महिरावण, मेघनाद तथा राक्षस सेना सहित यमकाल के हाथों चढ़ गया। अपनी रक्षा नहीं कर सका और न ही सेना, लंका, ऐश्वर्य की ही रक्षा कर सका।

भरमी बादी अति अहंकारी, करता गरब गुमानों।
तेऊ तो जम काले खीणां, थीर न लाधों थाणों।

और भी अनेक भ्रम में पड़े हुए, व्यर्थ के तर्क करने वाले, अत्यधिक अहंकारी ये लोग कभी विद्या, धन, शरीर, कुल का गर्व किया करते थे, वे भी यम के सामने नहीं टिक सके। काल से ग्रसित हो गये। आज उनका वह शरीर, घर, परिवार देश वहाँ पर स्थिर नहीं रहा अर्थात् जड़ मूल से ही नष्ट हो गये।

काचै पिण्ड अकाज अफारूं, किसी पिराणी मांणों।
साबण लाख मजीठ बिगूता, थोथा बाजर घाणों।

इस नाशवान कच्चे शरीर को लेकर पाप कर्म करना तो बहुत बड़ा जोखिम मोल लेना है तथा इतना नुकसान उठा करके भी अपनी बड़ाई का बखान भी कैसा? हे प्राणी! तूँ गर्व भी इसी क्षणिक काया को लेकर करता है यह भी तेरी ना समझ ही है। जिस प्रकार से साबुन, लाख, मजीठ का कोई विश्वास एवं स्थिरता धैर्यपना नहीं है उसी प्रकार से ही यह तेरा शरीर है। जैसे साबुन पानी के साथ घिसने से घुल जाती है और मेल को काटती है उसी प्रकार से शरीर भी काल के साथ घुलता-व्यतीत हो रहा है तथा दूसरों की निंदा करके मैल को काटता है किन्तु अपने उपर स्वयं ही चढ़ाता है। जिस प्रकार लाख अग्नि के सामने पिघल जाती है। ठण्डी हो जाने पर फिर कठोर हो जाती है। उसी प्रकार से यह शरीर भी कभी तो किसी के दूसरे के दु:ख को देखकर द्रवित हो जाता है और फिर वही थोड़ी देर में कठोरता धारण कर लेता है तथा समय आने पर अग्नि में लाख एवं शरीर दोनों ही जल जाते है। लाख पर मजीठ रंग चढ़ाया जाता है। वह भी समय पाकर उतर जाता है। उसी प्रकार वह शरीर का सौन्दर्य भी टिकाऊ नहीं है। ये सभी विगूता है। अर्थात् विश्वास रहित एवं अस्थिर है। इसी प्रकार से बाजरा आदि धान कण निकाल लेने पर पीछे भूसी डूरा ही थोथा अवशेष रह जाता है। उसी प्रकार से इस शरीर से जीवात्मा निकल जाने पर भूसी की तरह ही यह शरीर रह जायेगा।

दुनिया राचै गाजै बाजै, तामैं कणूं न दाणूं।
दुनिया के रंग सब कोई राचै, दीन रचै सो जाणों।

इस दुनिया के लोग तो गाने बजाने नृत्य से अधिक खुश होते हैं उसी में ही अपने मन को लगाकर देखते सुनते हैं, किन्तु वह सार वस्तु नहीं है। वह तो अन्न विहीन भूसी की तरह ही है। जिसके अन्दर कण तत्व मिलने वाला नहीं है तथा दुनिया के रंग में तो सभी कोई रचे है। दुनियादारी के चक्कर में तो सभी रच जाते हैं किन्तु उस दीन दयाल में कोई विरला ही रचता है वास्तविक रचना तो वही है। मैं तो उसी का ही जीवन सफल मानता हूँ।

लोही मांस विकारों होयसी, मूर्ख फिरै अयाणों।
मागर मणिया काच कथिर न राचों, कुड़ा दुनी डफाणों।

जब लोही और मांस में विकार उत्पन्न हो जायेगा अर्थात् रोग लग जायेगा तब मूर्ख इधर उधर भटकेगा इससे तो अच्छा है कि पहले ही उपाय कर लिया जाय, ताकि रोग आये ही नहीं। इसके लिये खान-पान, व्यवहार पर नियन्त्रण रखना परमावश्यक है। स्वयं तो मगरे में प्राप्त होने वाले मनिके तथा काच कथिर में ही रचा रहा, उन्हें ही हीरे मानता रहा तथा दुनिया को भी भुलावे में डालकर पागल बनाता रहा अर्थात् स्वयं तो कल्पित देवी देवताओं के चक्कर में पड़कर उन्हें ही असली परमात्मा मानता रहा तथा अन्य लोगों को भी झूठे सब्ज बाग दिखाकर भ्रमित करता रहा। यह तेरा झूठा व्यवहार था।

चलन चलंतै, जीव जीवन्तै, काया निवंती, सास फुरंतै।

कांयरे प्राणी विष्णु नं जंप्यो, कीयो कंधे को ताणों।

इस झूठ कपट की वासना को त्यागकर के शरीर चलते हुए, काया स्वस्थ रहते हुऐ तथा श्वांस चलते हुऐ, हे प्राणी! तेने विष्णु का जप क्यों नहीं किया? संसार में रहते हुऐ तुमने नम्रता का व्यवहार न करके शरीर का ही जोर जताया। इस संसार की ताकत तुझे अच्छे कार्य में लगानी थी किन्तु तुमने इससे कमजोर लोगों को कष्ट दिया है इसलिये तेरे से भी कोई और शक्तिमान है। वह एक दिन आयेगा।

तिंहि ऊपर आवैला जंवर तणां दल, तास किसो सहनाणों।
ताकै शीश न ओढ़ण, पाय न पहरण, नैवा झूल झयाणों।

ऐसे लोगों के ऊपर एक दिन जबरदस्त यम के दूतों का दल आयेगा। वह दल कैसा भयंकर होगा यह बतलाते है। न तो उनके शरीर पर ओढ़ने के लिये पगड़ी तथा कुर्ता ही होगा और न ही पांवों में पहनने के लिये जूते ही होंगे और न ही अन्य कोई शरीर ढ़कने के लिये वस्त्र ही होगा।

धणक न बाण न टोप न अंगा, टाटर चुगल चयाणों।
साल सुचंगी घृत सुबासों, पीवण न ठंडा पाणी।

तथा न तो उसके पास धनुष ही होगा और न ही शस्त्र से रक्षा करने के लिये टोप ही होगा। वे अति भयंकर काले कलूटे, चुगलखोर, जीवों को शरीर से निकालकर इकट्ठे करने वाले होंगे। ऐसे लोगों के हाथ में यह जीव पड़ जायेगा तथा इस जीव को जंजीर में बांधकर बे रहमी से ले जाया जायेगा। वहाँ पर नरक में डाल देंगे। वहाँ आगे नरक में भी भयंकर दु:ख झेलना पड़ेगा। जैसे वहाँ पर न तो सुन्दर शाल, कम्बल, आदि ही मिलेंगे। इसलिये वहाँ पर सर्दी का दु:ख झेलना पड़ेगा और न ही खाने के लिये मिष्ठान्न ही प्राप्त होगा तथा न ही पीने के लिये ठण्डा पानी ही प्राप्त होगा।

सेज न सोवण, पलंग न पोढ़ण, छातन मैड़ी मांणों।
न वां दइयां न वां मइयां, नागड़ दूत भयाणों।

और न तो वहाँ सुख पूर्वक सोने के लिये फूलों की सुन्दर सेज है और न ही सामान्य पलंग ही है। जिस पर सोया जा सके ऐसा वहाँ पर कुछ भी नहीं है और न ही कोई वहाँ पर छत वाला भवन ही है। जिसके नीचे अपनी रक्षा की जा सके और न ही महल, मठ, मन्दिर ही है। वहाँ पर आनन्द मनाया जा सके वैसा वहाँ कुछ भी नहीं है। न तो वहाँ दादी है और न ही वहाँ माता ही है। जो दु:ख में पुकार करने पर आकर रक्षा कर सके। वहाँ तो केवल नंग-धड़ंग रहने वाले भयावने यम के दूत ही है। जो पुकारने पर उपस्थित हो जायेंगे तथा अधिक कष्ट में ही डालेंगे।

काचा तोड़ निकुचा भाषे, अघट घटे मल माणों।
धरती अरू असमान अगोचर, जातै जीव न तेही जाणों।

जब दुखित अवस्था में प्राणी पुकार करेगा तो और भी कष्ट देने के लिये कच्चे शरीर का मांस निचोड़ेंगे तथा कुवचन बोलकर कष्ट को द्विगुणित कर देंगे। वहाँ पर नरक में ऐसी अनहोनी घटनाऐं घटेगी जिसकी आपने कभी कल्पना भी नहीं की होगी तथा चारों और मल मूत्र का साम्राज्य होगा जिससे वातावरण दुर्गन्धमय हो जायेगा। जब यह शरीर देह से बाहर निकल कर गमन करेगा तब इस धरती से उपर आकाश की ओर उठेगा तो वह इन आंखों से दिखाई नहीं देगा। न तो उपर ले जाते हुऐ जीव को कोई सम्बन्धी रोक सकेगा और न ही उसे देख सकेगा क्योंकि इस पंच भौतिक देह में यह सामर्थ्य

नहीं है।

आवत जावत दीसै नाही, साचर जाय अयाणों।
जंवर तंणा जमदूत दहैला, मल बैसेला माणों।

यह जीव न तो शरीर में आता दिखाई देता है और न ही निकलता ही दिखाई देता है। यदि सत्य धर्म को लेकर जाता है तब तो उसका आना जाना सफल है नहीं तो व्यर्थ का ही कष्ट उठाता है। खाली हाथ जाने पर तो यमदूत उन्हें अवश्यमेव कष्ट देंगे ही तथा मलमय नरक में डाल देंगे क्योंकि उसने अपनी प्रतिज्ञा करके उसको निभाया नहीं है।

तातै कलीयर कागा रोलों, सूना रह्या अयाणों।
आयसां जोयसां भणता गुणतां, वार महूर्ता पोथा थोथा।
पुस्तक पढ़िया वेद पुराणों।

जब यह शरीर को छोड़कर चला जाता है या यमदूत जबरदस्ती ले जाते है तो पीछे कौवों की भांति रोना-चिल्लाना पुकारना ही रह जाता है। किन्तु यह शरीर तो जीव बिना शून्य हो जाता है घर-बार भी थोड़ी देर के लिये शून्य सा मालूम पड़ता है। किन्तु वह शून्यता कुछ दिनों पश्चात् समाप्त हो जाती है। इस मृत्यु तथा यमदूतों से तो क्रिया तथा शुभ कर्म विहीन चाहे योगी, सन्यासी, नाथ, ज्योतिषी, भजनीक गुणी आदि भी नहीं बच सकते तथा न ही बार मूहुर्त पुस्तक ही रक्षा कर सकेगी तथा आचार हीन, पुस्तक वेद पढ़े हुए पण्डित भी नहीं बच सकते। एक दिन सभी को काल से कवलित होना पड़ेगा।

भूत परेती कांय जपीजै, यह पाखण्ड परवाणों।
कान्ह दिशावर जेकर चालो, रतन काया ले पार पहुंचो।
रहसी आवा जाणों।

भूत-प्रेतों को क्यों जपते हो, वास्तविक तो यह सत्य मार्ग नहीं है किन्तु पाखण्ड ही है। भूत-प्रेतों की पूजा पाखण्डी लोग ही स्वार्थ सिद्धि के लिये करवाते है तथा स्वयं भी करते हैं। यदि आप लोग कृष्ण गीता के बताये हुऐ मार्ग पर चलोगे तो इस तुम्हारी रत्न सदृश अमूल्य सूक्ष्म काया को लेकर के मुक्तिधाम में पहुँच जाओगे तथा तुम्हारा बार-बार जन्मना मरना रूप चक्र मिट जायेगा।

तांह परेरै पार गिराये, तत के निश्चल थाणों।
सो अपरंपर कांय नं जंपो, तत खिण लहो इमाणों।

इस मृत्यु लोक, नरक तथा स्वर्ग से भी आगे परमात्मा का सत्य सनातन अपरिवर्तनशील वैकुण्ठ लोक है। वहीं पहुँच करके स्थिरता आ जाती है। इससे पूर्व तो आवागमन का चक्र चलता ही रहता है। इसलिये वहाँ तक पहुँचने के लिये प्रयत्नशील रहना चाहिये। उसी वैकुण्ठ धाम के स्वामी विष्णु जिनकी महिमा अपरंपर है यानि पार नहीं पाया जा सकता। उनका ही स्मरण भजन क्यों नहीं करते। क्यों भूतों प्रेतों के चक्कर में फंसे हुए हो तथा उन परम दयालु विष्णु की प्राप्ति तो तत्क्षण ही हो जाती है। भूत-प्रेतों की भांति किसी प्रकार की भोग्य वस्तुओ तथा अन्य किसी दिखावे की जरूरत नहीं है। बिना कुछ त्याग किये ही आप केवल स्मरण मात्र से ही प्राप्त कर सकते है।

भल मूल सींचो रे प्राणी, ज्यूं तरवर मेलत डालूं।
जइयां मूल न सींच्यो, तो जामण मरण बिगोवो।

हे प्राणी! भूत प्रेत रूपी डाल-पतों में पानी न देकर अच्छा जो मूलरूप भगवान विष्णु है। उसमें ही जल डालो। ऐसा करने से यह मूल ही डाल पते, फूल, फल रूप में विकसित होगा तथा अनन्त काल तक मधुर फलदायी होगा और जो लोग इस प्रकार के मूल रूप विष्णु को स्मरण समर्पण भाव नहीं करते हैं वे लोग बार-बार जन्म-मरण के चक्कर में पड़ते है नाना प्रकार के कष्टों को सहन करते हैं। कभी भी दु:ख का अन्त नहीं आता।

अहनिश करणी थीर न रहिबा, न बंच्या जम कालूं।
कोई कोई भल मूल सींचीलो, भल तंत बूझीलो।
जा जीवन की बिध जाणी।

दिन-रात भाग दौड़ कर कमाया हुआ धन स्थिर नहीं रहेगा और न ही कोई भी वस्तु यमदूत काल से बच ही सकेगी। किन्तु संसार के अधिकतर लोग तो धन कमाना, इकट्ठा करना इसी मार्ग पर ही चलते हैं। इसी संसार में कुछ-कुछ ऐसे विरले लोग भी है जो अच्छे मूल स्वरूप भगवान विष्णु को अपने जीवन में अपनाते है और वे लोग किसी सज्जन संत पुरुष से भले तत्व की प्राप्ति की बात पूछते हैं जो ऐसा करते हैं वे लोग ही जीवन की विधि, जीने की कला व तरीका जानते है वे लोग जीवन को सफल कर लेते है। यह जीवन सुखमय व्यतीत करते है तथा परलोक भी सुखमय बना लेते है।

जीव तड़ा कुछ लाहो होयसी, मूवा न आवत हाणी।

जब तक जीवन रहेगा, तब तक तो उसे जीवन प्राप्ति का आनन्द लाभ मिलेगा तथा जब कभी भी मृत्यु होगी तो भी कोई हानि नहीं होगी क्योंकि उसने जो तत्व प्राप्ति के लिये कमाई करनी थी वह तो कर चुका था। जीवन धारण करता रहे तब भी आनन्द हो जाता है तथा जीवन जीना ही मानव का कर्तव्य है। इसलिये हे जमाती लोगों! ज्ञानी के लिये मृत्यु का भय समाप्त हो जाता हैं तो फिर वह इस पंचभौतिक शरीर की रक्षा का उपाय भी नहीं सोचेगा। उसके लिये जीवन-मृत्यु दोनों ही बराबर है।

★★★★

प्रसंग-33 दोहा

महलू खां कह देवजी, भिस्त किस विध होय।
ऐसा राह बताय दो, खुदा मिले हम सोय।
राठौड़ महलूखान ने, बात जूं पूछी विचार।
झूठ सांच ब्योरो करो, तासु होय सुचियार।

एक समय महलूखान अजमेर का सूबेदार और जोधपुर नरेश सांतल राव ये दोनों ही जम्भेश्वर जी के पास ज्ञान श्रवणार्थ आये। इससे पूर्व भी दोनों श्री देवजी का चरित्र देख चुके थे। इन दोनों महानुभवों को युद्ध से निवृत्त करके आपस में सुलह करवायी थी। महलूखान ने आकर पूछा था कि हे देव! आप हमें स्वर्ग प्राप्ति

का उपाय बतलाइये। जिससे खुदा की प्राप्ति हो सके। उसी समय दूसरा प्रश्न करने से पूर्व ही सांतल राव ने कहा हे प्रभु! बिश्नोई मेरे गुरु भाई है। मैं ऐसा मानता हूँ किन्तु ये लोग मुझे राज्य का भाग ठीक से नहीं देते हैं। न तो मैं इनको दण्ड ही दे सकता और न ही कुछ कह ही सकता। अब आप ही बतलाइये बिना कर लिये मेरा कार्य कैसे चलेगा। तब जम्भेश्वर जी ने कहा-कि आज से तूँ श्बिनोइयों से पाँचवाँ भाग कर लिया कर, जिससे वे लोग प्रसन्नता पूर्वक दे देंगे। उसी दिन से अन्य लोगों से तो चौथा भाग लिया करता था किन्तु बिश्नोइयों से पाँचवाँ हिस्सा लेना प्रारम्भ कर दिया। यह परंपरा ही बिश्नोइयों के लिये अन्त तक चलती रही।

तत्पश्चात् दोनों ने एक सवाल ही पूछा कि हे प्रभु! आप हमें बतलाइये कि सत्य क्या है और झूठ क्या है। इसका सही सही निर्णय कीजिये हम राजा लोग हैं। हमें सत्य असत्य का पूरा पूरा पता नहीं चल पाता, जिस कारण से हम लोग कभी कभी अन्याय कर बैठते हैं। तब जम्भेश्वर जी ने सबद सुनाया-

सबद-70

ओ३म् हक हलालूं हक साच कृष्णों, सुकृत अहल्यो न जाई।

भावार्थ-राजा के लिये तो विशेष रूप से हक की कमाई पर ही संतोष कर लेना सत्य के नजदीक पहुँचना है तथा प्रजा से जो कर रूप से धन लेता है, उसमें राजा का कोई हक नहीं होता, वह तो प्रजा की खून पसीने की कमाई है। उसे तो प्रजा के हितार्थ में ही लगाना चाहिये। अनधिकार रूप से प्रजा का धन या अन्य किसी दूसरे राजा पर अधिकार करने की चेष्टा बेहक है। इसलिये अपनी मर्यादा सीमा में रहते हुऐ परिश्रम द्वारा जो धन प्राप्त होता है वही सच्चा है। जो सत्य के मार्ग से प्राप्त किया है। इस प्रकार से परिश्रम द्वारा किया हुआ सुकार्य व्यर्थ में नहीं जाता। उसका फल अवश्यमेव प्राप्त होगा। देर हो सकती है किन्तु अन्धेर नहीं है।

भल बाहिलो भल बीजीलो, पवणा बाड़ बलाई।
जीव के काजै खड़ो जे खेती, तामै ले रखवालो रे भाई।

सुफल की प्राप्ति के लिये सर्वप्रथम खेती की जुताई, गुड़ाई, सफाई की जाती है। तत्पश्चात् उसमें समय आने पर अच्छे बीज बोये जाते है तथा खेती की रक्षार्थ मजबूत कांटों की बाड़ चारों तरफ लगाई जाती है। उसी प्रकार से इस मानव जीवन रूपी खेती में भी यदि अच्छा फल चाहता है तो इस शरीर रूपी खेती में सर्वप्रथम ज्ञान धारण करने की योग्यता धारण करनी होगी तथा योग्यता के लिये स्नान, शौच, सद्व्यवहार आदि गुणों को धारण करना होगा जब शरीर शुद्ध हो जायेगा तब उसमें सद्ज्ञान रूपी बीज बोया जायेगा और बीज अंकुरित हो जाने के बाद उस ज्ञान के फल आनन्द की रक्षार्थ पवित्रता रूपी बाड़ चारों तरफ लगानी होगी जो सांसारिक मोह मायादि तूफानों से उड़ न सके। हे प्राणी! इस संसार से इस जीव की भलाई के लिये यह साधना रूपी खेती कर तथा खेती के रक्षार्थ एक रखवाला भी रखना होगा। वह तेरा स्वयं का मन ही हो सकता है क्योंकि वही खेती का कर्त्ता भी है। उसे ही रखवाला रखना होगा क्योंकि आगे कई विपत्ति आने वाली है।

दैतानी शैतानी फिरैला, तेरी मत मोरा चर जाई।
उनमन मनवां जीव जतन कर, मन राखिलों ठाई।

तुम्हारी खेती जब पकने की तैयारी होती है तो उसी समय ही कभी दिन या रात्रि में मौका पाकर स्वतन्त्र विचरण करने वाले दैत्य स्वरूप भैंसा और शैतान रूप सांड आकर तुम्हारी खेती को तहस नहस कर

सकते हैं। उसी प्रकार से ही इस साधना रूपी खेती को भी समाज में स्वच्छन्द विचरण करने वाले ये मदमस्त राक्षस शैतान दुष्ट स्वभाव वाले मानव कभी भी तुम्हारे सत्य ज्ञान मार्ग को नष्ट-भ्रष्ट कर सकते हैं तथा सावधान न रहने से तुम्हारी बुद्धि को मयूर रूपी अहंकार नष्ट कर देगा। इसलिये मन रूपी रखवाले को स्थिर सावधान रहना होगा क्योंकि यह रखवाला स्वयं ही तुम्हारा चंचल मन है। इसे उनमन स्थिर यानि एकाग्र होकर खेती की रक्षा करनी होगी। यह साधना जीव की भलाई के लिये ही करनी चाहिये तथा सच्ची खेती भी उसे ही कहना चाहिये जिससे जीव की भलाई हो।

जीव के काजै खड़ो ज खेती, वाय दवाय न जाई।
न तहां हिरणी न तहां हिरणा, न चीन्हों हरि आई।

अपने जीव की भलाई के लिये ही साधना रूपी खेती करें। जिससे वह सदा के लिये जन्म-मरण के चक्र से छूट सके किन्तु साधना एवं खेती के करते समय कुछ समस्याओं का भी ध्यान रखना परमावश्यक है। जैसे सर्वप्रथम तो खेती को उड़ाने व दबाने वाले हवा के भयंकर तूफान जो खेती को मूल से या तो मिट्टी के नीचे दबा देते हैं या उड़ाकर ले जाते हैं। उसी प्रकार साधना में भी आने वाले अनेक प्रकार के लोभ, मोह, काम, क्रोध आदि तूफान या तो उसे साधना से निवृत्त कर देते हैं या उसकी साधना को दबा देते हैं। इनसे सावधान रहना परमावश्यक है तथा अन्य और भी कई प्रमुख बाधाएं खेती करने वालों को आती है, वहाँ कभी हिरण हिरणियां एवं गायें भैसें आदि जो जबरदस्ती से खेत में घुस जाती है और फसल को खा जाती है। किसान की तरह ही साधक होता है। वह भी यदि अपनी साधना की रक्षा नहीं कर सकेगा तो हिरण रूपी मन एवं हिरणियां रूपी मन की वासनाएँ जो अति चंचल है। वे साधना को नष्ट कर सकती है। वैसे तो मन स्वयं रखवाला है किन्तु बाड़ स्वयं ही खेत को खाने लग जाये तो और भी समस्या पैदा हो जाती है। उसी प्रकार से साधक को भी सूक्ष्म वासनाओं से समस्या अधिक पैदा हो जाती है तथा बुद्धि का नियंत्रण मन पर होना चाहिये था किन्तु बुद्धि कुशाग्र न होने से वह भी जबरदस्ती करने वाली गाय की तरह हो जाती है। जैसे सद्-असद् का विवेक नहीं रहता तो वह भी विचार शून्य होकर साधना में बाधा उत्पन्न करेगी।

न तहां मोरा न तहां मोरी, न ऊंदर चर जाई।

और भी अनेकों बाधाएँ आती है। वहाँ खेती को खाने वाले मयूर मयूरी तथा चूहे भी रहते हैं। ये सभी खेती को उजाड़ने वाले हैं। किसान को इनसे भी सावधान रहना पड़ता है। तभी खेती तैयार होती है। ठीक उसी प्रकार से साधक को भी मयूर रूपी अहंकार एवं मयूरी अहंकार वृत्ति, गर्व, मेरापन, रूपी मयूरनियों से सावधान रहना होगा। ये साधक द्वारा की गई सम्पूर्ण साधना पर कभी भी पानी फेर सकते हैं और दूसरे सबसे अधिक शत्रु चूहे होते हैं। उनसे बचाव तो अति कठिन है किन्तु बचाव करना भी जरूरी है। उसी प्रकार से साधक को अचेत रूपी चूहे कभी भी मन्दमति कर सकते हैं इसलिये सदा सचेत रहना चाहिये कि कहीं चूहे खेत में बिल तो नहीं कर रहे है अर्थात् मैं कहीं अचेत अवस्था में पड़ा हुआ समय को व्यर्थ में तो नहीं गंवा रहा हूँ। इस प्रकार से सदा जागृत होकर खेती व साधना की रक्षा करनी चाहिये दूसरा अर्थ चूहे अर्थात् तर्क बुद्धि जो काटना ही जानती है वह कहीं नास्तिकता की ओर न ले जाये सावधान रहें।

कोई गुरु कर ज्ञानी तोड़त मोहा, तेरो मन रखवालो रे भाई।
जो आराध्यो राव युधिष्ठिर, सो आराधों रे भाई।

हे महलूखान एवं सांतल राव! यदि तुम विघ्न बाधाओं से बचना चाहते हो तो किसी ज्ञानी गुरु की शरण में जाओ, वह तुम्हारे मोह बन्धन को तोड़ देगा। जब तक आप लोग मोह के बन्धन में फंसे रहोगे तब तक तुम्हारी साधना कभी सफल नहीं हो सकेगी। जब गुरु के आशीर्वाद से मोह का बन्धन टूट जायेगा तब तुम्हारी खेती को चरने वाला यह चंचल मन भी उसी खेती का रक्षक हो जायेगा। जिस प्रकार से धर्मराज युधिष्ठिर ने राज्य करते हुए धर्म सत्य का पालन करते हुए राज्य रूपी खेती साधना की, वैसा ही आप लोग करो। आप भी तो राज्य करते हुए भी धर्मराज की पदवी प्राप्त कर सकते हो तथा तुम्हें इसके लिये प्रयत्नशील भी रहना चाहिये।

★★★★

अरिल-

सांतल राव इह बात कही समझाय कै।
आंन देव की बात, सुणै चितलाय कै।
तिन पूज्यै फल होय, कहो समझाय कै।
परिहां सांसै जाय, विलाय सुणां चितलाय कै।

उक्त सबद को श्रवण करके सांतलराव ने पुनः पूछा कि हे देव! एक परमपिता परमेश्वर को छोड़ करके अन्य दूसरे देवों की पूजा अराधना करने से कुछ फल की प्राप्ति होती है या नहीं। इस संशय की निवृत्ति कीजिये। यदि अन्य देवताओं की पूजा अर्चना करने से फल नहीं होता है तो हम छोड़ भी सकते है। तब श्री देवजी ने यह सबद उच्चारण किया।

सबद-71

ओ३म् धवणा धूजै पाहण पूजै, बे फरमाई खुदाई।
गुरु चेले के पाऐं लागै, देखो लोग अन्यायी।

भावार्थ-इस समाज में कुछ तो सन्यासी, नाथ आदियों ने वस्त्र तथा मकान को त्याग दिया है और सर्दी निवारण के लिये धूणी धूकाते है। वहाँ पर पूर्णतया सर्दी से नहीं बच सकते इसलिये कांपते है। ठण्डी से परेशान हो जाते है। फिर भी अपना व्यर्थ का हठ नहीं छोड़ते। अग्नि जलाकर बैठने को ही धर्म मान बैठे हैं। उन लोगों को इतना भारी कष्ट उठा करके तो निराकार सर्वशक्तिमान तत्वस्वरूप परमात्मा का स्मरण करना चाहिये था किन्तु ये लोग पत्थर के पास बैठकर सिर हिला रहे है। शरीर में देवता लाने का ढ़ोंग कर रहे हैं। यह उनका मनमुखी मार्ग है। ईश्वरीय मार्ग से विमुख होकर पतन की ओर जा रहे हैं। ईश्वर ने धूंणी धुकाना एवं पत्थरों की पूजा करना कब बताया।

हे संसार के लोगों! इस घटित घटना को देखो और विचार करो, पत्थर की मूर्ति बनाने वाला वह उसका गुरु होता है, क्योंकि निर्माण कर्त्ता सदा ही बड़ा होता है निर्मित वस्तु छोटी होती है। उस निर्मित वस्तु का उत्पादक वही कर्त्ता होता है तथा उस पत्थर को मूर्त्ति का आकार देकर वही गुरु रूपी कारीगर शिष्य रूपी मूर्त्ति के चरणों में गिरता है। हाथ जोड़ता है गिड़गिड़ाता है।यह कैसा न्याय तथा बुद्धिमानी हैं इन अन्यायी लोगों ने सच्चे परमात्मा की खोज तत्वान्वेषण मार्ग में बाधा पहुँचाई है। जन साधारण को भ्रमित करके अधोगति में

पहुँचाया है।

काठी कण जो रूपा रेहण, कापड़ मांह छिपाई।
नीचा पड़ पड़ ताने धोकै, धीरा रे हरि आई।

अपने स्वार्थ सिद्धि के लिये लोग अनेक प्रकार से मूर्तियों का निर्माण करते हैं। उनमें मुख्य रूप से लकड़ी, स्वर्ण, चांदी तथा मिट्टी ही है। इनसे मूर्ति का निर्माण करके कपड़े पहना करके अनेक प्रकार का शृंगार भी कर देते हैं। पूर्णतया मानव का आकार देकर फिर नीचे गिरकर बार-बार धोक लगाते हैं, प्रणाम करते हैं, उनसे धन-दौलत की याचना भी करते हैं वहाँ पर कुछ भी प्राप्त नहीं होता। तब अपने आप को तथा अन्य जनों को धैर्य धारण करने का उपदेश देते हुऐ कहते हैं कि हरि आयेंगे अपनी कामना पूर्ण करेंगे यही क्रम निरंतर चलता रहता है।

ब्राह्मण नाऊं लादण रूड़ा, बूता नाऊं कूता।
वै अपहानै पोह बतावै, बैर जगावै सूता।

जो मानव ब्रह्म को जानता है तथा तदनुसार ही संसार में क्रिया-कलाप करता है। अर्थात् वेद-शास्त्र की विद्या में प्रवीण होकर तदनुसार जीवन यापन करता है। वह व्यक्ति परमादरणीय है। वही ब्राह्मण है किन्तु जो महा मूर्ख या आचार, विचार, क्रिया तथा ब्राह्मण कर्मो से गिरा हुआ है। वह चाहे ब्राह्मण के घर में जन्म भी क्यों न ले लेवें। वह समाज को हमेशा धोखा देता हैं, ऐसे ब्राह्मण से तो भार लादने वाला पशु गधा, बैल, ऊंट आदि ही अच्छे है जो समाज की सेवा करते हैं। वे कभी पाखण्ड नहीं करते, धोखा नहीं देते, अपनी पीठ पर भार उठाकर लोगों को राहत पहुँचाते है भूले भटके लोगों को कभी अपनी आवाज से सचेत करके मार्ग का निर्देश भी देते हैं।

तथा पत्थर की बनी हुई बुत-मूर्ति से तो कुत्ता ही अच्छा है जो चोरों से स्वयं रक्षा करता हुआ घर के मालिक को भी जगा देता है तथा शत्रु से भी सावधान कर देता है। दिशा भ्रमित जन को भोंक करके गांव होने का आभास करा देते हैं। किन्तु मूर्त्ति न तो चोरों से न तो स्वयं की रक्षा कर सकती और न ही मालिक पुजारी को ही सचेत कर सकती तथा न ही दिग्भ्रमित जनों को मार्ग ही निर्देश कर सकती। कुत्ता सजीव प्राणी होने से ईश्वरीय सत्ता उसमें प्रतिफलित होती है किन्तु मूर्ति में तो सजीवता न होने से सता का दर्शन असंभव है इसलिये बुत से तो कुत्ता ही अच्छा है।

भूत परेती जाखा खांणी, यह पाखण्ड परवाणों।
बल बल कूकस कांय दलीजै, जांमै कणूं न दाणूं।

भूत-प्रेत, यक्ष, पिशाच आदि योनियां वायु प्रधान होती है। ये कभी किसी स्थान में अपना प्रभाव दिखाती है किन्तु वह क्रिया कलाप केवल पाखण्ड मात्र ही होता है वहाँ पर सच्चाई नहीं होंगी क्योंकि मानव तथा उन योनियों का कोई सम्बन्ध नहीं है। न तो वे मानव का कुछ भला ही कर सकती और न ही कुछ बिगाड़ ही सकती। जो मानव शुद्ध मानवता के धर्म से गिर जायेगा, आसुरी भाव को प्राप्त हो जायेगा तो उन्हीं पर अपना पाखण्ड दिखाती है। तब वह उनसे डर कर उनकी सेवा पूजा करना प्रारम्भ कर देता है भूत-प्रेतों की सेवा तो अन्न निकले हुए कूकस को बार-बार दलना है, पीसना है। उसके अन्दर से अन्न प्राप्ति की कोशिश करना ही है। किन्तु वहाँ पर दाना व कण कहाँ मिलता है। उसी प्रकार से भूत-प्रेतों में भी वह कण तत्व रूप आनन्द कहाँ मिलता है, परिश्रम व्यर्थ ही करना है।

तेल लियो खल चोपै जोगी, खलपण सूंघी बिकाणों।

भूत-प्रेत पहले कभी मानव ही थे, उनकी अकाल मृत्यु हो गई, अनेकों प्रकार की वासनाएँ रह गई। जीवन खाली रह गया था। मृत्यु के बाद जीव अधोगति में गिर गया था। इनकी तो ऐसी ही दशा हो गई थी। जिस प्रकार से तिलहन में से तेल निकाल लिया जाता है तो पीछे खली ही शेष रह जाती है। जो पशुओं के काम आती है। तिल से सस्ती बिकती है उसी प्रकार से जीवात्मा शरीर से निकल गयी, मानव शरीर तो चला गया अब तो उनका भूत-प्रेत का शरीर खली के समान ही व्यर्थ का है। उनकी पूजा से कुछ भी प्राप्त होने वाला नहीं है। वह स्वयं शक्तिहीन योनि तुम्हारा भला कैसे कर सकती है।

कालर बीज न बीज पिराणी, थलसिर न कर निवाणों।
नीर गऐ छीलर कांय सोधों, रीता रह्या इवाणों।

हे प्राणी! इस प्रकार से तूँ भूत, प्रेत, मूर्त्ति आदि की पूजा तथा पाखण्डियों के जाल में पड़कर अपने अमूल्य जीवन को व्यर्थ में ही समाप्त मत कर। तेरी भी वही दशा होगी जैसे कालर-ऊसर भूमि में बीज बोने वाले व्यक्ति तथा बालू के टिबे पर तालाब खोदने वाले की होती है न तो ऊसर भूमि में बीज जमकर फल देता है और न ही बालू के धोरे पर जल ही ठहरता है मेहनत तो भूत-प्रेत सेवी भी करता है और मेहनत तो वह बीज बोने वाला तथा तालाब खोदने वाला भी करता है। दोनों का परिश्रम व्यर्थ ही सिद्ध होता है पानी बरसता है तो तालाब में जल ठहरता है, वहाँ पर छोटे बालुका मय छिलरिये में क्या देखते हो तथा कालर में फल की भी आशा क्यों करते हो, दोनों ही खाली रह जायेंगे। इसलिये भूत-प्रेतों की सेवा में धन, बल, समय लगाना व्यर्थ ही है।

भवंता ते फिरंता फिरंता ते भवंता, मड़े मसाणें तड़े तड़गे।
पड़े पखाणें ह्वाते सिद्धि न काई, निज पोह खोज पिराणी।

जो भूले भटके हुऐ है वे लोग ही भटकते हैं और जो लोग मेड़ी, मसान, तालाब व तालाबों की पाल पर या पड़े हुऐ पत्थरों के पास भटकते हैं वे ही अधिक भ्रमित होते हैं किन्तु वहाँ पर सिद्धि कहाँ है। यदि तुझे सिद्धि की प्राप्ति करनी है तो इन पत्थर पालों मेड़ी को छोड़कर सद्मार्ग की खोज कर। वह मार्ग पन्थ ही तुझे गन्तव्य स्थान तक पहुँचा देगा। बिना मार्ग प्राप्त किये अब तक कोई नहीं पहुँच सका है।

जे नर दावों छोड़यो मेर चुकाई, राह तेतीसां की जांणी।

जिस जिज्ञासु मानव ने किसी दूसरे कमजोर प्राणी पर अपना अधिकार जताना छोड़ दिया है गरीब, धनवान, छोटे-बड़े, स्वामी-सेवक भाव से निवृत्त हो चुका है यानि नम्रशीलता को धारण कर चुका है तथा यह मेरा है मैं इसका हूँ इस प्रकार का मेरापन मिट गया है। उस मानव ने ही मानों तेतीस करोड़ प्राणियों के मार्ग को जान लिया है उसी मार्ग पर चलकर एक दिन अवश्यमेव उन वैकुण्ठ वासी तेतीस करोड़ प्राणियों से मेल अवश्य ही करेगा, उनमें भी इक्कीस करोड़ तो इसी मार्ग को पकड़कर पूर्व ही पहुँच चुके हैं और बारह करोड़ को अब पहुँचना है वे सभी मिलकर तेतीस पूरे हो जायेंगे।

★★★★

प्रसंग-34 दोहा

वेद पुराणे जो लिख्या, पाप पुण्य बहु देव।

मही देव ऐसे कही, कहै जम्भगुरु भेव।
च्यार वरण में अधिक है, ब्राह्मण वरण सुजाण।
वांचै वेद पुराण कूं, मेटै आवा जांण।

पूर्व देश के रहने वाले विद्वान पण्डित काशीदास ने कन्नौज कालपी में बिश्नोइयों से जाम्भोजी के बारे में महिमा सुनी थी और शास्त्रार्थ करने के लिये वहाँ से चलकर सम्भराथल पहुँचा, कुछ दूरी से ही हवन की महकार आने लगी, जिससे वैदिक परंपरा के ऋषियों जैसा वातावरण उपस्थित हुआ। इस प्रकार के दिव्य वातावरण से पंडित अति प्रसन्न हुआ और समीप में बैठकर कहने लगा कि हे देव! वेद पुराणों में पाप पुण्य की व्याख्या बड़े ही सूक्ष्म ढ़ंग से की है तथा वेदों में चारों वर्णो से वेदपाठी ब्राह्मण ही सर्वश्रेष्ठ बताया है। जो वेद को पढ़ता है उसका आवागमन मिट जाता है। इस विषय में आपका क्या विचार है। तब श्री देवजी ने सबद सुनाया–

सबद–72

ओ३म् वेद कुराण कुमाया जालूं, भूला जीव कुजीव कु जाणी।
वसंदर नही नख हीरूं, धर्म पुरुष सिरजीवै पुरूं।

भावार्थ–हिन्दुओं का प्रधान ग्रन्थ वेद है तथा मुसलमानों का कुराण है। हिन्दू वेद पर गर्व करते हैं तथा मुसलमान कुराण पर। वेद या कुराण ये बहुत ही बड़े हैं। इनमें अनेक प्रकार की बातें कही गई है। बड़े ही परिश्रम से यह एक शब्दों का जाल गूंथा गया है। इस जाल में फंस तो जाते हैं किन्तु निकलना नहीं जानते। तत्कालीन भाषा में ही दुरूह तथा परस्पर विरोधी वार्ता होने से अध्ययन कर्त्ता संशय में पड़ जाते हैं इसलिये वेद मन्त्रों की मीमांसा आदि कई ग्रन्थों में व्याख्या की गई है तथा भूले हुए प्राणी तथा कुजीव, दुष्ट प्रकृति वाले तो अपने ही तरीके से उन मन्त्रों का अर्थ निकाल लेते है। उससे यज्ञ जैसे पवित्र कार्य में भी हिंसा का बोल बाला पूर्व में हो गया था। एक ही मन्त्र के अनेक अर्थ हो सकते है। इस सुविधा का लाभ कुजीव अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिये करते हैं।

अग्नि देवता कभी भी हीरे का नग नहीं हो सकती। अग्नि तो अग्नि ही है तथा हीरा तो हीरा ही है। अग्नि में दाहकत्व–जलाना, प्रकाश देना शक्ति होती है। वह हीरे में नहीं है। फिर भी अपनी जगह पर अग्नि का वह सूक्ष्म रूप हीरा भी अपना विशेष महत्त्व रखता है अर्थात् वेद तो अग्नि सदृश है तथा सबदवाणी हीरे के सदृश है। ये दोनों ही अपने अपने स्थान में महत्त्वपूर्ण है। हीरे के नग से अलंकार बनता है तथा प्रकाश सौन्दर्य भी सर्व ग्राह्य सुलभ है। किन्तु अग्नि रूप वेद में तो हाथ जलने का सदा ही डर बना रहता है। इसलिये अग्नि को देखकर हीरे का त्याग नहीं करना चाहिये। जो धार्मिक पुरुष होगा, वही इन हीरे की परख को जान सकेगा तथा इस सबदवाणी रूपी हीरे को ग्रहण करके जीवन को पूर्ण करके आनन्द को प्राप्त होगा।

कलि का माया जाल फिटा कर प्राणी, गुरु की कलम कुराण पिछाणी।
दीन गुमान करीलो ठाली, ज्यूं कण घातै घुण हांणी।

इसलिये हे प्राणी! कलयुग में माया का जाल बहुत फैल चुका है तथा फैलता ही जा रहा है। इसमें फंसना नहीं। इस माया के नये नये आविष्कारों को देखकर आश्चर्यचकित नहीं होना, उसी जाल को ही सत्य

मान कर उसमें फंस नहीं जाना। सतगुरु के बताये हुए शब्दज्ञान को ही वेद, कुराण मानकर उन्हें समझकर तदनुसार ही जीवन को बनाना।

वह दिन रात रूप से व्यतीत होने वाला काल तुम्हारे अहंकार को एक दिन तोड़ देगा। तुझे विद्या, धन, परिवार, मजहब आदि का अहंकार हो चुका है किन्तु ध्यान रखना कि जिस प्रकार से धान मोठ, बाजरी आदि में घुण-कीट विशेष जब अन्दर घुस जाता है तो वह दाने के अन्दर के कण के भाग को खा जाता है। वह दाना थोथा हो जाता है उसी प्रकार से तेरे अन्दर भी मजहब-धर्म रूपी काल बैठा हुआ है। तेरे अहंकार को दिनोंदिन काटता जा रहा है। एक दिन पूर्णतया समाप्त कर देगा तो तुझे इह लोक छोड़कर जाना पड़ेगा। इससे तो यही अच्छा है कि तूँ अपनी इच्छा से ही अभिमान को छोड़कर निरभिमानी हो जा। सरल मार्ग को अपना करके सहज जीवन जीना प्रारम्भ कर उस महाकाल से युद्ध में तूँ जीत नहीं सकेगा। यही अच्छा है कि उससे समझौता कर ले।

साच सिदक शैतान चुकावों, ज्यूं तिस चुकावै पाणी।
मैं नर पूरा सरविण जो हीरा, लेसी जांकै हृदय लोयण, अन्धा रह्या इंवाणी।

जिस प्रकार प्यास को जल मिटा देता है अर्थात् जल के अभाव में तो भयंकर प्यास लगी थी जल के मिल जाने से निवृत्त हो जाती है। उसी प्रकार से ही सत्य निश्चलता से शैतानता को समाप्त किया जा सकता है। सत्य, दया, प्रेम के अभाव में तो शैतानी ने आकर डेरा जमाया था तथा सत्यादि धर्म आ जाने से यह शैतानी प्यास की तरह ही चली जायेगी। गुरु जम्भेश्वर जी कहते हैं कि मैं तो पूर्ण पुरुष हूँ तथा इन सांसारिक कार्य कलापों के छोटे बड़े व्यापार को छोड़कर अध्यात्म ज्ञान रूपी हीरों का ही व्यापार करता हूँ। इन हीरे मोतियों के ग्राहक सभी नहीं होते, तभी तो हीरे-जवाहरात की दुकानों पर भीड़ दिखाई नहीं देती अर्थात् वहाँ पर तो कोई वही सुजीव आयेगा जिसके हृदय रूपी नैन खुल गये हैं। इन बाह्य चक्षुओं से तो हीरे की या काच की परीक्षा नहीं होती, इनकी परीक्षा के लिये हृदय के नेत्र अर्थात् प्रेम, श्रद्धा, विश्वास के नेत्र होने चाहिये। वही मेरे पास आयेगा और दिव्य हीरों को ग्रहण करेगा तथा जो अन्धे है अर्थात् इन बाह्य चर्म चक्षुओं से तो देखते है किन्तु हृदय की आंख अब तक नहीं खुली है वे न तो मेरे पास ही आ सकेगे, ऐसे लोग जीवन धारण करके भी पशु जैसे ही रह गये।

निरख लहो नर निरहारी, जिन चोखंड भीतर खेल पसारी।
जंपो रे जिण जंपै लाभै, रतन काया एह कहाणी।

जिस परमात्मा ने स्वर्ग, पाताल, मृत्यु लोक तथा वैकुण्ठ धाम इनका चारों ही युगों में यह सृष्टि रूपी खेल रचाया है। ''एकोअहं बहुस्याम प्रजायेय'' स्वयं ही एक से बहुत बने हैं तथा यह खेल रचा है तथा जो नर रूप में निरहारी तुम्हारे सामने उपस्थित है इनको ध्यान पूर्वक देखो स्मरण करो तथा पहचान करके अपने जीवन में अपनाओ अर्थात् परमात्मामय जीवन को बनाओ। हृदय में प्रभु को दिव्य नर रूप ज्योति धारण करके शुभ कर्म करो। उस परमात्मा की प्राप्ति के साधन भी अनेक बतलाये हैं। किन्तु सबसे सरल तथा सुगम उपाय तो उनका एकाग्र मन से परमात्मा विष्णु के नाम का जप ही है। उसी से ही प्राप्ति संभव हैं अन्य पशु आदि शरीरों से तो यह मानव काया श्रेष्ठ है। इसलिये इसे रत्न भी कहा जाता है। इस रत्न सदृश उत्तम काया से ही विष्णु जप द्वारा वहाँ तक पहुँचा जा सकता है।

काही मारू काही तारूं, किरिया बिहूणा पर हथ सारूं।
शील दहूं उबारूं ऊन्हें, एकल एह कहाणी।

यहां पर आकर तो मैं किसी को तो मारता हूँ अर्थात् जिनके अजर काम क्रोधादि बलवान शत्रु है, उन शत्रुओं को मार देता हूँ। तो वह जन भी अहंकार मोह माया रहित मृतवत् ही हो जाता है तथा अन्य पुरुष भी जो सज्जन धार्मिक सात्विक प्रकृति वाले है उन्हें तो मैं पार उतार देता हूँ क्योंकि ऐसे लोग तो तैयार ही थे, उन्हें तो केवल सहारे की ही आवश्यकता थी तथा और जो क्रिया रहित तामसिक प्रकृति वाले जन शुद्ध क्रिया रहित दुष्ट प्रकृति वाले जनों के हाथों में चढ़ चुके हैं। उनको मैं वापिस पंथ में लाया तथा उनकी दुष्टता छुड़ा करके शीलव्रत दिया। उन्हें सुशील बना करके भवसागर में डूबते हुऐ को उबार लिया। इसलिये कलयुग की तो यही कहानी है। मानवों के दुर्गुणों का संशोधन करके उन्हें शुद्ध सात्विक शील आचरण मय बनाना।

केवल ज्ञानी थलसिर आयो, परगट खेल पसारी।
कोड़ तेतीसों पोंह रचावण हारी, ज्यूं छक आयी सारी।

वही पूर्ण ब्रह्म परमात्मा कैवल्य ज्ञानी इस सम्भराथल पर आया है। इससे पूर्व तो अवतारी पुरुषों ने खेल तो रचा था किन्तु वह तो अब अप्रत्यक्ष हो चुका है तथा सृष्टि कर्त्ता ब्रह्मा विष्णु महेश भी अप्रगट रूप से ही सृष्टि की रचना रूप खेल, खेल रहे है। गुरु जी कहते हैं कि मैंने यह थल पर दिव्य खेल रचा है यह प्रगट है यानि प्रत्यक्ष है तथा यह खेल भी निरुद्धेश्य नहीं है तेतीस करोड़ की संख्या पूर्ण करने के लिये इस मार्ग का निर्माण मैंने किया है क्योंकि इससे पूर्व सतयुग, त्रेतायुग, द्वापर युग में इसी मार्ग पर चलकर इक्कीस करोड़ तो पार पहुँच चुके हैं और इस समय अवशिष्ट बारह करोड़ को भी पहुँचाना है।

जिस प्रकार से गऊवें वन में जाती है वहाँ पर घास चरकर वापिस आते समय तालाब कूवे का पानी पीकर तृप्त हो जाती है तथा घर में आकर आनन्द पूर्वक बैठ जाती है। उसी प्रकार से इन जीवों को भी संसार में कर्म फल प्राप्ति के लिये भेजे थे। यहाँ पर कुछ दिनों तक रहकर अपने कर्मो को भोग करके वापिस जब अपने घर परमात्मा के पास पहुँचते है। तो वहाँ पर आनन्द पूर्वक बैठते हैं असली तृप्ति का अनुभव उसी समय ही होता है और यदि सदा के लिये वन में ही रहना स्वीकार कर लिया है तो तृप्ति का अनुभव नहीं हो सकेगा घास आदि मिल ही जायेगा तो पानी नहीं मिलेगा। बिना जल के तो तृप्ति भी नहीं हो सकती अर्थात् अपने सच्चे घर परमात्मा की ज्योति से ज्योति मिलान हुए बिना सुख तो नहीं मिल सकता।

★★★★

प्रसंग-35 दोहा

विश्नोई एक आय कै, कहि सतगुरु से बात।
जोगी सिला हिलावही, कहो कहा करामात।

गुरु जम्भेश्वर जी शिष्य मण्डली सहित विराजमान थे। उसी समय एक विश्नोई ने आकर गुरु से बात पूछते हुऐ कहा हे देव! मैंने एक योगी देखा है वह कभी कभी बड़ी भारी शिला पत्थर को हिला देता है, उसमें क्या करामात है, वह कोई योगी है या पाखण्डी? तब गुरु देव ने यह सबद उच्चारण किया।

सबद-73

ओ३म् हरी कंकेहड़ी मंडप मैड़ी, जहां हमारा वासा।
चार चक नव दीप थर हरे, जो आपो परकासूं।

भावार्थ-योगी शिला हिलाता है या शिला योगी को हिलाती है। या तुझे केवल हिलती हुई दिखती है। या योगी ही शिला उपर बैठा हुआ हिल रहा है। इन बातों को आप छोड़िये यह तो व्यर्थ का वाद विवाद ही है। मुख्य बात तो यह है कि योगी जब आसन लगाकर बैठे तो उसका आसन जरा भी हिलना-डुलना नहीं चाहिये। ''स्थिर सुखं आसनम्'' स्थिर तथा सुखपूर्वक बैठना ही आसन है इसी आसन से योग सिद्धि होती है। गुरु श्री देवजी कहते हैं कि मेरा भी तो आसन यहाँ पर हरी-भरी कंकेहड़ी के वृक्षों के नीचे स्थिर है। इन्हीं सम्भराथल के आस पास, उपर नीचे कंकेहड़ी वृक्षों का बहुतायत है ये ही हमारे लिये मंडप है तथा महल मन्दिर भी है। मैं इसके नीचे सुखपूर्वक बहुत समय से निवास करता आया हूँ। आगे भी करता रहूँगा तथा इस कंकेहड़ी वृक्ष के नीचे बैठा हुआ मैं यदि अपने ज्योतिर्मय प्रकाश का पूर्णतया विस्तार कर दूँ अर्थात् सूर्य रूप अपनी ज्योति का तेज पूर्णतया विकसित कर दूँ तो यह सम्पूर्ण सृष्टि अर्थात् चार चक नव द्वीप ये सभी थर थर कांपने लग सकते है। इसमें भूचाल आ जाये। यह धरती प्रकम्पित हो जाये तो इसके उपर रहने वाले जीव जन्तु भी व्याकुल हो जायेंगे।

गुणियां म्हारा सुगणां चेला, म्हे सुगणां का दासूं।
सुगणां होयसी सुरगे जास्ये, नुगरा रह्या निरासूं।

जो सद्गुणों से विभूषित सज्जन पुरुष है वो तो हमारे अच्छे शिष्यों में गिने जाते है। ऐसे शिष्यों के तो हम अधीन रहते है। जैसा वो चाहे वैसा हमें करना पड़ता है। सच्चा भक्त सदा ही भगवान को वश में करता आया है। जो सुगरा शिष्य हो गया है वह तो निश्चित ही स्वर्ग में जायेगा तथा नुगरा-गुरु रहित मनमुखी व्यक्ति इस जीवन को पाकर भी निराश हो जायेंगे, अन्त में निरास ही हाथ लगेगी। जीवन के दाव को खो बैठेगा। इसलिये गुरु धारण करना चाहिये।

जाका थान सुहाया घर बैकुण्ठे, जाय संदेशो लायौं।
अमियां ठमियां अमृत भोजन, मनसा पालंग सेज निहाल बिछायो।

जिन लोगों ने आज से पूर्व सुकृत करके वैकुण्ठ को प्राप्त कर लिया है वे वहाँ पर सुहाने दिव्य नित्य स्थायी घर में निवास कर रहे हैं। वहाँ पर अमृतमय मीठा स्वादिष्ट सुरूचिकर पदार्थ स्वत: ही सुलभ है तथा इच्छानुसार पलंग सुकोमल शैया सोने के लिये बिछाई हुई सुलभ है तथा मनसा भोग प्राप्त होने से सभी तृप्त तथा शांत भाव से विराजमान है।

श्री देवजी कहते हैं कि मैंने यह सभी कुछ अपनी आंखों से देखा है तथा उनका संदेशा लेकर आया हूँ। वहाँ का संदेशा देकर आपको भी वहाँ पर पहुँचाना है। वे जो लोग ध्रुव, प्रहलाद आदि पहुँच चुके हैं वे आपके ही सम्बन्धी थे। इसलिये आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। यही उनका संदेशा मैंने आप तक पहुँचा दिया है इसलिये आप लोगों को परम लक्ष्य वहीं तक पहुँचने का होना चाहिये। इन छोटी मोटी सिद्धियों या सिद्धों के चक्कर में अपने गन्तव्य स्थान को भूल मत जाना।

जागो जोवो जोत न खोवो, छल जासी संसारूं।
भणी न भणबा, सुणी न सुणबा, कही न कहबा, खड़ी न खड़बा।

इसलिये संसार के लोगों! जागृत रहो। निंद्रा में सोना नहीं। जागृत अवस्था में सदा ही सचेत रहो। व्यर्थ में ही आलस के वशीभूत होकर समय को सांसारिक विषयों में ही समाप्त नहीं कर देना। इस जीवन के पीछे भी कोई और जीवन है उसका भी ख्याल रखना। कहीं यह लोक और पर लोक दोनों ही बिगाड़ नहीं बैठना। सावधान! परमात्मा की दिव्य ज्योति कण-कण में बिखरी हुई है। उसका दर्शन अवश्य ही करो। यदि आप लोग भगवान का दर्शन चाहते हैं तो वह सच्चा दर्शन इसी संसार की चित्र विचित्र वस्तुओं में चेतन रूप से विद्यमान सता के रूप में संभव है। केवल इस संसार का ही चिंतन मनन दर्शन करते रहोगे तो तुम्हारे साथ बहुत बड़ा धोखा हो जायेगा, तुम छल लिये जाओगे।

हे प्राणी! तुमने जप करने योग्य विष्णु परमात्मा का जप स्मरण नहीं किया, किन्तु भूत-प्रेत आदि का जप करता रहा तथा सुनने योग्य सत्संग, भजन, कीर्तन, नीति विषय वार्ता नहीं सुनी वैसे ही जंगली गीत, गाली, कटु वचन सुनता रहा। कथन करने योग्य भगवद् चर्चा कथा महापुरुषों के दिव्य आख्यान सत्यवाणी आदि तो कही नहीं किन्तु व्यर्थ की आल-बाल झूठ कपट निंदा भरे वचन ही बोलता रहा। तुझे करणीय योग्य कर्तव्य कर्म तो मानव धर्म अनुकूल हो, वह तो किया नहीं परन्तु सदा पाप कर्म चोरी-जारी आदि दुर्व्यसनों में पड़कर समय को व्यर्थ में ही नष्ट कर दिया।

रे! भल कृषाणी, ताकै करण न घातो हेलो।
कलीकाल जुग बरते जैलो, तातै नहीं सुरां सों मेलों।

हे अच्छे किसान! तूँ खेती तो बड़ी ही मेहनत से करता है। किन्तु अध्यात्म साधना रूपी खेती में ढ़ील दे रखी है। इसलिये जो व्यक्ति सुनने योग्य वार्त्ता सुन नहीं सकता, कहने योग्य वार्त्ता कह नहीं सकता, जपने योग्य देव को जप नहीं सकता तथा करने योग्य कर्म को कर नहीं सकता, उसके कानों में यह ज्ञान की ध्वनि-आवाज कैसे डाली जा सकती है। ऐसे लोगों के सामने चाहे जोर से चिल्लाकर कहो चाहे प्रेम पूर्वक धीरे से कहो, कोई भी फर्क पड़ने वाला नहीं है।

हे प्राणी! यह कलयुग का समय अति शीघ्र ही व्यतीत हो रहा है। वैसे भी बहुत कम प्राप्त था उसमें भी बीतता जा रहा है। यदि यह अवसर बीत गया तो फिर तेतीस करोड़ देवताओं से मिलन कैसे होगा? क्योंकि इस जीवन के पश्चात् पुनः मानव शरीर मिलना दुर्लभ है और यदि मिल भी गया तो यह दिव्य अवसर मिलना कठिन है। सतगुरु, उतम कुल में जन्म, धन बल, शरीर से स्वस्थ होना अति कठिन है ये सभी संयोग हुऐ विना केवल मानव जीवन से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता।

★★★★

प्रसंग-36 दोहा

बालनाथ कंवलनाथ, दोऊ उतरे आय।
एक अतीथ डेरे टिक्यो, दूजो वस्ती में जाय।
एक स्त्री के भूत का, झाड़ा दिया जब।

भूत निकस बाहर हुवा, खीर करी उसे तब।
साथी बिन जीम्यों नहीं, पारस ले गयो सोय।
हाथ मांड के रेड़ दी, बड़ो अचंभो कोय।
साध अरज कर बूझियों सतगुरु सेती भेव।
देव कहे हम रेड़ दी, जीमें तो दोजख जाय।

बालनाथ एवं कंवलनाथ नामक दो साधु भ्रमण करते हुऐ एक गाँव के किनारे जाकर डेरा लगाया। उनमें से एक तो वहीं पर ही रहा तथा दूसरा भिक्षा लेने के लिये गाँव में पहुँचा था। जिस घर में भिक्षा लेने के लिये गया था, उस घर में किसी स्त्री पर भूत-प्रेत की छाया का प्रभाव था। उस घर के लोगों की प्रार्थना पर उस साधु ने जादू मंत्र टोना से उस छाया को हटा दिया था। उस खुशी में खीर बनाई थी। उस साधु ने वहाँ से भिक्षा में खीर प्राप्त करके अपने साथी के पास जाने लगा। तब जाम्भोजी ने अपना हाथ बढ़ाकर उस खीर को गिरा दी। वह स्वादिष्ट खीर तो गिर चुकी थी किन्तु उन दोनों ने रूखा सूखा अवशिष्ट भोजन करके सम्भराथल जम्भदेवजी के पास आये और उसी हाथ को जिसने खीर गिराई थी उसे प्रत्यक्ष देखा वह तो जाम्भोजी का ही हाथ था तथा स्वयं खीर गिराने वाले हाथ के मालिक को भी देखा, यह देखकर आश्चर्य चकित हो गये। तब यह सबद उनके प्रति सुनाया-

सबद-74

ओ३म् कड़वा मीठा भोजन भख ले, भखकर देखत खीरूं।

भावार्थ-हे साधु पुरुषों! आप लोगों ने परम पिता परमात्मा की प्राप्ति के लिये तथा परोपकार के लिये घरबार छोड़कर भिक्षा पात्र हाथ में ले लिया है आपका उद्देश्य तो बहुत ही उच्च कोटि का है और यही होना भी चाहिये। अब उदर पूर्ति के लिये भिक्षा द्वारा जैसा भी कड़वा मीठा, रूखा, सूखा भोजन मिल जाये उसे प्रेम पूर्वक परमात्मा के अर्पण करके पाओ तथा भोजन करके उसे खीर के समान ही देखो। जिह्वा के आगे जाने के बाद तो खीर और सूखी रोटी बराबर है। इसलिये तुम्हें रसना के स्वाद के लिये यह भूत प्रेतादि तंत्र मंत्र का कार्य नहीं करना चाहिये। यदि आप लोग उस खीर को खाते तो आपकी बुद्धि तथा मन तामसिक हो जाते तुम्हारी साधना में विघ्न आ जाता। इसलिये मैंने ही हाथ बढ़ाकर गिरा दी थी।

धर आखरड़ी साथर सोवण, ओढ़ण ऊंना चीरूं।
सहजे सोवण पोह का जागण, जे मन रहिबा थीरूं।

यह सभी प्राणियों को धारण करने वाली धरती ही तुम्हारे लिये बिछौना-पलंग है तथा योगी साधक को अकेले भ्रमण या रात्रि में गृहस्थ परिवार में निवास नहीं करना चाहिये। जमात के बीच में रहना श्रेयस्कर है यही तो गोपीचन्द की माता ने कहा था, बेटा! शैया पर सोना, किले में रहना, छतीस प्रकार का स्वादिष्ट भोजन करना, सवारी से चलना, राजसी ठाट बाट से रहना और अपने जीवन के कल्याण हेतु संन्यास ग्रहण कर लें। गोपीचन्द ने कहा कि हे माता! मैं आज सन्यास ले रहा हूँ। ये सभी तो मुझे छोड़ना पड़ रहा है। आप क्या बोल रही है। यह मेरी समझ के बाहर है तब माता ने कहा-

कि साधना में रत रहना, जब अच्छी नींद आवे तब सो जाना, तुम्हारे लिये वह भूमि ही कोमल शैया

होगी तथा अकेले कभी मत रहना, अभी तुम युवा हो, तुम्हारे अन्दर विकार उत्पन्न हो सकते है और तुम्हें पंथ से विचलित कर सकते है। इसलिये तुम्हारे जैसे साधक समाज के बीच में ही रहना, यही तुम्हारी सेना होगी और सुरक्षा के लिये किला होगा। तीसरी बात यह है कि जब तुम्हें अच्छी भूख लगे तभी भोजन करना उस समय जो भी रूखा सूखा भिक्षान्न मिल जाये वही तुम्हारे लिये पकवान होगा। चौथी बात यह है कि भ्रमण तो अवश्य ही करना किन्तु इतना अधिक नहीं जिससे शरीर थक जाये, साधना में विघ्न आ जाये। उतना ही घूमना जितना यह शरीर सहन कर जाये तथा साधना चलती रहे। यही तुम्हारे लिये सवारी होगी। जो भी वस्त्र मोटा-छोटा मिल जाये उसे साफ सुथरा रखना तथा उसी में ही संतोष रखना यही तुम्हारा राजसी रहन सहन होगा।

ओढ़ने के लिये ऊन का वस्त्र योगी साधक के लिये ठीक रहता है तथा सांयकाल में जब सहज रूप में निंद्रा आवे तब ही सोना चाहिये और प्रातःकाल ब्रह्म मूहुर्त में उठकर शौच स्नानादि से निवृत्त होकर साधना में लगना श्रेयस्कर हैं उसी प्रकार से यदि साधना में रत रहेगा तो तुम्हारा यह चंचल मन स्थिर रहेगा। मन की चंचलता को मिटाने के लिये साधना होती है और वह भी यदि नहीं मिट सकी तो फिर कैसी साधना कैसा योगी या साधु।

सुरग पहेली सांभल जीवड़ा, पोह उतरिबा तीरूं।

हे जीव! यह स्वर्ग एक पहेली के समान है अर्थात् जिस प्रकार से लोग पहेलियाँ पूछते हैं उनमें कोई ऐसी उलझन होती है जब तक उसका ज्ञाता नहीं मिलेगा, तब तक वह सुलझ नहीं सकती। उसी प्रकार से यह स्वर्ग भी उलझनों से भरा हुआ है। वहाँ तक पहुँचने के लिये तथाकथित धार्मिक लोगों द्वारा डाली गई अनेक प्रकार की उलझनों को पार करना पड़ेगा। जितने लोग है उतने ही मार्ग है। अब साधक किस मार्ग को अपनाऐ और किसको छोड़ें इसलिये सावधान रहना अति आवश्यक है। नहीं तो किसी को भी कहीं भी फंसा दिया जायेगा। यदि तेरे को वहाँ तक पहुँचना ही है तो इन पहेलियों को छोड़कर गुरु द्वारा बताये हुऐ सद्पंथ को स्वीकार करके उस पर यात्रा प्रारम्भ कर दें, निश्चित ही पहुँच जायेंगे।

★★★★

प्रसंग-37 दोहा

महलूखान जब यों कही, सुणों बड़े तुम पीर।
सरै तोरै में है लिखी, कीया महमंद सीर।
सरम छोड़ बोलत भयो, सुधा करे जबाब।
हमारे गोस्त मांस का, कहते नहीं जबाब।

महलूखान अजमेर सूबे के सूबेदार ने आकर जम्भदेवजी से कहा- कि आप तो बड़े पीर हो, आपकी बात हम मानते हैं किन्तु मुहम्मद साहब पीर ने ''शरै तोरीत'' पुस्तक में मांस खाना निषेध नहीं किया है। हमारा मजहब तो उनके वचनों को ही मान करके चलता है। इसमें आप क्या कहना चाहते है। तब श्री देवजी ने सबद सुनाया-

सबद-75

ओ३म् जोगी रे तूं जुगत पिछाणी, काजी रे तूं कलम कुराणी।

भावार्थ- रे योगी! तूं तो युक्ति की पहचान कर,

युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वपनावबोधस्य योगो भवति दुख: हा।

योगी के लिये युक्ति का भोजन, युक्ति का चलना, कर्मो में चेष्टा युक्ति युक्त करना ,समय पर जागना और समय पर ही सोना ये सभी आचार विचार युक्ति पूर्वक चलते रहे तभी दु:ख मिटने वाला योग सिद्ध होता है।

हे काजी! तूँ कुराण के कलमों की पहचान कर। उनमें विचार पूर्वक देख, क्या लिखा है। ईश्वरीय सद् पुरुष कभी भी जीवों की हत्या करने का आदेश नहीं दे सकते। तो फिर महमंद ही क्यों देंगे। वे भी पीर पुरुष ईश्वर के भक्त थे।

गऊ विणासों काहैं तानी, राम रजा क्यूं दीन्हीं दानी।
कान्ह चराई रनवे बानी, निरगुन रूप हमें पतियानी।

आप लोग महम्मद के शिष्य होकर फिर गऊवों का विनाश करते हो तो किस बल पर। आप लोगों को विपत्ति काल में कौन सहारा देगा। यदि गऊवों का विनाश ही करना होता तो राम ने दया क्यों दिखाई। उन्होंने भारत वासियों को गऊ पालन की शिक्षा क्यों दी तथा द्वापर में श्री कृष्ण ने स्वयं गऊवें क्यों चराई। घरबार का सुख आराम छोड़कर वृन्दावन में क्यों गऊवों के पीछे भटकते रहे। यदि गऊवों को मारना ही लक्ष्य होता तो फिर उन महापुरुषों ने इनको जीवित रखने के लिये इतने कष्ट क्यों उठाये। हम अवतारी पुरुष यहाँ संसार में बार-बार यहाँ के लोगों को मार्ग दिखाने के लिये आते हैं किन्तु हमारा वास्तविक रूप तो निर्गुण निराकार ही है यह साकार रूप तो हमें धारण करना पड़ता है।

थल सिर रह्या अगोचर बानी, ध्याय रे मुडियां पर दानी।
फीटा रे अण होता तानी, अलख लेखो लेसी जानी।

वही निरंजन निराकार विष्णु यहाँ सम्भराथल पर दिव्य, अनुपम, अद्वितीय, वेद वाणी के रूप में विराजमान है। मेरे पास राम-कृष्ण की भांति कोई अस्त्र-शस्त्र नहीं है। मेरे पास तो मेरी सहजे सुन्दर लोतर वाणी ही शस्त्र है। इसलिये हे मुंडिया! उस परोपकारी देवाधिदेव भगवान विष्णु का ही ध्यान कर! आप लोग जबरदस्ती जीवों पर जोर चलाते हो। वह भी किसके आधार पर। तुम्हारा ऐसा कौनसा देवता बलशाली है जो यमदूतों से छूटकारा दिला दे। इस जीवन में तो तुम्हें पूरी स्वतंत्रता है किन्तु अन्त में तुम से हिसाब किताब पूछा जायेगा, तब तुम्हारा कुछ भी जोर नहीं चलेगा। यहाँ पर तो तुम किसी को सहायक बना सकते हो। किन्तु वहाँ पर तुम्हारा सहायक कोई नहीं होगा। यह लेखा लेने वाला अलख सबके घट-घट की जानने वाला महान ज्ञानी है। उससे आप कुछ भी छुपा नहीं सकते।

★★★★

दोहा

महलूखान तब यों कही, सुणों पीर जी भेद।
क्रिया तुम्हारी मैं चला, मोको उपजा खेद।
शरै तोरे की बात का, हम पर हुआ जोर।
क्रिया करे तब निंद हो, है दुष्टी महा घोर।

महलूखान ने पुनः श्री जम्भेश्वर जी से कहा–कि हे पीर जी! मैं आपके द्वारा बताये हुए स्नान संध्यादिक मार्ग पर चलने की कोशिश कर रहा था। तभी हमारे पंथ के लोगों ने मुझे काफिर कहा तथा महादुष्ट बतलाया। मेरे उपर शरै तोरीत पुस्तक का हवाला देते पूरा दबाव डाला गया था। अब आप ही बतलाइये, मैं किस प्रकार से नियमों को निभा सकता हूँ। तब श्री देवजी ने उनके प्रति सबद सुनाया–

सबद–76

ओ३म् तन मन धोइये संजम होइये, हरख न खोइये।

भावार्थ–सर्वप्रथम प्रातःकाल उठकर शौच, दांतुन, स्नान के द्वारा शरीर की शुद्धि कीजिये। तत्पश्चात् भीतर देश में स्थित मन को संध्या, वन्दना, आरती, जप, हवन के द्वारा शुद्ध कीजिये। इतने नियम प्रातःकाल पूर्ण हो जाने के पश्चात् अन्य कार्य कीजिये। इस दैनिक कार्य को संयम पूर्वक करने से सदा शुभ कार्य ही होगा और संयम को नहीं अपनायेगा तो सभी पाप कर्म ही होंगे तथा जगत में संयम पालन करते हुए ही हो सकता है कष्ट भी आ जाये तो उन कष्टों से घबराये नहीं, उस समय दुःख का अनुभव न करें। यह तुम्हारा स्वभाव आनन्द स्वरूप है इसे न जाने दें, प्रत्येक परिस्थिति में सुख बना रहे। सदा ही दुःख में भी सुख का अनुभव बना रहे। यही आपका कीमती धन है। यही चला गया तो पास में कुछ भी नहीं बचेगा।

ज्यूं ज्यूं दुनिया करै खुंवारी, त्यूं त्यूं किरिया पूरी।

अपने नियम, धर्म, संयम से जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति की यदि कोई निंदा करे, उसको भला–बुरा कहे, तो भी उस नियम युक्त जीवन की विधि को छोड़े नहीं किन्तु ज्यूं–ज्यूं निंदा करे त्यूं–त्यूं अपनी धार्मिक क्रिया पूर्ण रूपेण करें। यदि किसी की खुंवारी–कटुवचन निंदा से डरकर धार्मिक क्रिया छोड़ दी तो फिर हार हो जायेगी। निंदा कर्त्ता से पराजित नहीं होना, सदा उन पर विजय का प्रयास करना है।

मुग्धां सेती यूं टल चालो, ज्यूं खड़के पासि धंनूरी।

तथा मुग्ध लोगों से तो इस प्रकार से दूर हट कर चलो, जिस प्रकार से धनेर पक्षी या हिरण थोड़ी सी पते की आवाज से भी डरकर भाग जाते है अर्थात् जानते हुए भी मोह माया में मस्त लोगों का कार्य तो दूसरों के कार्य में विघ्न डालना ही है। उन विघ्न कर्त्ताओं से तो दूर हटकर चलना ही श्रेष्ठ है। ये लोग अपनी करामात अवश्य ही आजमायेंगे। इसलिये विघ्न आने से पूर्व ही सचेत रहना चाहिये। यदि सचेत नहीं रहेंगे तो धनेर पक्षी तथा हरिण जैसी दशा हो जायेगी।

★★★★

प्रसंग-37 दोहा

बालनाथ जोगी कहै, सुणों देव मो बात।
भेरूं जोगण जे जपे, तिहिं का फल कहिये तात।

बालनाथ जोगी ने पुनः श्री देवजी से कहा-कि हे देव! जो व्यक्ति भैरूं, जोगणी आदि का जप करते है उनको भी फल मिलता है कि नहीं? तब श्री देवजी ने सबद सुनाया-

सबद-77

ओ३म् भूला लो भल भूला लो, भूला भूल न भूलूं।
जिहिं ठूंठड़िये पान न होता, ते क्यूं चाहत फूलूं।

भावार्थ-मन, बुद्धि, चित और अहंकार ये चारों ही अन्तःकरण है यह अन्तःकरण एक होने पर भी कार्य भेद से चार विभागों में विभक्त किया गया है। चारों का भिन्न भिन्न कार्य होता है। इनमें चित का कार्य स्मरण करना है। जिसका चित पक्ष कमजोर होगा उसकी स्मरण शक्ति नष्ट हो जायेगी तथा स्मरण शक्ति के नष्ट हो जाने पर ''स्मृति भ्रंशात् बुद्धि नाशो, बुद्धि नाशात् प्रणश्यति'' स्मृति के नष्ट होने से बुद्धि का नाश हो जाता है और बुद्धि के नाश होने से महानाश को प्राप्त हो जाता है।

इसलिये गुरुजी कहते है कि हे प्राणी! सचेत रहो! भूल में अचेत अवस्था में रहकर उस परमपिता परमात्मा को मत भूलो तथा अपने स्वरूप को न भूलते हुऐ स्वरूप में स्थिति का प्रयत्न करो। यह मैं देखता हूँ कि आप लोग अत्यधिक भूल, गहरी निन्द्रा में अचेत हो चुके हो। आप लोगों को बार बार भूल का स्मरण करवाने पर भी अपनी भूल को स्वीकार करके उससे सचेत होने की कोशिश ही नहीं करते। जिस सूखे ठूंठ पर पते ही नहीं है उस पर फूल-फल की आशा ही क्यों करते हो। अर्थात् यह संसार तथा सांसारिक भूत-प्रेत, देवी-देवता ये सभी सूखे ठूंठ की तरह ही है। ये स्वयं दुःख के मारे दुखित है, इनके पास हरियाली, सुख नाम की कोई वस्तु नहीं है फिर भी आप लोग इनके पीछे पड़े हो, इनमें फूल-फल चाहते है, सुख चाहते है यही तुम्हारी बड़ी भूल है, नादानी है।

को को कपूर घूंटीलो, बिन घूंटी नहीं जाणी।

कुछ कुछ लोग तो कपूर की घूंटी लेकर देखते है, उन्हें तो मालूम पड़ जाता है किन्तु कुछ लोग घूंटी नहीं ले पाते तो वे लोग ठीक से समझ नहीं पाते अर्थात् कपूर उपर से देखने में शुभ्र वर्ण का दिव्य खाद्य मीठा पदार्थ जैसा दिखता है। उसे देखकर कुछ लोग उसकी घूंटी ले लेते है। मुख में डाल लेते है किन्तु उसका रस हीन कड़वा स्वाद असह्य होने से थूक देते है जो ऐसा करके देखते है वे तो असलियत जान जाते हैं किन्तु जो लोग ऐसा नहीं करते वे अनुभव नहीं कर पाते। उसी प्रकार से ही प्रचलित भूत-प्रेतादिक कपूर की तरह ही बाहर से यानि दूर से तो सौम्य दिखाई देते है पर जब उनसे व्यवहार करते है तो तब वे कटुता, रसहीन, दुःखों से भरे हुऐ नजर आते है। जो एक बार ऐसा अनुभव कर लेता है वह तो कभी भी भूल से ही नजदीक नहीं जाता, किन्तु जो अनुभव हीन है वे लोग आशा रखते है बार-बार उनसे सम्बन्ध जोड़ने की कोशिश करते हैं।

सतगुरु होयबा सहजै चीन्हबा, जाचंध आल बखाणी।

जिस व्यक्ति ने सतगुरु धारण किया है वह तो सहज रूप में परमात्मा का स्मरण करेगा। कभी भी कल्पित

देवी-देवताओं की आशा नहीं करेगा तथा जो जाचंध अर्थात् कुतर्की झूठा, वाद विवादी, जानते हुऐ भी न मानने वाला वह अन्ध है और व्यर्थ का झूठ आल बाल बातें बोलेगा।लोगों को भ्रमित कर देगा। उससे सावधान रहें, वह कभी भी मार्ग से दूर हटा सकता है।

ओछी किरिया आवै फिरिया, भ्रान्ति सुरग न जाई।
अन्त निरंजन लेखो लेसी, पर चीन्हैं नहीं लोकाई।

अधूरी धार्मिक क्रिया से तो वापिस जन्म-मरण के चक्कर में आना पड़ेगा। कोई भी कार्य करो तो पूर्णता से करो ताकि उसमें कोई कमी न रह सके। कुछ किया कुछ छोड़ दिया या बिना इच्छा से किया गया वह अधूरा है और अधूरा कभी भी पूर्ण नहीं हो सकता, पूर्णता को प्राप्त नहीं करवा सकता तथा जब तक विवेक शून्यता है मानव भ्रान्ति के अन्दर भ्रमित हो रहा है धर्म-अधर्म का निर्णय नहीं कर सका है वह स्वर्ग में नहीं जा सकता। मृत्यु के बाद में जब यह जीव इह लोक, शरीर, परिवार को छोड़कर परलोक में जायेगा तब निरंजन माया रहित परमेश्वर उससे हिसाब पूछेगा। तब जीव कहेगा कि मैंने जप, दान, पुण्य तो किया है तब उससे वह निरंजन यही कहेगा कि तुमने स्मरण तो अवश्य ही किया है पर लौकिक भूत प्रेतों का ही। अब यहाँ पर उनका अधिकार नहीं चलता।जिसको तूने महत्त्व दिया वो तो वहीं पीछे ही रह गये।

कण बिन कूकस रस बिन बाकस, बिन किरिया परिवारूं।
हरि विन देह रै जांण न पावै, अम्बाराय दवारूं।

जिस परिवार गृहस्थी के घर में शुद्ध क्रिया नियम धर्म नहीं है वह परिवार तो जिस प्रकार से धान अन्न के बिना थोथा भूसा तथा रस हीन बाकस की तरह ही होता है उस परिवार तथा भूसे का कोई महत्त्व नहीं है परिवार में से तो शुद्ध क्रिया चली गई और भूसा में से अन्न चला गया। ये तीनों एक ही तरह के हो जाते हैं। हे प्राणी! भगवान विष्णु की शरण ग्रहण किये बिना ये देह धारी जीवात्मा पार नहीं पहुँच सकती। उस दिव्य सुखमय स्वर्ग या मुक्ति को प्राप्त नहीं हो सकती ये सांसारिक भूत-प्रेत, देवी-देवता तुम्हें कभी भी पार नहीं उतार सकते।

★★★★

दोहा

जोगी बोल्या यों कही, जोग तणी कहो बात।
अलख पुरूष पुरा गुरु, मेटो मन की भ्रान्त।

बालनाथ योगी ने पुनः जम्भदेवजी से पूछा कि हे प्रभु! आप तो पूर्ण गुरु हो योग के विषय में आप हमें विधि-विधान बतलाइये, जिससे हमारा जीवन वास्तव में योगमय बन सके। तब श्रीदेवजी ने सबद सुनाया-

सबद-78

ओ३म् नवै पोल नवै दरवाजा, अहूंठ कोड़रू राय जड़ी।
कांय रे सींचो वन माली, इहिं बाड़ी तो भेल पड़सी।

भावार्थ-इस पंचभौतिक शरीर में बाह्य दिखने वाली दो आंखें, दो कान, दो नासिकाएँ तथा एक मुख ये

सात तो ऊपर के दरवाजे हैं तथा दो नीचे के पायु तथा उपस्थान कुल मिलाकर के नौ बड़े दरवाजे हैं तथा उन्हीं दरवाजों के अन्दर प्रवेश करने पर नौ ही उनकी पोल यानि थोथापन है अर्थात् इन इन्द्रियों के अन्दर का आकाश है। जिस द्वार से बाह्य भोग्य वस्तु अन्दर स्थित जीव तक पहुँचती है तथा उन वस्तुओं का सार रूप शरीर के अर्थ में आ जाने पर अवशिष्ट मल रूप से बाहर निकलता है तथा इन नौ बड़े दरवाजों के अतिरिक्त साढ़े तीन करोड़ रोमावली भी शरीर में जुड़ी हुई है। ये भी छोटे-मोटे झरोखों के समान हवा, जल, आदि ग्रहण एवं त्याग का कार्य करती है इतने छिद्रों से युक्त यह शरीर एक घने जंगल की तरह ही है। जिसमें झाड़ी घास असंख्य उग आये है उसी प्रकार इस शरीर में भी रोमावली उगी हुई है तथा इस शरीरस्थ जीवात्मा ही इस वन का माली है। जो इस शरीर द्वारा इन भोगों को भोगता है यह जीव प्रसन्न होता है तो इस शरीर को भी भोग्य पदार्थ प्राप्त होते है। जिससे यह भी हृष्ट-पुष्ट होता है। संसार के लोग तो यही करते रहते हैं।

किन्तु गुरु जम्भेश्वर जी कहते हैं कि हे योगी! तूँ दिन-रात इसी वनमाली जीव को इस शरीर के नव दरवाजों द्वारा सींचित कर रहा है। यह तेरा कर्त्तव्य नहीं है। इससे तुम्हारा शरीर मोटा हो जायेगा और शरीरस्थ मन, बुद्धि, चित, अहंकार रूपी अन्त:करण भी जिसमें चैतन्य जीव का निवास है वह भी स्थूलता को धारण कर लेगा तो फिर सूक्ष्म विषय योग को कैसे धारण करेगा तथा यह बाड़ी रूपी शरीर भी चाहे स्थूल हो जाये तो इस वनमाली जीव से बिछुड़ जायेगा तो फिर इस वन तथा वनमाली को सींचित करने से क्या लाभ है।

सुवचन बोल सदा सुहलाली, नाम विष्णु को हरे सुणों।
घण तण गड़ बड़ कायों वायों, निज मारग तो विरला कायों।

योग समाधि की बात तो बहुत ही ऊँची है। वहाँ तक तो तुम्हारी पहुँच ही नहीं है। इससे पूर्व कई और भी बातें हैं, जो ध्यान देने के योग्य है। प्रथम तो तुम्हारी वाणी भी शुद्ध नहीं है। गाली देना, कटु तथा अशुद्ध वचन त्यागना होगा। यह तुम्हारे अनेक प्रकार की विघ्न बाधाएँ उत्पन्न कर देता है। इसलिये सुवचन, प्रिय, सत्य, हितकर वाणी ही बोलनी चाहिये। जिससे सदा ही खुशहाली बनी रहे। दूसरा तुम्हारा कर्तव्य कर्म यही होना चाहिये कि यदि कुछ सुनना है तो विष्णु का नाम कीर्तन ही श्रवण करना या परमात्मा विषयक सत्संग चर्चा का ही श्रवण करने योग्य है तथा यदि जिह्वा के द्वारा कुछ बोलना ही पड़े तो विष्णु का नाम उच्चारण ही करना या भगवद् भजन सत्संग विषयक वार्तालाप ही करना श्रेयष्कर है। इससे ज्यादा यदि बोलने तथा सुनने की चेष्टा करता है तो वह जरूरत से ज्यादा होने से अधिक है तथा गड़बड़ झूठ, निंदा, कपट भरी बातें ही कही जायेगी व सुनी जायेगी। इस प्रकार के चक्कर में पड़ जाने से तो तुम्हारा योग सिद्ध नहीं हो सकेगा। इस संसार के लोगों के साथ तुमने सम्बन्ध स्थापित किया है। यहाँ पर तो अपने सच्चे मार्ग पर चलने वाला तो कोई विरला ही होगा। बाकी तो सभी चौरासी के चक्कर में ही भटकने वाले हैं।

निज पोह पाखो पार असी पर, जाण म गाहि म गायो गूणों।
श्री राम में मति थोड़ी, जोय जोय कण विण कूकस कांयों लेणों।

हे योगी! स्वकीय सच्चे मार्ग बिना तो पार नहीं पहुँच सकते। यदि गन्तव्य स्थान में जाने की कोशिश भी करेगा तो भी विफल हो जायेगा क्योंकि बिना मार्ग ऊजड़ तो कहीं भी नहीं पहुँचा जा सकता। बिना मार्ग तो केवल रात-दिन परिश्रम किया जाय तो भी व्यर्थ ही है। जैसे कण रहित मोठ मूंग आदि को बार-बार गाहटा करना या पीसना ही है। वहाँ कण निकल चुका है दुबारा उसमें कण तत्त्व कहाँ से आयेगा। इसी प्रकार से यदि

जानते हुऐ भी कि बिना मार्ग गाँव नहीं पहुँचा जा सकता, फिर भी चल देना यह मूर्खता ही होगी। यदि तुम्हारी परमात्मा में उनके मर्यादा युक्त कर्त्तव्यों में वचनों में बुद्धि कम लगती है तथा इधर-उधर की आल-बाल की बातों में ज्यादा लगती है तो तुम्हारा प्रयास विफल ही होगा। जिस प्रकार से कण रहित कूकस-भूसा में से अन्न निकालने का बार-बार भी प्रयत्न किया जाये तो भी वहाँ क्या मिलेगा।

★★★★

दोहा

जोगी कहै सुण देवजी, करां म्हे जोग विचार।
श्वासां जीता सुर लहै, उमर होय अपार।
जोग करे सो सिद्ध लहे, पावै पद निरवाण।
उमर बधै सो तास की मारकंडेय प्रमाण।

उक्त सबद श्रवण करके पुनः वही बालनाथ अनेक अन्य योगियों सहित वहीं पर स्थित होकर कहने लगा कि हे देव! हम अन्य साधारण साधुओं जैसे नहीं है हम नित्य प्रति साधना में रत रहते है। प्राणायाम के द्वारा श्वांसों को जीतने का प्रयास करते है जिससे हमारी आयु में वृद्धि होगी तथा सिद्धि को प्राप्त कर के मारकण्डेय की तरह बहुत काल पर्यन्त समाधि में स्थित होकर परम पद की प्राप्ति चाहते है। तब श्री देवजी ने सबद उच्चारण किया-

सबद-79

ओ३म् बारा पोल नवै दरसाजी, राय अथरगढ़ थीरूं।
इस गढ़ कोई थीर न रहिबा, निश्चै चाल गया गुरु पीरूं।

भावार्थ-बाहर यह महाकाश ही पोल है इस पोल आकाश में ही सभी शरीर धारी निवास करते हैं तथा ये ही नव दरवाजे जीव के लिये बाह्य आकाश तथा उसमें स्थित जीवों के देखने के साधन है तथा मृत्यु समय में भी यह जीव इन नौ में से ही किसी भी दरवाजे से निकलकर बाह्य इस आकाश यानि पोल में ही समाहित होता है। यह अथिर यानि अस्थिर रहने वाला शरीर का यह जीव ही राजा है।

यह गढ़ जब जर्जरित या खण्डित हो जाता है तो इस जीव के रहने लायक यह भवन नहीं रहता तो इसको छोड़कर चला जाता हैं अपने कर्मानुसार या तो नवीन गढ़ बनाता है या फिर मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। इसलिये हे योगी! यदि आप लोग ज्यादा आयु अजर अमर होना चाहते है तो यह तुम्हारी भूल ही होगी क्योंकि इस शरीर रूपी गढ़ में अब तक न तो कोई स्थिर रह सका है और न ही कोई रह सकेगा। सामान्य जन की तो बात ही क्या है। बड़े- बड़े गुरु पीर भी निश्चित ही चले गये। अब तुम्हारी यह स्थिर रहने की कामना तो नादानी है।

★★★★

प्रसंग-39 दोहा

विश्नोई कन्नोज का, चलकै आया ठेठ।
बिछोनौ मखमल जड़यौ, धर्‌या सतगुरु की भेंट।

अतलस नरम कोमल म्हा, लीजै सही प्रवीन।
नींद जो आवै सुख सूं, भाख्या चीत हुय दीन।

पूर्व देश कन्नौज का एक बिश्नोई अपने सम्बन्धियों सहित वहाँ से चलकर सम्भराथल पर जम्भदेव जी के पास पहुँचा। साथ में श्री देवजी के लिये अति सुन्दर हीरे-जवाहरात जड़े हुऐ मखमल रेशम का कोमल बिछौना लाया था और हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगा-हे देव! यह देखिये कोमल बिछौना आपके लिये मैं लेकर आया हूँ आप इसे स्वीकार कीजिये। जब आप इस पर सुखपूर्वक शयन करोगे तो गहरी निंद्रा आपको आयेगी। तब गुरु जम्भेश्वर जी ने उसके प्रति सबद उच्चारण किया।

सबद-80

ओ३म् जे म्हां सूता रैण विहावै, तो बरतै बिम्बा बारूं।

भावार्थ-हे जिज्ञासु! यदि मैं आपके इस कोमल बिछोने पर सो कर रात्रि व्यतीत कर दूं। अर्थात् युग व्यतीत कर दूं तथा अच्छी गहरी नींद भी ले लूं। तो जानते हो क्या हो सकता है। मेरा शयन करना तथा जागृत रहने का अभिप्राय: यह है कि प्रलय तथा सृष्टि का सृजन होना है। इसलिये मेरे शयन करने पर सम्पूर्ण सृष्टि अपने-अपने कारण रूप में लय हो जायेगी।

उस समय प्रतिबिम्ब रूप इस जगत की स्थिति नहीं रहेगी किन्तु बिम्ब रूप से एक परमात्मा की ज्योति ही रहेगी। उस ज्योति के प्रकाश से ही सर्व लोक प्रकाशित होंने तथा मेरे ब्रह्म स्वरूप में माया तथा माया का कार्य रूप जगत का अभाव हो जाने से मैं अपनी स्वरूप स्थिति में जब स्थिर हो जाऊंगा, यही मेरा शयन है। अब आगे संसार के प्रमुख तत्वों की क्या दशा होगी यह बतलाते है।

चन्द भी लाजै सूर भी लाजै, लाजै धर गैणारूं।
पवणा पाणी ये पण लाजै, लाजै बणी अठारा भारूं।

सूर्य, चन्द्रमा, आकाश, पवन, जल तथा अठारह भार वनस्पति ये सभी लज्जित हो जायेंगे। इन सभी के अन्दर ज्योति तथा ऊर्जा शक्ति तो परमात्मा की ही दी हुई है। वह परमात्मा जब अपनी शक्ति वापिस समेट लेगा तो फिर इनकी स्थिति जैसा आप लोग इस समय देख रहे हैं, यह नहीं रहेगी। ये अपना अस्तित्व मिटाकर अपने कारण रूप में लय हो जायेंगे तथा इसके बिना तो सृष्टि की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

सप्त पाताल फूणींन्दा लाजै, लाजै सागर खारूं।
जम्बू दीप का लोइयां लाजै, लाजै धवली धारूं।
सिध अरू साधक मुनिजन लाजै, लाजै सिरजन हारूं।

ये सातों पाताल, शेष नाग, खार समुद्र इनकी भी स्थिति यथावत् नहीं रह सकती तथा जम्बूदीप के लोग जो यहाँ पर जीवन कल्याण की आशा लगाये बैठे हैं, वे भी लज्जित हो जायेंगे और हिमालय से निकलकर अजस्र धारा प्रवाह वाली पवित्र नदी गंगा भी लज्जित हो जायेगी और यदि गंगा का प्रवाह रुक गया तो फिर इस जम्बूदीप के लोग अपनी इच्छा पूर्ति नहीं कर सकेगे तथा इस संसार में इस समय सिद्ध साधक तथा मुनिजन तो साधना में रत है अपना उद्धार करने की लालसा से दिन-रात परिश्रम से तत्वान्वेषण कर रहे है वे भी लज्जित हो जायेंगे। उनका भी कार्य अधूरा ही रह जायेगा। उन्हें फिर से जन्म मरण के चक्कर में आना पड़ेगा।

तथा सबसे बड़ी हानि तो यह होगी कि सृष्टि के सृजन कर्त्ता ब्रह्मा, पालन कर्त्ता विष्णु तथा संहार कर्त्ता शिव भी लज्जित हो जायेंगे। एक ही परमात्मा की शक्ति रूप ये तीनों अपने-अपने कार्य में संलग्न है तथा जब अकस्मात् सृष्टि का प्रलय हो जायेगा तो ये त्रिदेव अपने परिश्रम का फल विपरीत देखकर लज्जित हो जायेंगे। पुनः सृष्टि रचना का कार्य पूरे मनोयोग से नहीं कर पायेंगे अर्थात् पुनः इतनी सुन्दर सौम्य, व्यवस्थित सृष्टि की रचना, पालन, संहार नहीं हो सकेगा। इसलिये मेरे शयन का फल तो यही होगा। अब यदि आप ऐसा स्वीकार करते हैं तो मैं भी सो जाता हूँ। अतः हे जिज्ञासु! तूँ इन बातों को छोड़कर यदि अपना भला चाहता है तो मैं जैसा कहता हूँ तूँ वैसा ही कर।

सत्तर लाख असी पर जंपा, भले न आवै तारूं।

सर्वप्रथम तो सत्यवादी बनकर सत्य सनातन पूर्ण ब्रह्म परमात्मा में ही रहने की कोशिश करो, अर्थात् सम्पूर्ण सृष्टि में ओत-प्रोत परमात्मा को ही देखकर उसमें अपने को समाहित करो। यदि इस प्रकार की ज्ञान की धारा प्रवाहित नहीं हो पाती तो लाख की तरह चित्त वृत्ति सुरति को तदाकार बना लें अर्थात् जैसे लाख को अग्नि से तपाकर फिर उसे चूड़ी कंगन आदि बनाने के लिये सांचे में ढ़ाली जाती है। जब वह लाख सांचे में पड़ी हुई ठण्डी हो जाती है तो वही तदाकार धारण कर लेती है। फिर कभी भी उसका तदाकार निवृत्त नहीं होता ठीक उसी प्रकार से यह तुम्हारी चितवृत्ति है, यह सदा ही बाह्य विषयों में तदाकार उसी तरह की होती रहती है किन्तु वृत्ति सुरति टिकाऊ नहीं है।

इसी वृत्ति को ही प्रेम भाव रूपी अग्नि से पिघला करके परमात्मा रूपी सांचे में ढ़ाल दो। कुछ समय तक तो वहीं पर सुरति को एकाग्र रहने दो तो वह सदा सदा के लिये वहीं पर ही स्थिर हो जायेगी अर्थात् सदा ही परमात्मा मय चित्त वृत्ति या सुरति हो जायेगी। ''ओम् शब्द गुरु सुरति चेला'' अर्थात् यह ओम् शब्द ही गुरु है और सुरति ही चेला है। इसी प्रकार का ध्यान रूपी जप यदि तुम्हारा चलता रहेगा तो मैं तुम्हें संसार सागर से पार उतार दूँगा।

★★★★

प्रसंग-40 दोहा

इक साध चल्यो परदेश तै, बूझ बिकाणूं देश।
गांव धूंपालिये में ही, आय कियो प्रवेश।

अरिल-

विश्नोयण बूझै साध चला किस काम कूं।
देव तणों दीदार चला हरि धाम कूं।
देव नहीं रे बीर पाखण्डी है खरा।
पर हां कलपन लागा साध, सकल तन थर हरा।
देव दुवागर भेजियो, साधु तुरंत बुलायो।
साथरी आयो हजूर, देवजी पगे लगायो।

सतगुरु बूझे बात, साध कैसे कलपियो।
हरि हां पाखण्डी सुणियो, कान तब मन झलपियो।

एक सज्जन पुरुष ने जम्भेश्वर जी की महिमा सुनी। तब उसके मन में दर्शन करने की लालसा जागृत हुई। वह वहाँ से चलकर पूछते-पूछते धूंपालिये में पहुँचा जो सम्भराथल के अति निकट है। वहाँ पर किसी बिश्नोई के घर पर पहुँचा भोजन किया तब उस गृहिणी ने पूछा-हे साधु भाई! तुम कहाँ जा रहे हो? तब उस महात्मा ने कहा-कि मैं बहुत दूर देश से चलकर आया हूँ और अब आगे सम्भराथल सिद्ध महापुरुष जाम्भोजी के निकट जा रहा हूँ तब उस स्त्री ने कहा-हे भाई! तुझे किसी ने धोखा दिया है, वह देव नहीं है किन्तु पक्का पाखण्डी है। यह बात तो उस स्त्री ने यह जानने के लिये कही थी कि यह वास्तव में कितना पक्का, कच्चा या श्रद्धालु है। किन्तु उस स्त्री की बात को सुनकर वह साधु वहीं पर दु:खी होकर रोने लगा, कांपते हुऐ पछतावा करने लगा कि मैं इतनी दूर से परिश्रम करके आया हूँ। किन्तु मेरे साथ धोखा हो गया। इस बात को जम्भदेवजी ने सम्भराथल पर विराजमान रहते हुए जान लिया और अपने एक शिष्य को भेजकर उस साधु को अपने पास बुलाया तथा उनसे पूछा-तब अपने दु:ख की बात सुनायी और कहा कि मैं तो बहुत बड़ी भावना लेकर आया था किन्तु इस धूंपालिये गाँव में मेरी श्रद्धा टूट चुकी थी। तब श्री देवजी ने उनके प्रति सबद सुनाया-

सबद-81

ओ३म् भल पाखण्डी पाखण्ड मंडा, पहला पाप पराछत खंडा।

भावार्थ-हे साधु! उस महिला ने जो कुछ भी कहा वह ठीक ही कह रही थी। मैं बहुत बड़ा पाखण्डी हूँ, मैंने यहाँ पर पाखण्ड रच रखा है जो कोई भी मेरे पास में आता है, मैं उनके संचित तथा क्रियमाण सभी पापों का खण्डन कर देता हूँ। पापों की बड़ी सेना को पराजित करना मेरा कर्त्तव्य है। यही बात जम्भसार में कही गई है-

चौपाई

कहै जम्भ जानै मोहे भेवों, ताका इतना धन ठग लेऊ।
काम क्रोध मद लोभ कुकर्मा, आत्म परचै विन सब धरमा।
ईरशा अन्याय रू निद्या, बांधे पाप पोट रज बिद्या।
इह धन हिन्दू मूसला प्यारो, लूट देय कर शब्द नगारो।
तातै मोसो मिलन कोई, जो मिल है सो निरधन होई।

जां पाखण्डी के नादे वेदे, शीले शब्दे बाजत पौण।
तां पाखण्डी ने चीन्हत कौण, जाकी सहजै चूकै आवा गौण।

जिस पाखण्डी ने यह पाप पराजित करने वाला पाखण्ड रच गया है, उसके अपने कुछ निजी विशेष धर्म है। जैसे नाद ध्वनि का ज्ञाता होना, वेदों के सार रूप तथ्य का ज्ञाता व वक्ता होना, शीलव्रती होना, शब्द शास्त्र तथा अनहद नाद ओम का साधक होना ये सभी लक्षण बहुतायत से इस पाखण्डी में विद्यमान है इन्हीं सद्गुणों की ही हवा यहाँ चल रही है अर्थात् मैंने ऐसा ही पवित्र वातावरण यहाँ पर निर्मित किया है जो भी इस पवित्र वातावरण में आयेगा तो वह पवित्र हुऐ बिना नहीं रह सकता। इस लक्षणों से युक्त पाखण्डी को कोई

पहचान ले तो उसके सहज ही में जन्म मरण का चक्र छूट जायेगा। इसलिये हे साधु! तुमने इस रहस्यमय पाखण्डी को पहचाना नहीं था, इसलिये उदास होकर पछतावा कर रहा था। अब ऐसा नहीं होगा।

★★★★

दोहा

शब्द सुणायो देव तब, साध की खुली किवाड़ी।
साध कह्यो अप शब्द एह, वरजियो तब ही मुरारी।

गुरु जम्भेश्वर जी से उक्त शब्द श्रवण करके अज्ञान अन्धकार तथा भ्रम की किवाड़ी खुल गई। ज्ञान नेत्र खुल जाने से सत्य असत्य का विवेक हुआ। जब वह साधु उस स्त्री को बुरा-भला कहने लगा तब श्री देवजी ने उसे रोकते हुऐ यह सबद सुनाया-

सबद-82

ओ३म् अलख अलख तूं अलख न लखणा, तेरा अनन्त इलोलूं।
कौण सी तेरी करणी पूजै, कौण सै तिहिं रूप स तूलूं।

भावार्थ-हे साधु पुरुष! इन सांसारिक लोगों के कटु-कषाय वाक्यों को श्रवण करके अपने स्वरूप को भूल कर क्रोध न करो तथा इन वाक्यों के केवल कहने सुनने से ही कुछ नहीं हो सकता। जैसे तूँ नित्य प्रति अलख-अलख की ध्वनि तो करता है अलख का नाम लेकर जोर से आवाज करता है, किन्तु उससे कुछ भी लाभ नहीं हुआ। केवल लड्डू का नाम लेने से लड्डू के मिठास-स्वाद का आनन्द नहीं आ सकेगा। उसी प्रकार से अलख को जाने बिना अलखमय हुए बिना केवल शब्द मात्र से कोई रस नहीं मिल सकेगा। यदि तुम्हें परमात्मा के आनन्द का अनुभव करना है तो अलख परमात्मा का अनुभव करना होगा, लखना होगा, क्योंकि जिस घड़ी तूँ अलख के समीपस्थ होगा, साक्षात्कार करेगा उस समय तेरे आनन्द की अनन्त हिलोरें उठेगी। तुझे अमृत रस में ओत-प्रोत कर देगी। उस घड़ी की बराबरी कोई भी करणी नहीं कर पायेगी। ऐसा और कोई संसार में कर्त्तव्य नहीं है जो उस आनन्द मय बेला की बराबरी कर सके तथा न ही कोई ऐसा दिव्य रूप ही होगा जो उस दशा की समता कर सके अर्थात् उस समय जब तुम्हारा अलख से मिलन साक्षात्कार हो जायेगा, तब तुम्हारे सदृश अन्य किसी का जीवन नहीं हो सकेगा। तुम्हारी समता कोई भी सांसारिक मोह माया से ग्रसित मानव नहीं कर सकेगा।

★★★★

प्रसंग-41 अरिल-

देव तणे दरबार, जमाती आय कै।
जाट जोगी संग, ज्ञान पूछ्यो समै पाय कै।
म्हां सम न ही जो ज्ञान, कह्यो हरखाय कै।
परि हां किस ठिकाणै को जोग, कही समझाय कै।

एक समय सम्भराथल पर जाट, जोगी, सन्यासी सभी तरह के लोग एकत्रित हुए तथा ज्ञान की चर्चा चलाई। तब उनमें से कोई एक व्यक्ति कहने लगा-हमारे समान और ज्ञान किसी के पास नहीं है हम तो स्वयं ज्ञानी है किससे पूछें। यह बात अत्यधिक अभिमान के साथ कही गई। उस समय ही एक अन्य योगी ने भी इसी प्रकार का गर्व भरा वचन बोला कि हमने कौनसी यौगिक क्रिया नहीं की है अर्थात् योग क्रियाओं के पूर्ण ज्ञाता है अब हमें अन्य किसी से भी पूछने की आवश्यकता नहीं है। तब गुरुदेव ने उनको लक्ष्य करके सबद सुनाया-

सबद-83

ओ३म् जो नर घोड़े चढ़े पाघ न बांधै, ताकि करणी कौन विचारूं।

भावार्थ-जो मनुष्य अपने को श्रेष्ठ कहलाने के लिये घोड़े पर सवारी करके समाज के बीच में तो जाता है किन्तु श्रेष्ठता की प्रतीक पगड़ी सिर पर नहीं बांधता तो उसकी इस करणी से कौन उसे श्रेष्ठ पुरुष स्वीकार करेगा। घोड़े पर तो सवारी करना किन्तु नंगे सिर जाना अच्छा नहीं माना जाता है। इसलिये यदि कोई ऐसा करता है तो उसकी नादानी ही होगी, बहुत बड़ी भूल होगी।

दूसरा अर्थ-जो व्यक्ति घोड़े पर तो सवारी करना चाहता है किन्तु चढ़ने के साधन रूप नकाब पागड़ा को नहीं बांधता तो निश्चित ही सवार नहीं हो सकता, नीचे भी गिर पड़ता है। ऐसे पुरुष की करणी पर क्या विचार किया जावे। यह तो महान मूर्खता ही होगी। जान करके भूल करेगा तो गिरेगा अवश्य ही। वह व्यक्ति किसी की सीख भी स्वीकार नहीं कर सकता। ऐसे व्यक्ति का जीवन कार्यकलाप तो चिन्तनीय ही है।

तीसरा अर्थ-जो साधक व्यक्ति मन रूपी घोड़े पर सवार तो होना चाहता है किन्तु अभ्यास वैराग्य रूपी दोनों रकाबों को नहीं अपनाता तो फिर सवारी करने की बात करना ही व्यर्थ है। ऐसे व्यक्ति की करणी भी शोचनीय है। ''अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः'' पातंजल योग दर्शन तथा ''अभ्यासेन तु वैराग्येण'' गीता वचन से यह सिद्ध होता है कि अभ्यास तथा वैराग्य रूपी दो पागड़ों से ही मन रूपी घोड़े पर सवारी की जा सकती है। इस घोड़े पर सवारी करना साधक के लिये परमावश्यक है। क्योंकि अब तक तो यह मन ही घोड़े की तरह चंचल है आपकी पकड़ में नहीं आ सका है। इसी मन ने ही आपके उपर चढ़कर सदा ही आपको घोड़ा बनाकर नचाया है। ''वृत्ति सारूप्यमितरात्र'' पातंजल के वचनों से तो यही मालूम पड़ता है कि आप सभी लोग मन की वृत्ति के स्वरूप ही हो जाते हैं। वो जैसा नचाये वैसा ही नाचते आये हैं। अब हमें उल्टा घूमकर मन को अपनी इच्छानुसार चलाना है। यह भी हो सकता है जब आप सब मन रूपी घोड़े पर सवारी कर ले। यही योग का सत्य मार्ग है। यदि कोई साधक इस मार्ग को नहीं अपनाता है तो उसकी करणी विचारणीय है।

शुचियारा होयसी आय मिलसी, करड़ा दो जग खारूं।

जो व्यक्ति इस मन रूपी घोड़े पर सवार होना चाहेगा वह तो परम पवित्रता, नम्रता, सहनशीलता को धारण करके सतगुरु के पास जाकर मिलेगा तो उसे पाघ बांधने के रहस्य को सतगुरु बतलायेगा तो वह जीवन को सफल बना लेगा तथा जो करड़ा उद्ण्ड कठोर अनम्रशील होगा वह कभी भी सतगुरु के पास नहीं जायेगा तो उसे पागड़ा बांधने का रहस्य रूप अभ्यास और वैराग्य को कौन बतलायेगा। बिना अभ्यास वैराग्य के तो निश्चित ही मन रूपी घोड़े पर सवार नहीं हो सकेगा। सदा ही नीचे गिरने का भय बना रहेगा। वह कभी भी पार नहीं उतर सकता दौरे भयंकर नरक में गिरेगा।

जीव तड़ै को रिजक न मेटूं, मूवा परहथ सारूं।

गुरु जम्भेश्वर जी कहते हैं कि मैं किसी के जीवन में दखल देना नहीं चाहता। वह जैसा भी अच्छा या बुरा है, उसे जीने की पूरी स्वतंत्रता है अपने कर्मो के अनुसार अच्छे या बुरे फल भोगता है किन्तु मृत्यु के बाद वह स्वतंत्र नहीं रहता। उसको दूसरों के हाथ में जाना पड़ेगा। वही उसका लेखा जोखा करेगा तथा आगे के जीवन के सम्बन्ध में विचार करेगा, उसे यथा स्थान भेजेगा।

हाथ न धोवै पग न पखालै, नहीं सुधी बुधि गिंवारूं।
म्हे पहराजा सूं कौल ज लियो, नार सिंघ नर काजूं।

वैसे तो हमारा प्रण यही है कि हम किसी के जीवन में दखल देना नहीं चाहते किन्तु हमने नृसिंह रूप धारण करके प्रह्लाद को वचन दिया था। उस प्रिय भक्त से हमने प्रतिज्ञा की थी कि तुम्हारे बिछुड़े हुऐ जीवों को मैं अवश्य ही तुम्हें समय-समय पर लाकर मिलाऊंगा। अब इस मरुधरा में वे ही प्रह्लाद पंथी जीव थे उनके लिये मुझे आना पड़ा तथा यहाँ पर आकर इनके जीवन में दखल देनी पड़ी क्योंकि ये लोग न तो स्नान करना, हाथ धोना, पांव धोना आदि बाह्य पवित्रता ही जानते थे तथा इनका भोजन भी जैसे नाहर, भेड़िया तथा सिंह की तरह ही है। इनका सुधार करना तथा प्रह्लाद से मिलान मेरा कर्तव्य है। इसलिये मैं यहाँ पर प्रयत्नशील हूँ।

जुग अनन्त अनन्त बरत्या, म्हे सुनि मण्डल का राजूं।

वैसे तो मेरा असली रूप यह भगवां वस्त्र धारी नहीं है हमें यह रूप तो किसी कारण वश धारण करना पड़ा है। मेरा असली रूप तो नित्य सनातन निराकार ही है। जो अनन्त युग बीत जाने पर भी तथा प्रलय अवस्था में भी हम सब के स्वामी है तथा प्रलय अवस्था में भी जब सर्वशून्य हो जाता है तब भी हम शून्य मण्डल के राजा होते है।

★★★★

दोहा

जोगी ने तब यूं कह्यो, म्हारै डोफ डाफ कछु नांहि।
मूंछ दाढ़ी राखा नहीं, मूंड मूंडाया सतगुरु पाहि।

उन जन समूह में से एक योगी ने कहा कि हे सतगुरु! हमारे यहाँ पर किसी प्रकार का दिखावा या पाखण्ड नहीं है। मैंने तो सतगुरु की शरण ग्रहण की है। उनसे दीक्षा लेकर साधु बना हूँ तथा दाढ़ी मूंछ मैंने मुंडवा ली है। इसलिये मैं तो जटाधारी नहीं हूँ आप मुझे दोष नहीं दे सकते। मैं सच्चा योगी हूँ। तब श्री देवजी ने यह वार्ता सुनकर सबद सुनाया-

सबद-84

ओ३म् मूंड मुंडायो मन न मुंडायो, मूंहि अबखल दिल लोभी।
अन्दर दया नहीं सुरकाने, निंदरा हड़ै कसोभी।

भावार्थ-तुमने इस शरीर के अंग सिर तथा मुंह को तो मुंडा लिया इनके उपर उलझे हुऐ जटाजाल को तो उतार दिया। सिर तथा मुँह को तो जाल से मुक्त कर लिया किन्तु चंचल मन को तो नहीं मुंडाया। इस तीव्र गतिमान

मन को तो स्थिर नहीं किया तो फिर केवल सिर मुंडाने से कार्य नहीं चलेगा और इस मुंह को मुंडा लेने के बाद भी इससे झूठ, कपट, गाली गलौच भरे वचन क्यों बोलता है तथा सिर मुंडा लेने के बाद तेरे को निरहंकारी होकर निर्लोभी होना चाहिये था। ऐसा नहीं हो सका तो फिर यह मुंडाना व्यर्थ ही है तुम्हारे दिल में जीवों पर दया होनी चाहिये थी किन्तु उसका भी सर्वथा ही अभाव है और इन कानों से वेदवाणी, वेद, शास्त्र आदि का श्रवण करना चाहिये था। वह भी नहीं हो रहा है। जिह्वा से परमात्मा के नाम का जप तथा भगवद् कथा का प्रवचन करना चाहिये था वह तो तूने किया नहीं। परन्तु दूसरों की निंदा करके उनके पापों को उनकी अपकीर्ति को धोया है। अपने उपर तो मेल चढ़ाया है दूसरों का पाप साफ किया है ''परनिंदा पापा सिरै भूल उठावै भार''।

गुरु गति छूटी टोट पड़ैला, उनकी आवा पख सातों।
वैं करणी हूंता खूंधा, असी सहस नव लाख भवैला कुंभी दौरे ऊंधा।

गुरु के बताये हुए मार्ग को यदि छोड़ दिया तो बहुत बड़ा टोटा-घाटा पड़ेगा। जिसकी पूर्ति जन्म जन्मान्तरों में भी नहीं हो सकेगी। वह व्यक्ति इस जीवन में दुखी रहेगा ही, जन्मान्तर में भी छोटी-छोटी चौरासी लाख योनियों में भटकेगा। उनकी आयु अधिक से अधिक तो एक पखवाड़ा ही होगी या सात दिनों की ही होगी। इतना जल्दी जन्मना तथा मरना ही पड़ेगा। हे प्राणी! अपनी करणी से ही छोटी-मोटी जीया जूणी में भर दिये जायेंगे। कई कई इतने छोटे कीट पतंगे होंगे जो थोड़ी सी जगह में अत्यधिक खूम-खूम करके भर दिये जायेंगे।वहां पर कष्टों की कोई सीमा नहीं होगी। इस प्रकार से नव लाख असी हजार इन छोटी से छोटी योनियों में भटकना होगा तथा कठिन से कठिन कुम्भी पाक नरक में उल्टा लटका दिया जायेगा।

★★★★

दोहा

जोगी जाट प्रसन भया, दुभद्या गई नशाय।
कहै सकल जन स्याम सै, तुम दीन्हों भेद बताय।
शब्द श्री मुख सुनन की, बहुत लगी मन मांही।
असों भेद बताइयै, सांसो न रहै मन मांहि।

उपर्युक्त सबद को सुनकर के योगी तथा जाट किसान लोक अति प्रसन्न हुए उनके अन्दर की दुविधा संशय की वृत्ति निवृत्त हो गयी। फिर कहने लगे कि हे प्रभुजी! आपने हमें गृहस्थ तथा सन्यास का भेद इस सबद द्वारा बता दिया है। अब और भी सबद श्रवण करने की लालसा हमारे सभी के मन में है। यहाँ जो जितने लोग विराजमान है उनको उतने ही संशय है। इसलिये ऐसा सबद सुनाइये जिससे संशय निवृत्त हो जाये। हमें अलग से बार बार पूछना न पड़े। इस वार्ता को श्रवण करके जम्भदेवजी ने एक सबद सुनाया, जिससे सभी की समस्या का समाधान हो जाये। इसलिये यह सबद विविध विषयों को बतलाता है।

सबद-85

ओ३म् भोम भली कृषाण भी भला, खेवट करो कमाई।
गुरु प्रसाद काया गढ़ खोजो, दिल भीतर चोर न जाई।

भावार्थ–यह शरीर रूपी भूमि अच्छी हो यानि खेती की तरह ही शरीर की भी सर्वप्रथम बाह्य शुद्धि हो तथा खेती का मालिक किसान रूपी जीवात्मा भी शुद्ध सात्विक हो फिर फल की प्राप्ति के लिये उस खेती रूपी शरीर में परिश्रम से साधना की जाय तथा खेती में विघ्न डालने वाले, अंकुरित खेती को खाने वाले हिरणी–हिरणा, मयूर, चूहे आदि से रक्षा भी सावधानी से की जाय। साधना में विघ्न डालने वाले काम, क्रोध, लोभ, मोह से सावधान रहा जाय क्योंकि ये चोर है चोरी से आकर खेती चुराते है साधना नष्ट कर देते है। इन्हीं सभी सावधानियों के साथ ही साथ गुरु की कृपा से निरंतर तत्वों का अन्वेषण भी होता रहे, खेती के लिये भी नित्य निरंतर नये–नये बीज, खेती के उत्तम साधन खोजते रहो तो निश्चित ही वह खेती व साधना फलदायक ही होगी तथा नित्य नये फल प्राप्त करवाती रहेगी। यही बात श्री कृष्ण ने गीता में कही है।

''इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते। एतद् यो वेति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः।

थलिये आय सतगुरु प्रकास्यो, जोलै पड़ी लोकाई।
एक खिण मांहि तीन भवन म्हें पोखां, जीवां जूण सवाई।

इस सम्भराथल पर आकर सतगुरु ने ज्ञान का प्रकाश किया है। इसी प्रकार से अन्दर छुपी हुई वस्तु जो तत्त्व रूप आत्मा है उसकी खोज कर ले। इस समय तुझे यह सुअवसर प्राप्त हो चुका है स्वर्ग, पाताल तथा मृत्यु लोक इन तीन भवनों में रहने वाले छोटे तथा बड़े शरीर वालों का हम पालन–पोषण हर क्षण करते है अर्थात् चेतन सत्ता के रूप से सर्वत्र समाहित होकर उन उन शरीरों को चैतन्य शक्ति प्रदान करके उन्हें सजीव बनाकर, उन उन शरीरों का पालन–पोषण हम ही करते है।

करण समों दातार न हुवो, जिन कंचन बाहू उठाई।
सोई कवीसा कवल नवेड़ी, जिण सुरह सुबछ दुहाई।

कुंन्ती पुत्र कर्ण के समान कोई दानी नहीं हुआ जिन्होंने दान देने के लिये सदा सोना हाथ में लेकर ऊपर उठाया। कर्ण का हाथ कभी खाली नहीं उठता था यानि वचन भी कभी खाली नहीं जाता था। एक बार कह दिया कि दूँगा तो फिर पीछे नहीं हटता था। इन्द्र के मांगने पर कवच और कुंण्डल दे दिये थे। माता कुन्ती के मांगने पर अर्जुन को छोड़कर चारों को अभय दान दे दिया था। युद्ध भूमि में घायल अवस्था में श्री कृष्ण के मांगने पर दांत तोड़कर दे दिये। जो भी जिससे वायदा करता था उसको पूर्ण रूपेण निभाता था। घर आये याचक को खाली नहीं जाने देता था। अकस्मात् घर पर आये हुऐ ग्वाला से ऋषि को जिन्होंने अच्छे बच्छे वाली दुधारू गऊ भी दी थी जो कामधेनु के सदृश थी। अपने पास ऐसी अन्य गाय न होते हुऐ भी दान देने की प्रवृत्ति ने कर्ण से वह उत्तम गऊ दिलवा दी थी।

मेर समों कोई केर न देख्यों, सायर जिसी तलाई।
लंक सरीखो कोट न देख्यो, समंद सरीखी खाई।

सुमेरू पर्वत के समान महान पर्वत नहीं देखा। सागर के जैसा बड़ा कोई तालाब नहीं देखा। अर्थात् ऊंचाई तो सुमेरू पर्वत की सबसे अधिक है तथा जल राशि तो सागर में अत्यधिक है लंका जैसा कोई कोट किला नहीं देखा जिसके चारों और समुद्र ही खाई है। ऐसा सुरक्षित किला देखने को नहीं मिल सकेगा। जिसके चारो और प्राकृतिक समुद्र ही खाई यानि सुरक्षा का कार्य करती है।

दशरथ सो कोई पिता न देख्यो, देवल देसी माई।

सीत सरीखी तिरिया न देखी, गरब न करीयों काई।

अयोध्या नरेश राम के पिता दशरथ जैसा कोई पिता अब तक नहीं हुआ, जिन्होंने अपने वचन निभाने के लिये अपने प्राणों से भी प्रिय पुत्र को वनवास भेज दिया तथा देवकी जैसी माता नहीं देखी जिन्होंने कंश की जेल में रहकर कृष्ण जैसे पुत्र को जन्म दिया। स्वयं अपने कष्टों को सहन किया किन्तु देश को अत्याचार से मुक्त कृष्ण को अवतरित करके करवाया। सीता के समान और कोई स्त्री नहीं देखी गई जिन्होंने सदा ही विष-दुख की घूंट पीकर समाज देश हित के लिये अमृत प्रदान किया। सीता एक राज पुत्री तथा राज वधू होते हुऐ भी गर्व नहीं किया। सदा ही परिस्थितियों से झूझती रही। कभी भी सीता ने अपने जीवन में सुख नहीं देखा सदा कष्टमय जीवन को झेलते हुऐ भी धर्म मर्यादा पर अडिग रहकर अपने पति का साथ दिया।

हनुमत सो कोई पायक न देख्यो, भीम जैसी सबलाई।
रावण सो कोई राव न देख्यो, जिण चोहचक आण फिराई।

अंजनी पुत्र हनुमान के समान और कोई सेवक नहीं हुआ है। जैसी सेवा निःस्वार्थ भाव से हनुमान ने की है वैसी कौन कर सकता है। स्वामी की प्रत्येक भावनाओं को समझकर बिना कुछ कहे ही उस कार्य को कर देना यह हनुमान जैसा सेवक ही कर सकता था तथा युधिष्ठिर अनुज भीम के समान और कोई बलशाली अब तक संसार में पैदा नहीं हुआ है। जिन्होंने शत्रुदल को मसल डाला था।

लंकाधिपति रावण जैसा कोई भी राजा अब तक नहीं हुआ। जिन्होंने चारों दिशाओं में अपनी विजय पताका लहरा दी थी। सभी राजाओं सहित देवताओं को भी अपने वश में कर लिया था। सभी लोग रावण का आदेश मानते थे।

एक तिरिया के राहा बेधी, लंका फेर बसाई।
संखा मोहरा सेतम सेतूं, ताक्यूं विलगै काई।

वही राज शिरोमणि रावण भी सर्व गुण सम्पन्न होते हुए भी एक तिरिया सीता के मार्ग में आकर उसके मार्ग को रोका अर्थात् एक सती स्त्री की साधना में आकर बाधा डाली उसका हरण किया जिस कारण से लंका का उसी रावण ने उजड़ते हुए अपनी ही आंखों से देखा। रावण कुम्भकरण आदि सम्पूर्ण राक्षस समूह मारा गया, विभीषण ने लंका फिर से बसाई। जिस लंका के महलों में जहाँ रावण निवास करता था वहाँ पर शंख, मोहरे जड़े हुए थे तथा अन्य हीरे मोतियों से जगमगाते हुऐ धवल महल ये सभी रावण के क्यों छूट गये? रावण ने ऐश्वर्य को प्राप्त करके अन्याय की अति कर दी थी जिससे उन महलों से विलग होना पड़ा। यही संसार के लोगों की दशा होगी। उपर बताये हुए इन श्रेष्ठ पुरुषों की भी स्थिरता नहीं रह सकी तो फिर सामान्य जनों की हालत तो विचारणीय ही है।

ब्राह्मण था ते वेदे भूला, काजी कलम गुमाई।
जोग बिहूणा जोगी भूला, मुंडिया अकल न काई।

समाज, देश तथा धर्म के रक्षक ही जब भक्षक बन जाते है तो फिर सामान्य समाज की वही दशा होती है, इस समय सामान्य जन समाज तो धर्म-कर्म ही भूल चुका है क्योंकि हिन्दुओं के धर्म गुरु ब्राह्मण वेद को भूल गये हैं तथा मुसलमानों के धर्म गुरु काजियों ने कलमा को भुला दिया है तथा योगियों-यतियों ने भी असली योग को तो छोड़ दिया है और पाखण्ड करने लगे है और इन मुंडियों में तो अकल ही नहीं है ये तो केवल मूंड-मूंडाने

को ही साधु-सन्यासी कहते हैं यही विकट दशा इस समय समाज के अग्रगण्य लोगों की है।

इहिं कलयुग में दोय जन भूला, एक पिता एक माई।
बाप जाणै मेरे हलियो टोरै, कोहर सींचण जाई।
माय जाणै मेरे बहुटल आवै, बाजै बिरध बधाई।

इस महान कलयुग में सभी लोग कर्तव्य कर्मो को भूल चुके है सर्व प्रथम शिक्षा दाता गुरु माता-पिता ही होते है वहीं से शिक्षा प्रारम्भ नहीं होगी तो आगे शिक्षा कहाँ से मिलेगी। स्वयं माता-पिता भी भूल चुके हैं कि अपने बच्चों को हमें अच्छी शिक्षा देनी है। वह तो उनके पास है नहीं किन्तु पिता तो यही सोचते है कि मेरा बेटा बड़ा होगा हल चलायेगा, खेत में हाथ बंटायेगा तथा कूवे से पानी की सिंचाई करेगा तथा माता यह सोचती है कि मेरा बेटा बड़ा होगा बहू आयेगी मेरी घर के कार्यो में सहायता करेगी तथा शुभ विवाह के अवसर पर बधाइयाँ बंटेगी। गीत गाये जायेंगे यही स्वार्थ की दुनिया है। उस बालक के जीवन की भलाई के लिये, विद्या प्राप्ति के लिये माता-पिता प्रयत्नशील दिखाई नहीं दे रहे हैं।

म्हे शिम्भू का फरमाया आया, बैठा तखत रचाई।
दो भुज डंडे परबत तोला, फेरा आपण राई।

गुरु जम्भेश्वर जी कहते हैं कि मैं तो स्वयंभू हूँ सतयुग में नृसिंह अवतार धारण करके प्रह्लाद को वचन दिया था उसी वचन को निभाने के लिये यहाँ पर सम्भराथल पर तखत यानि आसन लगाया है। इसी आसन पर बैठकर प्रह्लाद पंथ के बिछुड़े हुए जीवों को वापिस ले जाऊँगा क्योंकि वे अपने भक्त प्रह्लाद के अनुयायी जीव होने से अपने ही है। यदि मैं चाहूँ तो इन मेरी दो भुजाओं से पर्वत को भी तोल सकता हूँ अर्थात् यदि मैं चाहूँ तो सम्पूर्ण संसार के प्राणियों को पार उतार सकता हूँ। इन्हें तोल कर तो मैं नित्य प्रति देखता हूँ कि किसमें कितने अवगुण भरे हुऐ हैं तथा कितने गुण भरे हुऐ हैं।

एक पलक में सर्व संतोषा, जीया जूण सवाई।
जुगां जुगां को जोगी आयो, बैठो आसन धारी।

सभी जीव योनियों में चैतन्य सता रूप से समाहित होकर पल-पल में मैं उनका पालन- पोषण करके संतुष्ट करता हूँ। मैं आज-कल का नया बना हुआ योगी नहीं हूँ। किन्तु मैं तो युगों युगों का योगी हूँ और हेत वश यहाँ पर आया हूँ, यहाँ आकर आसन लगाकर बैठा हूँ। यहाँ पर मेरे पास में कैसे-कैसे लोग विचित्र प्रश्न लेकर आते हैं जैसे-

हाली पूछै पाली पूछै, यह कलि पूछण हारी।
थली फिरंतो खिलेरी पूछै, मेरी गुमाई छाली।

हल चलाने वाला हाली आकर पूछता है तथा गऊवें चराने वाला पाली आकर भी पूछता है परन्तु ये लोग कोई अच्छी ज्ञान की बात नहीं पूछकर सांसारिक बातें ही पूछते है। इस कलयुग में इन सांसारिक बातों का ही बोल बाला है ये लोग बस इतना ही प्रयोजन मान करके पास में आ जाते है इन्हें इससे ज्यादा कुछ भी प्रयोजन नहीं है। थलों पर भ्रमण करने वाला खिलेरी आकर पूछता है कि मेरी बकरियां खो गई है आप बता दीजिये।

बांण चहोड़ पारधियों पूछै, किहिं अवगुण चूकै चोट हमारी।

रहो रे मूर्खा मुग्ध गंवारा, करो मजूरी पेट भराई।
है है जायो जीव न घाई।

यहाँ शिकारी लोग वन्य जीवों का शिकार खेलते हैं वे लोग भी जब उनका निशाना चूक जाता है तो मेरे पास आकर पूछते हैं कि हे स्वामी! किस कारण से हमारा निशाना चूक जाता है तब मुझे इन लोगों को भी डराना धमकाना पड़ता है उन्हें साम, दाम, दण्ड, भेद से जीवों पर दया करनी सिखलाना पड़ता है तथा इस प्रकार से मुझे मजबूर होकर कहना पड़ रहा है कि रे मूर्खो! तुम लोग मूर्खता के कारण मुग्ध हो चुके हो, जीवों पर दया करनी छोड़ दी है अपने पेट की भराई के लिये बेचारे इन जीवों की हत्या न किया करो। अपने पेट की भराई तो मजदूरी करके अन्न से भरा करो। फिर कभी जन्में हुए जीवों को नहीं मारना। तुम किसी को जीवन नहीं दे सकते तो तुम्हें मारने का भी क्या अधिकार है इस प्रकार ग्लानि दिखा कर उनको जीव हत्या से निवृत्त करना होता है।

मैड़ी बैठो राजेन्द्र पूछै, स्वामी जी कति एक आयु हमारी।
चाकर पूछे ठाकर पूछै और पूछै कीर कहारी।

गढ़ में बैठने वाला राजा यहाँ आकर पूछता है कि हे स्वामी! मेरी आयु कितनी है अब मैं कितने वर्षो तक राज्य करूँगा तथा नौकर, चाकर, ठाकुर पूछते हैं और भार उठाने वाले कीर-कहार भी आकर अपनी समस्या के बारे में पूछते हैं। मैं उनको भलिभांति संतुष्ट करके भेजता हूँ।

सोक दुहागण तेपण पूछै, ले ले हाथ सुपारी।
बांझ तिरिया बहुतेरी पूछै, किसी प्राप्ति म्हारी।

दुहागिन-विधवा स्त्रियां हाथ में सुपारी लेकर आती है और अपने दु:ख के निवृत्ति का उपाय पूछती है तथा बहुत सी बांझ-पुत्र हीन स्त्रियां यहाँ आती है और पुत्र प्राप्ति का उपाय पूछती है। इस लोक में तो सभी स्वार्थी लोग ही आते हैं और धन सम्पति, पुत्र, यश, कीर्ति, आयु आदि की ही मांग करते हैं कोई भी तत्त्व प्राप्ति का उपाय नहीं पूछते, इस संसार को ही सभी कुछ मानकर रखा है। इसके अतिरिक्त भी जीवन होता है यह इन लोगों को पता नहीं है।

त्रेता युग में हीरा विणज्या, द्वापर गऊ चराई।
वृन्दावन में बंसी बजाई, कलयुग चारी छाली।

मैंने त्रेता युग में राम रूप धारण करके तो हीरों का ही व्यापार किया अर्थात् वे भले ही राक्षस लोग थे किन्तु हीरे जैसे ही कीमती आदमी थे। उनके साथ युद्ध किया तथा कुछ लोगों के साथ प्रेम-मित्रता भाईचारे का व्यवहार किया वे सभी उत्तम लोग थे। युद्ध के मैदान में तो युद्ध करना जानते थे तथा पूर्णतया निभाते भी थे। इसलिये वहाँ तो हीरों का ही व्यापार था तथा द्वापर में कृष्ण रूप धारण करके गऊवें चराई, वृन्दावन में बंसी बजाई। वहाँ पर उसी समय ही एक तरफ तो बकासुर, अघासुर आदि भयंकर राक्षसों को मारा दूसरी तरफ बंसी बजाकर गोप ग्वालों को मोहित करके प्रसन्नचित किया। यह थी मेरी त्रेता, द्वापर युग की उपलब्धि किन्तु अब कलयुग में तो मुझे अपने यहाँ पर बकरियाँ भी चरानी पड़ी है। कहाँ तो हीरे, गऊवों, ग्वाल बालों का साथ रमण तथा कहाँ इस समय बकरियों का चराना।

यहाँ तो मुझे प्रयोजन सिद्धि के लिये बकरियाँ भी चरानी पड़ती है अर्थात् यह कलयुग बकरियों का ही युग है। इस युग में लोग बकरियाँ ही ज्यादा पालते है। गऊवों का आदर घट गया है। मैं फिर से द्वापर युग

अर्थात् गऊवों का युग लाना चाहता हूँ। परन्तु इन लोगों की बुद्धि का स्तर बहुत ही गिर चुका है। यहाँ के लोग तो बकरियों जैसे ही हो चुके है। इसलिये जाम्भोजी ने बिश्नोइयों को भेड़ बकरी पालना मना किया है।

नव खेड़ी म्हे आगे खेड़ी दशवें कालंके की बारी।
उतम देश पसारो मांडयो, रमण बैठो जुवारी।
एक खण्ड बैठा नव खण्ड जीता, को ऐसो लहो जुवारी।

आज से पूर्व नौ खेतों में तो मैं खेती कर चुका हूँ और अब आगे दसवें खेत की बारी है। वह कलयुग का महत्त्वपूर्ण खेत होगा तथा उसमें खेती करने वाला किसान स्वयं कल्कि ही होगा अर्थात् इससे पूर्व मैंने नव अवतार जैसे- मच्छ, कच्छ, वराह, नृसिंह, बावन, परशुराम, राम-लक्ष्मण, कृष्ण तथा बुद्ध धारण किये थे तथा अपने-अपने क्षेत्र में धर्म स्थापना रूपी खेती की थी। उस खेती को उजाड़ने वाले दैत्यों का विनाश किया था। अब आगे भविष्य में भी दसवें कल्कि अवतार की बारी है। इन्हीं नव अवतारों के उपरांत कल्कि अवतार होना चाहिये था किन्तु अति आवश्यक कार्य हेतु मुझे विष्णु स्वरूप स्वयं को ही आना पड़ा। मैंने भी इस उत्तम देश सम्भराथल पर पसारा किया है। अपना कार्य क्षेत्र बनाया है। मैं अपना कार्य प्रारम्भ कर चुका हूँ।

मैंने यह एक तरह का जूवा रच रखा है। लोगों को लोभ देकर इसमें फंसाना चाहता हूँ। मैं इस खेल में किसी को विजय दिला देता हूँ तथा कुछ लोग अभी भी फंसने के लिये तैयार नहीं है। मैं यहाँ एक खण्ड सम्भराथल पर बैठा हुआ हूँ किन्तु जूवे में पाशों को बहुत दूर दूर तक नव खण्डों में फेंक रहा हूँ। यहाँ से नहीं तो वे दूर दूर से वे लोग अवश्य ही आयेंगे तथा इस जूवे रूपी धर्मजाल में फंस जायेंगे। आखिर में तो जीत मेरी ही होगी। मैं तो ऐसा जुवारी हूँ। यह धर्म वृद्धि हेतु जूवा रच रखा है। यदि कोई लेना चाहे तो ले सकता है।

★★★★

प्रसंग-42 दोहा

साथरियां पूछै महाराज सूं, सतगुरु बोड़े भेद।
ज्ञान चक्षु परगट जहां, ज्यों छूटै भव खेद।

सम्भराथल पर विराजमान गुरु जम्भेश्वर जी से साथरियों ने पूछा कि हे देव! आप अपनी दिव्य वाणी द्वारा हमारा भेदभाव मिटा दीजिये तथा ज्ञान चक्षु खोल दीजिये क्योंकि हमारे बाह्य नेत्र तो सदा ही संसार की वस्तुओं को ही देखते हैं। इससे तो भेदभाव अधिक ही पैदा होता है। अन्धकार को मिटाने के लिये प्रकाश की आवश्यकता पड़ती है। वह हमें आपसे मिल सकता है तब अचेत अवस्था से सचेत करने वाला यह सबद सुनाया-

सबद-86

ओ३म् जुग जागो जुग जाग पिराणी, कांय जागंता सोवो।

भावार्थ-यहाँ पर गुरु जम्भेश्वर जी इस युग के लोगों को सम्बोधन करते हुऐ कहते हैं कि हे इस कलयुग के लोगों! जागो! अर्थात् आप लोग सभी अचेत अवस्था में ही पड़े रहकर जीवन व्यतीत न करो। सचेत होकर के इस जीवन की भलाई के लिये कुछ कर्त्तव्य कर्म करो। हे प्राणी! तूँ भी जाग और सचेत हो।

आप लोग जागते हुऐ भी क्यों सोते हो। वैसे सामान्य रूप से तो सभी जागृत होते ही हैं। कुछ न कुछ कार्य भी करते ही हैं। किन्तु जब तक सचेत होकर जीवन में प्राप्त करने योग्य वस्तु परमात्मा की प्राप्ति नहीं करेगा। तब तक वह जागृत्त हो जाने पर भी सोये हुऐ के समान ही है कहा भी है ''उतिष्ठत जागृत प्राप्य वरान्निबोधत'' वेद वचन ''जागो रे मोमणो ना सोवो, न करो नींद पियार'' ''साखी'' सभी शास्त्र वेद महापुरूष जागृत होने का ही संकेत देते है तथा यह कार्य हम लोग कर भी सकते हैं।

भल के बीर बिगोवो होयसी, दुसमन कांय लकोवो।
ले कूंची दरबान बुलावो, दिल ताला दिल खोवो।

हे प्राणी! तूं तो गहरी निंद्रा में सोता रहा और तेरे अन्दर आकर अनेक दुश्मनों ने डेरा जमा लिया है। ये काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, मात्सर्य इत्यादि सदा से ही तेरे शत्रु है इन्हीं को तो तुमने सदा आश्रय दिया। किसी तुम्हारे भाई, बन्धु सज्जन वीर ने तुमको कभी सचेत करने की भी कोशिश की तो तूं सचेत नहीं हुआ, इनको छोड़ने की कोशिश नहीं की परन्तु इन्हें छुपाने का ही प्रयत्न करता रहा। इनके रहते हुए भलाई कहाँ हो सकती है। तुम्हारे भाई प्रियजन भी तुम्हारा साथ छोड़ गये क्योंकि सज्जन प्रिय जनो तथा इन दुश्मनों का क्या प्रयोजन।

इन काम क्रोधादि शत्रुओं को हृदय रूपी गुफा में छिपाकर आगे अज्ञानता, अचेतनता रूपी ताला लगा रखा है इस प्रकार से तो कभी नहीं निकल सकते तथा इनके रहते हुऐ ''कुशल किसी रे भाई'' यदि कुशलता चाहते है तो सद्बुद्धि रूपी दरबान-पहरेदार को ज्ञान सचेतनता रूपी कूंची-ताली लेकर बुलाओ। वह ताला खोल सकता है। तब आप इन शत्रुओं को बाहर निकाल सकते हो। जब ये बाहर निकल जायेंगे तब उन शत्रुओं से दबे हुऐ दया, कारूण्य, प्रेम सौहार्द, संतोष, समता इत्यादि गुणों का उदय हो जायेगा। यही जागृत्त होने का अर्थ तथा जीवन की सफलता का मूल मंत्र है।

जंपो रे जिण जंप्यो जणीयर, जपसी सो जिण हारी।
लह लह दांव पड़न्ता खेलो, सुर तेतीसां सारी।

हे प्राणी! उस जन्म दाता परम पिता परमात्मा परमेश्वर का जप, स्मरण, ध्यान करो। वही सभी का स्वामी है तथा स्वामी का जप स्मरण भी वही कर सकेगा जिन्होंने बलवान चंचल मन तथा मोह माया को हर कर उन पर विजय प्राप्त कर ली है जब भी सुअवसर आये अर्थात् आपका दाव मौका आ जाये तो उस समय चूकना मत। इसीलिये यह मानव शरीर, पवित्र कुल, स्वास्थ्य शरीर रूपी दाव मिल गया है। इसे खोना नहीं। इस मानव जीवन को एक खेल समझ कर खेल लेना तथा तेतीस करोड़ देवी-देवताओं से मिलाप हो सकेगा। ऐसा ही निर्णायक खेल सफलता करवायेगा।

पवन बंधान काया गढ़ काची, नीर छलै ज्यूं पारी।
पारी बिनसै नीर ढुलैलो, ओ पिण्ड कामन कारी।

यह तुम्हारी काची काया श्वांस प्रश्वांस रूपी पवन से बंधी हुई है। इस श्वांस क्रम रूपी रस्सी के टूटते ही यह शरीर बिखर जायेगा अर्थात् पवन देवता के चले जाने पर अन्य पृथ्वी, जल तेज, आकाश भी चले जायेंगे तब यह मृत हो जायेगा। जिस प्रकार से घड़ा जल से भरा हुआ छलकता है उसी प्रकार से उस शरीर रूपी घट में भी जल ही छलकता रहा है। इस कच्चे घड़े का भी कोई विश्वास नहीं है। यह कभी भी फूट सकता है। जल

बिखर जायेगा। तब वह घड़ा किसी काम का नहीं रह जायेगा। उसी प्रकार से यह शरीर भी टूटेगा जिससे शरीरस्थ जल तत्व बिखर कर जल में समाहित हो जायेगा तथा अन्य तत्व भी अपने-अपने कारण में लीन हो जायेंगे, तब पीछे अवशिष्ट शरीर से कुछ भी प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकेगा।

काची काया दृढ़ कर सींचो, ज्यूं माली सींचै बाड़ी।
ले काया बासन्दर होमो, ज्यूं इन्धन की भारी।

जिस प्रकार से माली अपनी बाड़ी में अंकुरित छोटे-छोटे कच्चे पौधों को बड़े ही यत्न से सींचकर उनकी रक्षा करता है जिससे वे बड़े होकर फूलते-फलते है। उसी प्रकार यह शरीर भी पौधे की तरह ही कच्चा नाजुक है। इसे समय पर पानी, अन्न, हवा नहीं मिलेगी तो यह भी कुम्हला जायेगा। इस शरीर की रक्षा बड़े ही यत्न से करनी होगी क्योंकि इस शरीर से ही हम अमृत तत्व फल की प्राप्ति कर सकते है तथा दूसरों को भी अमृत फल तथा छाया प्रदान कर सकते हैं।

जिस प्रकार से ईन्धन-जलाऊ लकड़ी के गट्ठे को लेकर अग्नि में डाल देते है तो अग्नि उसको जला करके भस्म कर देती है। लकड़ी में पहले भी अग्नि थी किन्तु सूक्ष्म रूप से समायी हुई थी वही काष्ठ में स्थित अग्नि दूसरी बाह्य अग्नि के संयोग से प्रगट हो गयी। उसी प्रकार से इस शरीर के अन्दर भी परमात्मा की ज्योति रूप अग्नि विद्यमान है उसे प्रगट करने के लिये उसका साक्षात्कार करने के लिये इस शरीर को तपस्या रूपी अग्नि में डालना ही पड़ेगा तभी बाह्य अग्नि के संयोग से भीतर की ज्योति प्रज्वलित हो जायेगी। उसी अडिग ज्योति का साक्षात्कार होता रहेगा तथा उस ज्योति के अतिरिक्त जो कुछ भी अवशिष्ट होगा वह तो भस्म की तरह ही होगा। यह इस कच्ची काया से ही संभव है।

शील स्नाने संजमें चालो, पाणी देह पखाली।
गुरु के वचने निंव खिंव चालो, हाथ जपो जप माली।

उस अमृत तत्व तक पहुंचने के लिये शीलता, नम्रता, मन तथा इन्द्रियों का संयम रखना और इस स्थूल शरीर को भी जल से धोना अर्थात् नित्यप्रति स्नान करना और गुरु के वचनों पर नम्रता, क्षमाशीलता रखते हुऐ चलना। इन दैनिक क्रियाओं के अतिरिक्त हाथ में जप करने के लिये माला रखो। उससे ध्यान पूर्वक एकाग्र मन से परमात्मा का जप स्मरण करते रहो यही मुख्य उपाय है।

वस्तु पियारी खरचों क्यूं नांही, किहिं गुण राखो टाली।
खरचे लाहो राखे टोटो, बिबरस जोय निहाली।

रूपया पैसा धन दौलत विद्या प्यारी लगने वाली वस्तुओं को खर्चते, व्यय क्यों नहीं करते। इनमें ऐसा कौनसा गुण है जिस वजह से इनको बचा करके रखी जा रही है। इनको खर्चने पर ही लाभ है तथा संग्रहित करने में ही नुकसान है। यह विचार करके देखो तो निहाल हो जाओगे। यह तो कूवे के जल की भांति ज्यूं ज्यूं सिंचाई करके जल बाहर निकालोगे त्यूं त्यूं शुद्ध ताजा जल भरता जायेगा और यदि सिंचाई नहीं करोगे तो वह पड़ा हुआ सड़ जायेगा, पीने के लायक नहीं रहेगा। यही गति धन, विद्या तथा गुणों की होती है।

घर आगी इत गोवल वासो, कूड़ी आधो चारी।
सुकरत जीव सखायत होयसी, हेत फलै संसारी।

हमारा सच्चा घर तो वह था जिससे हम आये थे और इस शरीर को छोड़कर वापिस जायेंगे तथा यहाँ

वर तो गोवलवास है। जिस गोवलवास में कुछ दिन के लिये घर छोड़कर किसी कार्यवश अन्यत्र जाना पड़ता है वहाँ पर स्थायी निवास नहीं होता है और आप यह भी नहीं कह सकते कि यह घर नहीं है क्योंकि वहाँ पर निवास तो करते ही है इसलिये झूठा आधाचार है अर्थात् कुछ तो घर जैसा लगता है क्योंकि उसमें निवास करते है तथा उसे सच्चा घर इसलिये नहीं कह सकते क्योंकि वहाँ सदा नहीं रहना है। इसलिये गोवलवास है। वेदान्त की भाषा में ''मिथ्या'' है। इस मिथ्या संसार पर हमें कदापि विश्वास नहीं करना चाहिये। सदा अपने सच्चे घर में जाने के लिये प्रयत्नशील रहना चाहिये। इस गोवलवास में रहकर जीव यदि सुकर्म करेगा तो वह सुकर्म ही आगे के जीवन के लिये साथी-मित्र होगा। ''सुकरत साथ सगाई चालै'' तथा इसी प्रकार से किया हुआ हेत-प्रेम जीवों पर दया भाव ही आगे प्रतिफलित होता है। इसलिये यह गोवलवास भी अति महत्त्वपूर्ण है।

आज मूवा कल दूसर दिन है, जो कुछ सरै तो सारी।
पीछे कलियर कागा रोलो, रहसी कूक पुकारी।

आज यदि मृत्यु होती है तो फिर कल दूसरा दिन आ जायेगा और परसों तीसरा दिन होगा, उस दिन तो तेरी अन्तिम विदाई समारोह हो जायेगा। ये तीन दिन तुझे कुछ करने के लिये दिये जा रहे है। इन तीन दिनों में यदि कुछ ज्ञान, ध्यान बनता है और मोह माया छूटती है तो छोड़ देना। इन दिनों मे तथा इनके बाद में तो तेरे सम्बन्धी लोगों को कौवों की तरह रोना, पिटना, चिल्लाना ही शेष रह जायेगा। इससे तुम्हारा कार्य सिद्ध नहीं होगा और न ही तुम्हारे घर वालों की कुछ स्वार्थ की पूर्ति हो सकेगी।

इस शब्द की पंक्तियों से यह पता चलता है कि मृत्यु के बाद भी जीव तीन दिन तक यहाँ पर रहता है उसे मोह माया छोड़ने का तथा परमात्मा का स्मरण करने का यह अन्तिम मौका दिया जाता है। यह घड़ी ही नाजुक होती है। इन चन्द घड़ियों में जीव पूर्णतया समझकर सचेत हो जाता है इसलिये इन तीन दिनों में रोना-पीटना छोड़कर भजन-कीर्तन, सत्संग की वार्ता ही करनी चाहिये क्योंकि वह उस जीव के बहुत ही सहायक होती है। इसलिये यहाँ बिश्नोई समाज में तीसरे दिन ही अन्तिम विदाई रूप समारोह करके उस जीव के सामने ही न्यात-जमात, भाई-बन्धुओं को भोजन आदि खिला दिया जाता है। सभी छोटे-बड़े भोजन करके उस जीव को जलांजली प्रदान करके विदाई दी जाती है।

वह जीव भी अन्न में प्रवेश करके अपने ही जाति विशेष में जन्म लेता है। यही जाति परंपरा अनादि काल से चली आयी है। अशरीरि जीव का यह अन्तिम-मृत्यु संस्कार है। इसे युक्ति पूर्वक करना चाहिये। अपनी श्रद्धा अनुसार जीव की युक्ति करने के लिये भोजन अपने जाति भाइयों को विशेष रूप से जिनके संतान होने की संभावना हो उन्हें अवश्य ही खिलाना चाहिये। बाद में जलांजलि देकर विदाई देनी चाहिये। कभी कभी स्वस्थ उपयोगी परंपरा भी विकराल रूप धारण कर लेती है, उसमें अवश्य ही सुधार होना चाहिये।

यह कार्य अपने औकात श्रद्धा से ही होना ठीक होगा अन्यथा तो गरीब के लिये वरदान की जगह शाप बन जायेगी। इसे सावधान रहने की आवश्यकता है। यह परंपरा सर्वथा त्याज्य नहीं है। इसमें आयी हुई विकृति त्याज्य हो सकती है। जो सदा से ही विकारों को त्यागने का उपदेश संत महापुरूष देते आये है।

ताण थकै क्यूं हार्‌यो नाही, मुरखा अवसर जोला हारी।

रे मूर्ख! मृत्यु बुढ़ापा से पूर्व जब तक तेरे शरीर में ताकत थी तब तक तूं क्यों हार गया अर्थात् शक्ति होते हुऐ भी इस जीवन में कुछ भी अच्छा कार्य नहीं कर सका। इस जीवन की बाजी को हार गया। तो अब बुढ़ापे तथा मृत्यु के

अवसर पर तो शक्ति क्षीण हो जाने से इस मानव रूपी दाव को हार ही जायेगा। अब तो इस हार से बचने के लिये कोई उपाय नहीं है।

★★★★

प्रसंग-43 दोहा

लूणकरण बीकानेरीयो, ढ़ोसी ने हुवो तैयार।
खट् दर्शन में बूझियो, जीत कही तिण बार।
राव कटक सब साज के, काणवै पहुता आय।
कर्मसी मुंहतो यों कहै, वरजो मति जम्भराय।
जावै नितो गुण घणा, सतगुरु कही विचार।
रावल मालो मेल्हियो, बूझण लागो सार।
देव कहै जीतो नहीं, लड़ियो सन्मुख होय।
शब्द सुणायो देवजी, दुबध्या देवो खोय।

इस प्रसंग के पूर्व भी यही प्रसंग शब्द संख्या 64-65 में आया है वहाँ पर लूणकरण का नारनौल युद्ध में जाने का वर्णन आया है उस समय श्री देवजी ने कुंवर जेतसी को सान्त्वना देते हुऐ उपर्युक्त सबद सुनाये थे। प्राचीन हस्तलिखित साहित्य में यह सबद भी वही सबद 64-65 के पास ही है इस प्रसंग को वहीं पर देखना चाहिये यहाँ पर तो यह सबद किसी कारण वश से प्रचलित हो गया जो पाठ की दृष्टि से रखा जा रहा है। इसकी विशेष कथा पूर्ण रूपेण जाम्भा पुराण में पढ़ें। यह सबद उस समय लूणकरण के विशेष दूत मालसिंह के प्रति सुनाया था जो विशेष रूप से साधना से सम्बन्ध रखता है।

सबद-87

ओ३म् जिहिं का उमग्या समाधूं, तिहिं पन्थ के बिरला लागूं।

भावार्थ-युद्ध दो तरह से किया जाता है प्रथम तो अन्याय का विरोध करने के लिये दूसरा स्वार्थ पूर्ति के लिये किसी को कष्ट पहुँचा कर उसका धन हरण कर लेना। श्रेष्ठ युद्ध तो वही होता है जिसमें युद्ध करने की उमंग होती है। उसे आनन्द आता है उसमें तो वह निश्चित ही विजय को प्राप्त करता है। उस उत्तम मार्ग में तो कोई विरला ही सच्चा क्षत्रिय चलता है ऐसा अन्याय विरोधी युद्ध करना तो अच्छा है किन्तु तुम्हारा लूणकरण द्वारा किये जाने वाला युद्ध ऐसा उत्तम नहीं है, यह तो दूसरी श्रेणी में आता है इसलिये विजय संभव नहीं है क्योंकि-

बीजा चाकर बीरूं, रिण शंख धीरूं, कबही झूझत रायूं।
पासै भाजत भायूं।

यहाँ पर इस युद्ध भूमि में स्वार्थ होने से इनके सैनिकों को उत्साह उमंग नहीं है। वे बेचारे जबरदस्ती से ले जाये जा रहे है। ये तो नौकर है, इनको तो उकसाने पर रण भूमि में युद्ध का शंख तो धैर्य पूर्वक बजा देंगे

तथा थेड़ी देर तक लड़ेंगे भी किन्तु बाद में युद्ध मैदान छोड़कर भाग जायेंगे।

ते हतते जीयौ, ताथै नुगरा झूझ न कीयो।
ते पूज्य कलि थानूं, सेई बसै शैतानूं।

क्योंकि इन लोगों ने वीरों के सामने आकर युद्ध नहीं किया है किन्तु निरीह जीवों को मारकर उनको भोजन बनाया है इसलिये हे नुगरे लोगों! तुम लोग युद्ध नहीं कर सकते तथा इन लोगों ने कलयुग में थान-मूर्ति बनाकर भूत प्रेतों की सेवा की है। इसलिये इनके अन्दर शैतान बसता है उस शैतान की वजह से सत्य-असत्य, न्याय-अन्याय का विवेक इनको नहीं है यह तो इस शब्द का अर्थ युद्ध पक्ष में था। अब आगे अध्यात्म पक्ष में भी शब्द क्या कहता है विचार करें-

जब कोई नया साधक आत्म साक्षात्कार करने के लिये साधना प्रारम्भ करता है तो उसे कुछ भी उमंग-आनन्द नहीं मिल पाता है। किन्तु जब धीरे-धीरे साधना में परिपक्व होता है तो उसे आनन्द की लहरों से परिचय हो जाता है। किन्तु वहाँ तक तो कोई विरला ही पहुँचता है क्योंकि उस आनन्द के समुद्र की लहरों में जब साधक मग्न हो जाता है उसकी सांसारिक वासनाऐं स्वत: समाप्त हो जाती है वह क्षणिक सुख रूपी छिलरिये में कभी भी समुद्र रूपी महानन्द को छोड़कर आना नहीं चाहेगा।

यह स्थिति श्री देवजी कहते हैं कि किसी विरले ही योद्धा योगी को मिलती है और तो बेचारे घरबार छोड़कर पहले तो शंख बजा देते हैं कि हम इन्हीं मन तथा इन्द्रियों से युद्ध करेंगे। इस घोषणा के पश्चात् भी वे लोग कुछ समय तक तो युद्ध करते भी है और पीछे मैदान छोड़कर भाग जाते है वापिस मोह-माया पाखण्ड में फंस जाते हैं जीवों को मन, वचन, कर्म से मारते हैं तथा देवली थान बना कर पूजते हैं और दूसरों से पूजवाते हैं। ऐसे नुगरे लोग युद्ध नहीं कर सकते। साधना में सफल नहीं हो सकते। क्योंकि कुछ लोग तो यह साधना भी स्वार्थ पूर्ति के लिये करते हैं। उन्हें सांसारिक धन-दौलत तो भले ही मिल जाये परन्तु परमानन्द की प्राप्ति कहाँ?

★★★★

प्रसंग-44 दोहा

राव कीयो उजीवणों, जेसलमेर सुथान।
जाम्भेजी कूं लावस्या, लेस्यां कछु गुरु ज्ञान।
शब्द कहै गुरु देव ताहिं, समै देखत नऐ।
सुन होय सुध ज्ञान, देव रूप सब ही भऐ।

जैसलमेर के राजा जेतसी ने जेत समन्द बांध की प्रतिष्ठा करवाने के लिये जम्भेश्वर जी को बड़े ही प्रेम से बुलवाये थे। श्री देवजी वहाँ पर संत साथरियों सहित पहुँचे। उस यज्ञ महोत्सव में अनेक राजा लोग भी आये थे। सभी को वहाँ पर जीव हत्या व नशीली वस्तुओं से दूर रहने का आदेश दिया था। उस समय जेतसी ने शब्द ज्ञान श्रवण करने की इच्छा प्रगट की थी तथा परमात्मा की ज्योति के बारे में पूछा था। उसका उत्तर सबद द्वारा इस प्रकार से दिया था। विशेष कथा जाम्भा पुराण में पढ़ें।

सबद-88

ओ३म् गोरख लो गोपाल लो, लाल ग्वाल लो, लाल लिलंग देवो।
नव खंड पृथिवी प्रगटियो, कोई विरला जाणत म्हारी आद मूल का भेवों।

भावार्थ-उस ज्योतिर्मय परमात्मा की अनेक ज्योतियां है। जिनमें बाल निरंजन गोरख जति ''तउवा जाग जूं गोरख जाग्या'' एक तो वह गोरख रूप में पूर्ण ज्योति है उस ज्योति में अपनी ज्योति मिलाने की कोशिश करो।

दूसरी ज्योति गोपालक अर्थात् पृथ्वी के पालन-पोषण कर्ता स्वयं विष्णु रूप में है। जिनकी ज्योति का नव बार नौ अवतारों के रूप में विस्तार हुआ है। ये नवों ही पृथ्वी पर बसने वाले जीवों के रक्षार्थ आये है। इसलिये उन गोपालक रूपी विष्णु की ज्योति से अपनी ज्योति मिला सकते हैं और यदि ये दोनों ही उपर की परम ज्योतियां समझ से बाहर है तो अभी कुछ वर्ष पूर्व द्वापर के अन्त में एक परम ज्योति का उदय हुआ था। उसे लोग ग्वालों के लाल रूप से जानते हैं तथा उस ज्योति का नाम कृष्ण रखा गया था। वैसे तो कृष्ण काले को कहते हैं। ज्योति तथा काले का मेल नहीं होता फिर भी अनेक अव्यवस्थाओं में भी व्यवस्था स्थापित करने वाले बाल गोपाल सर्व प्रिय कृष्ण में अपनी ज्योति मिला सकते हैं तथा इससे भी उपर यदि निराकार में ही रूचि रखते हैं तो इस लीला रूपी सृष्टि के आदि पुरुष पर ब्रह्म परमात्मा में ही अपनी ज्योति मिला सकते हो। वे तो सभी देवों के भी परम देव है। सभी ज्योतियों के परम आश्रय है इसलिये लाल लिलंग देव है।

कुरू, हिरण्यमय, रम्यक, इला, केतु माल, भद्राश्व, किन्नर तथा भारत इन नौ खण्डों में मैं ही ज्योति रूप परमात्मा अनेक शरीर रूप रंग धारण करके पगट होता हूँ। इस रहस्य को कोई कोई विरला ही जानता है। आदि में तो परम ज्योति रूप से एक है तथा सदा सत्य सनातन है और वही जब अनेक अवतारों के रूप में प्रगट होती है तो अनेक हो जाती है।

★★★★

प्रसंग-45 दोहा

इंह बाजो पूछत भयो, प्रश्न भये गुरु देव।
साहब शब्द उच्चारियों, सकल बतायो भेव।

बीकानेर जिले में स्थित ग्राम जसरासर का चौधरी बाजोजी तरड़ अपने स्वार्थ के लिये जम्भदेवजी के पास आकर शिष्य बन गया, तब श्री देवजी नें भूमि में गड़ा हुआ धन बतला दिया। उसको लेकर बाजे ने पहिया किया जिसमें हरी खेजड़ी काटकर उसका पहिया बनाकर एक खूंटा रोपकर उसके उपर चढ़ा दिया। न्यात जमात को इच्छानुसार भोजन करवाकर के जम्भदेवजी के पास सम्भराथल पर आया और अपने किये हुऐ पुण्य के बारे में पूछा तो जम्भेश्वर जी ने कहा-कि एक हरी खेजड़ी काटी है उसका तइया हुआ है उसका पाप अब पीछे बचा है वह तुझे समय आने पर भोगना पड़ेगा, पुण्य की आशा छोड़ दे। इस प्रकार से बाजे ने धन खरचने में कोई कमी नहीं रखी। बार बार न्यात जमात को निमंत्रण देकर भोजन करवाया। उसमें बिना गुरु की आज्ञा से मन मुख किया हुआ कार्य सफल नहीं होता। अन्त में जाकर गुरु की शरण ग्रहण करने पर उनको पुण्य की

सफलता मिलती है। बाजो जाम्भोजी का शिष्य बन जाता है और उसे काला भेष देकर संत-पन्थ में सम्मिलित कर लेते है। उसी समय बाजोजी ने जम्भगुरु जी से आकाश के नक्षत्रों के बारे मे तथा सूर्य के बारे में पूछा था। उसका उत्तर सबद द्वारा दिया। विशेष कथा जाम्भा पुराण में देखें।

सबद-४9

ओ३म् उरधक चन्दा निरधक सूरूं, नवलख तारा नेड़ा न दूरूं।
नव लख चंदा नव लख सूरूं, नव लख धंधु कारूं।

भावार्थ-उरधक-चन्द्रमा नजदीक ही है तथा निरधक-सूर्यदेव चन्द्रमा से काफी दूर है। नव लख तारा न तो अति नजदीक ही है और न ही अति दूर है अर्थात् बीचो बीच मे तथा आपस में कुछ तो एक दूसरे से ऊपर है और कुछ नीचे है। ज्योतिष अनुसार ये ग्रह नक्षत्र कुछ तो अति निकट है तथा कुछ बीचो बीच और कुछ अति दूर है। पृथ्वी से नौ लाख योजन ऊपर तो चन्द्रमा स्थित है तथा उससे भी उतनी दूरी पर सूर्य स्थित है और सूर्य के उपर नौ लाख योजन तक धन्धुकार ही है वहाँ पर इन ग्रह नक्षत्रों की पहुँच नहीं है।

तांह परेरै तेपण होता, तिंहका करूं विचारूं।

उस धन्धुकार से ऊपर वह परमात्मा का परम धाम है ''यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम'' जहाँ पर पहुँचने पर फिर वापिस लौटकर नहीं आते, हे बाजा! मैं तो उस परम धाम के बारे में ही विचार करता हूँ। चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, लोक तक की ही बात करना तो नादानी होगी। मेरा लक्ष्य तो अपने प्रिय जनों को वही परम धाम तक ही पहुँचाना है।

इस शब्द का यह अर्थ तो ग्रह नक्षत्रों से सम्बन्धित है तथा दूसरा अर्थ अध्यात्म योग से भी सम्बन्ध रखता है। वह इस प्रकार से है योगी लोग चित्तवृत्ति को स्थिर करने के लिये प्राणायाम करते हैं श्वांस प्रश्वांस की स्वाभाविक गति में अवरोध पैदा करने को प्राणायाम कहते हैं। प्राणायाम करने से मन की चंचलता समाप्त हो जाती है तथा चित्तवृत्ति स्थिर होती है। दाहिनी नासिका से जब श्वांस निकलता है तो उसे सूर्य श्वांस कहते हैं तथा बांयी को चन्द्र कहते हैं। योगी जब प्राणायाम करता है तब सर्वप्रथम दाहिनी सूर्य को रोककर बांयी यानि चन्द्र से श्वांस ले जाकर पूर्ति करता है जिसे कुम्भक कहते हैं। इस कुम्भक के करते समय श्वांस की टक्कर कुण्डलिनी में लगती है किन्तु वह हल्की होती है इसलिये उसे अरधक कहा है यानि श्वांस से धक्का तो लगता है पर थोड़ा ही होता है पहले ही शक्ति समाप्त हो जाती है तथा दूसरी बार जब सूर्य से दाहिना नासिका द्वारा श्वांस अन्दर खींचकर कुम्भक किया जाता है तब वहाँ कुण्डलिनी पर जोर से टक्कर लगती है उससे वह सोयी हुई जागृत हो जाती है। उसे निरधक कहा है यानि जबरदस्त सूर्य की चोट लगती है।

तथा सामान्य दशा में हम नित्य प्रति नये-नये लाखों श्वांस प्रश्वांस लेते है तथा छोड़ते है। वे तो इन लाखों छोटे-बड़े तारों के सदृश है न तो उनसे प्रकाश ही हो सकता और न ही घोर अन्धकार ही रहता। उसी प्रकार से इन श्वांसों से न तो कुण्डलनी शक्ति जागृत हो पाती और न ही हम मृत्यु को प्राप्त होते है। ये श्वांस तो केवल हमें जीवित ही रख सकते है। यह सूर्य और चन्द्र प्राणायाम ही कुण्डलनी फाक्ति को जागृत करके इन सात चक्रों का भेदन करा के हमें आगे नये नये अनुभव करवा सकता है।

ज्यों ज्यों सूर्य चन्द्र नाड़ियों द्वारा प्राणायाम की गति बढ़ती जायेगी, त्यों त्यों ही आगे बढ़ते हुए आज्ञा

चक्र को पार करके नये ही धंधुकार या शून्य में चले जायेंगे, वहाँ का दिव्य अनुभव होगा। ''म्हे शून्य मंडल का राजूं'' उसी शून्य मण्डल को ही समाधी कहते हैं। जहाँ पर सभी प्रकार के विचारों का प्रवाह रुक जाता है। हे बाजा! मैं तो उस दिव्य लोक का विचार बताता हूँ। जहाँ पर पहुँचने के बाद साधक कृत-कृत्य हो जाता है।

★★★★

प्रसंग-46 दोहा

साणियां पेदड़ो जात को, एक थली जूं बैठो तेव।
लोग कहै तूं कौण है, साणियों कहै मैं हूं देव।
दूजा पंथ चलावही, पहलै पावै पांन।
पीछै स्नान कराय कै, चिहमै चिहमै ध्यान।
देव दुवागर मेल्हियों, जा कर लावो बुलाय।
साथरियां रोटू गया, ना चालूं इण भाय।
इह तो चेड़ो तुच्छ है, जांणत थोड़ी बात।
कलि के चेड़े आवसी, वै पलटे सकल जमात।

रोटू गांव में एक व्यक्ति पेदड़ो गोत्र का रहता था। किसी समय ऊंट आदि पशु वन में चराते समय अशौच शरीर में कोई भूत-प्रेत चिपक गया क्योंकि वन में वह अशौच अवस्था में था ऐसे व्यक्ति पर विशेष रूप से भूत-प्रेत की छाया आ जाती है। जब उसके अन्दर प्रेत ने अपना घर बना लिया तो फिर नियम धर्म सभी छोड़कर प्रेतों जैसा आचरण प्रारम्भ कर दिया। यदि कोई पास में जाकर पूछता तो उसे वह खोई हुइ वस्तु बता देता था। लोग काफी प्रभावित होने लग गये। उसे जब परिचय पूछा जाता तो वह कह देता कि मैं देव हूँ तथा जाम्भोजी का छोटा भाई हूँ। पहले भोजन पीछे स्नान करना बतलाता था और चिहंमै चिंहमै भजन करना बतलाता था। बहुत से लोग उसके अनुयायी भी होने लग गये थे।

जम्भेश्वर जी ने इस बात का पता लगाया और स्वयं रोटू पहुँचकर उसे अपने पास में बुलाया तथा लोगों को समझाया कि यह कोई सिद्ध या ज्ञानी नहीं है। केवल प्रेत की छाया इस पर आ चुकी है। इस समय यह नहीं बोल रहा है इसके अन्दर बैठा हुआ प्रेत ही बोल रहा है। जम्भदेवजी के सामने आने से प्रेत तो छोड़कर भाग गया, वह साणियां जैसे पहले था वैसा ही हो गया तब उससे सिद्धि की बात पूछी तो वह कुछ भी नहीं बता सका। गुरु जम्भेश्वर जी ने कहा कि यह तो छोटा चेड़ा है कम बात ही जानता है आगे ज्यूं ज्यूं घोर कलयुग आयेगा त्यूं त्यूं ये बड़े बलवान होते जायेंगे। इनको अधिक दिखाई देने लग जायेगा, ये सम्पूर्ण जगत को ही पलट सकते हैं। इसी प्रसंग में यह सबद सुनाया। विशेष कथा जाम्भा पुराण में पढ़ें।

सबद-90

ओ३म् चोइस चेड़ा कालिंग केड़ा, अधिक कलावंत आयसै।
वैफेर आसन मुकर होय बैसेला, नुगरा थान रचायसै।

भावार्थ-इस कलयुग में चौबीस प्रकार के भूत-प्रेतादि चेड़ा है। जो कलयुगी अपवित्र मनुष्य के

जोंक कीड़े की तरह चिपट जाते हैं। जो एक बार उनसे सम्बन्ध स्थापित करता है उसका फिर ये चेड़े खून चूसते रहते हैं। ये समाज के लिये कालिख, अभिशाप है तथा भविष्य में तो इनसे भी अधिक कला बाज लोग आयेंगे, साधारण लोगों को पाखण्ड द्वारा ठगने का प्रयास करेंगे। वे कलावंत लोग स्वयं तो नुगरे-गुरु रहित होंगे तथा पूजा करने के लिये कोई मिट्टी पत्थर आदि की मूर्ति बना करके और फिर उसकी तरफ मुख करके तथा चेतन शक्ति मानवों की तरफ पीठ करके बैठेंगे। झूठे सच्चे मन्त्र पढ़ कर लोगों को ठगने का प्रयास करेंगे।

जाणत भूला महा पापी, बहू दुनियां भोलायसै।
दिल का कूड़ा कुड़ियारा, उपंग बात चलायसै।

ये लोग जानते हुऐ भी भूल करेंगे इसलिये महापापी होंगे। जो अनजान में भूल करता है वह तो पापी और जानते हुए भूल करते हैं वह महापापी क्योंकि उनको मालूम है कि न तो इस मूर्ति में भगवान ही है और न ही यह मूर्ति भोजन करती है तथा न ही इस झूठ पाखण्ड में कुछ रखा है। फिर भी ऐसा स्वार्थ के लिये करते हैं दुनिया को विपरीत मार्ग में डाल देते हैं। दिल के अन्दर तो झूठ छिपी है किन्तु बाहर से सच्च बोलने की कोशिश करते हैं तथा बिना सिर पैर की झूठ, कपट, वासना, निंदा भरी बात बोलते हैं। जनता को धोखा देने वाले महा कपटी तथा महा पापी होंगे। इनसे सावधान रहना आवश्यक है।

गुरु गहणां जो लेवे नांही, दश बंध घर बोसायसै।
आप थापी महा पापी, दग्धी परलै जायसै।

गुरु का कहना तो ये लोग मानेगे नही और मनमुखी अपना ही धर्म चलायेंगे तथा कमाई का दसवां हिस्सा दान पुण्य के लिये खर्च करना चाहिये था। वह तो नहीं करेंगे किन्तु दूसरे से दान प्राप्त करके घर में इकट्ठा करने का प्रयत्न करेंगे। स्वयं ही मूर्ति की स्थापना करके स्वयं ही उसकी पूजा करेंगे तथा लोगों से करवायेंगे। उन्हें सच्चे धर्म से हटायेगा, ऐसा व्यक्ति महापापी है। स्वयं तो जलेगा जीवन में कभी संतोष प्राप्त नहीं करेगा सदा ही आशा तृष्णा की आग लगी रहेगी। ऐसा दग्धी जन्मा हुआ व्यक्ति परलै को अर्थात् नित्य प्रति जन्म लेने वाली, मरने वाली, जीया योनी को प्राप्त होगा, सदा ही नरक को भोगता रहेगा।

सतगुरु के बेड़े न चढ़ै, गुरु स्वामी नै भायसै।
मंत्र बेलूं ऋद्ध सिद्ध करसै, दे दे कार चलायसै।

सतगुरु के द्वारा बताये हुए धर्म के बेड़े उपर तो चढ़ेंगे नहीं यदि धर्म की नाव उपर चढ़ जाते है तो सतगुरु संसार सागर से पार कर देते तथा उन्हें सतगुरु तथा स्वामी परमात्मा अच्छे नहीं लगते तो फिर नजदीक भी कैसे आते, यदि आते तो उनकी रोजी रोटी मारी जाती। तंत्र मंत्र की शक्ति से ऋद्धि-सिद्धि दिखायेंगे किन्तु ध्यान रहे तंत्र मंत्र से कोई वास्तविक ऋद्धि सिद्धि नहीं मिला करती। तंत्र-मंत्र तो क्षणिक रोग का उपचार मात्र ही होता है तथा जल की कार रेखा खींचकर अपनी ऋद्धि-सिद्धि चलायेंगे। इनसे भी सावधान रहना चाहिये। ये सभी पाखण्ड की ही श्रेणी में आयेंगे।

काठ का घोड़ा निरजीवता, सरजीव करसै, तानै दाल चरायसै।
अधर आसन मांड बैसेला, मुवा मड़ा हंसायसै।

तथा ऐसे ऐसे कलाबाज भविष्य में आयेंगे जो लकड़ी का घोड़ा बना करके उसे जीवित करके दाल चरा देंगे तथा धरती से उपर आसन लगाकर बैठ जायेंगे और मुर्दे को भी सजीव करके हंसा सकते हैं। किन्तु इनमें भी वास्तविकता नहीं होगी, यह भी केवल दिखाने के लिये पाखण्ड मात्र ही होगा, इनसे भी सावधान रहना। इन्हें देखकर

धर्म का मार्ग नहीं छोड़ देना।

जां जां पवन आसण पाणी आसण, चंद आसण सूर आसण।
गुरु आसण सम्भराथले, कहै सतगुरु भूल मत जाइयों।
पड़ोला अभै दोजखै।

जब तक यह वायु देवता चलता है स्थिर है इसका भी पक्का आसन है जो कभी चूकता नहीं है सदा हर क्षण उपस्थित रहता है उसी प्रकार से जल देवता का आसन सदा स्थिर, कभी भी डिगने वाला नहीं है। सूर्य तथा चन्द्र भी समय समय पर निश्चित ही जगत को प्रकाशित करने के लिये उपस्थित हो जाते है ये सभी परमात्मा की सता की गवाही देते हैं तथा अपनी मर्यादा में बंधे हुए स्थिर है उसी प्रकार से गुरु जाम्भोजी कहते हैं कि मेरा भी सद्गुरु रूप से यहाँ सम्भराथल पर आसन अडिग है सदा ही स्थिर रूप से रह कर युगों युगों तक भूल में भटकते हुऐ मानव को सचेत करता रहेगा। अब भी आसन स्थिर होकर धर्म मर्यादा को बांध रहा है और भविष्य में भी स्थिर रहकर टूटी हुई पाल को पुनः जोड़ता रहेगा। इसलिये हे आगन्तुक मानवों! यह सतगुरु का वचन है भूल नहीं जाना।यदि भूल गये तो निश्चित ही भयानक दुखमय नरक में गिर जाओगे। फिर तुम्हारी रक्षा करने वाला कोई नहीं होगा।

★★★★

प्रसंग-47 अरिल-

देवजी हंकारा किया, रणधीर कही किहि भाय।
रजपूत स्त्री सहित, ऊंट चढ़े ही आय।
''दोहा''
देव शब्द ऐसे कह्यो, मत भूलो रे लोय।
छंदे मंदे बहुत करै, वहां तो सिद्धि न होय।

गुरु जम्भेश्वर जी ने उमंग से हुंकार शब्द किया तब समीप में बैठे हुऐ रणधीर जी ने पूछा कि हे गुरुदेव! आपका हुंकार शब्द निष्प्रयोजन नहीं होता है। आज किस जीव के भाग खुले हैं। तब गुरुदेव ने मण्डली सहित बैठे हुऐ रणधीर से इस प्रकार कहा-

अभी एक क्षत्रिय मदतसिंह जादूगर मेरे पास आ रहा है, यहाँ से थोड़ी दूर पर वह खेजड़ी की डालियाँ तोड़कर ऊंट को खिला रहा है। तब साथरियों ने पूछा कि हे देव! उसमें ऐसी क्या विशेषता है।

तब श्री देवजी ने कहा कि अभी कुछ ही दिन पूर्व इसने फलोदी के किले में राव हमीर के सामने एक अद्भुत जादू दिखाया था। वहाँ पर उपस्थित लोगों के सामने राव हमीर को अपनी स्त्री ऊंट गहने सौंप कर कहने लगा कि अब मैं सूर्य की सहायता के लिये स्वर्ग में जा रहा हूँ, वापिस आकर अपनी अमानत ले लूँगा। ऐसा कह करके कच्चे धागे की कूकड़ी लेकर उस धागे के सहारे वह ऊपर चढ़ने लगा था। राव हमीर के सहित शहर के सभी लोगों ने देखा था किन्तु थोड़ी ही देर में शरीर के टुकड़े टुकड़े होकर नीचे आकर गिर गये, उसकी सती पत्नी ने उनको लेकर अग्नि में बैठकर सती हो गई। लोग चले गये परन्तु थोड़े ही दिनों के पश्चात् वह क्षत्रिय जादूगर वापिस आ गया और हमीर से अपनी स्त्री मांगने लगा।

हमीर ने कहा कि वह तो तुम्हारे शरीर को लेकर सभी के सामने जल गई है। मैं अब कहाँ से दूँ। उसी समय ही उस जादूगर ने राव हमीर के महल से अपनी स्त्री को आवाज देकर बुला ली। वही व्यक्ति राजा से इनाम प्राप्त करके यहाँ पर आ रहा है। यह केवल उनका दिखावा मात्र था। उसमें सत्यता नहीं थी। ऐसा कहकर जम्भदेवजी ने सबद सुनाया- विशेष कथा ''जाम्भा पुराण'' में पढ़ें।

सबद-91

ओ३म् छन्दे मन्दे बालक बुद्धे, कूड़े कपटे ऋद्ध न सिद्धे।

भावार्थ-जो व्यक्ति अपनी तथा पराई, पाखण्ड तथा कपट के द्वारा कीर्ति चाहता है वह छन्द है। ऐसे छन्द लोग कोई जादू या मन्त्र द्वारा ऐसे कर्तव्य करेंगे जिससे अन्य लोग उससे प्रभावित हो जाये, जिससे वह अपनी कमजोरी तथा अवगुणों को छिपा करके अपनी झूठी महता प्रगट कर सके। इस प्रकार के लोग परिकत दृढ़ बुद्धि वाले न होकर बालक बुद्धि वाले है और वे लोग झूठ बोलते हुए कपट का व्यवहार कर रहे हैं। ऐसे लोगों के पास ऋद्धि-सिद्धि नहीं होती। इस झूठ कपटमय व्यापार को ही ऋद्धि-सिद्धि के नाम से चला देते है।

मेरे गुरु जो दीन्ही शिक्षा, सर्व अलिंगण फेरी दीक्षा।

जाण अजाण बहिया जब जब, सर्व अलिंगण मेटे तब तब।

मेरे द्वारा दी गई जो गुरु-महान शिक्षा ने सम्पूर्ण संसार के लोगों के अलिंगण दोषों से जनित पापों को दीक्षित किया है। सामान्य शिक्षा से तो सज्जन पुरुष ही दीक्षित हो सकते हैं। किन्तु श्री देवजी कहते हैं कि मेरी इस महान शिक्षा से तो संसार के दुष्टों की दुष्टता ही दीक्षित हो गयी। यानि दुर्गुणों की समाप्ति तथा सद्गुणों का समागम हो गया। इसी प्रकार से जब जब भी मानव ने चाहे जान करके दुष्टता दुर्गुणों को अपनाया हो या अनजाने में ही प्रवेश कर गये हो, तभी तभी मैंने ही अनेकानेक संत, भक्तों, देवताओं का रूप धारण करके उन दुर्गुणों, दुराचारों, मोहमाया रूपी अलिंगण को मिटाया है।

ममता हस्ती बांध्या काल, काल पर काले पसरत डाल।

ध्यान न डोले मन न टले, अहनिश ब्रह्म ज्ञान उचरै।

यह मेरा है और मैं इसका हूँ। इस प्रकार की ममता ही संसार के सम्बन्धों को जोड़ती है। इस बन्धन को श्री देवजी कहते हैं कि मैंने तोड़ा है तथा ममता रूपी हाथी भी संसार में विचरण कर रहा था, उसे भी काल समय से बांध दिया है क्योंकि संसार की सभी वस्तुओं से काल ऊपर है। इस ममता हाथी को लौकिक परम्पराओं से ऊपर उठा दिया है और सर्व संहारक काल से जोड़ दिया है। तथा काल का भी जो महाकाल परमात्मा विष्णु से इस हाथी को बार बार अभ्यास द्वारा बांधने का प्रयत्न करवाया है क्योंकि यह सांसारिक ममता रूपी हाथी जब उस परमात्मा से बंध जायेगा तो वही ममता प्रेम भाव में परिवर्तित हो जायेगी। इसी प्रकार से चित्तवृत्ति का निरोध हो जाने पर, इस जीव का परमात्मा से जुड़ जाने पर वह प्रेम भाव आगे विस्तार को प्राप्त होगा जो सम्पूर्ण संसार के जन जीवन में अपनी ही आत्मा का, परमात्मा का दर्शन करेगा। जिस प्रकार से वृक्ष में पानी देने से वह सींचित होकर डालियों का फैलाव करता हुआ विस्तारता को प्राप्त करता है। जब इस प्रकार से प्रेम भाव विस्तृत हो जायेगा तो फिर सभी जगह परमात्मा की ज्योति का ही दर्शन करेगा तब न तो उसका कभी ध्यान ही खण्डित होगा और न ही मन ही विचलित होगा तथा दिन रात हर क्षण ब्रह्मज्ञान में ही विचरण

करेगा और ब्रह्मज्ञान सम्बन्धी ही वार्ता करेगा।

काया पत नगरी मन पत राजा, पंच आत्मा परिवारूं।

जो लोग इस पंच भौतिक काया को ही जीवात्मा मानकर इसको खिलाते पिलाते है। वह जब समाप्त हो जाती है तब कहते है कि मर गया, इसी बात के उपर गुरुदेव कहते हैं कि यह कायापति नहीं है यह तो नगरी की भांति है जिसमें मन रूपी राजा निवास करता है। वह मन ही इस काया का राजा है। क्योंकि कहा है-''इन्द्रियाणी पराण्याहु रिन्द्रियेभ्य: परं मन:''। ''मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धे परतस्तु स:'' गीता वचन स्थूल शरीर से इन्द्रियां सूक्ष्म है तथा मन से भी बुद्धि तथा बुद्धि से परे आत्मा है। पंच महाभूत आकाश, वायु, तेज, जल, धरणी तथा पंच प्राण, पांच कर्मेन्द्रिय इन सभी का राजा तो मन ही है क्योंकि मन के द्वारा ही ये सभी प्रेरित होकर ही अपना-अपना कार्य करते हैं तथा इस मन से भी उपर, मन को भी चैतन्य सता दाता ,सर्व स्वामी, सर्वेश्वर, पंच, सर्वश्रेष्ठ, आत्मा ही सम्राट है। इसी आत्मा के ही ये सभी पंच महाभूत, दशेन्द्रिय, पंच प्राण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, प्रकृति आदि परिवार है। इसी परिवार का ही यह आत्मा स्वामी है। जब वह स्वामी ही नगरी छोड़ कर चला जायेगा तो फिर यह परिवार भी बिखर जायेगा।

है कोई आछै मही मण्डल शूरा, मनराय सूं झूझ रचायले।
अथगा थगाय ले अबसा बसायले, अनवे माघ पाल ले।

किन्तु इस महाबलवान मन रूपी राजा को बस में करने वाला कोई-कोई ही शूरवीर है जो इस राजा से युद्ध करके अर्थात् ''अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोध:'' अभ्यास और वैराग्य को धारण करे मन को बार-बार परमात्मा में एकाग्र कर सके जो यह चंचल मन संकल्प विकल्प करने वाला है, कभी थकने वाला नहीं है। इसे थका दे यानि स्थिर शांत कर दे। इसका घर भी तो आत्मा ही है। वहीं पर ही तो वह बैठ सकता है। इस संसार की दशा में जो नहीं बैठा है, उसे वहाँ पर अभ्यास द्वारा बैठा दे तथा यह उजड़ चलने वाला मन इसे धर्म के पथ पर चला सके, वही शूरवीर है तथा वही संसार में श्रेष्ठ व्यक्ति है।

सत सत भाषत गुरु रायों, जरा मरण भो भागूं।

गुरुदेव जी कहते हैं कि यह बात मैंने आप लोगों को अति सूक्ष्म तथा सत्य सत्य बतायी है, इस पर यदि कोई चलेगा तो उसका जरा-बुढ़ापा का भय तथा मृत्यु का भय निवृत्त हो जायेगा। अज्ञानता के कारण या मोह ममता के कारण ही डर लगता है। वह उससे निवृत्त हो जायेगा।

★★★★

प्रसंग-48 दोहा

जोगी आयो जम्भ पे, देखै विधि विधान।
पढ़या गुण्या कुछ है नहीं, शास्त्र मत नहीं जान।
जम्भगुरु पे बैठ के, पूछी बात विवेक।
वेद विन्या नहीं बकत है, एहि हमारे टेक।

एक योगी सम्भराथल पर जम्भदेवजी के पास में आया और आकर के विधि-विधान, रहन-सहन, आचार-विचार देखा और कहने लगा कि यह महात्मा कुछ पढ़ा लिखा तो नहीं है तथा न ही इन्हें कोई शास्त्रों का

ही ज्ञान है। फिर भी विना प्रेम के ही समीप में बैठ गया और कहने लगा कि आपसे क्या वार्ता करूं। मैं तो शास्त्रीय पण्डित हूँ और आप तो शास्त्र वेद ज्ञान से वंचित है। मेरा तो यह प्रण है कि वेद ज्ञान रहित जन से वार्ता भी नहीं करता। तब श्री देवजी ने उसको यह सबद सुनाया–

सबद–92

ओ३म् काया कोट पवन कुटवाली, कुकर्म कुलफ बणायो।
माया जाल भरम का संकल, बहु जुग रहीयो छायो।

भावार्थ–यह तेरा शरीर ही कोट किला है, तुम्हारी सुरक्षा का उपाय है। इसके अन्दर तुम बैठे हुए हो तथा प्राणवायु ही इसके दरवाजे पर पहरेदार खड़ा है। जिस प्रकार से पहरेदार बाहर अन्दर आने जाने वाले प्रत्येक व्यक्ति की चौकसी रखता हुआ सदा ही जागृत सचेत रहता है और किले तथा स्वामी की रक्षा करता है। उसी प्रकार से यह प्राण वायु रूपी कुटवाली भी शरीर तथा शरीरस्थ आत्मा की रक्षा करता है। प्राण वायु पर शरीर टिका हुआ है तथा मन, बुद्धि तथा अहंकार आदि पहरेदार के सहयोगियों ने कुकर्म रूपी किंवाड़ लगा कर जड़ दिया है और उसी किंवाड़ के उपर माया मोह जाल रूपी सांकल लगाकर जड़ दी है। अब ऐसी स्थिति में न तो अन्दर के अवगुण बाहर ही निकल सकते और न ही बाहर से सद्गुणों का प्रवेश ही संभव हो सकता तथा न तो अन्दर स्थित परमात्मा की ज्योति दर्शन ही संभव है और न ही बाह्य स्थित परमात्मा के स्वरूप का अनुभव ही संभव है यही वार्ता पूरे युग संसार में छायी हुई है। ऐसी स्थिति रहते हुऐ वेद शास्त्र पढ़ना भी कुछ नहीं करेगा। ये ताले, किवाड़, सांकल जब तक गुरु का आशीर्वाद प्राप्त नहीं होगा तब तक नहीं टूट सकेगे।

पढ़ वेद कुराण कुमाया जालों, दंत कथा जुग छायो।

हे योगी! आप जैसे लोगों ने वेद, शास्त्र, कुराण, पुराणादि तो पढ़ लिये है किन्तु इनको पढ़ लेने के पश्चात् भी आपको इन शास्त्रों से अनुभव तो नहीं हो सका। जिस शास्त्र से लक्ष्य की सिद्धि न हो सके वह किस काम का है। आप लोगों को इनसे ज्ञान तो नहीं हो सका परन्तु लोगों को फंसाने के लिये शब्द जाल तो आपने गूंथ लिया है। जिसमें साधारण जनों को फंसा–फंसा कर लूट कर अपने स्वार्थ की पूर्ति करते हो तथा स्वार्थ पूर्ति के लिये आपने वेद शास्त्र के मार्ग को छोड़ दिया है और दन्त कथाओं का सहारा लेकर मनमुखी मार्ग पर चलते हो और लोगों को भ्रमित करने का प्रयत्न भी करते हो। यह सम्पूर्ण संसार में इस समय छाया हुआ है।

सिध साधक को एक मतो, जिन जीवत मुक्त दृढ़ायो।
जुगां जुगां को जोगी आयो, सतगुरु सिद्ध बतायो।

जो सफलता को प्राप्त कर चुका हो, ऐसा सिद्ध तथा जो साध्य को प्राप्त करने के लिये साधन में लगा है उन दोनों का एक ही लक्ष्य होता है। एक तो लक्ष्य तक पहुँच चुका है, दूसरा अब चल रहा है। वह भी अवश्य ही पहुँच जायेगा तथा सच्ची साधना तो वही होती है जो इस जीवन को जीते हुऐ ही मुक्त हो जाये अर्थात् संसार में रहते हुऐ भी दृढ़ साक्षी बना रहे। संसार के दुखों से अछूता रह जाये। इसलिये श्री देवजी कहते हैं कि तुम्हारा लक्ष्य एक होने पर भी तुम तो अब तक साधक ही हो सकते हो, सिद्ध कदापि नहीं हो सकते। तुम मेरे सामने क्या बात कर सकोगे? मैं कहता आंखिन की देखी, तूँ कहता पुस्तकन की देखी।

मैं तो युगों युगों का योगी हूँ और यहाँ पर आया हूँ तथा सतगुरु सिद्ध के रूप में यहाँ पर बैठकर लोगों को मार्ग निर्देश कर रहा हूँ। हे योगी लोगों! आप यह बतलाइये कि आप कितने दिनों के योगी है? आप लोग दन्त कथाओं द्वारा लोगों को भ्रमित करने के अतिरिक्त और भी कुछ जानते है क्या?

सहज स्नानी केवल ज्ञानी, ब्रह्मज्ञानी, सुकृत अहल्यो न जाई।
क्यूं क्यूं भणता क्यूं क्यूं सुणता, समझ विना कुछ सिद्धि न पाई।

तथा मैं सहज रूप से ही ज्ञान की गंगा में स्नान करने वाला अर्थात् कहीं भी किसी पाठशाला में पढ़े-लिखे विना ही स्वभाव से ही सांसारिक वस्तुओं का ज्ञानी हूँ तथा अध्यात्म ज्ञान पक्ष में कैवल्य ज्ञानी और ब्रह्म ज्ञानी मैं ही हूँ। मेरा जो भी कार्य होता है वही सुकृत पुण्यमय ही होता है तथा ऐसा दिव्य कार्य कभी भी निष्फल नहीं होता और जब तक सहज स्नानी, केवल ज्ञानी, ब्रह्मज्ञानी नहीं होगा तब तक उसके द्वारा किया हुआ कार्य पुण्यमय एवं सफल होने में संदेह ही रहता है। हे योगी! तूँ क्यों बार-बार कहता और क्यों ही बार-बार सुनता है तथा पढ़ता है केवल पढ़ने सुनने कहने से कुछ भी नहीं होगा। यदि सफलता चाहता है तो जैसा पढ़ता है, कहता है, सुनता है वैसा ही समझ उसको जीवन में धारण करके वैसा ही जीवन बनायेगा तभी सिद्धि मिलेगी। इसलिये समझ के बिना सफलता नहीं मिलती।

★★★★

प्रसंग-49 दोहा

नृप मालदेव आविया, देखण गुरू प्रताप।
मूलो पुरोहित संग है, कछु हेत कछु दाप।
पृथीपति पूछत भयो, हमें बतावो भेव।
आदि जु पहेले कूंण भयो, तां नहीं जांणत वेद।

जोधपुर नरेश मालदेव अपने पुरोहित मूले के साथ जम्भेश्वर जी से मिलने के लिये आये। उस समय श्री देवजी जाम्भा तालाब की खुदवाई करवा रहे थे। मालदेव जाम्भा तालाब की तरफ ही जा रहा था कि उन्हें अकस्मात् ही लोहावट को जंगल में दर्शन दिया। वहीं पर एक खेजड़ी के नीचे बैठकर वार्तालाप की थी, जहाँ पर साथरी बनी हुई है। मालदेव ने किसी व्यक्ति के द्वारा महिमा को सुना था किन्तु प्रत्यक्ष देखने की इच्छा से वहाँ पर आया था। मालदेव के अन्दर कुछ तो प्रेम था तथा कुछ दबाव भी देना चाहता था। इसलिये आकर पूछा कि हमें यह भेद बतलाइये कि आदि से पहले कौन था। जिसको वेद शास्त्र भी नहीं जानते। उस आदि पुरुष के बारे मे तथा आदि उत्पति के बारे में बतलाइये। तब यह सबद सुनाया-

सबद-93

ओ३म् आद शब्द अनाहद वाणी, चवदै भवन रह्या छल पाणी।
जिहिं पाणी से इण्ड उपना, उपना ब्रह्मा इन्द्र मुरारी।

भावार्थ-जब सृष्टि का प्रलय हो जाता है तो एक परब्रह्म परमात्मा ओम् शब्द के रूप में रहता है। इसलिये शब्द नित्य है। सृष्टि के पूर्व भी विद्यमान था अब भी है तथा भविष्य में भी रहेगा। इस ओम् शब्द से

ही सृष्टि की रचना होती है तथा ओम् शब्द की ध्वनि अनहद नाद है जो विना किसी संयोग से उत्पन्न होती है। उस ध्वनि का योगी लोग ओम शब्द से उच्चारण करते हैं। ध्यानावस्था में बिना श्रोत्र के ही सुनते है। ऐसी ओम् शब्द की अनाहद ध्वनि है।

यह जो दिखाई देने वाली सृष्टि उस समय नहीं थी। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन पांच तन्मात्राओं से आकाश, वायु, तेज, जल, धरती की उत्पत्ति होती है। इन पंच तत्वों की उत्पत्ति हो जाने से धरती के चौदह भवनों का निर्माण हुआ तथा उस समय कोई जीव जन्तु भी नहीं थे। केवल धरती पर जल ही जल भरा हुआ था। उसी जल से एक अण्डे (हिरण्यगर्भ) की उत्पति होती है तथा भगवान विष्णु के नाभि से कमल की उत्पति तथा कमल में से ब्रह्मा की और ब्रह्मा जी से सम्पूर्ण चराचर प्राणी उत्पन्न होते है और एक ही परब्रह्म शक्तिस्वरूप तीनों रूपों में प्रगट होकर ब्रह्मा विष्णु के नाम से प्रसिद्ध होकर सृष्टि की उत्पति, स्थिति तथा संहार करते है। जिस क्रम से सृष्टि की उत्पति, स्थिति तथा संहार करते है। जिस क्रम से सृष्टि की उत्पति होती है उसी क्रम से लय भी हो जाता है।

★★★★

दोहा

राव संग भेलो कियो, चल्यो जोधपुर नाथ।
सनमुख देव ने देख के, हृदै आई शांत।
अर्ज करी कर जोड़ के, प्रश्न राव मन मांय।
आदि पुरुष अपनी कहो, किते एक नांव धराय।

जोधपुर से चलकर राव मालदेव ने जब लोहावट की साथरी पर मेल किया तथा देव को जब सन्मुख देखा तो हृदय में शांति का संचार हुआ। फिर हाथ जोड़कर अर्ज करने लगा कि हे देव! मैनें सृष्टि के आदि तथा अन्त तो आपके द्वारा उच्चरित शब्द से जान लिया। अब आगे यह बताइये कि आपके कितने नाम व रूप है। एक ही ईश्वर के कितने रूप और नाम हो सकते हैं। तब श्री देवजी ने सबद उच्चारण किया।

सबद-94

ओ३म् सहंस्र नांम सांई भल शिंम्भू, म्हे उपना आदि मुरारी।
जद म्हे रह्यों निरालंभ होकर, उतपति धंधूकारी।

भावार्थ-सर्व चराचर सृष्टि के स्वामी स्वयंभू परमात्मा के हजारों नाम है। आदि में तो एक नाम रूप वाला होता हुआ भी सृष्टि के विस्तार के समय अनेक नाम रूप धारी हो जाता है तथा वही एक ही सृष्टि के आदि में एक से अनेक हो जाता है। ''एकोअहं बहुस्यां प्रजायेय'' और अनेक होकर मुरारी आदि नाम से विख्यात हो जाता है। गुरु जम्भेश्वर जी कहते हैं कि जब हम मुरारी आदि उपाधि धारी सृष्टि रचना करने की अवस्था में नहीं थे अर्थात् हिरण्यगर्भ ब्रह्म में शयन की दशा में थे। जीवों के कर्म शयन कर रहे थे। तब तो वहाँ पर कुछ भी नहीं था, केवल धन्धुकार ही था। ये ज्योति स्वरूप सूर्य, चन्द्र आदि कुछ भी नहीं थे। ये पांचों तत्व भी अपने कारण रूप में लय हो चुके थे। ऐसी दशा में केवल धन्धुकार ही शेष था।

ना मेरे मायन ना मेरे बापन, मैं अपनी काया आप संवारी।

जुग छतीसों शून्य ही वरत्या, सतयुग मांही सिरजी सारी।

उस प्रलय अवस्था में न तो कोई शुद्ध स्वरूप में माता ही थी और न ही पिता ही थे। मैनें अपनी काया अपने आप ही अपनी प्रकृति को वशीभूत करके अपने आप ही बनायी है अर्थात् पूर्व में तो मैं निराकार अवस्था में था किन्तु निराकार से तो सृष्टि रचना का महान कार्य नहीं हो सकता। इसलिये मुझे स्वयं अपने आप ही ब्रह्मा विष्णु महेश के रूप में अवतरित होना पड़ा। प्रलय होने के पश्चात् तो छतीस युग तो शून्य अवस्था में ही व्यतीत हो गये। कहीं भी कुछ भी जड़ चेतन जीव नजर नहीं आ रहे थे। इन छतीस युगों के बीत जाने पर सर्व प्रथम नयी सृष्टि का निर्माण सतयुग में प्रारम्भ किया और उस प्रारम्भ के एक ही युग में सृष्टि की पूर्ति कर ली।

ब्रह्मा इन्द्र सकल जग थरप्या, दीन्ही करामात केती बारी।
चन्द सूर दोय साक्षी थरप्या, पवन पवने वर पवन अधारी।

उस सृष्टि की सृजना करने के लिये मैं निराकार से साकार रूप विष्णु नाम से प्रसिद्ध हुआ तथा एक साकार विष्णु के ही ब्रह्मा, महेश दो रूप होकर भिन्न भिन्न कार्य करने लगे। तत्पश्चात् देवराज इन्द्र तथा अन्य तेतीस कोटि देवताओं की उत्पत्ति हुई। देवताओं के पश्चात् तो सम्पूर्ण सृष्टि ही उत्पन्न हो चुकी। सभी देव दानव मानवों को उन्हें योग्यता के अनुसार बल, गुण आदि करामात देकर भेजा गया था इस सृष्टि के उत्पति में विशेष रूप से सूर्य, चन्द्रमा को साक्षी बनाकर भेजा। उन्हें सर्व जगत को प्रकाशित करते हुए देखने की सामर्थ्य दी।

यह सूर्य और चन्द्र मानों दोनों ही परमात्मा की ये दो आंखें है। इन्हीं आंखों से वह जगत को देखता है तथा वायु तथा वायु का स्वामी आकाश, जल एवं धरणी, शक्ति सम्पन्ना धरती इन्हीं को यथा स्थान उत्पन्न करके इन्हीं के द्वारा सकल चराचर के प्राणियों के आधार दाता भी वही परमात्मा विष्णु है। उसकी सता से ये आकाशादि टिके हुए है और इन आकाश वायु तेज जल धरती के उपर सम्पूर्ण सृष्टि टिकी हुई है। इसलिये सभी के आधार स्वरूप वह एक ही परमात्मा विष्णु है।

तद म्हे रूप कियो मैनावतीयो, सत्यव्रत को ज्ञानी उचारी।
तद म्हे रूप रच्यो कामठियो, तेतीसां की कोड़ हंकारी।

जब सृष्टि की रचना हो चुकी थी तथा सतयुग का समय था, उस समय ही एक भयंकर प्रलयावस्था आ गई थी। उस समय श्री देवजी कहते हैं कि हमने ही मत्स्य का रूप धारण करके द्रविड़ देश के राजा सत्यव्रत को आकर दर्शन दिया और उन्हें प्रलयावस्था से सचेत करते हुऐ सृष्टि के समस्त बीजों की रक्षा करने का उपाय बतलाया और स्वयं ही नाव को खींचते हुऐ उनकी रक्षा की थी। उस प्रलयावस्था में अनेकों वर्षो तक मैं मछली के रूप में नाव खींचता रहा था। उस समय मैनें सत्यव्रत राजा को ज्ञान दिया जो मत्स्य पुराण से प्रसिद्ध हुआ तथा प्रलय समाप्ति पर पुनः सृष्टि के सृजन कार्य को सत्यव्रत के उपर छोड़कर मैं अन्तर्धान हो गया था। सत्यव्रत ही आगे के लिये मनु प्रसिद्ध हुए।

एक समय दानवों ने देवताओं पर विजय प्राप्त करके स्वर्ग पर अधिकार कर लिया था। उस समय देवताओं को भगवान ने यही सलाह दी कि तुम सभी मिलकर समुद्र मन्थन करके अमृत की प्राप्ति का उद्योग करो। देव-दानवों ने मिलकर वैसा ही किया था। सुमेरू पर्वत की मथाणी जब अपने भार से जमीन में धंसने लगी थी तब देव-दानवों ने मिलकर हरि विष्णु से पुकार की थी तो उनके कार्य की सिद्धि के लिये भगवान ने

स्वयं कछुवे का रूप धारण कर उस पर्वत की मथानी के नीचे पीठ लगा दी थी। उन्हें अमृत पान करवाया था तथा उस समय उनके गर्व को चूर चूर कर दिया था। उन्हें यह बता दिया कि विना परमात्मा की सहायता के आप लोग किसी भी कार्य में सफल नहीं हो सकते।

जब मैं रूप धर्‌यो बाराही, पृथवी दाढ़ चढ़ाई सारी।
नरसिंघ रूप धर हिरण्यकश्यप मार्‌यो, प्रहलादों रहियों शरण हमारी।

अन्य किसी कल्प में जब सृष्टि की संरचना हुई थी तो सनकादिकों के शाप से भगवान के पोलिये जय और विजय हिरणाक्ष तथा हिरण्यकश्यपु हो गये थे। उनमें से हिरणाक्ष दैत्य ने तो सम्पूर्ण धरती को ही जल में डूबो दिया था जिससे पीछे बची-खुची धरती भी उसर हो गई थी। उसका उपजाऊ भाग जल में डूब जाने से ब्रह्माजी ने विष्णु जी से पुकार की थी तो परमात्मा विष्णु ने वराह रूप धारण करके इस धरती को दाढ़ों पर रखकर के जल से बाहर निकाल कर यथा स्थान स्थाापित की थी और हिरणाक्ष दैत्य का वध किया था।

उसी समय हिरणाक्ष का दूसरा भाई हिरण्यकश्यपु बड़ा ही क्रोधित हो गया था। वह विष्णु को ही अपना परम शत्रु मानने लग गया था। उस दुष्ट दैत्य का वध भी प्रहलाद की रक्षा के बहाने से नृसिंह रूप धारण करके किया। उस समय भी प्रहलाद भक्त ने श्री देवजी कहते है कि मेरी शरण में आकर राज किया था।

बावन होय बलिराज चितायो, तीन पैण्ड कीवी धर सारी।
परशुराम होय क्षत्रियपन साध्यों, गर्भ न छूटी नारी।

प्रहलाद का पौत्र राजा बलि स्वर्ग का राज्य प्राप्त करने के लिये यज्ञ कर रहा था। उस समय मैने ही केवल बावन अंगुल का रूप धारण करके उसके यज्ञ में पहुँचा था। बलि की अनधिकार चेष्टा को तीन पैण्ड में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को नाप कर नष्ट किया था। उसे पाताल का स्वामी बनाया था। इसी प्रकार से बलि को सचेत करने वाला भी मैं ही था।

त्रेतायुग में ही सहस्रा बाहु जैसे क्षत्रिय उद्दण्ड हो गये थे। उनकी उद्‌ण्डता मैने परशुराम का रूप धारण करके समाप्त की थी। उस समय मैने भयंकर युद्ध भी किया था तथा तपस्या और माता पिता की आज्ञा पालन बड़ी ही तत्परता से की थी तथा क्षत्रियों का संहार तो ऐसा जबरदस्त किया था जो गर्भ में स्थित क्षत्रिय शिशु को भी नहीं छोड़ा था अर्थात् इस अवतार में तो संहार की अति ही कर दी।

श्री राम शिर मुकुट बंधायो, सीता के अहंकारी।
कन्हड़ होय कर बंसी बजाई, गऊ चराई।
धरती छेदी काली नाथ्यो, असुर मार किया क्षय कारी।

उसी त्रेतायुग में दशरथ पुत्र राम का रूप धारण करके राजा जनक के यहाँ पर शिव धनुष तोड़कर सीता को अपनी भामिनी बनायी, अपने सिर पर मोड़ बंधवाना यानि विवाह किया क्योंकि सीताराम की जोड़ी अटल थी, उस जोड़ी को पुनः कायम किया तथा वनवास काल में रावण ने सीता पर अपना अधिकार जमाने के लिये हरण किया। सीता रावण की तो नहीं बन सकी क्योंकि वह तो पहले ही राम की बन चुकी थी। परन्तु सीता ने इस दुष्कर्म का फल रावण के सम्पूर्ण कुल का नाश करवा कर जरूर दिया और श्रीराम ने विभीषण के सिर पर लंका राज्य का मुकुट जरूर बंधवा दिया तथा चौदह वर्ष का वनवास पूर्ण करके श्रीराम ने भी अयोध्या का राज मुकुट अपने सिर पर बंधवाया।

द्वापर युग में कृष्ण का रूप धारण करके गउवें चराई, बंसी बजाई, गोधन ग्वाल बालों को खेल खिलाकर प्रसन्नचित किया तथा उस समय धरती पर आयी हुई रूकावटों का छेदन किया अर्थात् भारत खण्ड की धरती पर आयी हुई विपतियों का छेदन किया अर्थात् भारत खण्ड की धरती पर दुष्टों का राज्य हो चुका था, जिसमें प्रधानत: कंस, जरासंध, शिशुपाल, भोमासुर और भी अनेक इनके सहयोगी दानव, बकासुर, पूतना, शकटासुर, वत्सासुर, धेनुकासुर, अरिष्टासुर, केशी, व्योमासुर, चाणुर, मुष्टिक इत्यादि का विनाश करके उनके अधीन धरती को मुक्त करवा के सभी के लिये सुलभ कर दी थी।

इसी प्रकार से आपसी शत्रुता के कारण एक दूसरे से कट चुके थे। उनकी शत्रुता को मिटा कर पुन: मेल करवाया तथा विशेष रूप से वहाँ पर बहुत बड़े भू भाग को अपने अधीन किये हुऐ कालिया नाग को उसकी धरती के अन्दर प्रवेश करके नाथ लिया था। उसके फणों पर नृत्य करते हुए उसको अपने वश में करके सदा के लिये वह भू भाग खाली करवा दिया था जिससे गउवें चर सकती थी। इसी प्रकार से अनेकानेक असुरों को मार करके या उन्हें असुरता से दूर हटा कर यह शुभ कार्य मैंने किया था।

बुद्ध रूप गयासुर मारयो, काफर मार किया बैगारी।
पन्थ चलायो राह दिखायो, नौ बर विजय हुई हमारी।

इसी अवतार परंपरा मैं मैने कृष्ण अवतार के लगभग अढ़ाई हजार वर्ष पश्चात् कपिलवस्तु नगरी में बुद्ध रूप से अवतार लिया तथा तपस्या मय जीवन व्यतीत करते हुऐ ज्ञान प्राप्ति के उद्धेश्य से भटकते हुऐ गयाजी में आकर एक वृक्ष के नीचे आसन लगाया था। वहीं पर मैं अधिक समय तक रहा था। वहीं से ज्ञान की ज्योति का अवतरण हुआ और बुद्ध हो गया।

बुद्ध हो जाने के पश्चात् मैने वहाँ उस समय धर्म के नाम पर, देवताओं के नाम पर ब्राह्मणों याज्ञिकों द्वारा अत्याचार होते देखा। वे लोग सच्चे धर्म को छोड़कर काफिर हो गये थे। नास्तिकता को अपना चुके थे। यज्ञ में पशु बलि की प्रथा डाल चुके थे। स्थूल पूजा को ही महत्त्व देते थे तथा ईश्वर के नाम पर व्यक्ति पूजा का ही बोल-बाला हो गया था। वह पाखण्ड मैने उपदेश शक्ति द्वारा समाप्त किया। उन पण्डितो तथा साधारण जनों से दूषित यज्ञादि कर्म छुड़वा कर ईश्वरीय उपासना में प्रवृत करवाया।

(एक अंगुलीमाल नाम का डाकू उसी जंगल में रहता था। उसे जो भी व्यक्ति मिलता उनकी वह अंगुली काट लेता था इसलिये उनका नाम भी यही पड़ गया था।एक समय बुद्ध भी उसी के पास से होकर जा रहे थे कि उसने रोक लिया और अंगुली काटने के लिये खड़ग उठा लिया किन्तु बुद्ध के तेजस्वी रूप के सामने वह नत मस्तक हो गया और तलवार फैंक कर उनका शिष्य बन गया) जम्भदेवजी कहते हैं कि मैने उन्हें तथा पाखण्डी लोगों को बेगार बना दिया, उन्हें पापमय मार्ग से हटाकर सद्पंथ के पथिक बना दिया तथा बौद्ध धर्म चलाया और सच्चा मार्ग दिखलाया जो आज भी देश विदेशों में विख्यात है। इसी प्रकार से नौ बार तो हमारी विजय हो चुकी है अर्थात् इन उपर्युक्त नौ अवतारों में तो हमने कार्य सिद्ध कर दिये है। हमें अपने कार्य से कोई भी रोक नहीं सका है तथा-

शेष जम्भराय आप अपरंपर, अवल दिन से कहिये।
जाम्भा गोरख गुरु अपारा, काजी मुल्ला पढ़िया पण्डित, निंदा करै गिंवारा।

उक्त बुद्ध अवतार के लगभग अढ़ाई हजार वर्ष पश्चात् मैं यहाँ पर जम्भराय नाम से स्वयं अपरंपर

विष्णु परमात्मा, शेष कार्य को पूरा करने के लिये आया हूँ। वैसे तो मैं प्रथम दिन से ही अर्थात् आदि अनादि से ही निराकार निरंजन उपाधि रहित कहा जाता हूँ। फिर भी सृष्टि के आदि से ही मच्छ कच्छ आदि शरीर धारी मैं साधु पुरुषों की रक्षा करने वाला तथा दुष्टों का विनाश करने वाला भी कहा जाता हूँ।

इसी कलयुग में ही कुछ वर्ष पूर्व योगीन्द्र गोरखनाथ विभूति भी जागृत हुई थी। वे समादरणीय अपार शक्तिशाली गुरु थे, उन्होंने भी बुद्ध की भांति ही सच्चे योग मार्ग का अनुयायी शिष्य वर्ग को बनाया था तथा गुरु जम्भेश्वर जी कहते हैं कि इस समय मैं भी उसी सद्मार्ग का निर्देश देकर शिष्य वर्ग को सद्पंथ का पथिक बना रहा हूँ। इसलिये निकट समय में बुद्ध के पश्चात् हम दोनों ही अपार गुरु की पदवी को धारण करने वाले है किन्तु ये काजी, मुल्ला, पढ़े लिखे पण्डित लोग हमारी निंदा करते है क्योंकि अब हमारे सामने इनका पाखण्ड मिथ्या आचरण चल नहीं पाता है किन्तु हे धर्म प्रेमी जनों!

दोजख छोड़ भिस्त जे चाहो, तो कहिया करो हमारा।
इन्द्र पुरी वैकुण्ठे वासो, तो पावो मोक्ष द्वारा।

यदि आप लोग दोजख यानि दुखमय नरक को छोड़कर सुखमय स्वर्ग को चाहते हैं तो मेरा कहना करो और यदि मेरे कथनानुसार धर्म मार्ग पर चलोगे तो अपने शुभ कर्मानुसार इन्द्र देवलोक तथा वैकुण्ठवास को प्राप्त करके मुक्ति लाभ को प्राप्त करोगे। जन्म-मरण के दुखों से सदा-सदा के लिये छूट जाओगे।

★★★★

प्रसंग-50 दोहा

देव तणै दरबार में, ब्राह्मण आयो एक।
समझन को बहु दिवस है, अब का भयो अलेख।

गुरु जम्भेश्वर जी के पास में दर्शनार्थ एक ब्राह्मण आया। अनेक वार्ताऐं होने लगी, तब वह ब्राह्मण वाद-विवाद में उलझ गया तो श्री देवजी ने कहा कि समय बड़ा ही अमूल्य है तथा बहुत ही कम मिला हुआ है, वह भी हाथों से निकलता जा रहा है। तब वह ब्राह्मण कहने लगा कि महाराज! समय तो बहुत ही लंबा है। इतनी लम्बी आयु में तो हम कभी भी ईश्वर अराधना तथा शुभ कार्य कर सकते हैं आप हमें बार बार क्यों कहते हैं तब श्री देवजी ने सबद सुनाया-

सबद-95

ओ३म् वाद-विवाद फिटाकर प्राणी, छोड़ो मन हट मन का भाणों।

भावार्थ-हे प्राणी! तूँ इस कच्ची काया को प्राप्त करके इस व्यर्थ के वाद-विवाद को छोड़ दे क्योंकि यह आदत कभी भी श्रद्धा विश्वास उत्पन्न नहीं होने देगी तथा विना श्रद्धा विश्वास के ज्ञान विवेक को प्राप्त नहीं हो सकेगा और विवेक ज्ञान शून्य जीवन सदा दुखमय ही रहेगा। इसलिये इस जिह्वा को सदा ही वश में रखा करो तथा अपने मन का हठ कि मैं जो कुछ कहता हूँ यही सत्य है और अपने ही मन की अच्छी लगने वाली बात को दूसरे से जबरदस्ती मनवाने का प्रयत्न न करो। इस आदत को छोड़ना ही होगा। यही आदत दुनिया के जितने भी झगड़े-फसाद होते है उनके कारण होती है।

कांही के मन भयो अंधेरो, कांही सूर उगाणों।
नुगरा कै मन भयो अन्धेरो, सुगरा सूर उगाणों।

जो व्यर्थ के बकवादी लोग है उनके तो मन में अन्धेरा हो गया क्योंकि वे लोग किसी भी जीवन सुधारक बात पर तो विश्वास करते नहीं है। जो भी अच्छी बात कही जाती है उसे वे तर्क द्वारा काट देते है तथा अन्य वे लोग है जो व्यर्थ का कुतर्क नहीं करते किन्तु सद्गुरु द्वारा कही बात को हृदय से स्वीकार करके, उन पर चलकर अपने जीवन को सफल बना लेते है। उनके हृदय में ज्ञान का प्रकाश हो जाता है। इसीलिये यही गुरु रहित जन नुगरा तथा गुरु धारण करने वाले सुगरा की पहचान है। जो गुरु वाणी को धारण करके जीवन को प्रकाश मय बना लें वही सुगरा है और जो गुरु वाणी को तर्क द्वारा काट कर तद्विपरीत जीवन को बना लें वही नुगरा है।

चरणभि रहीया लोयण झुरीया, पिंजर पड्यो पुराणों।
बेटा बेटी बहन रू भाई, सबसै भयो अभाणों।

इस प्रकार से यदि वाद-विवाद में पड़कर विजय की वासना में ही समय समाप्त कर देगा तो वृद्धावस्था आ जायेगी। फिर उस अवस्था में तो पैर चलने से रह जायेंगे, आंखें देखने से रह जायेगी तथा यह सम्पूर्ण शरीर रूपी पिंजर प्राचीन हो जायेगा तब इस जर्जरित पिंजरे से कोई भी प्रेम नहीं करेगा और की तो क्या कहें तुम्हारे अपने ही प्रिय बेटा-बेटी बहन और भाई आदि सभी को अप्रिय लगने लग जायेंगे। उस दयनीय अवस्था में पहुँच जाने पर तो तूँ कुछ भी नहीं कर सकेगा।

तेल लियो खल चोपै जोगी, रीता रहीयो घाणों।
हंस उडाणों पंथ विलंब्यो, कीयो दूर पयाणों।

जिस प्रकार से तिलहनों में से तेल निकाल लिया जाता है तो पीछे खली ही शेष रह जाती है। वह पशुओं के खाने के काम आती है तथा तिलहन पीसने वाली घाणी भी तेल रहित हो जाती है। उसी प्रकार से जब शरीर से युवावस्था रूपी तेल निकल जाता है तो पीछे वह वृद्धावस्था को प्राप्त हुआ शरीर खली के समान ही निस्तेज तथा विना कीमत का हो जाता है। फिर उसकी कोई इज्जत नहीं करता तथा जिस प्रकार से घाणी खाली हो जाती है। उसी प्रकार से यह चेतन शक्ति जीवात्मा शरीर रूपी घाणी से बाहर निकल जाती है तो यह शरीर भी मृत हो जाता है।

जब यह जीवात्मा हंस इस शरीर से उड़कर बाहर निकलेगा तो शुभ कर्म, परमात्मा की शरणागति रहित होने से उसे कोई पन्थ दिखाने वाला सहारा नहीं मिलेगा तो यह मुक्ति या स्वर्ग के मार्ग को पकड़ नहीं सकेगा और जो नरक या चौरासी लाख योनियों में पहुँचने के मार्ग को पकड़कर वहीं पर ही पहुँच जायेगा। मानव शरीर तथा स्वर्गीय सुख से बहुत दूर चला जायेगा, लौटकर आना अति दुष्कर हो जायेगा।

आगै सुरपति लेखो मांगै, कह जीवड़ा के करण कमाणों।
जीवड़ा नै पाछो सुझण लागो, सुकरत ने पछताणें।

जब यह जीवात्मा इस शरीर से निकलकर के आगे धर्मराज के यहाँ पर पहुँचेगी तो इससे सम्पूर्ण जीवन का हिसाब-किताब पूछा जायेगा कि हे जीव! बताओ तुमने मानव जीवन धारण करके क्या क्या शुभ कर्म किये? तब वहाँ पर कुछ भी जवाब नहीं दे सकेगा और फिर पीछे का जीवन दिखाई देगा क्योंकि उस जीवन में तो ऐसा कोई शुभ कार्य किया नहीं था। जो बता सके। अपने जीवन में सुकृत नहीं होने से फिर पछताना ही

पड़ेगा। पछतावे के अतिरिक्त और वहाँ पर कुछ कर भी नहीं सकता।

★★★★

प्रसंग-51 दोहा

गोपीचन्द अरू भरथरी, आया जम्भ द्वार।
गोरख नाथ तां संग ही, शैना शैन विचार।
कवण पुरुष कहां नाम है, कवण गुरु कहां ठोड़।
कहा करणी कहां बसत हो, घड़ी कहो कस खोड़।
व्यंग वचन सुनते भये, जम्भगुरु किरतार।
मन हि वे हंस बोलत भये, सबद कह्यो तिण बार।

गुरु जम्भेश्वर जी सम्भराथल पर विराजमान थे। आस-पास में साथरियां सत्संगी जन बैठे हुए थे। उसी समय ही गोरखनाथ जी एवं गोपीचन्द भरथरी वहाँ पर आये, उन्होंने बिना शब्द बोले ही मूक भाषा सैनी से यह पूछा कि आप कौन पुरुष है, आपका क्या नाम है तथा इस शरीर की उत्पत्ति स्थिति बतलाइये और आप यहाँ पर क्या करते हैं तथा इससे पूर्व में आपका क्या कार्य था। इसी प्रकार से अनेक व्यंग्य बातें सैनी से पूछी थी। तब जम्भदेवजी ने मन ही मन मुस्कराते हुऐ उनके प्रति सबद सुनाया-

सबद-96

ओ३म् सुण गुणवंता सुण बुधवंता, मेरी उत्पति आदि लुहारूं।

भावार्थ- हे गुणवानों! हे बुद्धिमानों! सुनों! मेरी उत्पत्ति यानि कार्य-कलाप, रहन-सहन के बारे में मैं बतला रहा हूँ किन्तु सृष्टि से ही पूर्व का कार्यकर्त्ता हूँ। यहाँ पर श्री देवजी ने अपने को लुहार बताया है। जैसे लुहार लोहे को भट्टी के अन्दर तपाकर उसे स्वर्ण सदृश बना देता है उसी प्रकार से जम्भदेव जी भी लोहे सदृश अज्ञानी जनों को, ज्ञान रूपी अग्नि में तपाकर सुवर्ण सदृश उत्तम बना देते हैं।

भाठी अन्दर लोह तपीलो, तंतक सोनों घड़ै कसारूं।
मेरी मनसा अहरण नाद हथोड़ो, शशीयर सूर तपीलों, पवन अधारी खालूं।

गुरु देवजी कहते हैं कि जिस प्रकार से लोहे का कार्य करने वाला लुहार भट्ठी के अन्दर लोहे को तपाकर स्थूल मैल-जंग को काट कर उसे तत्व रूप सोना बना देता है और उस सोने से अच्छा कारीगर अनेक प्रकार के बर्तन, अलंकार आदि बना देता है। उसी प्रकार सें इस संसार रूपी जलती हुई दुख की भट्ठी में लोहा सदृश अज्ञानी, दुराचारी, पापी जन तप रहे है। अति कष्टों का अनुभव कर रहे हैं। मैं समय-समय पर मृत्युलोक में आता हूँ और इन तपते हुऐ लोगों को उस लुहार की भांति बनाकर उनके अज्ञान को काट कर इन्हें पवित्र सोने के समान बना देता हूँ। इससे उनके सभी विकार ज्ञान रूपी अग्नि में जलकर भस्म हो जाते हैं। ये तत्व रूप आत्मा-परमात्मा के नजदीक पहुँच जाते हैं। अब आगे यह बतला रहे हैं कि किन-किन साधनों के द्वारा जम्भ लुहार अपना कार्य करते हैं। अर्थात् जिस प्रकार लोहे का कार्य करने वाले लुहार के पास अहरन होती है। उस पर रखकर लोहे को कूटता है तथा एक हथोड़ा भी पास में रखता है जिससे ऊपर चोट मारता है और

पास में संडासी, चिमटा भी रखता है जिससे वार-वार अग्नि को कुदेरता है जिससे अग्नि प्रज्वलित होती है तथा इसके बावजूद भी हवा बिना तो अग्नि प्रज्वलित नहीं हो सकती तब हवा देने के लिये धोंकनी भी चमड़े की बनी हुई होती है। जिससे हवा दी जाती है। ये सभी लुहार के साधन है। उसी प्रकार से जम्भदेवजी कहते हैं कि मेरी मनस्या-दृढ़ इच्छा ही अहरन है ''तदैक्षत एकोहं बहुस्यां प्रजायेय'' परमात्मा की दृढ़ इच्छा अहरन की तरह ही कूटस्थ होती है। जो एक बार इच्छा हो गई तो फिर कभी बदलती नहीं है। तो उस इच्छा की पूर्ति अवश्य ही होती है अर्थात् इस संसार की मिट्टी में लोह सदृश संतप्त तो अनेक लोग है किन्तु किसको सुवर्ण सदृश उत्तम बनाना है यह परमात्मा की इच्छा पर निर्भर करता है।

''मद्भक्त सो मे प्रिय'' इसलिये इस इच्छा रूपी अहरन पर अधिकारी जनों को रखकर शब्द नाद रूपी हथोड़े से चोट करता हूँ। मेरे इस शब्द नाद हथोड़े की चोट अचूक होती है। जो एक या दो बार ऊपर गिर जाता है तो फिर उसके अन्त:करण तक नाद ध्वनि पहुँचकर उसके अन्दर छुपे हुऐ विकारों को निकालकर बाहर फेंक देती है। इस प्रकार बार-बार शब्द ध्वनि की चोट सम्पूर्ण विकारों को निकाल देती है। उसे परम पवित्र देव तुल्य बना देती है।

तथा जिस प्रकार से प्राणायाम करते समय पहले दाहिनी नासिका यानि सूर्य से अन्दर वायु को पूर्ण किया जाता है तो अन्दर की ज्योति प्रज्वलित हो जाती है और कुछ समय तक अग्नि प्रज्वलित रहने के पश्चात् यानि कुम्भक के पश्चात् पुन: बाहर बायीं नासिका से यानि चन्द्र से श्वांस छोड़ा जाता है तो फिर गर्मी शांत हो जाती है। उसी प्रकार से मैं प्रथम तो अपने शिष्यों को जिनका निर्माण करके कंचनमय बनाता हूँ। उन्हें सूर्य सदृश भय उपजाने वाले और तपस्या सम्बन्धी मार्ग निर्देशित करता हूँ। जब वे तपस्या में प्रवीण होकर अन्दर के विकार भस्म कर देते हैं तब उन्हें चन्द्र सदृश सुखमय आल्हाद जनक वचनों द्वारा तृप्त करता हूँ।

शरीरस्थ प्राण वायु ही इस जीवन का आधार है। उस वायु को सामान्य दशा में अन्दर भर करके बाहर छोड़ने का कार्यक्रम चलता रहता है। उसी प्रकार श्वासों ही श्वांस अजप्पा विष्णु जाप जपना ही जीवन का मूल आधार है। वही जप ही अन्दर अचेत अवस्था में स्थिर ज्योति स्वरूप जीव को जागृत करता रहता है। वह कभी भी अचेत नहीं होने देता, इसलिये धोंकनी का कार्य करता है। इस स्वभाविक पवित्र कर देने वाली प्राणवायु को अजप्पा जाप सहित सचेत होकर लेने के लिये मैं प्रेरित करता हूँ। यही मेरे निर्माण करने के साधन है। पापी से पुण्यवान बनाने के उपाय है। इन्हीं साधनों द्वारा मैं मानवता की उत्पति करता हूँ।

जे थे गुरु का शब्द मानीलो, लंघिबा भव जल पारूं।
आसण छोड़ी सुखासण बैठो, जुग जुग जीवै जम्भ लुहारूं।

हे संसार के लोगों! तथा गुणवानों! बुद्धिमानों! यदि आप लोग सद्गुरु के नाद ध्वनि युक्त यथार्थ वचनों को मान लो तो निश्चित ही इस भयंकर भव सागर से पार उतर जाओगे और जब तक गुरु के शब्दों पर विश्वास नहीं करोगे तो पार तो नहीं उतर सकोंगे।

मैं जम्भ लुहार मानवता का निर्माण करता हूँ। इन सामान्य जनों द्वारा आचरित रीति-रिवाज, रहन-सहन, आचार-विचारों को छोड़कर सुखासन लगाकर बैठा हूँ यानि इन सांसारिक राग-द्वेष, इर्ष्या, लोभ, मोहादिक से उपर उठकर सुखमय आसन पर विराजमान हो चुका हूँ। अब मुझे किसी प्रकार के सुखदुखादि प्रभावित नहीं कर सकते। इसलिये मैं युगों-युगों तक जीता हूँ और आप लोग जब तक सांसारिक वासनाओं से ऊपर नहीं उठेंगे तब तक तुम्हें ये परेशान करती रहेगी। इस संसार में कुछ ही वर्षो के जीवन में ऊब जाओगे और मृत्यु की

प्रतीक्षा करोगे तो फिर युगों-युगों तक कैसे रह सकोगे।

विशेष - बिश्नोई समाज के वयो वृद्ध ज्ञान वृद्ध जनों से मैने सुना है कि जब गोपीचन्द भरथरी इस सबद को श्रवण करके वापिस जाने लगे तब उन्होंने अपने नाक के हाथ लगाया। तब जम्भेश्वर जी ने अपनी जिह्वा के हाथ लगाया और ऐसी सैनी करके वहीं से चले गये। पीछे संत-साथरियों ने पूछा कि हे भगवन्! हम तो कुछ समझ नहीं सके ये कौन लोग थे और आपसे सैनी से क्या बात की थी। तब जम्भेश्वर जी ने कहा कि ये गोपीचन्द और भरथरी थे। यह सुनते ही लोग उनके पीछे दर्शनार्थ गये किन्तु दर्शन नहीं हो सका, अन्तर्धान हो चुके थे। फिर वापिस आने पर श्री देवजी ने आगे फिर बताया कि इन्होंने जो नाक के हाथ लगाया था इसका मतलब यह था कि अब हम इस जीवन से नाक नाक आ गये हैं अर्थात् थक गये है। किसी प्रकार से आप हमें इससे मुक्ति दिलवाओ। तब मैंने यह कहा था कि पहले तो तुमने अपनी वाणी से ही मांगा था कि हमें अजर अमर कर दो तो फिर अब दोष किसका है। अब तो तुम्हें जीवन जीना ही पड़ेगा।

★★★★

प्रसंग-52 दोहा

अस्तुति किनेहूं ऊदजन, हरख गहेऊ प्रभु पाय।
माता मौंपे कोप है, तेऊ कहूं मोहि छोड़ाय।

गुरु जम्भेश्वर जी द्वारा उच्चरित शब्दों की ध्वनि गंगा पार उतर प्रदेशीय जन समुदाय में पहुँची तथा जम्भदेवजी की महिमा को श्रवण करके अनेकानेक लोग सम्भराथल पर दर्शनार्थ पहुँचने लगे। एक समय बिश्नोई बन्धुओं की जमात सम्भराथल पर दर्शनार्थ आ रही थी। बीच में नागौर से पूर्व दक्षिण दिशा में मांगलोद गांव में तालाब के किनारे डेरा लगाकर स्नान, संध्या, हवन कर रहे थे। उसी समय ही वहाँ पर एक देवी भक्त ऊदोजी आ गये। उन्होंने बिश्नोइयों के सभी कार्यक्रम को देखा तथा आश्चर्य चकित होकर देवी के मन्दिर में चलने की प्रार्थना करने लगे। तब बिश्नोइयों ने कहा कि तुम्हारी देवी में क्या करामात है क्या वह जीवन में युक्ति तथा मुक्ति दे सकती है।

ऊदो कहने लगा कि यह तो उसके पास नहीं है। किसी को दुखी तो कर सकती है किन्तु सुख यहाँ पर कहीं नहीं है। तब बिश्नोइयों के कहने पर युक्ति मुक्ति लेने के लिये उनके साथ ही सम्भराथल पर आये। जम्भदेवजी के दर्शन किये। उनकी दिव्य वाणी का श्रवण किया और पाहल लेकर उन्नतीस नियमों को धारण करके नेण जाति का बिश्नोई बन गया। श्री देवजी के आशीर्वाद से अपार सुख का अनुभव हुआ। जिससे अनेक आरतियां व साखियों का गायन किया और प्रसिद्ध कवि हुऐ।

और वापिस जब अपने घर जाने लगा तो जम्भदेवजी से प्रार्थना करने लगा-कि हे प्रभु मैं अब वापिस कुछ समय के लिये अपने घर जाकर देखकर आना चाहता हूँ किन्तु जिसे मैं अपनी माँ मानकर सेवा-पूजा करता था वह तो माता नहीं निकली किन्तु कोई प्रेत है। जो माता के नाम से पूजा करवाता था। अब मैं घर जाऊँगा तो वह मुझे डरायेगा, हो सकता है मुझ पर कोप करके कुछ भी कर सकता है तब श्री देवजी नें उसे पाहल का लौटा देकर भेजा और साथ में यह शब्द भी सुनाया और कहा कि जब तुम्हें भय लगे तो इस महामंत्र को स्मरण कर लेना, तेरा भय निवृत्त हो जायेगा। विशेष कथा ''जाम्भा पुराण'' में पढ़ें।

सबद-97

ओ३म् विष्णु विष्णु तूं भण रे प्राणी, जो मन मांनै रे भाई।

भावार्थ-ओ३म् विष्णु इस महा मन्त्र का हे प्राणी! तूं बारंबार एकाग्र मन से जप करते रहो किन्तु केवल लोगों को दिखाने के लिये या किसी दबाव में आकर ऐसा दु:साहस नहीं करना यदि तेरा मन मानता हो, जप करने में राजी हो तो प्रेम भाव से ध्यान पूर्वक ही जप करना। ''यज्जपस्तदर्थ भावनम्'' जिसका भी जप किया जाता है तो उसकी भावना-ध्यान भी साथ साथ होना चाहिये। एक एक नाम बड़ी सावधानी से तथा एक मन एक दिल से लेना ही उत्तम कल्याणकारी होता है।

दिन का भूला रात न चेता, कांय पड़ा सूता आस किसी मन थाई।
तेरी कुड़काची लगवाड़ घणों छै, कुशल किसी मन भाई।

यदि कोई दिन का भूला-भटका रात्रि में घर आ जाये तो वह भूला हुआ नहीं कहा जा सकता। उसी प्रकार से यदि कोई युवावस्था में भटक जाये और दुष्कर्म करने लग जाये तथा वृद्धावस्था में भी यदि सचेत हो जाये तो यह जीवन सुधार सकता है। इसीलिये कहा है कि यदि कोई दिन का अर्थात् युवावस्था का भूला हुआ यदि रात्रि यानि वृद्धावस्था में भी सचेत न हो तो उसकी दशा तो शोचनीय ही होगी। हे प्राणी! तूं किस आशा से सोया पड़ा है। तुम्हारी रक्षा करने वाला कौन है। इस संसार में जीवन व्यतीत करते हुऐ सचेत नहीं हुआ तो फिर झूठी मोह-माया, तेरा-मेरा सम्बन्ध आदि लगवाड़ पीछे लगे हुऐ है। इतने पीछे लग जाने के बाद भी यदि तूँ अपनी कुशलता या आनन्द चाहता है तो फिर तेरी बहुत बड़ी भूल ही होगी।

हिरदै नाम विष्णु को जंपो, हाथे करो टवाई।

हृदय में परमात्मा विष्णु का नाम जपते हुऐ हाथों से शुभ कर्म करते रहो क्योंकि परमात्मा तो हृदय में निवास करता है ''ईश्वर सर्व भूतानां हृद् देशे अर्जुन तिष्ठति'' 'गीता' इसलिये जहाँ पर निवास करता है वहीं पर स्मरण करते हुए, मन को स्थिर करते हुऐ हाथों से शरीर से शुभ कार्य करोगे तो ''एक पंथ दो काज'' सिद्ध होगा।

हर पर हरि की आंण न मानी, भूला भूल जपी महमाई।
पाहन प्रीत फिटाकर प्राणी, गुरु बिन मुक्त न जाई।

हे ऊदा! तूने सांसारिक विषयो तथा भूत-प्रेतादिक की तो सदा ही आशा रखी और उनकी प्राप्ति के लिये सदा प्रयत्नशील रहा किन्तु हरि भगवान विष्णु की आंण-मर्यादा को स्वीकार नहीं किया। उनके द्वारा बताये हुऐ मार्ग को स्वीकार करके विष्णु का जप तो नहीं किया किन्तु स्वयं भूल में पड़कर अन्य लोगों को भूलावे में डालने के लिये महमाई का जप करता रहा। यह तो तुझे नहीं करना चाहिये था। इसलिये अब भविष्य में कभी भी पत्थर से या अन्य धातु से बनी मूर्तियों से प्रेम छोड़कर गुरु की शरण ग्रहण कर लेना चाहिये क्योंकि गुरु के बिना मुक्ति को प्राप्त नहीं कर सकता। इन पत्थर से बने महमाई, जोगणी, प्रेत, पिशाचादि की सेवा करेगा तो तुझे भी वैसा ही होना पड़ेगा।

पंच करोड़ी ले प्रहलाद उतरियो, जिन खरतर करी कमाई।
सात करोड़ी ले राजा हरिचंद उतरियो,तारा दे रोहिताश हरिचंद हाटो हाट बिकाई।

परम पिता परमात्मा विष्णु की मर्यादा का पालन करते हुऐ विष्णु का जप स्मरण सतयुग में प्रहलाद भक्त ने किया था तथा प्रहलाद ने अपने पिता हिरण्यकश्यपु के अन्याय का विरोध करके अपने पीछे अनेक अनुयायी बना लिये थे। वह प्रहलाद की खरी-सर्वश्रेष्ठ कमाई थी जिस वजह से अपने ही साथ में अपने ही सदृश भक्तजनों को जो पांच करोड़ थे उनको लेकर पार उतर गये। जन्म मरण के चक्कर से छूट गये तथा भगवान नृसिंह से अन्य बचे हुऐ अट्ठाइस करोड़ के उद्धार का वचन ले लिया था।

तथा त्रेता युग में सात करोड़ प्राणियों का उद्धार अपने साथ में सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र, तारा रानी एवं पुत्र रोहितास ने उसी परमात्मा विष्णु की शरण ग्रहण करके सत्य का पालन करते हुऐ किया था। उन्होंने सत्य की रक्षा के लिये अपना राज-पाट दान में देकर के काशी में जाकर आवाज देकर बिक गये थे तथा अनेकों कष्ट उठाने पर भी सत्य को नहीं छोड़ा अन्त में विष्णु परमात्मा ने स्वयं दर्शन देकर तार्थ किया, हरिश्चन्द्र के साथ ही सात करोड़ उनके अनुयायी को तारने का वचन दिया।

नव क्रोड़ी राव युधिष्ठिर ले उतरियो, धन धन कुंती माई।
बारा क्रोड़ समाहन आयो, प्रहलादा सूं वाचा कवल जु थाई।

द्वापर युग में राव युधिष्ठिर तथा अन्य चारों भाई व कुन्ती माता ने धर्म-मर्यादा का पालन अनेकों कष्ट उठाकर किया। उन्होंने सहनशीलता की मूर्ति बनकर सदा ही कष्ट उठाना स्वीकार किया, किन्तु सत्य धर्म को नहीं छोड़ा। उन्हीं माता कुन्ती को धन्य है जो ऐसे पुत्र उन्होंने तैयार किये ऐसे पुत्रों ने अपना उद्धार किया साथ में अपने अनुयायी नौ करोड़ अन्य जनों का मार्ग प्रशस्त किया। इसलिये कहा है ''यथा राजा तथा प्रजा'' जैसा राजा होता है वैसी ही प्रजा होती है।

गुरु जम्भेश्वर जी कहते हैं कि ऊदा अब तक उन तेतीस करोड़ में से बाहर तो नहीं पहुँच सके है किन्तु मैं नृसिंह रूप धारण करके तेतीस करोड़ को तो प्रहलाद से मिलवाने का वचन दे चुका था। उस वचन को पूर्ण करने के लिये मैं यहाँ पर आया हूँ। उन पार पहुँचे हुए इक्कीस करोड़ के साथ में इस समय इधर-उधर बिखरे हुए भूमण्डल के बारह करोड़ को सद्मार्ग का अनुयायी बनाऊँगा। यह मेरा कर्तव्य है, उन बारह करोड़ में तुम्हारा भी साथ होना संभव है।

किसकी नारी वस्त पियारी, किसका बहन रू भाई।
भूली दुनिया मर मर जावै, ना चीन्हों सुरराई।

इस दुनिया में लोग स्त्री, पुरुष, बहिन-भाई, वस्तु आदि को मेरा कहते है। किन्तु वास्तव में यदि देखा जाये तो कौन किसकी स्त्री है कौन किसका पुत्र है कौन किसके बहन और भाई है तथा धन है ये सभी कुछ ही दिनों के मेहमान है। सदा साथ रहने वाले नहीं है। यह जीवन अकेला ही संसार में आया था और अकेला ही जायेगा। इसी प्रकार यदि संसार में रहते हुऐ अकेला ही रहना सीख ले तो वह कभी भी दुखी नहीं हो सकता। भूल में पड़ी हुई दुनिया मर-मर के जा रही है तथा वापिस भी आ रही है। यह धन-दौलत परिवार यहाँ छूटता दिख रहा है फिर भी परमात्मा विष्णु का भजन नहीं करते, सदा संसार से ही चिपके रहते हैं।

पाहण नाऊं लोहा सक्ता, नुगरा चीन्हत कांई।

इस पत्थर से बनी हुई महमाई की मूर्ति से लोहा ज्यादा सक्त-मजबूत है। जिससे व्यवहार में प्रत्येक कार्य किया जाता है। हे नुगरे! यदि तुम्हें पत्थर पर ही मत्था पटकना है तो उस लोहे को आदर सत्कार दे, उसकी

पूजा कर, जिससे तुम्हारा कार्य सिद्ध होगा। यह पत्थर तुम्हारा कोई कार्य सिद्ध नहीं कर सकेगा।

★★★★

प्रसंग-53 अरिल-

एक समय इलोल देव कूं आवियो।
हाथ सूं झाल्यो पावड़ो, जमात पूछावियो।
के करो थे देव हम ही बतावो भेव, हम सोई करें।
परमात्मा करै सोई जीवां सूं कभी न होई, गंगा आयी थी भू परै।

दोहा

अब ही ल्यावो देवजी, गंगा केरी धार।
गई फेर आवै नहीं, याका सुणों विचार।
जम्भगुरु ऐसै कहै, आगे जाय न कोय।
सिद्ध थल असै भयो, अड़सठ तीर्थ तोय।

एक समय गुरु देव सम्भराथल पर विराजमान थे। संत भक्त पास में ज्ञान श्रवणार्थ बैठे हुए थे। उसी समय शांत वातावरण में जम्भदेवजी को इलोल आया अर्थात् विशेष आनन्द की उमंग आयी वहाँ से उठकर फावड़ा हाथ में ले लिया। उसी समय ही उपस्थित जन समुह ने पूछा कि हे गुरु देव! यह आपका इलोल निष्प्रयोजन नहीं हो सकता इसका कुछ कारण है तो हमें अवश्य ही बतलाइये? जैसा आप करना चाहते है वह कार्य हमें भी बतलाओ हम लोग बड़े ही हर्ष एवं खुशी से करेंगे।

तब श्री देवजी ने कहा-कि यह कार्य तुम्हारे वश का नहीं था क्योंकि इसी भूमि पर एक गंगा की धारा आयी थी। किन्तु अब तो वह चली गई है। जमाती जन कहने लगे हे देवजी! अब आप वापिस लाइये, हम लोग स्नान कर सके, इतनी दूर गंगाजी पर हमें जाना ही न पड़े। तब श्री देवजी ने कहा कि अब तो वह धारा चली गई है उसको वापिस लौटाना मुश्किल है किन्तु एक अन्य दूसरी गंगा, यमुना, सरस्वती की मिली हुई धारा भूमिगत होकर आ रही है वह सदा ही यहाँ से जमीन के अन्दर बहती रहेगी। यह ऐसा ही पवित्र सिद्ध थल है। यहाँ पर स्नान करने से अड़सठ तीर्थो का फल मिलेगा।

विशेष-इस समय सम्भराथल पर कूवा खुद चुका है। उसमें अथाह जल राशि है तथा गंगा जल सदृश ही जल मधुर भी है। गुरु श्री देवजी का वचन इस समय सत्य सिद्ध हो रहा है तथा वैज्ञानिकों का मत है कि सरस्वती की धारा जमीन से नीचे होकर बह रही है। जो अनेक धाराओं में विभक्त है तथा इसी मरू भूमि से होकर गुजरती है। महाभारत में आया है कि सरस्वती नदी उस समय में पुष्कर के उतर की तरफ से होकर गुजरती थी। वह यही सम्भराथल के आस-पास का भूभाग है, जहाँ पर पवित्र नदियां बहती थी। जम्भदेवजी ने उन भूमि गत नदियों का संकेत किया था वह आज सत्य सिद्ध हो रहा है।

सबद-98

ओ३म् जिहिं गुरु कै खिण ही ताऊं, खिण ही सीऊं।
खिण ही पवणा खिण ही पाणी, खिण ही मेघ मंडाणों।

भावार्थ–जिस गुरु परम पिता परमात्मा के प्रकृति अधीन है वे जैसा चाहे वैसा ही प्रकृति से कार्य ले सकते है ''प्रकृति स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्म मायया'' 'गीता' स्वकीय प्रकृति को वशीभूत करके मैं स्वयं ही अनेक रूपों में अवतरित होता हूँ। इसलिये यहाँ पर श्री देवजी कहते हैं कि प्रकृति हमारी इच्छा पर ही चलती है एक क्षण में तो कभी धूप कभी गर्मी आ जाती है तथा दूसरे क्षण में यदि हम चाहें तो सर्दी भी आ जाये तथा एक क्षण में कभी हवा रूक जाये तो दूसरे क्षण में पुनः हवा का झोंका आ जाये। इसी प्रकार से जल एवं वर्षा भी आ जाती है और चली भी जाती है। क्योंकि यहाँ पर कोई भी वस्तु विशेष टिकाऊ नहीं है, प्रत्येक वस्तु का अंश प्रति क्षण परिवर्तन शील है। इसलिये इस जगत को ''क्षणिक'' ऐसा कहा गया है।

कृष्ण करंता बार न होई, थलसिर नीर नीवाणों।

यदि कृष्ण परमात्मा की इच्छा हो तो प्रकृति के परिवर्तन में कुछ भी देर नहीं लगती। प्रकृति से विकृति सहज में ही आ जाती है। जिससे अनहोनी बात भी सहज में ही हो जाती है। जिस प्रकार से ऊंचा बालू कर धोरा–टीबा भी यदि कृष्ण की माया चाहे तो वहाँ पर तालाब हो सकता है तथा तालाब का ऊंचा मेरू हो सकता है। ऐसा हुआ भी है। इसलिये श्री देवजी कहते है कि गंगा भू पर आयी तो थी किन्तु दूसरे क्षण में लुप्त हो गई तथा भविष्य में फिर भी आ सकती है।

भूला प्राणी विष्णु जंपो रे, ज्यूं मौत टले जिरवाणों।
भीगा है पण भेद्या नांही, पाणी मांह पखाणों।

किसी भी क्षण में यह तुम्हारा शरीर समाप्त हो सकता है। इसलिये हे भूले हुऐ प्राणी! व्यर्थ के विवाद में न पड़कर विष्णु परमात्मा का जप स्मरण द्वारा एकता स्थापित करो। जिससे आने वाली अकाल मृत्यु टल जायेगी क्योंकि जब तुम विष्णु स्वरूप हो जाओगे तुम्हारे ऊपर मृत्यु का कुछ भी जोर नहीं चलेगा और यदि सदा क्षणिक मय संसार में रहोगे तो मृत्यु तुझे कभी भी उठा सकती है। वहाँ उसका पूर्ण अधिकार है।

तथा जप–स्मरण भी जल में पड़े हुऐ पत्थर की भांति करने से कुछ भी कार्य नहीं बनेगा। वह पत्थर ऊपर से तो भीग गया है किन्तु अन्दर गहराई तक जल नहीं पहुँचा है। उसी प्रकार से केवल ऊपर से तो भक्त या साधु का भेष बना लिया है हाथ में माला ले ली किन्तु हृदय के अन्दर से परमात्मा के प्राप्ति की पुकार नहीं उठी है। हृदय से कपट पूर्ण व्यवहार किन्तु ऊपर से तो भक्त का बाना तब उस पानी में पड़े हुऐ पत्थर के समान ही है। उससे कार्य की सिद्धि न हो सकेगी, वह तो आनन्द से वंचित ही रहेगा।

जीवत मरो रे जीवत मरो, जिन जीवन की विध जांणी।
जे कोई आवै हो हो कर, आप जै हुइये पांणी।

यदि कोई इस संसार में रहकर जीवन की विधि जानना चाहता है, जीवन की कला सीखना चाहता है, जिससे जीवन में आनन्द समृद्धि आ सके। श्री देवजी कहते हैं कि जीते जी मरना ही पड़ेगा। जीते जी कैसे मरा जा सकता है। या तो जीवन ही होगा या मृत्यु ही होगी दोनों एक साथ तो रह नहीं सकते। इसलिये हमें यह जीवन तो समाप्त नहीं करना है क्योंकि इस जीवन से ही कुछ प्राप्त कर सकते है। जीवत ही मृत्यु को प्राप्त करेगे तो हमें जीवन जीने की कला सीखनी है। हम किसको मार सकते है। हमारे पास मृत्यु के योग्य तो एक ही तत्व है जिसे हम अहंकार कहते है। उसी को मारा जा सकता है। यही मारने के योग्य भी है। इस अहंकार ने ही जीवन की तबाही की है। सभी उपद्रवों का मूल कारण यही अहंकार ही है। इसलिये इसे मार कर जीवन की

कला में प्रवीण हो सकते है।

अहंकार निवृत्त हो जायेगा तभी यदि आपके सामने कोई हो हो करके क्रोधित अवस्था में आपको मारने के लिये दौड़ पड़े तो आप जल के समान ठंडे हो जाइये। आने वाला क्रोधित अग्नि सदृश व्यक्ति सामने निरहंकारी जल सदृश ठण्डे व्यक्ति से टकराकर अग्नि सदृश क्रोध भी ठण्डा हो जायेगा। यही जीवन की विधि है।

जाकै बहुती नवणी बहुती खवणी, बहुती क्रिया समाणी।
जांकी तो निज निर्मल काया, जोय जोय देखो ले चढ़ियो अस्मानी।

''द्वन्द्वैर्विमुक्ता सुख दुख संज्ञैर्गच्छन्त्य मूंढ़ा पदमव्यय तत''''गीता' जो व्यक्ति सर्वथा मान, मोह रहित हो गया है। इन्द्रिय के दोषों को जीत लिया है। सदा अध्यात्म में ही रमण करता है, कामनाएँ निवृत्त हो चुकी है। राग, द्वेषादि द्वन्द्वों से निवृत्त हो चुका है वह सांसारिक सुख दुखों से उपर उठा हुआ व्यक्ति उस परम पद को प्राप्त होता है जहाँ पर जाने के बाद वापिस जन्म-मरण के चक्कर में नहीं आता। यही बात श्री देवजी कहते हैं कि अहंकार शून्य जो व्यक्ति हो जाता है तो उसके जीवन में अत्यधिक नम्रता आ जाती है। क्षमाशीलता भी उसमें स्वाभाविक हो जाती है। जिससे वह कभी किसी को कष्ट नहीं दे सकता किन्तु दया से आर्द्र होकर पीड़ितों की रक्षा ही करेगा तथा परम पवित्र क्रियाएँ जीवन में आ जाती है अर्थात् अपनी क्रियाएँ जीवन में आ जाती है। अर्थात् अपनी क्रिया द्वारा सदा परोपकार की भावना रखते हुऐ कार्य करेगा जिससे सभी का परम मित्र बन जायेगा। सभी में समाहित हो जायेगा।

उस महान व्यक्ति की काया अति निर्मल हो जाती है। किसी भी प्रकार का काया में दोष नहीं रह पाता तथा इस जीवन को सुखमय व्यतीत करते हुऐ अपने शुभ कर्मो को लेकर वापिस मुक्ति धाम को पहुँचेगा। कुछ कर्मो की पूंजी खर्च करके यहाँ पर आया था तथा जाते समय उससे अधिक ही लेकर जायेगा, उसका ही जीवन सफल है।

यह मढ़ देवल मूल न जोयबा, निज कर जंपो पिराणी।
अनन्त रूप जोवो अभ्यागत, जिहिं का खोज लहो सुरवाणी।

ये बड़े-बड़े महल, मठ, मन्दिर इनमें यथार्थ तत्व खोज सम्बन्धी कार्य नहीं होते। यहाँ तो स्थूल सांसारिक विषय वासना भरी वार्ताएँ ही होती है। इसलिये यहाँ मैं मूल नहीं देख रहा हूँ। यदि तुम्हें स्वयं का भला करना है तो अपने आप ही तुम्हें जप, उपासना, स्मरण, ज्ञान, ध्यान द्वारा ही प्रयत्न करना चाहिये। इस नाजुक कार्य को आपके लिये दूसरा कोई नहीं करेगा।

हे सुभ्यागत अभ्यागत! तुम तो इस संसार में अभी अभी आये हो, तुम्हें इस संसार की क्रिया कलापों तथा क्षणिकता एवं विशालता का पता नहीं है। मैं आदि-अनादि काल से ही इसका रहस्य जानता हूँ इसलिये मैं तुम्हें रहस्यमयी बातों से अवगत करवा रहा हूँ कि उस अनन्त रूप व्यापक परमेश्वर तत्व रूप की खोज करो। केवल किसी के कथन श्रवण मात्र से विश्वास नहीं कर लेना। यह विश्वास तुम्हें धोखा दे सकता है। कभी भी छोड़ सकता है। इसलिये उस परम तत्व की खोज करके साक्षात्कार अवश्यमेव कर लेना तथा उस परम तत्व की खोज के लिये तुम्हारे लिये वेदवाणी संस्कृत भाषा ही हो सकती है। उसी भाषा में सम्पूर्ण ज्ञान के भण्डार स्वरूप शास्त्र लिखे गये है। इसलिये इस आधार को पकड़ कर उस परम तत्व तक पहुँचा जा सकता है।

सेतम सेतूं जेरज जेरूं, इंडस इंडूं, अइयालो उरध जे खैणी।

स्वेदज जीव योनियां, स्वेद-पसीने से पैदा होने वाली जैसे जूं, खटमल, कृमि आदि तथा जेरज योनियां जेर से उत्पन्न होती है पशु मानवादि और इण्डज जीव अण्डे से उत्पन्न होते है। इसी प्रकार उद्भिज भी भूमि के अन्दर प्रगट होते है।

हे संसार के लोगों! सभी जीव योनियों की उत्पति, स्थिति, रहन-सहन भिन्न भिन्न तरीके से ही है तथा सभी में चेतन ज्योति स्वरूप से उस परमात्मा की ही सता है और ये सभी अपने अपने कर्मो के फल भोगने के लिये नाना शरीर धारण करते हैं। सुविज्ञ मानव को सदा ही इनसे उपर उठने के लिये प्रयत्नशील रहना चाहिये।

दोहा

सकल जमाती यूं कहै, सांभल त्रिभुवन देव।
थारी वार्ता थे जाणों, म्हे के जाणां देव।

जिहिं गुरु के खिण हि-इस शब्द को श्रवण करके जमाती पुनः कहने लगे कि हे देव आप तो त्रिभुवन के स्वामी हो, सदा सचेत रहकर जीवों की संभाल करते हो। इसलिये आपकी वार्ता तो आप ही जान सकते हो। हम आपकी वार्ता को महानता को, कैसे जान सकते है। क्योंकि हम तो अज्ञानी जीव है। हमारे पास ऐसी दिव्य शक्ति कहाँ है। यदि आप ऐसी कृपा करो तो हम भी कुछ समझने की योग्यता धारण कर सकते है। श्री देवजी ने सबद सुनाया-

सबद-99

ओ३म् साच सही म्हे कूड़ न कहिबा, नेड़ा था पण दूर न रहीबा।
सदा संतोषी सत उपकरणां, म्हे तजिया मान अभिमानूं।

भावार्थ-हे जिज्ञासु जनों! मैं आपके सामने सत्य सनातन जीवनोपयोगी बात ही कहता हूँ। मैं कभी भी अनुपयोगी झूठी व्यर्थ की बात नहीं बोलता। क्योंकि मुझे कुछ भी स्वार्थ नहीं है तथा जो भी घटनाएँ घटित होती है वह चाहे लौकिक हो या पारलौकिक हो वे सभी मेरे सामने ही घटती है मैं उनका अनुभव अति निकट से करता हूँ क्योंकि मैं सर्वत्र समाया हुआ हूँ। सांसारिक प्राणी भले ही मुझे नहीं देख सके किन्तु मैं तो देखता हूँ। इसलिये दूर नहीं रहता अति निकट का दृष्टा हूँ।

मैं सदा ही संतोषी हूँ अर्थात् मुझे कुछ भी नहीं चाहिये। मैं अपने आप में परिपूर्ण हूँ। ''आत्मन्यैव आत्मना तुष्टः स्थित प्रज्ञस्तदोच्यते'' 'गीता' तथा मैं सच्चा परोपकारी हूँ मेरा जो भी कार्य होता है वह सदा परोपकार के लिये होता है। मैंने मान, बड़ाई, कीर्ति तथा अभिमान छोड़ दिया है। इसलिये मेरे द्वारा जो भी कहा जायेगा वह परम सत्य ही होगा। व्यक्ति झूठ, कपट भरे वचन स्वार्थ तथा लोभ के वशीभूत होकर ही बोलता है। वे मेरे समाप्त हो चुके है। आप्त वाक्यं शब्दः ''आप्तस्तु यथार्थ वक्ता'' आप्त पुरुष द्वारा उच्चारण किया हुआ वाक्य ही शब्द प्रमाण होता है और यथार्थ वक्ता को आप्त पुरुष कहते हैं।

बसकर पवना बस कर पाणी, बस कर हाट पटण दरवाजो।
दशे दवारे ताला जड़ीया, जो ऐसा उस ताजों।

मैने प्राणायाम के द्वारा प्राण वायु को वश में कर लिया है। जब प्राण वायु वश में हो गई तो प्राणों से

जूड़ी हुई जो ऊर्जा शक्ति है उसे ब्रह्मचर्य कहते हैं वही जल रूप में स्थित ऊर्जा शक्ति को भी वश में कर लिया है ''पाताल को पाणी आकाश को चढ़ाय ले'' अर्थात् सदा ही नीचे को बहने वाली ऊर्जा शक्ति रूप ब्रह्मचर्य को ऊर्ध्वरित कर दिया है तथा इस शरीर रूपी हाट में स्थित प्रधान मन और उनकी सहायक इन्द्रियों को वश में कर ली है। प्राण, ब्रह्मचर्य शक्ति तथा मन इन्द्रियों का आपस में गहरा सम्बन्ध है। एक प्राण की डोरी खींचने से ये सभी पीछे अपने आप ही चले आते है। इसलिये सभी वशीभूत हो चुके है।

इसी शरीर में दो आंख, दो कान, दो नासिका, मुंह, गुदा तथा उपस्थ ये नौ दरवाजे तो प्रत्यक्ष तथा दसवां द्वार ब्रह्मरन्ध्र ये सभी बन्द कर दिये है। मैं ऐसा उस्ताद हूँ अर्थात् ऐसा कुशल योगी हूँ जो मनेन्द्रियादि परिवार को अपने उपर हावी नहीं होने देता किन्तु मैं उन पर हावी हो चुका हूँ।

दशे दवारे ताला कूंची, भीतर पोल बणाई।
जो आराध्यों राव युधिष्ठिर, सो आराधो रे भाई।

दसों दरवाजों को बंद करके ताला लगा दिया है और कूंची अपने पास में रख ली है। अर्थात् बाह्य सांसारिक विषयों की तरफ मन इन्द्रियाँ कभी नहीं जा सकती, बाहर जाने के साधन रूप दरवाजे बन्द हो चुके है। इससे आत्म ऊर्जा नष्ट न होकर एकत्रित होती है। मैनें भीतर ही पोल बना ली है बहिर मुखी मन को अन्तर्यामी बना दिया है। अब वह अन्तर स्थित पोल-शून्य में ही रमण करता हुआ आत्मानन्द का अनुभव करता है। इसलिये अन्तर रमण करने के लिये राजी भी हो चुका है। जिस प्रकार से सत्य धर्म पर चलने वाले युधिष्ठिर ने अराधना की थी वही आराधना आप भी कीजिये अर्थात् युधिष्ठिर ने जिन कठिन परिस्थितियों में भी धर्म के मार्ग को नहीं छोड़ा था क्योंकि उन्होंने भी इसी योग मार्ग को अपनाया था। उसी प्रकार आप भी सामान्य गृहस्थी कार्य का समुचित पालन करते हुऐ भी इस सहज योग के मार्ग को अपना सकते है।

जिहिं गुरु कै झुरैन झुरबा, खिरै न खिरणा, बंक तृबंकै।
नाल पै नालै, नैणे नीर न झुरबा, बिन पुल बंध्या बांणों।

अन्य सांसारिक जनों की जो ऊर्जा शक्ति नीचे की ओर सदा ही झरती है। वह कुशल योगी गुरु के नहीं झरती तथा सदा ही भोग विलास के समय सामान्य जनों की ऊर्जा नष्ट होती है। वह योगी पुरुष के नष्ट नहीं होती क्योंकि योगीजन प्राणायाम द्वारा कुण्डली शक्ति को जागृत करके सदा नीचे की ओर बहने वाली शक्ति को बंक अर्थात् मेरू दण्ड स्थित टेढ़ी नाड़ी के द्वारा ऊर्ध्व गमन करते है। वही शक्ति तृबंके यानि त्रिकुटी आज्ञा चक्र में जब पहुँच जाती है तो वहाँ पर सहस्रार चक्र से होने वाली अमृत वर्षा के साथ मिलाप हो जाता है तभी योगी को दिव्यानन्द का अनुभव होता है। साखी में ऊदोजी ने कहा भी है-

दुर्लभ देशा गरजियो बूठो घट घट मांह, बाहर थांते उबरियां भीगा मन्दिर रे मांय।
छान पुराणी छज नवों चुंय चुंय पड़े मजीठ, लाखों इण पर चेतियां जाय बसिया वैकुण्ठ।

प्रथम तो दूर देश ब्रह्मरन्ध्र में गर्जना होती है पश्चात् अमृत की वर्षा प्रत्येक शरीर धारी के अन्दर होती है तथा जिनकी वृत्ति अन्दर होती है वह अमृत वर्षा से भीग जाता है क्योंकि यह आत्मा रूपी छान तो प्राचीन है और शरीर रूपी छत नया ही लगा है इसमें से बूंद बूंद रूप से अमृत वर्षा होती है। इस बात पर लाखों आदमी सचेत हुऐ है और अमृत तत्व को प्राप्त किया है।

आज्ञा चक्र में जब ऊर्जा शक्ति पहुंच जाती है वहाँ पर अति आनन्द की दशा को योगी परम लक्ष्य नहीं मानते।

उससे भी आगे सुषुम्ना नाड़ी से आगे की ओर बढ़ते है तो योगी साधक समाधिस्थ हो जाता है। वही अन्तिम लक्ष्य होता है। फिर कभी दु:ख नहीं आता है। आँखों से आँसू नहीं बहाया जाता। वहाँ पर शून्य मण्डल में योगी समाधिस्थ हो जाता है तो विना ही किसी सहारे के वहां वृति यानि ऊर्जा स्थिर हो जाती है। वहाँ अन्य किसी प्रकार का सांसारिक आधार नहीं होता, वहाँ तो केवल एक शुद्ध आत्मा ही रह जाती है। कहा भी है ''म्हे शून्य मण्डल का राजूं।''

तज्या अलिंगण तोड़ी माया, तन लोचन गुण बाणों।
हालीलो भल पालीलो सिध पालीलो, खेड़त सूना राणों।

गुरु जम्भदेवजी कहते हैं कि जो योगी समाधिस्थ हो जाता है। उसकी मोह माया तथा उसमें होने वाला बन्धन टूट जाता है। इसलिये मेरे को कोई बन्धन नहीं है। यह शरीर एवं नेत्रादि इन्द्रियाँ संसार जनित दुखों से निवृत होकर दोष रहित हो जाती है। ये सदा ही गुण ग्राहक तथा सदाचारी वृति को धारण कर लेती है, उनके द्वारा जो भी देखा या सुना जायेगा, वह परम दिव्य ही होगा।

हे हाली, हे पाली, हे सिद्ध! आप लोग ऐसी ही खेती रूप साधना करो। जिससे यथा शीघ्र सफलता मिल सके। ऐसी खेती के लिये आपको शून्य जंगल में जहाँ पर हरिण मयूर आदि पशु पक्षी खेती को न खा सके, वहीं पर जाकर खेती करनी होगी अर्थात् साधक के लिये एकान्त प्रदेश में जाकर जहाँ पर किसी प्रकार की बाह्य विघ्न बाधाऐं न आये और विचारों के प्रवाह से भी शून्य होना पड़ेगा, तभी यह साधना संभव हो सकेगी।

★★★★

प्रसंग-54 दोहा

एक राजा तब आयकै, ऐसी कही जो बात।
अर्थ दर्ब वाहन घणां, सुनिये सतगुरु बात।
दान पुण्य नीकै करे, सो क्यूं समझे देव।
अब तो सतगुरु दाखबो, जो पावा म्हे ही भेव।

एक राजा ने जम्भदेवजी से कहा कि हे सतगुरु देव! मेरे पास अन्न, धन, द्रव्य, घोड़ा, वाहन तो बहुत है तथा मैं दान-पुण्य भी बहुत ही करता हूँ, इसका क्या फल हो सकता है। आप कृपा करके बतलाओगे तो हमें कुछ भेद मिलेगा। आगामी मार्ग का पता चल सकेगा कि मुझे क्या करना है और क्या छोड़ना है। तब श्री देवजी ने उनके प्रति सबद सुनाया-

सबद-100

ओ३म् अर्थूं गर्थूं साहण थाटूं, कूड़ा दीठा ना थाटों।
कूड़ी माया जाल न भूलीरे राजेन्द्र, अगली रही ओजूं की बाटों।

भावार्थ-धन-दौलत, हाथी, घोड़ा, बहुत ही सेना का ठाट बाट ये सभी हे राजन्! ठाट नहीं है, सभी झूठे है। मैंने अपने अनुभव से जाना है इसलिये समझी-जानी हुई बात मैं तुझे बतला रहा हूँ। यह जो कुछ भी तुम्हें ठाट बाट सत्य दिखाई दे रहा है वह सभी कुछ झूठा माया जाल है। यदि भूल गया सचेत न रहा तो इस माया

जाल में फंस जायेगा। एक बार यदि फंस गया तो फिर कभी भी निकल नहीं सकेगा। यह माया जाल तुझे सदा ही सत्य मार्ग से दूर हटा देगी। इसलिये इस माया जाल से सदा सचेत रहकर दूर ही रहना। इस माया को अपने उपर हावी नहीं होने देना। तुम स्वयं इसको दासी बनाकर रखना न कि तुम स्वयं दास बन जाओ।

नव लख दांताला बार करीलो, बार करे कर बंद करीलो।
बंद करै कर दान करीलो, दान करै कर मन फूलीलौ।

हे राजन्! यदि आप लोग नौ लाख बड़े बड़े दांत वाले हाथियों को घेरकर इकट्ठे करो और उन्हें बांधकर काबू में करो। जब वे पूर्णतया आपके अधिकार में आ जाये, शिक्षित हो जाये तब उनको दान में दे दो इतना बड़ा भारी दान करके मन में प्रफुल्लित हो जाओ। यह दान की पराकाष्ठा होगी। यहाँ पर पहुँच जाने पर मन तो प्रफुल्लित हो सकता है किन्तु आत्मा प्रफुल्लित नहीं हो सकेगी अर्थात् आत्मा का साक्षात्कार नहीं हो सकेगा। दान से तो लौकिक कीर्ति ही हो सकती है।

तंत मंत बीर बेताल करीलो, खायबा खाज अखाजूं।
निरह निरंजन नर निरहारी, तऊ न मिलबा झंझा भाग अभागूं।

तथा च-यदि आप आत्म शांति के लिये तंत्र मंत्र, बावन प्रकार के बीरों की सेवा पूजा, बेताल, भूत, प्रेतों की आराधना करते रहो और अखाद्य मांसाहारी भोजन खाते रहोगे तो तुम्हें कभी भी निरह, निराधार, निरंजन, माया रहित, नर श्रेष्ठ, अवतार धारी तथा निराहारी अभोक्ता परमपिता परमेश्वर तो आप जैसे अभागे लोगों को नहीं मिल सकता। आप लोग केवल सांसारिक कीर्ति कुछ व्यक्तियों के द्वारा हासिल कर सकते हो। किन्तु इतने परिश्रम के बावजूद भी आपको फल अल्प ही मिल सकेगा और यही परिश्रम यदि थोड़ी समझदारी से किया जावे तो महान फल-अमर पद भी प्राप्त हो सकता है।

★★★★

प्रसंग-55 दोहा

शुभ दिन देख विचार कै, नीकै करिये दान।
तब ब्राह्मण ऐसे कह्यो, पुन तीर्थ अमावस जान।
साथरियां ऐसे कह्यो, ब्राह्मण वरण्यो दान।
सुन सतगुरु नहचै हुवै, सतगुरु याका करो बखान।

सम्भराथल पर संत साथरियाँ बैठे हुऐ दान के विषय में विचार कर रहे थे। उसी समय ही एक ब्राह्मण वहाँ पर आया और उसने बीच में ही बात काटकर कहा-यदि किसी को दान देना हो तो पहले शुभ दिन, वार, नक्षत्र का विचार करना चाहिये। उसके बाद तीर्थों में जाकर अमावस्या व पूर्णमासी, सक्रान्ति आदि शुभ दिनों में ब्राह्मण को दान देना चाहिये जिससे पुण्य अधिक होता है इस प्रकार से ब्राह्मण के वचनों को सुनकर संत साथरियाँ जम्भदेवजी के पास आये और कहने लगे कि इस ब्राह्मण ने हमको इस प्रकार से दान का महात्म्य बतलाया है, आप हमें सही मार्ग का निर्देश दीजिये जिससे भ्रम की निवृति हो सके। तब श्री देवजी ने यह सबद सुनाया-

सबद-101

ओ३म् नितही मावस नित संकराति, नित ही नवग्रह वैसें पांति।
नितही गंग हिलोले जाय, सतगुरु चीन्हैं सहजै न्हाय।

भावार्थ-जब सूर्य और चन्द्रमा एक ही राशि में आ जाते हैं और जब तक एक ही राशि में रहते है तब तक अमावस्या होती है। सूर्य के प्रभाव से चन्द्र लुप्त प्रभाव हीन हो जाता है। इसलिये उपवास का विधान किया है तथा शुभ कार्यो के लिये पवित्र दिन माना गया है यह संयोग एक महीने में आता है। किन्तु यहाँ पर जम्भदेवजी कहते हैं कि नित्य ही अमावस्या है तथा एक राशि से दूसरी राशि में सूर्य संक्रमण काल को सक्रान्ति कहते हैं। सूर्य एक महीने तक एक ही राशि में रहता है यह पुण्य काल भी एक महीने पश्चात् ही आता है। परन्तु यहाँ पर नित्य ही संक्रान्ति बतलाया है और रवि, सोम, मंगल, बुध, गुरू, शुक्र, शनि और राहु केतु ये सदा ही एक साथ नहीं आ सकते। इनका भी अपना अपना काल निश्चित है परन्तु श्री देवजी कहते है कि ये भी नित्य पंक्ति लगाये बैठे रहते हैं। साधक के उपर अपना प्रभाव नहीं जमा सकते तथा गंगा भी मरूप्रदेश से बहुत दूर है बड़ी कठिनाई से पहुँचा जा सकता है, वह भी कभी कभी लेकिन यहाँ पर बतलाया है कि गंगा भी हिलोरें नित्य ही लेती है।

ये सभी अमावस्या संक्रान्ति, नवग्रह तथा गंगा जी उसी के लिये सुलभ है तथा नित्य आनन्द देने वाले पर्व है जो सदा ही सतगुरु परमात्मा को पहचान करके उनमें एकाग्र वृति से स्मरण करता हुआ तल्लीन हो जाये और उसमें ही उस परमानन्द का दिव्य स्नान करता हो, उनके लिये न तो अमावस्या की प्रतीक्षा करनी होगी और न ही संक्रान्ति गंगा आदि की ही। वह तो सदा ही स्नान करता ही है। ऐसा स्नान ही परम दिव्य तथा नित्य होता है।

निरमल पाणी निरमल घाट, निरमल धोबी मांड्यो पाट।
जे यो धोबी जाणै धोय, घर में मैला वस्त्र रहै न कोय।

पीछे की पंक्तियों में स्नान करना बतलाया था। अब आगे यह बतला रहे हैं कि स्नान करने के लिये साधन रूप जलादि क्या हो सकते है। बाह्य शरीर का स्नान तो जल से किया जा सकता है। किन्तु अन्दर के शरीर-अन्त:करण का स्नान उमंग की तरंगों से किया जा सकता है। जिस प्रकार से जल में तरंगें उठती है उसी प्रकार से हृदय में भी आनन्द की तरंगें उठती है। वही जल आन्तरिक स्नान के लिये उपयुक्त है तथा यह स्थूल शरीर ही अन्दर प्रवाहित होने वाली नदी का घाट है। इसलिये सर्वप्रथम यह शरीर रूपी घाट ही परम पवित्र होना चाहिये तथा इन आत्मा को आच्छादन करने वाले वस्त्र रूपी जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या मत्सर्य आदि को धोने वाली बुद्धि रूपी धोबी ने परम पवित्र होकर हृदय रूपी पाट मांड दिया है।

यदि बुद्धि रूपी धोबी वस्त्रों को धोना जानता हो तो अपने घर रूपी आत्मा में किसी प्रकार का मैला वस्त्र काम क्रोधादि नहीं रह सकते। इस काम के मेल को काट देगा तो वह परिवर्तित होकर निष्काम हो जायेगा। क्रोध रूपी मेल कट जाने से वह शांत हो जायेगा। लोभ रूपी मैल कट जायेगा तो वह संतोषी हो जायेगा। मोह कट जाने से वह निर्मोही हो जायेगा तथा राग द्वेष रूपी मेल कट जायेगा तो उसमें समता का भाव आ जायेगा। इस प्रकार से बुद्धि रूपी धोबी वस्त्रों को धोकर परम पवित्र बन सकता है।

एक मन एक चित साबण लावै, पहरंतो गाहक अति सुख पावै।

इन वस्त्रों को धोने के लिये धोबी के पास मैल काटने वाली साबुन भी तो चाहिये। वह विवेक ही साबुन है। जिस प्रकार साबुन मेल काटकर शुद्ध पवित्र करती है, उसी प्रकार विवेक भी सत्य असत्य का निर्णय करके असत्य स्थूल का तो परित्याग करवा देता है और सत्य को ग्रहण करवा देता है। इसलिये कहा है चित तथा मन को एकाग्र करके विवेक करें इस विवेक से ही सत्य असत्य का निर्णय हो सकेगा। ऐसी साबुन यदि कोई लगाता है तो निश्चित ही कामादि मैल छूट जायेंगे, ये ही आत्मा को आच्छादित करते हैं। वस्त्र की तरह ढ़के हुऐ रखते है इनकी निवृति होते ही आत्म दर्शन हो जायेगा। शुभ्र वस्त्रों का यानि सद्गुणों का समागम हो जाता है। जिसे धारण करने से जीवात्मा अत्यधिक आनन्द को प्राप्त होती है इस प्रकार के स्नान से ही वस्त्रो तथा शरीर का मैल काटा जा सकता है।

ऊंचै नीचे करै पसारा, नही दूजै का संचारा।
तिल में तेल पहुंप में वास, पांच तंत में लियो प्रकाश।

गीता में कहा है कि ''दिव्य ददामि ते चक्षु पश्य में योग मैश्वरम्'' भगवान ने जब अर्जुन को दिव्य नेत्र प्रदान किये, तब उसने विराट् रूप देखा था। उसी प्रकार से जब साधक स्नातक हो जाता है हृदय की आनन्द की उमंगों में स्नान करता हुआ जब बाह्य यदा कदा दृष्टि फैलाता भी है तो जहाँ तक दृष्टि का पसारा होता है वहाँ तक उसी परमात्मा का ही संचार दिखाई देता है। वह ऐसी अवस्था आ जाती है जो योगी की दृष्टि को परमात्मा मयी बना देती है। परमात्मा के परम धाम से लेकर नीचे पाताल पर्यन्त एक ही परमात्मा की ज्योति का दर्शन होता है। उसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं दिखता ''जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि।''

जिस प्रकार से तिलों में तेल रहता है और फूलों में सुगन्धि रहती है उसी प्रकार से इन स्थूल पांचों तत्वों में भी परमात्मा की ज्योति का प्रकाश है। जिस प्रकार तिल में तेल फूल में सुगन्धि दिखती नहीं है, अनुभव का विषय बनती है, उसी प्रकार से वह परमात्मा सर्वत्र समाया हुआ होने पर भी दृष्ट नहीं होता किन्तु अनुभव का विषय हो सकता है।

बिजली कै चमकै आवै जाय, सहज शून्य मैं रहै समाय।
नै यो गावै न यो गवावै, सुरगै जाते बार न लावै।

इस शरीर में जीवात्मा का प्रवेश बिजली की तरह ही होता है। जिस प्रकार से बादलों में एक क्षण में तो बिजली चमक जाती है यानि प्रगट होकर दीख जाती है दूसरे ही क्षण में पुनः छुप जाती है। उसी प्रकार से यह जीवात्मा भी शरीर में एक क्षण में तो प्रवेश कर जाती है और दूसरे ही क्षण में निकल भी जाती है तथा जो नित्य ही उमंगों में स्नान करता है जो परम ज्ञानी हो चुका है उसकी आत्मा शून्य ब्रह्म में ही लीन हो जाती है। वह जन्म मृत्यु के चक्कर से छूट जाता है।

दूसरा अर्थ-जब साधक साधना में लीन हो जाता है उस प्रारम्भ की दशा में कुछ समय तक तो मनोवृतियां बिजली की तरह ही होती है। जब वे निरोध अवस्था में होती है तब तो एक क्षण के लिये आत्म साक्षात्कार परम ज्योति का दर्शन होता है किन्तु दूसरे ही क्षण में वृति का उत्थान हो जाता है। तो पुनः अन्धकार आ जाता है। बिजली की भांति ही चितवृतियां चंचल होती है। किन्तु अभ्यास की तीव्रता से जब वृतियों का निरोध हो जाता है तो सहज रूप से ही शून्य ब्रह्म में समाहित हो जाती है। ऐसी परमावस्था को प्राप्त हुआ साधक

योगी फिर मौन हो जाता है। कहा भी है -''बाल्यं पाण्डित्यं निर्विद्य मुनि मौनं भवति।''

सर्व प्रथम चंचल बाल्य अवस्था आती है। तत्पश्चात् साधना द्वारा पाण्डित्य विद्वता आती है तथा अन्त में इन दोनों को ही छोड़कर तीसरी अवस्था में मुनि मौन हो जाता है। न तो वह किसी के गुणों अवगुणों का बखान ही करता है और न ही किसी से अपने लिये करवाता है। ऐसा व्यक्ति ही स्वर्ग सुख अर्थात् मुक्ति को प्राप्त करते हुऐ देर नहीं करता। उनके लिये मुक्ति अति सुलभ हो जाती है।

सतगुरु ऐसा तत्व बतावै, जुग जुग जीवै बहुर न आवै।

सतगुरु परमात्मा स्वयं विष्णु ही आपको ऐसा तत्व आत्मोपलब्धि का उपाय बतला रहे हैं। जो इस तत्व को प्राप्त कर लेगा, वह युगों युगों तक जीवित रहेगा। वह कभी मरता नहीं है।उसकी आत्मा सहज ही में शून्य ब्रह्म में लीन हो जाती है। तो फिर मरने का तो सवाल ही पैदा कहाँ होता है। वह युगों युगों तक जीवन धारण करता हुआ फिर यहाँ मृत्युलोक में शरीर धारण करके नहीं आयेगा।

★★★★

प्रसंग-56 दोहा

एक विश्नोई आय कै, पूछै भेद विचार।
बेटा बेटी कुटुम्ब सूं, मोह न छूटै लिंगार।
घर मांही मुक्ति होवै, सो तुम कहो मुरार।
बूढ़े ऐसे बूझीयो, जीव का करो उद्धार।

बूढ़े खिलेरी ने एक समय सम्भराथल पर श्री देवजी से पूछा कि हे देव! मेरा बहुत ही लंबा चौड़ा परिवार है। कुटुम्बी जनों से मेरा मोह हो चुका है अब छूट नहीं रहा है। यदि इस प्रकार से मोह में जकड़े हुऐ प्राण निकल गये तो फिर जन्म-मरण के चक्कर में आना पड़ेगा किन्तु मैं मुक्ति चाहता हूँ। इस मोह के रहते हुऐ कैसे संभव है, घर बैठे ही मेरी मुक्ति हो जाये, ऐसा उपाय बतलाइये तब श्री देवजी ने सबद सुनाया-

सबद-102

ओ३म् विष्णु विष्णु भण अजर जरीजै, धर्म हुवै पापां छूटीजै।

भावार्थ-हे मानव! यदि तूँ घर में रहते हुऐ अपना कल्याण चाहता है तो परम पिता परमात्मा को परम प्रिय ''ओम्-विष्णु'' इस नाम के द्वारा हर क्षण स्मरण कर तथा तुम्हारे हृदय में बैठे हुऐ जो काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि सभी अभी जले नहीं है। किन्तु तुम्हें दिन-रात दुखी कर रहे हैं। उनको ज्ञान अग्नि द्वारा जला दे ''ज्ञानाग्नि सर्व कर्माणि भस्मसात् कुरूतेअर्जुन:'' इससे तुम्हारे भीतर धर्म की राशि एकत्रित होगी और वह राशि पापों के ढ़ेर को काट देगी, क्योंकि धर्म के सामने पाप कभी टिक नहीं सकते।

हरि पर हरि को नाम जपीजै, हरियालो हरि आण हरूं, हरिनारायण देव नरूं।

हरि विष्णु का नाम पापों को काटने वाला है, इसलिये बारंबार हरि का नाम जपते रहो। यानि जप तो इस तरह किया जावै ताकि बीच में व्यवधान उत्पन्न नहीं हो सके। अन्य कोई संस्कार बीच में न आ सके। यदि नाम जप करते हुऐ अन्य वासनाएँ बीच में आ गई तो नाम की शृंखला तोड़ देगी और इस प्रकार बार बार टूटती ही रहेगी तो नाम का धन बहुतायत से इकट्ठा नहीं हो सकेगा, तो फिर पाप कैसे कटेंगे।

हरि परमात्मा विष्णु की प्राप्ति तो नाम जप या अन्य साधना के द्वारा करना श्रेयस्कर है और यही जीवन का उद्देश्य है तथा मानव जीवन का फल है। इस आनन्द मय अवस्था तक पहुँचने के लिये ''हरि आण'' यानि हरि की माया से ऊपर उठना होगा, यह माया बहुत ही लुभावनी है। हरि तक पहुँचने नहीं देती। अपना जाल फैला रखा है यह जाल दूर से ही देखने में भले ही सुहावना लगे किन्तु असावधानी के कारण मानव इसमें फंस जाता है। इसमें थोड़ा सा सुख दिखाई देता है यह भी भ्रम मात्र ही है। परमात्मा का सुख ही माया में सुख झलकता है। वह माया का अपना नहीं है इसलिये ''हरि आण हरूं'' माया त्याज्य है, परमानन्द प्राप्य है और वही परमात्मा ही हरि तथा नारायण नाम से कहा जाता है। वही देवताओं में श्रेष्ठ है। उसी प्रकार जब मानव रूप धारण करते हैं तो मानवों में भी अति उत्तम है।

आशा सास निरास भइलों, पाइलों मोक्ष द्वार खिणूं।

प्रति क्षण परिवर्तनशील आशाएँ जो श्वांस प्रश्वांस के साथ बदलती रहती है। ये सभी आशाएँ पूर्ण तो हो नहीं सकती ''आशा पाश शतैर्बद्धा: काम क्रोध परायणा'' ''गीता'' काम तथा क्रोध के परायण मानव सैकड़ों आशाओं की पास में बंधा हुआ रहता है। इनमें से कोई एक आशा की पूर्ति हो जाती है तो उसकी जगह असंख्य आशाएँ और आकर जम जाती है। इसलिये इन व्यर्थ की आशाओं से निरास होना पड़ेगा। निराशा ही मुक्ति है। वह चाहे जीवन जीते ही आ जाये या फिर मृत्यु के अवसर पर आ जाये। इसलिये आशा ही दुखमय बन्धन है और निराशा ही सुखमय मुक्ति है।

★★★★

प्रसंग-57 दोहा

ऐसो झगड़यो देख के, उन्ह लीन्हों मन मार।
ताकै उरमी क्या करै, हृदै ज्ञान आगार।
प्रांत: भयो हरि पै गयो, पाय जु प्रशे ईश।
इन मन में ठहराइयों, सबद कह्यो जगदीश।

मूला पुरोहित जम्भदेव जी का परम शिष्य था। यदा कदा सम्भराथल पर दर्शनार्थ आया करता था तथा कुछ दिनों तक रहकर साधना करता था। एक समय कुछ दिन पश्चात् घर पर पहुँचा तो अपनी स्त्री तथा अपनी बहन के पुत्र भानजे को आपस में झगड़ते हुऐ देखा। मूले ने ही अपनी बहन की मृत्यु के पश्चात् भानजे को पाल-पोश कर बड़ा किया था तथा घर का उतराधिकारी बना दिया था परन्तु इस समय की गृह कलह से मूला तंग आ चुका था क्योंकि वह तो रोज का ही धन्धा बन चुका था। वहाँ पर तो दोनों को जैसे-तैसे शांत किया उनसे कुछ भी कहा नहीं दूसरे दिन प्रात:काल ही मूला फिर सम्भराथल पर आया। जम्भदेवजी को प्रणाम किया और पास में बैठकर अपनी कहानी सुनाई भी नहीं थी कि श्री देवजी उसकी भावना समझ कर उनके प्रति यह सबद सुनाया-

सबद-103

ओ३म् देख्या अदेख्या सुण्या असुण्या, क्षिमा रूप तप कीजै।
थोड़े मांहि थोड़ेरो दीजै, होते नांहि न कीजै।

भावार्थ–हे मूला! अब तुम सांसारिक जीवन व्यतीत कर चुके हो और वृद्धा अवस्था का यह अध्यात्म जीवन प्रारम्भ कर चुके हो। इस अवस्था में आकर तुम्हें संसार के लोगों की चिंता नहीं करनी चाहिये। अब तुम्हारे अन्दर वह शक्ति नहीं है। जो तुम अन्याय का विरोध कर सको। इसलिये जो कुछ भी अन्याय देखते हो तो उसका विरोध न करो, अदेख्या कर दो तथा निंदा व झूठ कपट भरे अथवा स्तुति भरे वचनों को सुनते हो। असुण्या कर दो। यही देखना व सुनना ही तुम्हें नरक की तरफ ले जाने वाला है क्योंकि इनमें से ही गुण अवगुण भलाई बुराई अन्दर प्रवेश करती है। इसलिये अब तो तुम्हारे लिये क्षमा रूप तपस्या ही सर्वश्रेष्ठ साधन है।

''तेरे भावै कुछ करै, भलो बुरो संसार, नारायण तूं बैठकर अपनों भवन बुहार''

तुम्हारे पास यदि अधिक नहीं है तो भी आये हुए याचक को न मत कहो। यदि थोड़ा है तो थोड़ा ही देना चाहिये। देने के लिये तुम्हारे पास बहुत धन है। वह धन कई तरह का हो सकता है। जैसे विद्या, करूणा, दया, दान, ध्यान, ज्ञान, द्रव्य, रूपये आदि ये सभी देय वस्तु है। ये देने से घटते नहीं है। किन्तु बढ़ते रहते है।

कृष्ण मया तिहूं लोका साक्षी, अमृत फूल फलीजै।
जोय जोय नांव विष्णु के दीजै, अनन्त गुणा लिख लीजै।

परमात्मा श्री कृष्ण हमें देना ही सिखाते हैं। उन्होंने हमें सभी कुछ दिया है हमसे लिया कुछ भी नहीं है। उसी प्रकार से तुम देना सीखो। श्री कृष्ण सर्वप्रथम दान स्वरूप अपनी माया को अपने से पृथक् कर देते हैं और उस माया को सृष्टि रचने का आदेश देते हैं। वह माया ही एक से अनेक होती हुई संसार के रूप में परिवर्तित होती है तथा अमृत होकर फूलती फलती है। यह सभी कुछ फैलाव कृष्ण का ही है। सीधा प्रसारित न होकर अपनी माया के माध्यम से होता है। इतना होने पर भी सवयं साक्षी बना रहता है। वह कौतुकी होते हुऐ भी स्वयं माया से उपर रहता है। सभी को देखता हैं ऐसा दान परमात्मा का है।

इसलिये हे मानवों! आप भी कुछ न कुछ देना सीखो। इसी लेन देन से ही संसार का व्यवहार चलता है किन्तु देते समय अहंकार की भावना आ गई तो तुम्हारा दान व्यर्थ हो जायेगा। इसलिये विष्णु परमात्मा को अर्पण करके दिया हुआ ही सफल होता है। वही आगे जाकर कृष्ण की माया की तरह ही अमृत फूल फल वाला होकर अनन्त गुणा हो जाता है। ''दान सुपाते बीज सुखेते, अमृत फूल फलीजै'' इसलिये बाह्य अवगुणों को धारण न करते हुऐ विष्णु के अर्पण करके कुछ न कुछ देते रहना ही मुक्ति का परम साधन है।

★★★★

प्रसंग-58 दोहा

विश्नोई बिजनौर को, अर्ज करी उण आय।
छै धड़ी सोनों तबै, चाड़रू लागे पाय।
तब साहूं ऐसै कह्यो, बकसै शील सिनान।
देव कहै पुन अधिक है, कहो किते अनुमान।
तीन लोक लो पुन करे, आंख न लाधै एक।
रतन काया सहनाण यहै, यांको इहे विवेक।

एक बिजनौर नगर का बिश्नोई गुरु जम्भेश्वर जी के पास सम्भराथल पर पहुँचा। पहले तो हाथ

जोड़कर प्रार्थना की तथा छः धड़ी सोना गुरु महाराज के चरणों में रखकर कहने लगा -हे देव! मैं ठण्डे प्रदेश का रहने वाला हूँ। सर्दियों में स्नान करना बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है तथा मेरा कार्य सुनार का है। आप जानते ही है कि सुनार कार्य में सच्चाई ईमानदारी चलनी कठिन हैं इसलिये मुझे आप इस स्नान और शील नियम पालन के लिये बाध्य न करो। ये तो मेरे से पालन होते नहीं और सभी नियमों का पालन मैं करूँगा। इस नियम के बदले में आप यह सोना स्वीकार कीजिये। तब श्री देवजी ने कहा-कि इस स्वर्ण दान का कितना पुण्य तूँ समझता है अर्थात् शील स्नान से ज्यादा पुण्य इस दान का कदापि नहीं हो सकता। परमात्मा ने यह रत्न सदृश काया दी है। बड़ी ही अमूल्य है। यदि कोई तीनों लोकों को भी दान में दे दे तो भी एक आँख नहीं मिल सकती। जो परमात्मा ने दी है। वही अनुपम है और यदि वह चली गयी तो फिर किसी भी दान से मिलना असंभव है। इसलिये इस शरीर के नियमों में कटौती दान देकर नहीं की जा सकती। इसी सम्बन्ध में यह सबद सुनाया-

सबद-104

ओ३म् कंचन दानों कछु न मानूं, कापड़ दानूं कछु न मानूं।
चोपड़ दानूं कछु न मानूं, पाट पटंबर दानूं कछु न मानूं।

भावार्थ-स्वर्ण के दान को मैं कुछ नहीं मानता, कपड़े के दान को भी कुछ नहीं मानता, घी, तेल आदि के दान को कुछ नहीं मानता तथा सामान्य वस्त्र से लेकर बड़े बड़े कीमती रेशमी वस्त्रों के थानों के दान को भी शील स्नान के दान के सामने कुछ भी महत्व नहीं है।

पंच लाख तुरंगम दानूं कछु न मानूं, हस्ती दानूं कछु न मानूं।
तिरिया दानूं कछु न मानूं, मानूं एक सुचील सिनानूं।

यदि कोई एक या दो सुन्दर घोड़ों का दान तो क्या पांच लाख दिव्य अश्वों का दान कर दे तो भी मैं कुछ नहीं मानता, मेरी दृष्टि में यह दान उतना महत्वपूर्ण नहीं है तथा हाथी का दान तो शील स्नान के सामने कुछ भी नहीं है। कन्या दान को भी संसार में उतम दान समझा जाता है परन्तु इन नियमों के सामने वह भी तुछ ही समझा जायेगा क्योंकि ये महत्वपूर्ण नियम धर्म ही कल्याणकारी हैं।

हे मानव! मैं तो एक मात्र शील और स्नान को ही सबसे बड़ा पुण्यकारी मानता हूँ। अनेक प्रकार के दान से तो अहंकार आ सकता है। उससे आत्मा अधोगति की ओर जाती है। किन्तु स्नान से तो बाह्य शरीर की शुद्धि होती है और शील व्रत से आन्तरिक पवित्रता आती है जिससे ज्ञान धारण करने में सफलता मिलती है। ये दोनों नियम ही सफलता का मूल है। यदि ये नियम धारण हो जाये तो इनके पीछे सभी खींचे चले आयेंगे। (शील एवं स्नान की विशेष व्याख्या आगे उनतीस नियमों में दी जायेगी।)

★★★★

प्रसंग-59 दोहा
मालदै कहै सुण देवजी, एहि कहो विचार।
आद उत्पति कुण थो, ताहि करो निरधार।

जोधपुर नरेश मालदेव को लोहावट की साथरी पर सबद 93-94 सुनाया था तथा पुनः किसी समय दूदा मेड़तिये के साथ जम्भदेवजी के पास में आया था और दर्शन के उपरांत सृष्टि की उत्पति और प्रलय से सम्बन्धित प्रश्न पूछते हुऐ कहा था कि सृष्टि के आदि में कौन थे तथा किससे यह उत्पति हुई है। इसका निर्णय करते हुए यह सबद सुनाया था। यह सबद-जद पवन न होता-4 के जैसा ही है।

सबद-105

ओ३म् आप अलेख उपन्ना शिंभू, निरह निरंजन धंधूं कारूं।
आपै आप हुआ अपरंपर, हे राजेन्द्र लेह विचारूं।

भावार्थ-हे राजेन्द्र! जो भी मैं तुझे बतलाऊँगा, वह तूँ अपनी बुद्धि से विचार अवश्य ही कर लेना। जब तक तूँ विचार नहीं करेगा तब तक तुझे कुछ भी ज्ञान हासिल नहीं होगा। सृष्टि के आदि में तो स्वयं स्वयंभू निराकार माया रहित अकेला ही कथन, लेखन श्रवणादिक मर्यादाओं से ऊपर सर्वशक्तिमान थे। या फिर यदि कुछ था तो केवल धन्धुकार के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था जैसा इस समय यह सूर्य, चन्द्र से प्रकाशमान जगत दृष्टिगोचर हो रहा है वैसा उस समय नहीं था। इस प्रकार की स्थिति रहते हुऐ कई युग बीत जाने पर ''एकाकी न रमते'' ''एकोअहं बहुस्यां प्रजायेय'' उस परब्रह्म में इच्छा उत्पन्न हुई कि कुछ खेल रचा जाये। अब अकेले से खेल नहीं खेला जाता, इसलिये एक से अनेक होने के लिये और कोई नहीं था। स्वयं ही स्वकीय इच्छा से माया की उत्पति की तथा माया से आगे सृष्टि का विस्तार हुआ। इसलिये कण कण में सत्ता उस परमपिता परमात्मा की ही है।

नै तद चंदा नै तद सूरूं, पवण न पाणी धरती आकाश न थीयों।
ना तद मास न वर्ष न घड़ी न पहरूं, धूप न छाया ताव न सीयों।

जब सृष्टि की प्रलयावस्था थी, केवल शुद्ध ब्रह्म था या धंधुकार था। उस समय में ये वर्तमान में दृष्ट ज्योतिर्मय सूर्य, चन्द्रमा नहीं थे। परमात्मा ने अपनी ज्योति का विस्तार नहीं किया था तथा न ही जल, पवन, धरती और आकाश की ही उत्पत्ति हो सकी थी। ये भी अपने अपने कारण में लीन थे। इन्होंने यह स्थूल रूप धारण नहीं किया था और न ही उस समय काल निर्धारण हो सका था। काल भी स्वयं घड़ी, प्रहर, दिन, रात, महीना, वर्ष और उतरायण-दक्षिणायन के रूप में प्रसिद्ध नहीं हो सका था तथा उस समय तो वर्तमान में सुख दुख दायी धूप, गर्मी, सर्दी, छाया आदि भी नहीं थे।

न त्रिलोक न तारा मंडल, मेघ न माला वर्षा थीयों।
न तद जोग नक्षत्र तिथि न वारसियो, ना तद चवदस पूनों मावसियो।

और न तो उस समय स्वर्ग, मृत्यु तथा पाताल लोक ही बने थे और न ही तारा मण्डल ही था तथा ये मेघ मालाएँ जो वर्तमान में वर्षा करती है, ये भी नहीं थी और उस समय योग नक्षत्र, तिथि, वार, राशि, ग्रह, आदि नहीं थे और न ही चवदस, बारस, द्वादशी, पूर्णमासी, अमावस्या आदि पवित्र तिथियाँ ही थी।

नै तद समद सागर न गिरि न पर्वत, ना धौलगिर मेर थीयौं।
ना तद हाट न बाट न कोट न कसबा, बिणज न बाखर लाभ थीयों।

उस समय यह विशाल समुद्र तथा छोटे-मोटे ताल तलैये नहीं थे और ये वर्तमान में स्थित छोटी-मोटी

पर्वत मालाएँ तथा बर्फ से ढ़का हुआ हिमालय पर्वत भी उस समय नहीं था और न ही उस समय हाट, मार्ग, कोट, कस्बा, शहर ही थे और बिणज व्यापार से होने वाला हानि-लाभ भी उस समय नहीं था।

यह छत धार बड़े सुलतानों, रावण राणा ये दिवाणा।
हिन्दू मूसलमानूं, दोय पन्थ नांही जूवा जूवा।

इस समय में इस धरती को विभाजित करके बैठे हुऐ ये छोटे-बड़े छत्रधारी राजा, सम्राट्, सुलतान आदि उस प्रलय अवस्था में नहीं थे तथा न ही रावण, कुम्भकरण, कंसादि, राव राणा, बल, धन, ऐश्वर्य में मदमस्त दीवाने उस समय नहीं थे तथा इस समय धार्मिकता की रेखा खींचने वाले ये हिन्दू मूसलमान दो पंथ-मार्ग अलग-अलग दिख रहे हैं उस समय ऐसा नहीं था।

ना तद काम न करषण जोग न दरसण, तीर्थ वासी ये मसवासी।
ना तद होता जपिया तपिया, न खच्चर हींवर बाज थीयों।

वर्तमान में होने वाले शारीरिक, मानसिक, परिश्रम के कार्य उस समय नहीं होते थे और न ही किसी प्रकार का हठ योग या राजयोग ही था। न ही ये वर्तमान में प्रसिद्ध छः दर्शन शास्त्र ही उस समय थे। तीर्थो में निवासी तथा मठ या श्मसानों में निवास करने वाले भक्त या साधु सन्यासी भी उस समय नहीं थे और न ही उस समय जप करने वाले जपिया तथा तपस्या करने वाले तपिया ही थे और न ही खच्चर तथा उतम जाति के घोड़े या सामान्य अश्व भी उस समय नहीं थे।

ना तद शूरवीर न खड़ग न क्षत्री, रण संग्राम जूझ न थीयों।
ना तद सिंह न स्यावज मिरग पंखेरूं, हंस न मोरा लेल सूवों।

इस समय जो शूरवीर लोग हाथ में तलवार लेकर युद्ध में जाकर अपना क्षत्रिय पना दिखाते हैं तथा कुछ लोग आपसी भाई-चारा निभाते हैं तथा कुछ लोग मोह में भी फंस जाते हैं ये सभी संग्राम, युद्ध, भिड़ंत, क्षत्रिय, शूरवीरता, शत्रुता, बन्धुपना आदि सृष्टि के पूर्वकाल में नहीं थे तथा भविष्य में नहीं रहेंगे तथा उस समय सिंह, सियार, नाहर, भेड़िया, मृग आदि पशु योनी के प्राणी भी नहीं थे और पक्षी योनी के हंस, मयूर, लेली, चिड़िया सूवा तोता आदि नहीं थे।

रंग न रसना कापड़ चोपड़, गोहूं चावल भोग न थीयों।
माय न बाप न बहण न भाई, ना तद होता पूत धीयों।

वर्तमान में होने वाले राग रंग, स्वादिष्ट भोजन, उत्सव त्यौहार, सुन्दर वस्त्र धारण, मिठाई-पकवान आदि उस समय नहीं थे और न ही गेहूं चावल आदि भोज्य पदार्थ ही थे। ये तो सभी सृष्टि सृजन के बाद ही उत्पन्न हुऐ है। ये सदा एक रस रहने वाले नहीं है। उस प्रलयावस्था में सृष्टि से पूर्व तो माता-पिता, बहन-भाई, पुत्र-पुत्री भी नहीं थे। ये भी सृष्टि सृजनान्तर ही उत्पन्न हुऐ है इसलिये नित्य नहीं है इनसे मोहित हो जाना नादानी है।

सास न शब्दूं जीव न पिण्डूं, ना तद होता पुरुष त्रियों।
पाप न पुण्य न सती कुसती, ना तद होती मया न दया।

ये वर्तमान में चलने वाले श्वांस मुख से उच्चरित होने वाले शब्द शरीर में स्थित जीव और ये पिण्ड

स्वयं ही सृष्टि के प्रारम्भ से पूर्व नहीं थे और न ही उस समय पुरुष स्त्री का जोड़ा ही था तथा न तो पाप था न पुण्य ही था और सती स्त्रियां या सत पर अडिग रहने वाले पुरुष तथा सतीत्व को तोड़ने वाली स्त्री तथा सत्यत्व को भंग करने वाले पुरुष भी नहीं थे। ऐसा वह शून्य काल था और न ही वहाँ पर मया-प्रेम भाव ही था और न ही दया भाव था।

आपै आप उपन्ना शिंभू, निरह निरंजन धन्धूं कारूं।
आपों आप हुआ अपरंपर, हे राजेन्द्र लेह विचारूं।

बिना किसी दृष्ट जागतिक वस्तु की सहायता के ही स्वयंभू स्वयं ही उत्पन्न हुए है। ऐसा स्वयंभू स्वयं तो अलेख, निराधार, निरंजन, अपरंपर होते हुऐ भी साकार जगत के रूप में प्रगट होते है। एक का ही यह नाम रूप अनेकों विस्तार हुआ है।

★★★★

प्रसंग-60 दोहा

सब प्रचे साबत मिले, समझे काजी खान।
सतगुरु शब्द सुणाइये, जब आवै इमान।

एक समय भ्रमणार्थ काबुल तथा मुलतान आदि देशों में जम्भगुरु जी पधारे थे। रणधीर जी आदि प्रमुख शिष्य साथ में थे। वहाँ पर अनेक देशों में भ्रमण करते हुऐ, काजी मुल्ला, खानों को अपने दिव्य चमत्कारों से चमत्कृत करते हुऐ उनसे जीव हिंसा करना छुड़वाते हुऐ अन्त में मुलतान आये। वहाँ पर एक पहाड़ की टेकरी पर आसन लगाया था। उस समय उनके पास में बारह काजी और तेरह खान आये थे। ये सभी प्रहलाद पंथी जीव थे। उन्होंने चार पर्चे मांगे थे। वे चारों ही पूर्ण करके दिखलाये तभी से वे जम्भदेवजी के शिष्य बन गये थे। तब उन्होंने श्री देवजी से प्रार्थना की थी कि आप हमें अपने मुखारविन्द से दिव्य शब्द सुनाइये जो ज्ञान वर्धक तथा मार्ग निर्देशक भी हो तथा आपके बारे में भी हम ठीक प्रकार से जान सके। तब श्री देवजी ने यह सबद सुनाया-(विशेष कथा जाम्भा पुराण में पढ़ें।)

सबद-106

ओ३म् सुण रे काजी सुण रे मुल्ला, सुणियो लोग लुगाई।
नर निरहारी एक लवाई, जिन यो राह फुरमाई।

भावार्थ-रे काजी! रे मुल्ला सुनों! हे संसार के स्त्री पुरुषों! तुम भी कान खोलकर सुनों! मैने परब्रह्म परमेश्वर से सगुण साकार रूप धारण किया है। वैसे मेरा वास्तविक रूप तो निराहारी एकत्वपना ही है परन्तु जब भी धर्म की हानि और पाप की अभिवृद्धि होती है तो मैं अनेक बार नये नये रूप धारण करके पीड़ितों की रक्षा करता हूँ। उस समय मुझे सभी मर्यादाओं को तोड़कर संसार के पदार्थो को भी ग्रहण करना पड़ता है। किन्तु इस समय तो मैंने निराहारी एक वायु के सहारे ही रहकर यह धर्म का मार्ग चलाया है। इसलिये तुम्हें यह अवश्य ही अद्‌भुत लगता है।

जोर जरब करद जे छाड़ो, तो कलमा नाम खुदाई।
जिनके साच सिदक इमान सलामत, जिण यो भिस्त उपाई।

यदि आप लोग निरीह जीवों पर जोर जबरदस्ती करते हो तो करना छोड़ो तथा उनके गले पर छुरा चलाना छोड़ दो तो तुम्हारा कलमा यानि खुदा का नाम लेना जायज होगा और यदि जब तक जीव हिंसा तथा उनका उत्पीड़न चलता रहेगा तब तक तुम्हारा नमाज पढ़ना, कलमा रखना रोजा आदि सभी व्यर्थ है तथा जिसके हृदय में सच्चाई ईमानदारी और दयाभाव सही सलामत विद्यमान है वही स्वर्ग या भिस्त को पहुँचने का उपाय कर रहा है। इनके अतिरिक्त तो सभी ने नरक का मार्ग अपना रखा है।

★★★★

प्रसंग-61 दोहा

एक वैरागी आय कै, हरि सूं पूछी बात।
आसण बिछाणों क्यूं नहीं, हमें बतावो तात।
ताकै मन की लखी, शब्द सुणायो देव।
एक शब्द असौ कह्यो, पायो सब ही भेव।

एक वैष्णव संतों की जमात हरिद्वार से चलकर द्वारिका जा रही थी। वह जमात पींपासर में डेरा लगाकर बैठी थी। किसी के द्वारा श्री जम्भेश्वर जी के बारे में श्रवण किया तब जमात के महंत लालदास ने एक अपने विश्वसनीय साधु को सम्भराथल पर यह जानने के लिये भेजा कि वास्तव में कोई सिद्ध पुरुष है या पाखण्डी है। जब वह साधु वहाँ पर पहुँचा तब श्री देवजी सम्भराथल पर हरि कंकेहड़ी के नीचे विराजमान थे। उस साधु ने आकर कहा कि आपने आसन क्यों नहीं बिछाया है। क्योंकि हमारे साधु समाज में आसन बिछाकर बैठने की परंपरा है। जम्भदेवजी ने उनके मन की बात जान ली थी कि यह अब आगे ओर भी बहुत सी बातें पूछने वाला है उससे तो अच्छा है कि कहने से पूर्व ही इसकी शंकाओं का समाधान कर दिया जाय। इन्हीं गुप्त शंकाओं के समाधानार्थ यह सबद सुनाया-

सबद-107

ओ३म् सहजे शीले सहज बिछायो, उनमन रह्या उदासूं।

भावार्थ-हे साधो! मैंने तो सहज ही में शील रूपी अति उत्तम आसन बिछा ही रखा है। किन्तु वह दिव्य आसन तुझे इन चर्म चक्षुओं से दिखाई नहीं दे रहा है। इसके लिये तो तुझे दिव्य ज्ञान के नेत्र ही खोलने होंगे। आप लोग इन बाह्य स्थूल आसन, वेश-भूषा को ही महत्व देते हैं किन्तु मेरे यहाँ तो इन बाह्य वस्तुओं का महत्व न होकर आन्तरिक शुद्ध गुणों का विकास करना ही महत्वपूर्ण है। मैंने इन शील रूपी उत्तम आसन पर बैठकर नित्य प्रति साधना के बल से मन को संसार के विषयों से हटाकर उपर उठा दिया है। वह सदा परमात्मा के रस में मग्न रहता है। इसलिये सांसारिक विषयों से मैं उदासीन हो गया हूँ। अब मेरे लिये वस्त्र से निर्मित आसन की आवश्यकता नहीं है। यदि तुम्हें भी यह शील रूपी आसन चाहिये तो यहाँ से प्राप्त कर सकते है।

जुगे जुगन्तर भवे भवन्तर, कहो कहाणी कासूं।
रवि ऊगा जब उल्लू अन्धा, दुनिया भया उजासूं।

इसी शील रूपी आसन पर बैठे हुऐ मेरी आंखों के सामने ही यह पंचभौतिक संसार अनेकों बार बीत

चुका है पुनः निर्मित हो गया है तथा यह काल भी मास, वर्ष, युगों के रूप में ही व्यतीत हो चुका है। मैंने इस संसार का बहुत लंबा इतिहास देखा है। इसमें होने वाली उथल-पुथल भी मैंने अनुभव किया है। उन सभी खट्टी-मीठी वार्ताओं को मैं बताना चाहता हूँ किन्तु यहाँ पर किसको कहूँ कोई सुनने के लिये भी तैयार नहीं है।

क्योंकि जब सूर्य उदय हो जाता है तो तब कर्म हीन उल्लू अन्धा हो जाता है। सूर्य संसार को प्रकाशित कर देता है, सूर्य की सहायता से संसार के लोग तो देखने लग जाते है परन्तु उल्लू अन्धा हो जाता है। इसमें सूर्य का क्या दोष है। इसी प्रकार से उल्लू की तरह जो लोग है वे तो इस ज्ञान प्रकाश से वंचित रह जायेंगे तथा कुछ लोग उल्लू से विशेषता, मानवता रखने वाले लोग सचेत होकर आत्मोपलब्धि कर लेंगे।

सतगुरु मिलियो सत पंथ बतायो भ्रान्त चुकाई, सुगरा भयो विश्वासूं।
जां जां जांण्यो तहां प्रवाण्यों, सहज समाणों, जिहिं के मन की पूगी आसूं।

सतगुरु मिल चुका है, सतपंथ बतला दिया है। भ्रान्ति मिटा दी है जिससे सतगुरु पर श्रद्धा विश्वासी लोगों की तो भ्रान्ति मिट चुकी है। उन्हें तो पक्का विश्वास हो गया है। क्योंकि वे लोग सुगरा है। उनसे जो अन्य लोगों की अब तक भ्रान्ति नहीं मिट सकी है। भ्रान्ति स्वर्ग न जाई, जिस तिस ने भी जाना है उस उस ने ही प्रमाण विश्वास प्राप्त किया है और वे सहज ही परमात्मा में समाहित हुऐ है। उनकी तो मनोकामनाऐं पूर्ण हुई है। अन्य तो अनेकानेक इच्छाओं के जाल में फंसकर जीवन की खुशी को पलीता लगाते है।

जहां गुरु न चीन्हों पन्थ न पायो, तहां गल पड़ी परासूं।

जिस जिस व्यक्ति ने जहाँ कहीं भी रहते हुऐ सतगुरु परमात्मा को पहचाना नहीं है। उनके द्वारा बताये हुऐ मार्ग का अनुसरण नहीं किया है। उनके गले में तो निश्चित ही इस जीवन को जीते हुऐ मोह-माया रूपी फांसी की वजह से ही अनेकानेक जीव योनियों में जाना पड़ेगा। इह लोक एवं परलोक दानों ही नरकमय बन जायेंगे।

दोहा

तब वैष्णव ऐसे कही, जोग कहो महाराज।
अन्तःकरण इन्द्रिय सभी, शुद्ध होने के काज।
ऐसो उदम बताइये, जासूं धर्म ही होय।
निज अर्थ पाये विना, सुखी भया न कोय।

ऊपर के शब्द को श्रवण करके उस वैष्णव साधु ने इस प्रकार की विनती की कि हे महाराज! हमें आप योग के बारे में बतलाइये जिससे अन्तःकरण इन्द्रिय सभी पवित्र हो सके हमें आप इस प्रकार का उद्योग बतलाइये, जिसको हम लोग आसानी से कर सके तथा उस कर्त्तव्य द्वारा धर्म ही होवे। हे प्रभु! जब तक अपना मुख्य धर्म नहीं मिल जाता है। तब तक कोई सुखी नहीं हो सकता। यदि योग मार्ग को अपना लेने पर भी उसके पास योग साधना नहीं रहेगा तो वह सुखी कैसे हो सकता है। क्योंकि ''श्रेयान् स्व धर्मो विगुण परधर्मात्स्वनुष्ठितात्'' ''गीता'' वचन से यही प्रमाणित होता है। तब जम्भदेवजी ने सबद सुनाया-

सबद-108

ओ३म् हालीलो भल पालीलो, सिध पालीलो खेड़त सूना राणों।

भावार्थ-हे हल चलाने वाले हाली! तथा योग सिद्धि की साधना करने वाले साधक! आप दोनों एक ही श्रेणी में आते हो। इसलिये तुम्हारे दोनों का जो परम कर्त्तव्य है उसको आप अच्छी प्रकार से मन लगाकर करो। तब तक करते रहो जब तक सिद्धि यानि फल नहीं मिल जाता है। ''स तु दीर्घ काल नैरन्तर्य सत्कार सेवितो दृढ़ भूमि'' योग खेती में बीज बोया जाता है तो उसकी छः महीने प्रतीक्षा करनी पड़ती है तथा उस दौरान कड़ी मेहनत करनी पड़ती है। उसी प्रकार से योग साधना से भी लम्बे समय तक तथा अबाध गति से और सत्कार श्रद्धा पूर्वक अभ्यास करना होता हैं तभी सिद्धि रूपी फल की प्राप्ति होती है।

तथा किसान खेती के लिये भी वही उपजाऊ तथा सूना ग्राम से दूर जहाँ पर ग्रामीण पशुओं की पहुँच न हो उसी एकान्त निर्जन वन में ही जाकर खेती करनी होगी, तभी वह निपजती है। उसी प्रकार से योग साधक को भी वही स्थान चुनना चाहिये जहाँ पर साधना भली प्रकार से हो सके। जन समूह से दूर एकान्त प्रदेश में ही खेती पक सकती है। नहीं तो समाज के बीच में रहकर तो यह कार्य कदापि नहीं हो सकता क्योंकि अनेक विघ्न बाधाएँ आने की प्रबल संभावनाएँ हो सकती है।

चन्द सूर दोय बैल रचीलो, गंग जमन दोय रासी।
सत संतोष दोय बीज बीजीलो, खेती खड़ी आकाशी।

किसान के पास खेत जोतने के लिये दो बैलों की जोड़ी चाहिये तथा उनको वश में रखकर हल चलाने के लिये रास डाली जाती है तथा बीज भी खेत में बोया जाता है। वह मूल रूप सत्य ही होता है तथा उसमें संतोष छिपा रहता है। आज ही बीज बोकर के फल की प्राप्ति आज ही हो जाये ऐसा लोभ नहीं होता। बीज बोने के बाद संतोष करना ही होता है। इसी भाग्य पर आश्रित खेती किसान करता है।

ठीक उसी प्रकार से योग साधना में स्थित साधक के पास भी चन्द्र और सूर दो बैल है अर्थात् बांयी नासिका से जो श्वांस का स्वर निकलता है यह तो चन्द्र स्वर है तथा दाहिनी नासिका से निकलने वाले श्वांस को सूर्य स्वर कहते हैं। ये दोनों ही स्वर दो बैलों की तरह स्वच्छन्द विचरण कर रहे हैं। संसार की विषय वासना में उलझे हुए हैं। इनको वश में करने के लिये गंगा यमुना दो रासियाँ डाल रखी है अर्थात् इन श्वांसों के पीछे इडा पिंगला नाम की दो नाड़ियां है जो इन दोनों बैलों के लिये रासों का कार्य करती है अर्थात् इन्हीं दोनों रासों द्वारा इन दोनों श्वासों को खींचकर तीसरी महत्त्वपूर्ण नाड़ी सुषुम्णा में डाल दिया जाता है। उसी के द्वारा वह श्वांस-प्राणवायु सहस्रार तक पहुँच कर स्थिर हो जाती है। तभी योगी को समाधि लग जाती है तथा समाधि अवस्था में ''जरा न व्यापै जुग जुग जीवै।''

तथा इस योग रूपी खेत में सत् और संतोष का बीज बोना होगा अर्थात् पहली शर्त तो यह है कि सत्य पर अडिग रहना, किसी प्रकार का लोक दिखावा या पाखण्ड से कार्य नहीं चलेगा तथा दूसरी शर्त यह है कि योग सिद्धि में संतोष करना होगा। आज ही प्रारम्भ करके कल ही फल प्राप्त नहीं हो सकेगा। फल की प्रतीक्षा करनी ही होगी तथा बाह्य विषय भोगों की प्राप्ति की तरफ से वृति को हटाना पड़ेगा। जो भी शरीर निर्वाह के लिये प्राप्त हो जाये उसी में ही संतोष करना होगा तथा विचारों से सर्वथा शून्य होकर ही योग साधना रूपी खेती की जा सकती है। जब तक विचारों का प्रवाह चलता रहेगा तब तक आपकी साधना सफल नहीं हो सकेगी। विचारों की शून्यता दशा ही समाधि की प्रथम अवस्था होती है। इसलिये कहा भी है-खेती खड़ी आकाशी।

चेतन रावल पहरै बैठै, मृगा खेती चर नहीं जाई।

गुरु प्रसादे, केवल ज्ञाने, सहज स्नाने, यह घर रिद्ध सिद्ध पाई।

जिस प्रकार किसान हल जोतने के पश्चात् खेती की रखवाली सचेत होकर स्वयं करता है या किसी अन्य से भी करवाता है, ऐसा न करने पर तो जरा सी असावधानी से तो मृग आदि जंगली पशु पक्षी खेती को खा जायेंगे। उसी प्रकार योग साधक के भी ''योगश्चितवृति निरोध:'' चित की वृतियों के निरोध रूपी खेती को वासनाएँ चर जायेगी। इसलिये उसे भी स्वयं को ही बुद्धि द्वारा सचेत रहकर साधना की रक्षा करनी होगी। ऐसा न करने पर तो यह तुम्हारा मन रूपी हिरण तथा मन की वृति रूपी हरिणियां विषय वासना द्वारा एकाग्रता रूपी खेती को खा जायेगी।

मन तथा इन्द्रियां निरंतर अभ्यास द्वारा आत्मा में समाहित होती है। उस समय सचेत नहीं रहने से एक क्षण में ही ये चट कर जायेगी। इसलिये सदा सचेत रहकर निर्णय लेने वाली बुद्धि रावल को पहरे पर बिठाना होगा। उपर्युक्त परिश्रम तो साधक और किसान का ही होगा तथा जब इतना परिश्रम सच्चे मन से करोगे तो गुरु परमात्मा की असीम कृपा प्रसन्नता का आशीर्वाद आपको सुलभ हो सकेगा। वह आशीर्वाद भी खेती तथा साधना के लिये परमावश्यक है। सभी कुछ हो जाने पर भी यदि गुरु प्रसाद नहीं मिलेगा तब तक कार्य की सफलता में संदेह है तथा जब परिश्रम तथा गुरु प्रसाद दोनों ही प्राप्त होंगे। उस समय योग सिद्धि होगी तो वह व्यक्ति कैवल्य ज्ञान और ब्रह्मज्ञान में सहज रूप में ही स्नान करेगा।उस समय वह साधक कृत्य कृत्य हो जायेगा। जिस प्रकार किसान को जब लहलहाती फसल तथा उसके फल की प्राप्ति के समय खुशी होती हैं, हे वैष्णव! आप लोग ऐसा ही करो। जैसा मैने बतलाया है। तभी रिद्धि सिद्धि की प्राप्ति होगी।

★★★★

दोहा

जो कह्या सुन सिद्धि लही, पाई वस्त अलेख।
शून्य ध्यान हृदय धरै, साधु कहे अलेख।
तिस का उतर देत है, जम्भ गुरु जगदीश।
कोट जन्म के पाप जो, होत पलक में खीस।

उक्त सबद को श्रवण करके वह साधु पुन: कहने लगा–हे अलेख!आपने जो बात कही है वैसी साधना, ध्यान मैं करता हूँ। मैंने वह अलेख निरंजन, निराकार वस्तु की प्राप्ति की है। तब जम्भेश्वर जी ने इसका उतर देते हुऐ, उसके अन्दर जो ध्यान समाधि की मिथ्या धारणा बैठ चुकी थी, उसका खण्डन करने के लिये यह सबद सुनाया।

सबद-109

ओ३म् देखत भूली को मनमानै, सेवै बिलोवै बाझ सनाने
देखत भूली को मन चैवै, भीतर कोरा बाहर भैवै।

भावार्थ–मानव जीवन में कुछ भूल तो अनजान में होती है। उनका सुधार तो ज्ञात होने के पश्चात् संभव है तथा कुछ भूले जानकर के करता है उनका सुधार सम्भव नहीं है। ''जाणत भूला महापापी''। वह पापी कभी भी नहीं सुधर सकता। गुरु जम्भेश्वर जी कहते हैं कि देखते हुऐ जानते हुऐ भी यह कार्य करना ठीक नहीं

है। फिर भी करता है। अपना तन मन धन उसी भूल में ही लगा देता हैं तो वह व्यक्ति जिस प्रकार से कोई बांझ की सेवा करता है या जल को बिलौता है उसी प्रकार से व्यर्थ का ही कार्य करता हैं न तो बांझ गऊ आदि से दूध या पुत्र की प्राप्ति होगी और न ही जल को बिलौने से घी की प्राप्ति हो सकेगी। वही दशा उन देखते हुऐ भूल करने वालों की होगी अर्थात् कार्य निष्फल ही होगा।

इसी प्रकार से हे वैष्णव! इस संसार को घूम फिर कर देखने से, भटकने से अमृत तत्व की प्राप्ति नहीं हो सकेगी और न ही देवी देवताओं की पूजा करने से ही स्वर्ग या मुक्ति मिल सकेगी इस बात का तुम्हें पता है फिर भी तुम भूल करते हो तथा देखते हुऐ जानते हुऐ भी कि यह कार्य ठीक नहीं है फिर भी करते हो मन से चाहते हो तो वह अन्दर से तो सूखा है किन्तु बाहर से स्नान करने जैसा ही है। अन्दर से सूखा यानि प्यासा रहकर केवल बाह्य स्नान से उसकी प्यास नहीं मिटेगी अर्थात् आप लोग बाहर से तो साधु का वेश, साफा, तिलक माला, जटाऐं, वस्त्र विशेष पहन लिये है किन्तु अन्दर से अन्तःकरण को साधु नहीं बनाया है तो तुम्हारा ढ़ोंग व्यर्थ ही है। यह भी आप जानते हुऐ भूल करते हो।

देखत भूली को मन मांनै, हरि पर हर मिलियो शैताने
देखत भूली को मन चेवै, आक बखाणै थंदे मेवै।

देखते हुऐ ही भूल को मन में मानकर अर्थात् यह जानते हुऐ कि यह कार्य नहीं करना चाहिये, उस वर्जनीय कार्य को भी कर बैठता है। जैसे हरि विष्णु परमात्मा को तो छोड़ दिया और शैतान लोगों के साथ में जाकर मिल गया। वे शैतान लोग बर्बाद कर देंगे। यही सभी कुछ जानते हुए होता है। हे साधो! तुमने भी यही किया है। हरि विष्णु की प्राप्ति का उपाय तो किया नहीं किन्तु शैतान जो भूत-प्रेत, तन्त्र-मंत्र आदि के चक्कर में पड़कर अपने आप का जीवन बर्बाद किया तथा अन्य आपके सम्पर्क में आने वाले जनों का भी जीवन शैतान बना दिया है। यह भी भूल तुम्हारे जानते हुए ही हुई है।

तथा तुमने विषमय आक को तो बहुत ही अच्छा बताया, उसकी बड़ाई करता हुआ संसार में घूमता रहा और मेवा आदि पदार्थों की तूँ निंदा करता रहा। यह भी तुम्हारे मन की चाहना पर हुआ है। तुमने समझ से काम नहीं लिया अर्थात् संसार में भ्रमण करते हुऐ तुमने भांग, धतूरा अफीम, आदि नशीली वस्तुओं की तो बड़ाई करता रहा सेवन करता रहा और अन्य जनों से करवाता रहा इसका ही प्रचार किया किन्तु अमृत तुल्य दूध, दही, घी आदि की निंदा करता रहा। यह भी तुमने जानते हुऐ भूल की है।

भूला लो भल भूला लो, भूला भूल न भूलूं।
जिहिं ठुंठड़िये पान न होता, ते क्यूं चाहत फूलूं।

हे भूले हुऐ लोगों! आप बार-बार भूल न करो। वैसे ही आप लोग भूल में फंस कर दुख उठाते आये है फिर उस भूल को क्यों भूल जाते हो। एक बार की हुई भूल का यदि स्मरण रखा जाये तो फिर वही भूल दुबारा नहीं हो सकेगी। इस प्रकार भूलों को सुधारा जा सकता है किन्तु आप लोग तो भूल के ऊपर भूल किये जा रहे हो। जिस ठूंठ सूखे वृक्ष पर पते नहीं है तो उस पर फूल क्यों चाहते हो। यही तुम्हारी ना समझी है। जिन भूलों में जीवन व्यतीत करने से सांसारिक क्षणिक सुख भी उपलब्ध नहीं है, वहाँ पर परमानन्द की खोज क्यों करते हो। इसलिये जानते हुए भी इन भूलों को, पाखण्डों को छोड़कर सहज जीवन जीते हुऐ सच्चे मन से योग साधना करो तभी तुम्हारा जीवन सफल हो सकेगा।

★★★

प्रसंग-62 दोहा

सतगुरु ऊभा साथरी, खिणिये जाम्भोलाव।
धमकारा धरती हुवै, गहिही सूदे घाव।
ऊभो रावल जैतसी, खोदै जुड़ी जमात।
गोबर गैरे गढ़ पति, उभा डारै खात।

चौपाई

इक नारी की रीतहूं भारी, जम्भ जन सेती रहत नियारी।
निज तन घूंघट मांही छिपावै, द्रस काहूं कू नाहि दिखावै।
सो श्री घूंघट कबहूं न खोलै, वचन मुखा कर कबहूं न बोलै।
जिणरी सतगुरु साख सुणाएऊं, नर नारी सब देखण आएऊं।

गुरु जम्भेश्वर जी जाम्भोलाव तालाब खुदवा रहे थे। अनेकानेक नर नारी नि:स्वार्थ भाव से सेवा कार्य में जुटे हुऐ थे। उस समय भारी कोलाहल हो रहा था। जेसलमेर नरेश जेतसी भी वहीं पर उपस्थित थे। वे स्वयं सेवा कार्य कर रहे थे, वहाँ पर बिखरे हुऐ गोबर खात बुहार रहे थे। उसी समय ही एक स्त्री को लोगों ने देखा। वह सभी से अलग रहकर घूंघट में मुंह छिपाये हुऐ दिन-रात मिट्टी निकालने का कार्य कर रही थी और न ही किसी से वार्ता ही करती थी। ऐसी अवस्था देखकर जेतसी आदि प्रमुख लोगों ने आकर जम्भदेवजी से पूछा कि हे महाराज! इस स्त्री की रीति-रिवाज तो भिन्न ही दिखाई दे रही है। आप बतलाइये यह कौन जीव है जो इस प्रकार से दिन-रात सेवा कार्य में ही जुटी रहती है तब श्री देवजी ने यह सबद सुनाया-विशेष कथा जाम्भा पुराण में पढ़ें।

सबद-110

ओ३म् मथुरा नगर की राणी होती, होती पाटम दे राणी।

भावार्थ-यह जो एक विचित्र स्त्री दिखाई देती है इसके तीन जन्मों की बात मैं तुम्हें बतलाता हूँ। इस समय तो तुम्हारे सामने मानव शरीर इसको मिला हुआ है तथा इससे पहले भी एक बार यह स्त्री शरीर में थी तथा बीच में एक बार इसे गधी का शरीर भी मिल चुका है। ये कर्म न जाने कहाँ कहाँ जीव को ले जाते हैं।

अब सुनों प्रथम जीवन की कहानी-यह मथुरा नगर के राजा की पटराणी थी। आशा नाम से विख्यात थी। राजा की मृत्यु पश्चात् राज्य की उतराधिकारिणी यही बनी। पटराणी थी तथा पूर्णतया अधिकारिणी बनने के बाद तो इसको अच्छे कर्म करने चाहिये थे। किन्तु इसने-

तीरथ वासी जाती लूटे, अति लूटे खुरसाणी।
मानक मोती हीरा लूट्या, जाय बीलूधा डाणी।

गुजराती तीर्थ यात्री यमुना गंगा आदि तीर्थों में स्नान करने के लिये आये हुऐ थे। वे लोग बड़े धनवान सेठ साहूकार लोग थे। उन लोगों ने ज्योंहि मथुरा की सीमा में प्रवेश किया तो उनके पीछे राज्य कर्मचारी कर वसूलने वाले पीछे पड़ गये। उन्होंने कहा कि भाई हम लोग तीर्थ यात्री है कोई व्यापार करने नहीं आये है। आप

हमसे रुपये किस बात का मांग रहे हो। राज कर्मचारियों ने रानी से जाकर यह वार्ता सुनाई। तब रानी ने अपने कर्मचारियों को आज्ञा प्रदान की कि ये तीर्थ यात्री नहीं है इन्होंने बनावटी भक्त का वेश बनाया है, आप इनसे धन लूट लीजिये।

रानी के कथनानुसार ही कर्मचारियों ने उनसे माणिक, मोती, हीरा, खुरसाण, आभूषण आदि कीमती सामान बूरी तरह से लूट लिया। इसी दौरान कई एक जनों को चोटें भी आयी तथा कुछ लोग मारे भी गये। राज कर्मचारियों ने उनकी चीख पुकार को कुछ भी नहीं सुना और धन रानी को लाकर सौंप दिया। रानी तथा रजवाड़े ने वह धन अपने काम में ले लिया इसलिये-

कवले चूकी वचने हारी, जिहिं औगुण ढ़ांची ढ़ोवै पाणीं।
विष्णु कूं दोष किसो रे प्राणी, आपे खता कमाणी।

रानी ने राजा, प्रजा तथा ईश्वर के सामने कवल किया था, जो प्रजा की भलाई के लिये वचन दिया था। उस वचन तथा प्रतिज्ञा को छोड़ चुकी थी जिस कारण से दूसरे जन्म में उसे गधी की योनी मिली। कई बार जन्मते मरते अपने फल को भोगा। अन्त समय में यह बूढ़े नामक आदमी के घर पर खरी का जन्म लेकर आयी। वहाँ पर बूढ़ा नित्य प्रति उस खरी के पीठ पर ढ़ांचे में घड़े रखकर प्याऊ में पानी पिलाता था। जिससे कुछ पुण्य का भाग इसे भी मिला, जिससे इसके खोटे कर्मो का दुख कट गया और अब यह इस स्त्री रूप में आयी है। तालाब में मिट्टी निकाल रही है। इसके सभी कर्म इससे कट जायेंगे, फिर जन्म मरण के चक्कर में नहीं आयेगी।

हे प्राणी! इसमें कोई भी विष्णु का दोष नहीं है। प्राणी अपने आप ही सद्मार्ग को छोड़कर दुष्कर्म करता है। जिससे उसे स्वयं को ही फल भोगना पड़ता है। व्यक्ति सुख में तो कहता है कि यह तो मैने किया है और दुख में कहता है कि ईश्वर ने किया है। वह दोष ईश्वर को लगाना जायज नहीं है। व्यक्ति स्वयं ही कर्त्ता है और स्वयं ही भोक्ता है।

★★★★

प्रसंग-63 दोहा

झाली राणी पूछियो, देव तणें दरबार।
अयोध्या में आनन्द घणां, सुखी किसो किरतार।

सबद संख्या 63 के प्रसंग में यह बतलाया था कि चितौड़ नरेश सांगा राणा तथा उनकी माता झाली राणी जम्भगुरु जी के शिष्य बन गये थे तथा वहाँ पर उनके प्रति ''आतर पातर'' शब्द भी सुनाया था। कुछ समय पश्चात् जम्भदेवजी जाम्बा सरोवर खुदवा रहे थे उसी समय झाली राणी जम्भदेवजी के दर्शनार्थ जाम्भोलाव आयी थी। साथ में एक सन्दूक लायी थी, जिसमें भेंट देने के लिये अमूल्य वस्तुऐं थी किन्तु मार्ग में चोरों ने युक्ति से चुरा ली थी। तब रानी ने श्री देवजी को याद किया। तब चोर अन्धे हो गये और रानी को लाकर सन्दूक वापिस सौंप दी, तभी उनकी आंखें ठीक हो सकी थी।

रानी श्रीदेवजी के पास जाम्बा सरोवर पर पहुँची तथा आठ दिन तक वहीं निवास किया। वहाँ से वापिस रवाना होते समय जम्भदेवजी से पूछा कि आप पहले अयोध्या में राम रूप में थे, तब कैसा सुख था तथा अब यहाँ निर्जन वन में आपको कैसा सुख मिलता होगा। तब जम्भदेवजी ने सबद सुनाया-

सबद-111

ओ३म् खरड़ ओढ़ीजै, तूंबा जीमीजै, सुरहै दुहीजै।
त खेत की सींव म लीजै, पीजै ऊंडा नीरूं।

भावार्थ-हे रानी! अयोध्या में सुख तथा यहाँ के सुख में बहुत ही अन्तर तुझे दिखाई देता है। यह मरू भूमि वाला देश है, यहाँ पर लोग पशु पालन ही विशेष रूप से करते हैं। उन ऊंट, भेड़, बकरी आदि पशुओं की ऊन जटाओं से ही वस्त्र विशेषत: बनाये जाते है वे ही वस्त्र शरीर को चुभने वाले करड़े जरूर होते हैं किन्तु स्वास्थ्य के लिये लाभदायक होते है, उन्हें ही ओढ़ते तथा पहनते है तथा भोजन के लिये मोटा अनाज, मोठ, बाजरा, ज्वार आदि ही खाया जाता है। कभी कभी विपति काल में तो तूंबे के बीज जो अति कड़वे होते है उन्हें भी युक्ति द्वारा मीठे बनाकर खाये जाते है। दूध, दही, घी के लिये गऊवें ही ज्यादा पालते है उन्हीं का अमृतमय दूध पीते है तथा ये लोग अपने हक की कमाई करके जीवन निर्वाह करना ही पसन्द करते है। जो इनके अपने अधिकार में खेत जमीन जायदाद है, उसी में ही सीमित रहकर परिश्रम करके अन्न उपजाते है। दूसरे के खेत के फल की आशा नहीं करते, अपनी सीमा में ही रहते है तथा कूवे का जल ही पीते है। यहाँ पर जल बहुत ही गहरा भूमि के नीचे पाताल का है। जल जितना गहरा होगा उतना ही लाभदायक होगा। ऐसा यह दिव्य देश है तथा इसी प्रकार के लोग यहाँ पर निवास करते हैं।

सुर नर देवा बंदी खाने, तित उतरिया तीरूं।
भोलब भालब टोलम टालम, ज्यूं जाणों त्यूं आणों।

देवता, नर तथा नरों के भी देवता राजा, इन्द्र तथा महाराजा सभी लोग कर्मो के बन्धन में जकड़े हुऐ है ये सभी अपने अपने कर्मो के अनुसार ही उच्च पदवी को प्राप्त हुए है किन्तु इनके भी तो कर्म भोगों की समाप्ति पर वापिस सामान्य धरातल पर ही आना पड़ेगा।ये लोग उच्च पदवी प्राप्त करने से पार तो नहीं उतर सकते। सदा सदा के लिये जन्म मरण के चक्र से छूट कर मुक्ति को प्राप्त करने के लिये तो उन्हें भी इसी कर्म भूमि में ही आना पड़ेगा। पार तो यहाँ पर आकर ही उतरा जा सकता है क्योंकि समुद्र में छलांग लगाने के लिये यही मरू देश ही किनारा है। इस घाट पर आये विना तो नौका उपर बैठ ही नहीं सकता। तो फिर पार कैसे उतर सकते है। यहाँ के लोग भोले भाले सीधे सरल हृदय वाले है। ऐसा ही समझकर मैं यहाँ पर आया हूँ तथा ऐसे लोग ही मुक्ति व ज्ञान के अधिकारी भी होते हैं। ये लोग प्रहलाद पंथी भी है। किन्तु अब अपने मार्ग को भूल गये हैं इन्हें पुन: सचेत कर देना मेरा कर्तव्य है।

मैं वाचा दई प्रहलादा सूं, सुचेलो गुरु लाजै।
कोड़ तेतीसूं बाड़े दीन्ही, तिनकी जात पिछाणों।

क्योंकि मैंने सतयुग में प्रहलाद भक्त को नृसिंह रूप धारण करके वचन दिया था कि मैं तुम्हारे बिछुड़े हुऐ तेतीस करोड़ जीवों का उद्धार करूँगा। इससे पूर्व पांच, सात, नव इस प्रकार तीनों युगों में इकीस करोड़ तो पार पहुँच गये है। अब शेष बचे हुऐ बारह करोड़ का उद्धार करना मेरा कर्तव्य हो जाता है। यदि मैं कर्तव्य का पालन न करूँ तो अच्छा शिष्य तथा सद्गुरु दोनों को ही लज्जित होना पड़ता है। पहले तो दोनों ने वचन कह दिया किन्तु अब निभा नहीं पा रहे है। वे बारह करोड़ यत्र-तत्र इस मरूभूमि में ही विशेष रूप से बिखरे हुऐ हैं,

उनकी जाति को मैं पहचानता हूँ, उनको खोज-खोज कर पार पहुँचाना है तभी मैं शिष्य प्रहलाद के ऋण से उऋण हो सकूँगा।

इसलिये हे महारानी! उन प्रहलाद के बाड़े के तेतीस करोड़ भक्तों का उद्धार समय-समय पर मैंने किया है। इस कर्तव्य के लिये मुझे कष्ट भी उठाना पड़ा है। तो भी हम लोग मर्यादा के पक्के होने से हमारे सामने कष्ट भी घुटने टेक देता है।

★★★★

प्रसंग-64 दोहा

मूलां सधारी बूझियों, जांभाजी सूं जबाब।
सरै तोरे विना महब है, झूठा सभी खुबाब।

एक समय मुल्ला सधारी नाम का व्यक्ति जम्भदेवजी के पास आया और आकर के कहा कि-''शरह तोरे'' नाम की पुस्तक में जो कुछ लिखा है वही सत्य है। इसके अतिरिक्त जो कुछ कहा या सुना जाता है वह सभी या महज झूठा है या फिर केवल कल्पना मात्र है। इनमें सत्यता नहीं है। इस प्रकार के सवाल जबाब करने पर उसको उत्तर स्वरूप यह सबद सुनाया-

सबद-112

ओ३म् जंके पंथ का भाजणा, गुरु का नींदणा, स्वामी का दुस्मणा।
कुफर ते काफरा, कुमली कुपातूं, कुचीला कु धातूं।

भावार्थ-हे मूल्ला! यदि तुम अपनी पुस्तक को ही सर्वश्रेष्ठ बताते हो तो यह तुम्हारी भूल ही होगी इसका तो मतलब यह होता है कि अन्य सभी मत मतान्तर ग्रन्थ झूठे हैं तथा आप लोग भी जैसी तुम लोगों ने आज्ञा दी है वैसा ही आचरण कहाँ करते हैं। इस प्रकार से जो पन्थ को तोड़ता है, सद्गुरु तथा ईश्वर की बतायी हुई मर्यादाओं का उल्लंघन करता है और सतगुरु की निंदा करता है तथा सभी के स्वामी परमात्मा से दुश्मनी मोल लेता है, वह वास्तव में काफिर, नास्तिक, पन्थ भंजक ही है।

ऐसा व्यक्ति सदा ही अपवित्र तथा कुपात्र है। इसी कुपात्रता मलीनता के कारण जो भी कार्य करेगा वह अन्य जनों के लिये दुखदायी ही होगा। सद्गुणों में दोषारोपण करने वाला कुचील होकर शरीर में ही विकृत हो जायेगा। आप लोग इसी मार्ग का अनुसरण करते हुऐ दिखाई दे रहे है। इसलिये तुम्हें यह विकृत वार्ता सूझी है।

हड़ हड़ा भड़ भड़ा, दाणवै दूतबा, दाणवै भूतबा।
राकसा बोकसा, जाका जन्म नहीं पर कर्म चंडालूं।

जो मन बुद्धि तथा शरीर से ही विकृत हो चुका है, ऐसा व्यक्ति विना सतगुरु की शरण ग्रहण किये कोई भी कार्य ठीक से नहीं कर सकेगा। वह विना विचारे कुछ न कुछ करेगा तो अवश्य ही परन्तु वह अति शीघ्रता के कारण ऐसा ही हड़हड़ा ही होगा अर्थात् सुचारू रूप से नहीं हो सकेगा तथा वह कार्य करते समय फूहड़ की भांति एक बर्तन से दूसरे बर्तन को भड़हड़ बजा देगा अर्थात् इसका कार्य निर्माण जनक न होकर तोड़ फोड़ वाला

ही होगा। जिस प्रकार से दानव, यमदूत, भूत-प्रेतों का कार्य जोड़ का न होकर तोड़ने वाला ही ज्यादा होता है। उस विकृत दशा में मानव भी राक्षस हो जाता है। किन्तु वह राक्षसपना भी सदा स्थिर रहने वाला नहीं होता। एक राक्षस दूसरे को खा जाया करता है। ऐसे लोग जन्म से तो चाण्डाल नहीं है किन्तु कर्मो से चण्डाल ही होते है। वह चाहे उत्तम कुल में जन्म क्यों न ले परन्तु दुष्ट कर्मो के कारण उसे चण्डाल राक्षस ही कहना चाहिये।

और कूं जिभै कर आप कूं पोखणा, जिहि की रूवां ले दीजैसी।
दौरै घूंप अंधारौ, तानबे तानबा, छानबे छानबा।
तोड़बै तोड़बा, कूकबै पूकारबा, जाकी कोई न करबा सारूं।

अपने से अन्य निरीह प्राणियों को मारकर अपने शरीर का पोषण यदि करेगा तो तुम्हारी जीवात्मा को यमदूत पकड़ कर नरक में ले जायेंगे। वहाँ ले जाकर कठिन से कठिन अन्धेर घुप नरक में डाल दिये जाओगे। वहाँ पर यम के दूत एक दूसरे की तरफ खींचातानी करेंगे तथा भयंकर शूलों द्वारा तुम्हारे सूक्ष्म शरीर-जीवात्मा के पीड़ादायक छेद करेंगे तथा शरीर को तोड़ मरोड़ डालेंगे। उस समय भारी कष्टों का सामना करना पड़ेगा। तुम यदि पुकार भी करोगे तो भी ''न तहां दइयां न तहां मइयां, नागड़ दूत भयाणों'' वहाँ पर न तो दादी ही सहायता करेगी और न माता पिता या भाई बन्धु ही साथ देंगे, वहाँ पर तो नंगे दूत ही दिखाई देंगे। इसलिये तुम्हारी कूक पुकार कोई भी नहीं सुन सकेगा क्योंकि ऐसे पंथ भंजक, स्वामी के दुश्मन, जीव हिंसक जन की कोई भी सहायता नहीं करेगा और न ही तुम्हारी यह ''शरह तोरेत'' नाम की पुस्तक ही सहायता कर सकेगी।

★★★★

दोहा

मुला सधारी यूं कहै, महंमद ही फुरमान।
रोजे रखे निवाज पढ़े, बंदगी करै साहब तेहि मान।

उक्त शब्द को सुन करके मुल्ला कहने लगा-आप ऐसी बातें क्यों कहते हैं, जिससे हम दुखी हो जाते हैं। हम लोग महमद का फरमान स्वीकार करते हैं। रोजे रखते हैं, तीन समय नमाज पढ़ लेते हैं, ऐसी हमारी बंदगी साहब जरूर स्वीकार करेगा। हम लोग नरक में कैसे गिर सकते हैं। श्री देवजी ने पुनः दूसरा सबद सुनाया-

सबद-113

ओ३म् ईमा मोमण चीमा गोयम, महंमद फुरमानी।

भावार्थ-तुम्हारे मजहब के आदि सतगुरु या पीर महंमद ने तो जैसा तुम लोग कहते हो तथा करते हो वैसा नहीं फरमाया था। उनका कहना तो यह था कि सच्चा मानव तो वही हो सकता है जो ईमानदारी से हृदय गुफा में छिपे हुऐ परमेश्वर की खोज करें। वैसे वह सर्वव्यापी परमात्मा कहीं गया नहीं है और न ही लंबी आवाजें देने से कहीं से आयेगा। वह तो घट-घट में व्यापक है। उसे तो शांत चित से ही देखा जा सकता है।

उरका फुरका निवाज फरीजा, खासा खबर विनाणी।

नवाज या अल्ला के नाम पर तुम लोग जितना हो हल्ला मचाते हो, वह जायज नहीं है। वह तुम्हारे कंठ

से निकली हुई ध्वनि को नहीं सुनेगा क्योंकि कण्ठ तथा आत्मा का तो कोई सम्बन्ध ही नहीं है। यदि आप लोगों को वहाँ तक अपनी आवाज पहुँचानी है तो वह हृदय के द्वारा पहुँचाई जा सकती है। इसलिये हृदय में ही नमाज का स्फुरण करो। यही अच्छी खबर तुम्हारे लिये मुहम्मद ने सुनायी थी और मैं पुनः तुम्हें सचेत कर रहा हूँ।

इला रास्ती ईमा मोमन, मारफत मुल्लाणी।

हृदय में परमात्मा का स्मरण करना ही सच्चा मार्ग है और इसी मार्ग द्वारा ही दयालु परम पिता परमेश्वर तक पहुँचा जा सकता है तथा काजी मुल्लाओं के मारफत यही बात कही जानी चाहिये क्योंकि उन महा पुरुषों का ऐसा ही आदेश था।

★★★★

प्रसंग-65 दोहा

जाट जमाती आय कै, गुरु के लागा पाय।
क्रिया धर्म जांणो नहीं, थूल जू वचन सुणाय।
मूरख परचै याहि सूं, जो म्हानै परचाय।
तो सतगुरु सांचो कहूं, ईश्वर जाणूं ताहि।

एक जाटों की जमात जम्भदेवजी के पास दर्शनार्थ आयी और आकर चरणों में शीश झुकाया तथा कहने लगे-हे देव! हम लोग क्रिया धर्म के बारे में कुछ भी नहीं जानते है और न ही हममें जानने की सामर्थ्य है। ऐसा कुछ चमत्कार कीजिये ताकि हमारे में वह शक्ति आ सके ताकि ज्ञान ग्रहण करके जीवन को आदर्शमय बना सके। हमारा विश्वास तो तभी जम सकता है अन्यथा आपकी बातें हमारी समझ से बाहर होगी। हम लोग ईश्वरीय अवतार भी चमत्कार के बिना स्वीकार नहीं कर सकते। तब श्री देवजी ने उनके प्रति सबद सुनाया-

सबद-114

ओ३म् सुर नर तंणो सन्देशो आयो, सांभलियो रे जाटों।
चांदणै थकै अंधेरे क्यों चालो, भूल गया गुरु वाटो।

भावार्थ-परम पिता परमात्मा ने ही आप लोगों के लिये यह संदेशा देकर मुझे सुरनर को भेजा है अर्थात् यह कार्य तो उसी परम सत्ता निराकार निरंजन ब्रह्म का ही है। किन्तु वह तो निराकार होने से कार्य तो कर नहीं सकता, इसलिये वही निराकार स्वयं ही देव तथा मानव का यह रूप धारण करके इस खबर को बता रहा है। ऐसी खबरें देव-मानव से परमात्मा बना देने वाली कभी कभी ही मिल पाती है। इसलिये हे जाटों! संभल जाओ, सावधान तथा सचेत हो जाओ अन्यथा यह अवसर हाथ से निकल जायेगा।

अब तो तुम्हारे सामने ज्ञान प्रकाश हो चुका है तो इस प्रकाश में चलकर जीवन व्यतीत कीजिये। इस प्रकाश की वजह से अब तो भटकना नहीं चाहिये। यदि प्रकाश होते हुऐ भी जान बूझ कर अन्धेरे में ही चलोगे तो फिर किसी को दोष नहीं देना। गुरु के बताये हुऐ मार्ग से अवश्य ही भटक जाओगे तथा गुरु द्वारा निर्देशित मार्ग से भटकने का अर्थ अच्छा नहीं होता।

नीर थकै घट थूल क्यूं राखो, सबल बिगोवो खाटो।

मागर मणिया क्यूं हाथ बिसाहो, कांय हीरा हाथ उसाटो।

जल होते हुऐ भी घड़ा खाली क्यों रखते हो अर्थात् इस समय तुम्हारे यहाँ ज्ञानामृत की वर्षा हो रही है तो फिर यह अन्त:करण रूपी घड़ा खाली क्यों रखते हो। वे मन, बुद्धि, चित, अहंकार ज्ञान के लिये तरस रहे हैं। जन्म जन्म के प्यासे हैं इन्हें ज्ञानामृत से तृप्त कीजिये तथा बार बार पूरा बल लगाकर छाछ को क्यों बिलो रहे हो। जिसमें से एक बार घी निकल चुका है। अब दुबारा घी निकालने का परिश्रम व्यर्थ है अर्थात् युवा अवस्था में सांसारिक भोग्य पदार्थो का एक बार भोग कर चुके हैं अब वृद्धावस्था में वह सुख वापिस लौटकर नहीं आयेगा उसके लिये बार-बार परिश्रम करना व्यर्थ है।

मगरे के चिड़ी मणियां जो कोई सुन्दर और टिकाऊ नहीं होते, उनको तो तुम हाथों में लेकर प्रसन्न होते हो, अपना शृंगार करना चाहते हो तथा हाथ में आये हुऐ हीरों को फेंक देते हो, यह कैसी बुद्धिमानी है अर्थात् लोक प्रसिद्ध दन्त कथाऐं तथा झूठी स्वार्थ भरी बातों पर विश्वास करके कल्पित देवी देवता भूत प्रेतों की पूजा तो तुम लोग करते हो तथा इस समय तुम्हारे हाथ में आया हुआ हीरा सदृश ज्ञान जो तुम्हें परम तत्व की प्राप्ति करवा सके। इस संसार की सर्वश्रेष्ठ सत्ता से मिलाप करवा सके, उसकी तुम लोग उपेक्षा करते हो तो तुम्हारे जैसा और कौन भाग्यहीन होगा।

सुर नर तंणो संदेशो आयो, सांभलियो रे जाटों।

इसलिये हे जाटों! इस समय तुम्हारे लिये ही विशेष रूप से यह संदेशा आया है। अब तुम सोते नहीं रहना यदि इस समय सोते रह गये तो फिर सदा के लिये ही सो जाओगे, फिर तुम्हें जगाने वाला कोई नहीं आयेगा। इसलिये संभल कर सचेत हो जाओ। इस संदेशे को श्रवण करके मनन, धारण, निदिध्यासन करोगे तो तुम्हें स्वत: चमत्कार मालूम पड़ेगा। ये दिव्य शब्द ही तुम्हें चमत्कृत कर देंगे, तुम्हारे जीवन में शांति ला देंगे।

★★★★

प्रसंग-66 दोहा

जोगी एक ज आवियो, जम्भगुरु के पास।
हाथ जोड़ बोलत भयो, सूधो वचन प्रकाश।
गूदड़ी धर बैठत भयो, कीन्हों एह विचार।
रूप तुम्हारो जोग निध, स कैसे किरतार।

एक योगी श्रीदेवजी के पास में आया और हाथ जोड़कर कुछ विना विचारे ही वचन बोलने लगा- तथा कुछ कहने के बाद गूदड़ी रखकर बैठ गया और फिर विचार करके कहने लगा कि आपका रूप तो महान योगी जैसा दिखता है। आपका दिव्य स्वरूप जैसा कि एक योगी का होना चाहिये, उससे कहीं अधिक उच्च कोटि का है किन्तु आपका शरीर इतना दुबला पतला क्यों है। इसका कारण बताइये। तब श्री देवजी ने सबद उच्चारण किया।

सबद-115

ओ३म् म्हे आप गरीबी तन गूदड़ियो, मेरा कारण किरिया देखो।
बिन्दो ब्योहरो व्योर विचारो, भूलस नाही लेखो।

भावार्थ-मैं स्वयं गरीबी में ही हूँ और मेरा यह शरीर ही गूदड़ी (ओढ़ने का वस्त्र है) जो सदा ही मेरे साथ रहता है अर्थात् मेरी इस आत्मा में सांसारिक धन जैसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, द्वेष और भाई बन्धु, धन दौलत इत्यादि नहीं है। मैं इससे सदा ही वंचित हूँ इसलिये गरीब हूँ तथा कृश काय ही मेरी इस आत्मा की रक्षा के लिये गूदड़ी की जगह पर्याप्त है। अब यह गूदड़ी प्राचीन होकर जीर्ण-शीर्ण हो जायेगी तो इसको छोड़ दिया जायेगा। तब तक तो इससे कार्य ले रहा हूँ। ''वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृहणाति'' गीता वचन से भी यही बात सिद्ध होती है। हे योगी! तुमने मेरे इस शरीर को तो देखा किन्तु शरीरस्थ परम ज्योति को तो नहीं देख सका और न ही मेरे कारण क्रिया अर्थात् मेरे द्वारा किये जाने वाले कार्य को ही देखा है। इसलिये अब तुम मेरे द्वारा होने वाले आचार-विचार साधना को देखो।

वह परम तत्व बिन्दु के रूप में अवस्थित होता है। बाह्य तत्वों पर विचार करते करते अन्त में सूक्ष्म बिन्दु यानि शून्य ही अवशेष रह जाता है। योगी लोग उसी बिन्दु शून्य पर ही ध्यान केन्द्रित करते है। उसी बिन्दु की ओम ध्वनि है। गुरु जम्भेश्वर जी कहते हैं कि उसी बिन्दु के बारे में ही विचार करता हूँ तथा उस शून्य का ब्यौरा पेश करता हूँ तथा मेरे द्वारा बार-बार उस शून्य के ब्यौरे को याद रखने, विचार करने के लिये कहा जाता है हे लोगों! उस लेख को विवरण को भूल नहीं जाना। उसे सदा याद रखते हुऐ वहाँ तक पहुँचने के लिये प्रयत्नशील रहना।

नदिये नीरूं सागर हीरूं, पवणां रूप फिरै परमेश्वर।

वह परम तत्व सर्वत्र समाया हुआ है क्योंकि शून्य रूप में अवस्थित रहता है। जैसे नदियों में जल रूप से उसकी ही स्थिति है। इसलिये तो जल से प्यास की तृप्ति होती है तथा इस जल तत्व से शरीर का पोषण होता है सागर में वह हीरे के रूप में विद्यमान है। सागर का सार तत्व हीरा ही होता है तथा विशेषत: वह पवन के रूप में सर्वत्र समाया हुआ हैं इन चर्म चक्षुओं से तो वायु नहीं दिखती किन्तु स्पर्श का विषय तो बनती ही है। उसी प्रकार से वह परमात्म तत्व भी अनुभव का विषय बनता है और हमारे श्वांसों द्वारा अन्दर प्रवेश करके हमें जीवन प्रदान करता है। उन्हीं के द्वारा दी हुई प्राण शक्ति से हम जीते है। इसी प्रकार से कण कण में उसकी सत्ता विद्यमान है। परन्तु उसका साक्षात्कार इन पाँच स्थूल तत्वों के माध्यम से संभव हो सकता है।

बिंबै बैला निश्चल थाघ अथाघूं, ते सरवर कित नीरूं, गहर गंभीरूं।

बिंबै बेला में यानि ब्रह्म मूहुर्त में दिन या जीवन की प्रारम्भिक अवस्था में जब सूर्योदय होता है। ऐसी दिव्य बेला में ध्यान किया जाता है। गुरु जी कहते हैं कि मैं उस दिव्य बेला में निश्चल होकर यानि आसन लगाकर जब बैठता हूँ तो जो इन दृष्ट वस्तुओं का थाघ लगाया जाता है। इनका निर्णय शब्द द्वारा किया जाता है। इनसे उपर उठकर वह जो परम सत्ता अथाघ है उसी में पहुँच जाता हूँ। यह योग द्वारा संभव है। उस दिव्य अवस्था में जब पहुँचता हूँ तो अन्दर एक दिव्य प्रकार की उमंग, आनन्द की लहर उठती है। उन्हीं लहरों के सागर में अमृत जल में स्नान करता हूँ तो फिर बाह्य सांसारिक विषयों का क्षणिक सुख छोटे से तालाब में पड़े हुऐ गंदे जल की भांति प्रतीत होता है फिर कभी भी उस छिलरीये में स्नान करने की इच्छा नहीं हो सकती। ऐसा वह समाधि का दिव्य आनन्द है।

वह जितना आनन्दमय है उतना ही गहरा और गंभीर भी है। इसलिये उसमें आगे ओर बढ़ने की कोशिश सदा चलती रहती है तो भी उसका थाघ नहीं आता है। वह कभी भी सूखने वाला भी नहीं है और न ही वह चंचल भी है जो कदाचित अप्राप्य हो सके।

खिण एक सिद्ध पुरी विश्राम लियो, अब जूं मण्डल भई अवाजूं।
म्हे शून्य मण्डल का राजूं।

मैं कुछ समय तक सिद्धों की पुरी अर्थात् जहाँ पर समाधि लगाने वाले योगी रहते हैं। समाधि अवस्था में सिद्ध लोग स्थिर रहकर परम दिव्य आनन्द को प्राप्त करते हैं वहाँ स्थिर रहकर सत्य मंडल की ओंकार ध्वनि को श्रवण करके वापिस शून्य मण्डल में आ जाता हूँ। क्योंकि मुझे वहाँ पर सदा ही समाधि लगाकर बैठना नहीं है। मैं जिस कार्य के लिये आया हूँ वह भी तो मुझे पूर्ण करना है केवल समाधिस्थ होने से तो कार्य नहीं चलेगा तथा मैं शून्य मण्डल में तो सदैव रहता हूँ वहाँ का तो मैं राजा ही हूँ अर्थात् सांसारिक विचारों से शून्यता तो मुझे सदैव रखनी होती है। अन्यथा संसार के दुखी लोगों मे तथा मेरे में अन्तर ही क्या होगा। उन लोगों की तरह मेरी वृति भी यदि सदा संसार के विषय भोगों में लिप्त हो गई तो फिर मैं भी उन्हीं की तरह दुखी हो जाऊँगा। ऐसा होने पर जीवों का कल्याण कौन करेगा।

★★★★

प्रसंग-67 दोहा

जोगी सब भेला हुआ, आया मारूं देश।
भस्मी रमाई देह में, लम्बे बढ़ाया केश।
जोगी तब डेरा किया, हिमटसर में आय।
सतगुरु को जब खबर हुई, सनमुख मिले तांह।
जोगी तब बोले नहीं, सतगुरु कियो आदेश।
धूनी पावड़ी पवन पाणी, सब ही कियो अलेख।

लोहाजड़ नाथ, पीतलजड़ नाथ तथा मृघीनाथ ये तीनों ही अपनी मण्डली सहित जम्भेश्वर जी की परीक्षा लेने के लिये दूर देश से चलकर हिमटसर गांव में डेरा लगाया। उन नाथ साधुओं ने लम्बे लम्बे केश बढ़ा रखे थे तथा शरीर में भस्म रमा रखी थी। किसी के द्वारा खबर पाकर जम्भदेवजी हिमटसर पहुँचे। उनके सामने जाकर आदेश कहा किन्तु उनमें से कोई भी नहीं बोला, सभी एक मत से चुप हो गये। तब पुनः जम्भदेवजी ने आदेश आदेश कहा। तब भी वे तो नहीं बोले किन्तु उनकी धूणी, पावड़ी, पानी, पवन आदि से आदेश आदेश की ध्वनि निकलने लगी। ऐसी करामात दिखाकर सम्भराथल पर वापिस पहुँचे। योगी लोग भी चैन से नहीं बैठ सके और जम्भदेवजी के पीछे पीछे सम्भराथल पर पहुँच कर मृगछाला तथा पावड़ी आकाश में घुमाते हुऐ अपनी सिद्धि दिखाने लगे। ऐसी उनकी सिद्धि देखकर श्री देवजी ने सबद सुनाया- विशेष कथा ''जम्भसार'' में पढ़ें।

सबद-116

ओ३म् आयसां मृगछाला पावोड़ी कांय फिरावों,मतूंत आयसां ऊगंतो भांण थंभाऊं।
दोनों परबत मेर उजागर, मतूंत अध बिच आन भिड़ाऊं।

भावार्थ-हे आयस्! हे नाथ साधुओं के महंत! आप लोग इस मृगछाला और पावड़ी को आकाश में घूमा करके मुझे क्या सिद्धि दिखला रहे हो। इस सिद्धि को दिखाने की आवश्यकता नहीं है। मैं तो आप लोगों

की करामात पहले से ही जानता हूँ। आप लोग तो इन छोटी छोटी सिद्धियों तक ही सीमित हो और यदि मैं चाहूँ तो उगते हुऐ सूर्य को भी रोक सकता हूँ। किन्तु ऐसा करना तुम्हारे लिये आवश्यक नहीं है और यदि मैं चाहूँ तो उदय गिरि और सुमेरू इन दोनों पर्वतों को अपने स्थानों से उठाकर यहाँ बीच में लाकर आपस में भिड़ा दूँ किन्तु यह भी किसलिये। आप लोगों के लिये तो मेरा शब्द ही पर्याप्त है।

तीन भवन की राही रूक्मण, मतूंत थलसिर आंण बसाऊं।
नवसै नदी निवासी नाला, मतूंत थलसिर आन बहाऊं।

तीनों भवनों की रानी रूक्मणी जो सीता, लक्ष्मी के रूप में सदा रहती है। उसको यदि मैं चाहूँ तो इस सम्भराथल पर लाकर बसा दूँ। यह असंभव कार्य भी संभव कर सकता हूँ तथा इस भू लोक में अनेकानेक बहने वाली नयी और प्राचीन काल से चली आ रही नदियों को तथा उनमें समाहित होने वाले असंख्य नालों को मैं यहाँ सम्भराथल के उपर बहा दूँ। यदि मैं तुम्हारी इन सिद्धियों का प्रत्युतर देना चाहूँ तो संभव हो सकता है।

सीत बहोड़ी लंका तोड़ी, ऐसो कियो संग्रामूं।
जां बाणै म्हें रावण मार्‌यो, मतूंत कोवड सोखा हाथे सांह।

हे आयस्! तूं मुझे क्या सिद्धि दिखला रहा है। मैंने त्रेता युग में ऐसा भयंकर संग्राम करके रावणादि राक्षसों को मारा था और लंका को तोड़ डाली थी तथा सीता को वापिस बहोड़ी लाये थे। जिस धनुष बाणों से यह कर्तव्य किया था तथा समुद्र को सुखाने की योजना जिन बाणों द्वारा बनायी थी वही धनुष बाण यदि मैं चाहूँ तो अभी भी अपने हाथों में धारण कर सकता हूँ। किन्तु ऐसा होने पर तो यहाँ पर उन राक्षसों की तरह मुझे भी सर्वनाश करना होगा, परन्तु इस समय यह उचित नहीं है। अब केवल पापों का नाश करना है पापी का नहीं।

कैरू पांडव जादम जोधा, मतूंत गढ़ हथनापुर आंणि दिखाऊं।
अति अनेरा बाग सवाया, मतूंत सोवन म्रिगा करि चराऊं।

द्वापर युग के कैरव, पाण्डव, यादव आदि योद्धाओं को वापिस मैं हस्तिनापुर में लाकर बसा सकता हूँ उन्हें यदि चाहूँ तो यहाँ पर भी बुला सकता हूँ। किन्तु इस समय उनकी आवश्यकता नहीं है तथा इस मरुभूमि में यदि मैं चाहूँ तो अति सुन्दर बाग-बगीचे लगा सकता हूँ जो सर्वश्रेष्ठ हो सकते हैं तथा उनमें स्वर्ण वर्ण के मृगों को चरा सकता हूँ। अनहोनी घटना भी मैं चाहूँ तो हो सकती है क्योंकि कृष्ण चरित्र से यह कार्य संभव हो सकता है और मेरे पास ऐसा ही दिव्य चरित्र विद्यमान है।

अति अनेरा पावस पाणी, मतूंत घण पाहण बरसाऊं।
आयसां! मृगछाला पावोड़ी कांय फिरावो, मतूंतो उगंतो भाण थंभाऊं।

मैं वर्षा ऋतु में आवश्यकतानुसार बादलों से पानी बरसाता हूँ। यह तो मैं सामान्य दशा में करता ही हूँ किन्तु यदि मैं चाहूँ तो उस जल के स्थान में पत्थरों की वर्षा करवा सकता हूँ। वे भी अत्यधिक संख्या में कर दूँ तो सम्पूर्ण सृष्टि का प्रलय हो जायेगा। इसलिये हे आयस! आप लोग ये मृगछाला और पावड़ी आकाश में क्यों घूमा रहे हो। यदि मैं चाहूँ तो ऊगते हुऐ सूर्य को भी रोक सकता हूँ।

दोहा

जोगी तब ऐसे कही, सुनो स्वामी जी बात।

जोग सिद्धि हम भी लई, सतगुरु केरे पास।

उक्त शब्द को सुनकर जोगी लोगों ने इस प्रकार से कहा कि हे स्वामी! हमारी बात सुनिये! हम कोई ऐसे-वैसे मन मुखी साधु नहीं है। हमने गुरु धारण किया है तथा गुरु से योग मार्ग सीखा है। इसलिये आप हमें साधारण साधु नहीं समझना, हम सिद्ध है। तब श्री देवजी ने दूसरा सबद सुनाया-

सबद-117

ओ३म् टूका पाया मगर मचाया, ज्यूं हंडियाया कुता।

भावार्थ-जिस प्रकार से घर घर हांडने वाला यानि घूमने वाला कुत्ता होता है, वह घर-घर के टुकड़े खाकर लड़ाई झगड़े करता हुआ भौंकता है। उसी प्रकार से हे आयस! आप लोग भी भिक्षा मांगने के अधिकार के नाम पर घर घर टुकड़े मांगकर खाते हो, फिर उन्हीं कुत्तों की तरह आपस में लड़ाई-झगड़े करते हुऐ शोर मचाते हो तथा जिस प्रकार से कुत्ता अपने क्षेत्र में दूसरे कुत्ते को नहीं आने देता उसी प्रकार आप लोग दूसरे भिक्षु को अपने अधिकार क्षेत्र में नहीं आने देते। तो फिर आप लोग तथा उस हांडने वाले कुत्ते में क्या अन्तर है।

जोग जुगत की सार न जांणी, मूंड मुंडाय बिगूता।
चेला गुरु अपरचै खीणां, मरते मोक्ष न पायो।

आप लोगों ने योग तथा युक्ति की सार महत्व को तो जाना ही नहीं है अर्थात् न तो आपके पास समुचित योग साधन है और न ही युक्ति पूर्वक जीवन की कला ही है। किन्तु योगी-साधु जैसा वेश जरूर बना लिया है। योग या साधुता जीवन से रहित केवल मूंड मूंडाय लेना या जटा बढ़ा लेना तो अविश्वासी जीवन बना लेना हैं क्योंकि जैसे तुमने बाह्य वेशभूषा से जीवन को दिखाने का प्रयत्न किया है वैसा अन्तःकरण से नहीं बन पाये। बाह्य कुछ ओर अन्दर से वास्तविकता कुछ ओर होना ही बेविश्वासी-विगूता जीवन हो जाता है। अब तुम विश्वास करने के योग्य ही नहीं हो। तुम्हें इस वेशभूषा के द्वारा तो जीवन को सर्वोच्च बनाना था किन्तु तुमने इसे नीचे गिरा दिया है। इससे बढ़कर और ज्यादा हानि क्या हो सकती है। इसलिये गुरु और शिष्य दोनों ही बिना ज्ञान प्राप्त किये इसी प्रकार से भटकते हुऐ मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं।

''गुरु लोभी चेलो लालची, दोनों खेले दाव'' ये दोनों ही अपने अपने दांव पेंच खेल रहे हैं। गुरु चाहता है कि शिष्य का धन हरण कर लूं तथा शिष्य चाहता है कि गुरु का धन-दौलत मेरा है। इस प्रकार के सन्दर्भ में दोनों ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। किन्तु मुक्ति को प्राप्त नहीं हो सकते। ''आये थे हरि भजन को ओटन लगे कपास'' घर बार छोड़ करके हरि का भजन करने के, मुक्ति प्राप्त करने के लिये आये थे किन्तु यहाँ आकर मोह-माया के जाल में फंस गये।

★★★★

प्रसंग-68 दोहा

विश्नोवण एक बाल ले, आई सतगुरु पास।
बालक मुख बोले नहीं, मन में घणी उदास।
सतगुरु मूंह बोलाइये, सांसो मिटे अपार।
देव तवै चुटकी दई, बालै कियो उचार।

एक बिश्नोई माता अपने बालक को लेकर जम्भदेवजी के पास आयी और हाथ जोड़कर कहने लगी–हे देव! यह मेरा बालक अब आयु में तो काफी बड़ा बोलने लायक हो गया है किन्तु कुछ भी मुख से शब्द नहीं बोलता, सदा ही मौन रहता है। इसलिये आपके पास लायी हूँ। अब आप ही कृपा करके इसे मुख से बोलाइये, तभी मुझे शांति मिलेगी। तब श्री देवजी ने चुटकी बजाई तो वह बालक बोलने लग गया।

प्रथम बार बोलते ही उसने जाम्भोजी के बारे में जानना चाहा था कि आप यहाँ क्यों आये? मैंने तो आपको स्वर्ग में देखा था। जैसी ज्योति स्वर्ग लोक में थी ठीक उसी ज्योति में आप यहाँ विराजमान है, ऐसा क्यों और कैसे हुआ। इसी प्रकार के प्रश्नों का उत्तर देते हुऐ जम्भदेवजी ने यह शब्द उच्चारण किया और बालक को वर्ज दिया कि अब ज्यादा नहीं बोलना, नहीं तो तेरी पूर्व जन्म में दशा हुई थी वही इस जन्म में भी हो सकती है। इस प्रकार से उस पूर्व जन्म की कथा याद दिलाई। साथरियों ने पूछा तब उस बालक ने अपने पूर्व जन्म की कथा विस्तार से सुनायी। वही कथा जाम्भा पुराण में विस्तार से पढ़ें।

सबद–118

ओ३म् सुरगां हूंते शिम्भूं आयो, कहो कुणां के काजै।
नर निरहारी एक लवाई, परगट जोत विराजै।

भावार्थ–हे बालक! यदि तूँ मेरे बारे में विस्तार से जानना चाहता है तो इस छोटे से शब्द द्वारा श्रवण कर। जैसा तुमने स्वर्ग में मुझे नर, निरहारी, कैवल्य तथा ज्योति स्वरूप में विराजमान देखा था। वही मैं यहाँ पर आया हूँ। जैसा तुम्हारा कथन है वह सत्य है। यह स्वरूप तो तुमने अपनी आंखों से देखा है क्योंकि तूँ योग भ्रष्ट होने से तुझे यह याद भी है किन्तु आगे की वार्ता तूँ नहीं जानता यहाँ पर आने के प्रयोजन से भी तूँ अनभिज्ञ है। इसलिये तुम्हारा पूछना जायज ही है। मैं अभी आगे तेरे को बतलाता हूँ। सुनों!

प्रहलादा सूं वाचा कीवी, आयो बारां काजै।
बारां मैं सूं एक घटै तो, सू चेलो गुरु लाजै।

मैंने सतयुग में नृसिंह रूप धारण करके हरिण्यकश्यपु को मारा था। उस समय प्रहलाद को मैंने वचन दिया था कि तुम्हारे साथ में जो तेतीस करोड़ तुम्हारे अनुयायियों का भी उद्धार होगा। उस वचन को मैंने पांच करोड़ प्रहलाद के साथ उद्धार करके, सात हरिश्चन्द्र के साथ और नौ करोड़ करोड़ युधिष्ठिर के साथ उद्धार करके निभाया था। किन्तु इतना होने पर भी बारह करोड़ अब शेष रह गये है। उनका कल्याण करने के लिये मुझे यहाँ आना पड़ा है। यदि मैं प्रतिज्ञा करके पूरा न कर सकूँ अर्थात् इन बारह करोड़ से एक भी कम रह जाये प्रहलाद के पास पहुँच न पाये तो वचन देने वाला गुरु तथा वचन लेने वाला शिष्य दोनों ही लज्जित हो जायेंगे। प्रहलाद जैसा तो शिष्य और नृसिंह जैसा गुरु यदि वचन दे करके न निभा सके तो बड़ी लज्जा की बात होगी। इसलिये मुझे यहाँ आना पड़ा है तथा यह कार्य पूर्ण हो जाने के बाद मैं शीघ्र ही वापिस चला जाऊँगा। ''बारा थाप घणां न ठाहर।''

★★★★

प्रसंग–69 दोहा

अतली सतगुरु सूं कहै, रोमावली को भार।
सो वो कहो कद उतरै, तुम ही कहो किरतार।

ऊदो तथा अतली ये दोनों पति-पत्नी जम्भेश्वर जी की आज्ञानुसार चलकर अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे। उनका मुख्य धर्म था अतिथि सुभ्यागत की तन-मन-धन से सेवा करना। कई बार उन्हें कठिन परिस्थितियों से गुजरना पड़ा था तथा कुछ स्थानों में जाकर निवास करने से उनकी सेवा भावना भी कम हो गई थी। जिससे घर में घाटा भी रहने लगा था। अन्त में जम्भदेवजी ने इनको गाँव पारवा में बसाया था, वहाँ पर बसने के बाद पुनः खुशहाली आ गई थी।

एक बार श्री देवजी उनकी परीक्षार्थ उनके घर पर भी वेश बदल कर गये थे। अतली ने घी की धारा न रोकते हुऐ पात्र के उपर से निकाल दिया था। तब जम्भदेवजी ने अति प्रसन्नता से उनको मुक्ति का वरदान दिया था। उसी समय ही अतली ने सतगुरु जी से पूछा था। कि हे देव! मानव के शरीर पर जितनी रोमावली यानि रोंऐं है उतने ही उसके उपर जन्म जन्मान्तरों के पाप छाये रहते हैं। यदि ऐसा है तो फिर वह इतने पापों को काटकर पार कैसे उतरेगा। आप ही इसका निस्तार कीजिये। तब श्री देवजी ने सबद सुनाया। विशेष कथा जाम्भा पुराण में पढ़ें।

सबद-119

ओ३म् विष्णु विष्णु तूं भण रे प्राणी, पैंकै लाख उपाजूं।
रतन काया वैकुण्ठै वासों, तेरा जरा मरण भय भाजूं।

भावार्थ-हे प्राणी! तूँ विष्णु विष्णु इस महामंत्र का बार बार जप किया कर। जिस प्रकार से एक एक पैसा जोड़ते-जोड़ते एक दिन लाखों रूपये एकत्रित हो जाते हैं उसी प्रकार से एक एक परमात्मा विष्णु का नाम जुड़ते जुड़ते अनन्त नाम इकट्ठे हो जायेंगे। वही तुम्हारे अनन्त पापों को काट डालेगा। जीवन रहते हुऐ तो तुम्हें वृद्धावस्था तथा मृत्यु का भय नहीं रहेगा। क्योंकि इतनी नाम राशि एकत्रित हो जाने से तुम्हारा जीवन सफल हो जायेगा। अज्ञानान्धकार की निवृति हो जायेगी इसलिये कोई भय नहीं रहेगा तथा मृत्यु पश्चात् यह तुम्हारी सूक्ष्म रत्न सदृश काया वैकुण्ठ लोक में वास करेगी। जन्म-मृत्यु के चक्कर से सदा-सदा के लिये छूट जायेगा। यही विष्णु के नाम की महता है।

★★★★

प्रसंग-70 दोहा

आत्म कह्यो अंत ग्रन्थ के, प्रिथम कह्यो हरि नाम।
मैं अधिकारी कास को, कहिये सुन्दर श्याम।
रतने राहड़ का प्रश्न सुन, बोले जम्भ दयाल।
तूं अधिकारी नाम को, छोड़ो आल जंजाल।

गाँव जाँगलू का रतना राहड़ जाम्भोजी का परम भक्त था। उन्होंने धर्म की रक्षा के लिये अपने ससूराल वालों से नेह तोड़ दिया था तथा श्वसूराल से वापिस आते समय मार्ग में एक हरिण की रक्षा अपने प्राणों की आहुति देकर भी ठान ली थी। परन्तु रतने ने दृढ़ निश्चय के सामने उसी गाँव के ठाकुर को झुकना पड़ा था। उसने पत्नी सहित रतने को सादर भेंट देकर वहाँ से विदाई दी थी। अपने घर पर आने पर तो उसके भाई व

पिता ने रतने को घर से निकाल दिया था, तो भी वह चिंतित नहीं हुआ। जम्भदेवजी के पास सम्भराथल पर पहुँचा था। अपने ही भाई बन्धुओं ने जिनको ठुकरा दिया था किन्तु जम्भेश्वर जी ने सस्नेह उसको अपनाया तथा आशीर्वाद दिया, जिससे रतने की खेती दिन दूनी रात चौगुनी फलित हुई।

वही रतना यदा कदा सम्भराथल आया करता था। गुरु महाराज के शब्दों को श्रवण किया करता था। एक बार जम्भदेवजी से पूछा कि आप अपनी वाणी द्वारा कभी भी आत्म ज्ञान का उपदेश देते हो, कभी योग के बारे में बतलाते हो तथा कभी निष्काम कर्म की शिक्षा देते हुऐ समझाते हो, मेरे लिये अर्थात् हमारे जैसे किसानों के लिये आपकी क्या शिक्षा है क्योंकि हम गृहस्थ लोग योग ध्यानादि कठिन कार्य तो नहीं कर सकते। तब श्री देवजी ने यह सबद सुनाया जो सर्वसाधारण के लिये सुलभ है।

सबद 120

ओ३म् विष्णु विष्णु तूं भण रे प्राणी, इस जीवन कै हावै।
क्षण क्षण आव घटंती जावै, मरण दिनों दिन आवै।

भावार्थ-हे प्राणी! जब तक तुम्हारे इस पंचभौतिक शरीर में प्राण वायु का संचार हो रहा है अर्थात् जब तक तुम्हारा यह शरीर स्वस्थ है तब तक तूँ विष्णु विष्णु इस महामन्त्र का जप किया कर क्योंकि ऐसा कार्य तो इस जीवन के रहते ही हो सकता है। मनुष्येतर शरीरों से तो संभव नहीं है इसलिये तुम्हारे जैसे कृषक समाज के लिये तो यही सर्वोत्तम साधन है। इसी से ही जीवन की भलाई हो सकती है। परमात्मा ने विष्णु नाम स्मरण करने के लिये यह दिव्य देह तो दी है। किन्तु ध्यान रखना, यह अस्थिर काया स्थिर अजर-अमर नहीं है। इस शरीर की आयु सीमित तथा निश्चित है। मृत्यु दिनों दिन नजदीक आ रही है। लोग कहते हैं कि मेरा बेटा बड़ा हो गया किन्तु श्री देवजी कहते हैं कि छोटा हो गया। बड़ा तो उस दिन था जब पैदा हुआ था। अब दिनोंदिन छोटा होता जा रहा है। मृत्यु नजदीक आ रही है।

पालटीयों गढ़ कांय न चेत्यो, घाती रोल भनावै।
गुरुमुख मुरखा चढ़ै न पोहण, मनमुख भार उठावै।

यह शरीर रूपी गढ़ तुम्हारे देखते देखते ही पलट गया है। कभी यह बालक था फिर जवान हुआ और अब बूढ़ा हो गया। एकाएक पलट गया। किन्तु फिर भी तूँ सचेत नहीं हो सका और अब वृद्धावस्था का अर्थ है कि काल ने रोल घात दी है अर्थात् काल ने तेरे शरीर पर अपना प्रभाव जमा दिया है और प्रति क्षण इसे तोड़ रहा है। इसे क्षीण कर रहा है। एक दिन इस शरीर की शक्ति को काल भस्म कर देगा, इसे तोड़-मरोड़ कर जर्जरित कर देगा तो फिर इस गढ़ में निवास करने वाली जीवात्मा भी इसे छोड़कर चली जायेगी। ऐसा काल का प्रत्यक्ष खेल होने पर भी मूर्ख लोग तो इसे देख नहीं पाते। गुरु के बताये हुऐ मार्ग पर चल नहीं सकते। यदि वे लोग गुरुमुखी होकर यह जीवन यापन करें तो उन्हें इस संसार का दुख रूपी भार उठाना नहीं पड़ेगा किन्तु ये लोग तो अपनी मूर्खता के कारण मनमुखी कार्य करेंगे, जिससे उन्हें संसार का दुख द्वन्द्व रूपी भार उठाना ही पड़ेगा। सतगुरु ने इन्हें नियम धर्म मर्यादा रूपी वाहन चढ़ने के लिये दिया है। परन्तु ये लोग उस वाहन का उपयोग न करते हुऐ मनमुखी सतगुरु के नियम की परवाह न करते हुऐ अनीति अधर्म अमर्यादित जीवन को जीना स्वीकार करके दुख उठायेंगे।

ज्यूं ज्यूं लाज दुनी की लाजै, त्यूं त्यूं दाव्यो दावै।

भलियो होय सो भली बुध आवै, बुरियो बूरी कमावै।

ज्यों ज्यों दुनिया की लाज से लज्जित होगा, त्यों त्यों ही वह दबता जायेगा। अर्थात् दुनिया के लोगों का अपना एक संसार होता है। आपसी भाई-बन्धु, माता-पिता, कुटुम्ब, सगा-सम्बन्धी इनके कथनानुसार चलना अपनी मर्यादा समझता है। ये लोग सदा मोह माया में फंसाने का ही प्रयत्न करते हैं। यदि कोई पिंजरे से बाहर निकलना भी चाहता है तो उसे अनेक प्रकार की, कुल परिवार की मर्यादाओं से अवगत करवा कर निवृत्त कर देते हैं। यदि कोई साधक इन्हीं लोगों द्वारा दी हुई इस प्रकार की लज्जा से लज्जित होकर साधना भजन परोपकार आदि कार्य करना छोड़ देता है तो उसके उपर दबाव अधिक बढ़ जायेगा। वह कभी भी उस दबाव से उपर नहीं उठ सकेगा।

इन्हीं संसारी लोगों में से यदि कोई भला पुरुष होगा तो सदा भली बुद्धि उपजेगी तथा वह सदा सच्ची ज्ञान वर्धक धर्म की बात ही बतलायेगा किन्तु जो दुष्ट स्वभाव का आदमी है वह कभी भी भली अच्छी बुद्धि नहीं उपजायेगा। सदा कुबुद्धि ही प्रदान करते हुऐ पापमय कर्मो में प्रेरित करेगा तथा स्वयं भी वही कर्म करेगा।

बूरो जूणी चवरासी भुविसी, भलौ आवागुवणी न आवै।

दुष्ट व्यक्ति तो सदा चौरासी लाख योनियों में भटकेगा किन्तु भला सज्जन व्यक्ति आवागमन बार बार जन्म मरण के चक्कर से छूट जायेगा यही भले तथा बुरे का फल है। जैसा फल आप चाहते है वैसा मार्ग कर्म अपना सकते है।

इस प्रकार से नित्य पाठ तथा हवन के अवसर पर उच्चारण किये जाने वाले प्रचलित 120 शब्दों का भावार्थ पूर्ण हुआ। अब आगे कलश पूजा मन्त्र, पाहल मन्त्र तथा उन्नतीस नियमों की विस्तृत व्याख्या की जायेगी तथा इन्हीं अर्थ से प्रचलित संस्कार परंपराओं के बारे में विस्तार से विवेचन करने का प्रयास किया जा रहा है।

★★★ ★★★

।।इति 120 सबदों की टीका पूर्ण हुई।।

कलश पूजा मन्त्र

ओ३म् अकल रूप मनसा उपराजी, तांमा पांच तत्व होय राजी।
आकाश वायु तेज जल धरणी, तांमा सकल सृष्टि की करणी।

भावार्थ-कोई भी कार्य करने से पूर्व उस कार्य के सम्बन्ध में इच्छा उत्पन्न होती है। इच्छा जब स्थिर हो जाती है, संकल्प जब दृढ़ हो जाता है तो फिर बुद्धि शक्ति की उत्पति होती है। उस कार्य के बारे में विचार किया जाता है तथा यह किस विधि से किया जा सकता है और करने योग्य है या नहीं यही विचार बुद्धि का स्वरूप है। व्यवहार में ऐसा ही देखा जाता है। यहाँ पर जम्भेश्वर जी सृष्टि के क्रम में भी इस विधि को बतला रहे हैं। जैसा कि उपनिषदों में कहा है-**''सो अकामयेत् बहुस्यां प्रजायेयेति, स तपो अतप्यत, स तपस्तप्त्वा इदं सर्वमसृजत यदिदं किंच, तत्सृष्टवा तदेवानुप्रविशत्।''**

उसने कामना की कि मैं एक से अनेक हो जाऊँ। मैं प्रजा वाला होऊँ। उसने तप किया तप करने के पश्चात् उसने सभी की रचना की थी जो कुछ दृष्ट अदृष्ट है तथा इस जगत की रचना करके इसमें स्वयं ही प्रविष्ट भी हुआ अर्थात् प्रलयावस्था में यहाँ कुछ भी नहीं था। उस समय सभी जीव **''हिरण्यगर्भ समवर्ततााग्रे भूतस्य जातस्य पतिरेक आसीत'',** ये सभी जीव हिरण्यगर्भ परमात्मा में ही शयन कर रहे थे। वही सर्वप्रथम प्रकट सचेत हुआ, जीवों को जागृत किया। उन्हें कर्म फल प्रदान करने का समय उपस्थित हुआ। तभी परम पिता परमात्मा निरंजन निराकार ने अपनी इच्छा शक्ति से अकल यानि बुद्धि की उत्पति की। सृष्टि रचना के कर्म विधि-विधान का निर्णय किया।

प्रलयावस्था में सुषुप्त जागतिक ज्ञान को पुनः सक्रिय किया। उस अकल ने पांचों तत्त्वों को राजी किया। कभी सृष्टि अवस्था में पांचों तत्त्व साथ में रहते थे। इनका मेल-मिलाप था। प्रलयावस्था से पूर्व दशा में पांचों तत्त्व साथ में रहते थे। किन्तु प्रलयावस्था में एक दूसरे से हटकर बिखर गये थे उन्हें वापिस एकत्रित करने के लिये राजी किया। इनके संगठित हुए बिना तो सृष्टि की सृजना नहीं की जा सकती थी। ये पांचों तत्त्व अपने कारण स्वरूप, शब्द, स्पर्श रूप, रस, गन्ध इन पांच तन्मात्राओं में सूक्ष्म रूप से विद्यमान थे। उन्हीं सूक्ष्म रूप से इन्हें स्थूल रूप प्रदान करते हुऐ आकाश, वायु, तेज, जल, धरणी के रूप में पुनः स्थापित किया।

इसी क्रम में भी सर्वप्रथम आकाश की उत्पत्ति हुई। इसी आकाश से वायु तथा वायु से तेज की उत्पत्ति हुई। तेज के प्रभाव से जल तथा जल से धरती की उत्पत्ति होती है। इसलिये आकाश में मात्र एक ही गुण शब्द रहता है। वायु में एक तो आकाश का गुण शब्द तथा एक अपना गुण स्पर्श ये दोनों गुण वायु के है तथा इसी प्रकार वायु के भी शब्द स्पर्श ये दोनों गुण तेज में आ जाते हैं तथा तेज का भी अपना गुण रूप ये तीन गुण तेज में रहते हैं। तीन गुण तो तेज के और चौथा गुण रस जल का अपना ये चार गुण जल में रहते हैं तथा इन्हीं पांचों तत्त्वों के पंचीकरण कर देने से इन्हीं पांच तत्त्वों से सम्पूर्ण सृष्टि की सृजना होती है। इन्हीं पांच तत्त्वों से सृष्टि बाहर नहीं है इन्हीं के अन्तर्गत है।

ता समर्थ का सुणों विचार, सप्तदीप नवखण्ड प्रमाण।

उस सर्वप्रथम अनादि सृष्टि कर्त्ता के बारे में कहा जाये तो कथन का कोई अन्त पार ही नहीं होगा। ''लिखति यदि शारदा सर्वकालं तदपि तव गुणानामीशं पारं न याति'' यदि सरस्वती स्वयं सम्पूर्ण सृष्टि की स्याही लेकर सभी

वृक्षों की कलम बनाकर लिखना प्रारम्भ करे तथा सदा ही लिखती रहे तो भी उनके गुणों का पार नहीं पाया जा सकता। फिर भी उसकी कर्तत्व कला का कुछ बखान कर रहे हैं, वह सुनों! सर्वप्रथम उनकी सृजन कला का उदाहरण यह है कि उसने सप्त द्वीप और नौ खण्डों में इस धरती को विभाजित करके बनायी तथा अन्य भी भू: भुव: स्व: आदि लोक तथा पाताल आदि की रचना की और ऐसी विचित्र सृष्टि की रचना उस कलाकार की विशेषता है। यह महान कार्य दूसरे से असंभव है।

पांच तत्व मिल इण्ड उपायो, बिगस्यो इण्ड धरणी ठहरायो।
इण्डे मध्ये जल उपजायो, जलमां विष्णु रूप उपन्नों।

पंच भूतों की स्थूल सृष्टि तो हो चुकी किन्तु जब आगे इस सृष्टि पर भूत प्राणियों की सृष्टि करना तो आवश्यक हो जाता है। इसके बिना तो ''एकाकी न रमते'' अकेले से तो खेल नहीं खेला जा सकता इसलिये एक से अनेक कैसे हुआ जा सकता है। एक से अनेक होने की धारणा ने सर्वप्रथम इन पांच तत्वों को मिलाकर एक अण्डे की उत्पति की तथा अण्डा विकसित हुआ तब उसे धरती पर स्थिर किया और उसी अण्डे में से जल की उत्पति की तथा जल में वही परमात्मा सृजन कर्त्ता विष्णु रूप से उत्पन्न हुआ। क्योंकि ''तद् सृष्ट्वा तदेवान् प्रविशत्'' स्वयं ही सृष्टि कर्त्ता है तथा स्वयं ही प्रवेश कर्त्ता भी है। उस समय दूसरा कोई भी नहीं था जिसे प्रवेश दिलाया जाये। इस प्रकार से सर्वप्रथम निराकार से साकार विष्णु रूप में वही परम सत्ता प्रगट होती है।

ता विष्णु को नाभ कमल विगसानों, तामां ब्रह्मा बीज ठहरानों।
ता ब्रह्मा की उत्पति होई, भानै घड़ै संवारै सोई।
कुलाल कर्म करत है सोई, पृथ्वी ले पाके तक होई।

जब विष्णु की जल से उत्पत्ति हो चुकी, वही विष्णु ही जल में शयन करते है। जल में शयन करते हुऐ विष्णु की नाभि से कमल की उत्पत्ति होती है। वह कमल जब विकसित हो जाता है तो उसी कमल में ब्रह्माजी बीज रूप से स्थिर होते हैं। विष्णु की शक्ति सत्ता से वहाँ पर बीज विकसित होता हुआ समय आने पर ब्रह्माजी के रूप में उत्पन्न होता है। इस प्रकार से प्रथम विष्णु तथा विष्णु की नाभि से ब्रह्मा की उत्पत्ति होती है। किन्तु वास्तव में तो ये दोनों एक ही है।

एक सता ही तीन कार्य करने से ब्रह्मा, विष्णु, महेश के नाम से विख्यात हुई है। ये तीनों ही अर्थात् ब्रह्मा रूप से तो सृष्टि की उत्पत्ति करते हैं। विष्णु रूप से पालन-पोषण करते हैं और शिव रूप से संहार कर्त्ता भी है। ये तीनों मिलकर कुम्हार जैसा कार्य करते है। कुम्हार जिस प्रकार से घड़ा बनाता है फिर उसे पकाता है, संभाल भी करता है और तोड़ भी देता है। उस सृष्टि कर्त्ता ने महान विशालता में तो पृथ्वी से प्रारम्भ करके इन छोटी-मोटी सृष्टि करते हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म पैंके-रति, पाई तक की रचना की है। जैसा इस महान सृष्टि का महत्त्व है वैसा इस छोटी सृष्टि का भी उतना ही महत्त्व है। (प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों में पाके की जगह खाके भी लिखा हुआ मिलता है जो पाके का अर्थ है वही खाके का भी है।)

आदि कुम्भ जहां उत्पन्नों, सदा कुम्भ प्रवर्तते।
कुम्भ की पूजा जे नर करते, तेज काया भो खंडते।

यह सृष्टि रूपी अनादि कुम्भ जहाँ पर उत्पन्न होकर विशालता को प्राप्त हुआ है। इसी प्रकार से सदा ही

विशालता को प्राप्त होता हुआ यह परिवर्तनशील है। बिना परिवर्तन हुए तो विशालता को प्राप्त कैसे हो सकता है। जैसा सृष्टि के आदि में नहीं रहा और जो मध्य में नहीं था वह आज नहीं है तथा जो आज है वह भविष्य में नहीं रहेगा। इसी परिवर्तनशील संसार में यदि कोई पूजा करे तो उसका भव दुख मिट जायेगा और शरीर तेजस्वी हो जायेगा अर्थात् इस सृष्टि के अन्दर सत्ता रूप से समाहित विष्णु परमात्मा की पूजा करे और ये पांच तत्त्व जो सृष्टि के आधार भूत है ये ही हमारे शरीर के भी आधार है। यदि हम इनकी पूजा करें, इन्हें आदर सत्कार के सहित शरीर रक्षार्थ ग्रहण करें तो हमारे शारीरिक मानसिक व्याधियों द्वारा जनित दुख मिट जायेगा। शरीर स्वस्थ होता हुआ तेजस्वी होगा। स्वस्थ शरीर के लिये इन्हीं पांचों तत्त्वों का समीकरण होना परमावश्यक है। इसलिये पंच भूतो तथा इनमें स्थित विष्णु हमारे पूजनीय है। इन पांचों तत्त्वो तथा विष्णु के हम समर्पण होवे तथा वे हमारे प्रति समर्पित होकर हमें जीवन शक्ति प्रदान करें यही हमारी उत्तम पूजा है।

अलील रूप निरंजनों, जाकै न थे माता न थे पिता न थे कुटुम्ब सहोदरम्।
जे करे ताकी सेवा, पाप दोष क्ष्यों जायन्ते।

जब वह विष्णु सृष्टि रचयिता-पालन कर्त्ता होने से लीलाधारी हो जाता है क्योंकि प्रथम सृष्टि करने का उद्धेश्य भी यही था कि मैं लीला करूं। वही कार्य पूर्ण हो चुका है किन्तु इससे पूर्व तो वह अलीलाधारी तथा माया रहित ही था। उसके न तो माता है न पिता तथा न ही कुटुम्ब भाई बन्धु ही है। जो इस प्रकार के विष्णु परमात्मा को अनादि मानकर सेवा समर्पण भाव करें अर्थात् अपने अहंकार की निवृत्ति करके परमात्मा के समर्पण हो सके तो उसके पापों एवं दोषों की निवृत्ति हो सकती है।

आदि कुम्भ कमल की घड़ी, अनादि पुरुष ले आगे धरी।
बैठा ब्रह्मा बैठा इन्द्र, बैठा सकल रवि अरू चन्द।
बैठा ईश्वर दोय कर जोड़, बैठा सुर तेतीसां करोड़।
बैठी गंगा यमुना सरस्वती, थरपना थापी बालै निरंजन गोरख जती।

सृष्टि के उत्पत्ति के साथ ही परस्पर वैमनस्यता, संघर्ष, कलह, राग-द्वेष, हिंसा, कठोरता आदि भी समय पाकर उत्पन्न हो चुके थे। तभी आदि पुरुष परमात्मा विष्णु को पालन-पोषण करना कठिन कार्य मालूम होने लगा। वे इस प्रकार की मनमानी आचार-विचार से चिंतित होकर एक प्रकार की आचार-संहिता मर्यादा की नियमावली बनाने के लिये योजना बनायी। उसी योजना के अन्तर्गत आदि कुम्भ की यानि कलश की स्थापना की। उस समय का कलश भी दिव्य ही था क्योंकि वह आदि युग प्रारम्भ काल ही था। उस समय आदि पुरुष ने एक कमल का फूल सभी के सामने ले जाकर रखा। वह युग कमलमय ही था क्योंकि सभी की उत्पत्ति का मूल-स्त्रोत कमल ही था। उस सभा में ब्रह्मा जी आकर विराजमान हुऐ तथा उनके साथ ही इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा, शिव ये सभी हाथ जोड़कर विराजमान हुए तेतीस करोड़ देवता भी वहाँ पर आकर यथा स्थान विराजमान हुए और परम पवित्रा गंगा, यमुना और सरस्वती ये नदियाँ भी वहीं पर उपस्थित थी तथा आदि अनादि के योगी बाल यति गोरख भी वहीं उपस्थित थे। उन्हीं गोरख विष्णु के हाथों से कमल रूपी कलश की स्थापना करवायी तथा सभी को सम्बोधन करते हुए परमात्मा विष्णु ने कहा- हे देवों! आप सभी लोग बुद्धिमान तथा उच्चकोटि के देव हो। आपके सामने यह कमल रूपी कुम्भ रखा है, जिसको परम यति गोरख ने मंत्रों द्वारा अभिमंत्रित किया है। आप लोगों को इससे शिक्षा लेनी होगी। प्रथम तो आपको यह पता है कि आप सभी लोगों की उत्पत्ति इसी कमल से हुई है। इसलिये आप सभी का यही जनक

है तथा इससे तुम्हें यह शिक्षा लेनी है कि यह तुम्हें संसार में रहते हुए कमल की भांति निर्लेप रहना सिखाता है।

आजकल आप लोगों के आपस में तनाव व्याप्त हो गया है। इसका कारण यही है कि आप लोग संसार की मोह-माया में लिप्त हो चुके हो तथा इससे यह भी शिक्षा तुम्हें लेनी होगी कि यह स्वयं कीचड़ में उत्पन्न होकर अन्य प्राणियों को स्वच्छ, सुगन्धी, सौम्यता प्रदान करता है। उसी प्रकार तुम्हें भी सदा परोपकारी रहकर जीवन व्यतीत करना होगा। जिससे स्वार्थ की निवृत्ति हो सकेगी और तुम्हारे आपस में सुख शांति का संचार हो सकेगा। इस प्रकार से अनेकानेक मर्यादाओं से उन देवी-देवताओं को बांधा गया। इसके लिये कमल रूपी कलश को साक्षी रखा गया था। ब्रह्मा, विष्णु, शिव वहाँ पर साक्षी थे। देवताओं मानवों को वह मर्यादा रूपी जल की घूंटी प्रथम कलश की स्थापना करके देने वाले स्वयं विष्णु ही थे। वह प्रारम्भ काल था, उसमें तो कमल रूपी कलश से कार्य हो गया था किन्तु आगे-आगे ज्यों-ज्यों युग परिवर्तन होगा, त्यों-त्यों नये-नये कलशों की स्थापना यानि नये तरीके से मर्यादाओं की स्थापना की आवश्यकता पड़ी वही आगे बतला रहे हैं।

सत्रह लाख अठाइस हजार, सतयुग प्रमाण।
सतयुग के पहरे में सुवर्ण को घाट, सुवर्ण को पाट, सुवर्ण को कलश।
सुवर्ण को टको पांच कोड्या के मुखी गुरु प्रहलाद जी कलश थाप्यो।
वै कलश जो धर्म हुआ, सो इस कलश हुइयो।

प्रथम कलश की स्थापना के पश्चात् कुछ समय तक तो मर्यादाएँ चलती रही किन्तु समय परिवर्तनशील है, समय व्यतीत होने के साथ ही साथ आचार-विचार, रहन-सहन भी परिवर्तित हो गये। कश्यप की पत्नी दिती के गर्भ से हिरणाक्ष तथा हरिण्यकश्यपु जैसे दैत्य उत्पन्न होकर पूर्व काल की बांधी हुई मर्यादा को तोड़ दिया, फिर वही मनमानी उदण्डता का व्यवहार होने लगा। उसी समय ही प्रहलाद भक्त ने पुनः मर्यादा कायम की थी। वह प्रहलाद का युग स्वर्णमय था।

सत्रह लाख अठाइस हजार वर्षो का सतयुग होता है। जितना लम्बा युग होता है उतनी ही लम्बी आयु एवं शक्ति होती है। उस सतयुग के समय में सोने का घाट था। वे सभी स्थान सोने के ही थे जहाँ पर धार्मिक अनुष्ठान किये जाते थे। उसी स्वर्णमय स्थान में सोने का पाट था जिसके ऊपर कलश भी सोने का ही रखा गया था तथा उस समय का टका भी सोने का ही चलता था। वही पैसा रखकर के पांच करोड़ भक्तों के मुख्य प्रहलाद जी ने इस स्वर्णमय कलश की स्थापना करके अपने अनुयायियों को मर्यादा का जल-पाहल पिलाया था। उन्हें सत्य प्रतिज्ञा दिलवाकर अन्याय से लड़ने की शक्ति प्रदान की थी तथा वे लोग सत्य पर अडिग रहकर विजय को प्राप्त हुए थे। उसी कलश से जो धर्म-मर्यादा की पाल बंधी, वह इस कलश से जो हम इस समय स्थापना करके अभिमंत्रित करते हैं, इससे वही धर्म मर्यादा की शक्ति मिले जिससे धर्म का पालन करते हुऐ विजय को प्राप्त करें।

बारह लाख छयानवै हजार, त्रेता युग प्रमाण
त्रेता युग के पहरे में रूपे को घाट, रूपे को पाट, रूपे को कलश।
सुवर्ण को टको, सात करोड्या के मुखी हरिश्चन्द्र तारादे।
रोहिताश कलश थाप्यो, वै कलश धर्म हुआ सो इस कलश हुइयो।

सतयुग के पश्चात् त्रेता युग का आगमन होता है। जो सतयुग प्रमाण से वर्ष, घाट,पाट, कलश, आयु,

शक्ति, ज्ञान आदि घटकर मानव कुछ अधूरा सा हो गया। लोक मर्यादा से हीन भी अधिक संख्या में हो जाते हैं। बारह लाख छयानवे हजार वर्षो का त्रेता युग होता है। इस त्रेता युग में चांदी का वह स्थान जहाँ पर पूजा मण्डप बनाया जाता था तथा चांदी का ही पाट तथा चांदी का ही कलश उसके ऊपर स्थापित किया जाता था तथा टका-पैसा भी व्यवहार में ली जाने वाली मुद्रा ही केवल सोने की चलती थी अर्थात् अन्य सभी कुछ धार्मिक स्तर गिर चुका था किन्तु केवल एक व्यवहार पक्ष सतयुग जैसा ही था।

उस समय में सात करोड़ मानवों के अग्रगण्य सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र तथा उनकी धर्मपत्नी तारा रानी एवं पुत्र रोहिताश तीनों ने मिलकर वह कलश स्थापित किया अर्थात् बिखरी हुई धार्मिक मर्यादाओं को पुनः कलश के रूप में स्थापित किया। टूटी हुई पाल को फिर से जोड़ा गया। जो उस कलश से धर्म हुआ वही इस कलश से धर्म होवें, ऐसी हमारी कलश स्थापक की भावना रहती है। हम इस कलश द्वारा त्रेता युगीन मर्यादा की स्थापना चाहते हैं।

आठ लाख चौसट हजार, द्वापर युग प्रमाण।
द्वापर युग के पहरे में, तांबे को घाट तांबे को पाट, तांबे को कलश।
रूपे को टको, नव क्रोड्या के मुखी, राजा युधिष्ठिर कुन्ती माता।
द्रोपदी पांच पाण्डव कलश थाप्यो, वै कलश जो धर्म हुआ सो इस कलश हुइयो।
श्री सिद्धेश्वर महाराज भला करियो, ओ३म् विष्णवें तत्सत ब्रह्मणें नमः।

युगों का बदलाव भी मानवता देवता के आचार-विचार की गिरावट के अनुसार होता आया है। ज्यों-ज्यों समय में परिवर्तन आता गया, त्यूं-त्यूं मानव युग, शक्ति, आयु, धर्म कर्मो से वंचित होता गया। पुनः शक्ति, धर्म, कर्म की स्थापना के लिये युग पुरुष अवतरित होते हैं और कलश की स्थापना करते हैं। ऐसा ही द्वापर युग में हुआ।

आठ लाख चौसट हजार वर्षो का द्वापर युग होता है। उस युग में पूजा स्थल स्वर्णमय रजत मय से घट कर तांबे के हो जाते हैं तथा तांबे का घाट और तांबे का ही पाट और तांबे का ही कलश उसके ऊपर स्थापित किया जाता है अर्थात् सत, त्रेता युग सदृश धार्मिक अनुष्ठान द्वापर युग में नहीं हो पाते। इन पवित्र कार्यो में कमी आ जाती है। किन्तु व्यवहारिक कार्य त्रेता सदृश ही चलता रहता है। इसलिये मुद्रा पैसा का विनिमय साधन तो चांदी का ही रहता है उस समय पुनः धर्म की स्थाना की जाती है।

नौ करोड़ मानवों के अग्रगण्य धर्मराज, युधिष्ठिर, कुन्ती माता, द्रोपती तथा पांचों पाण्डवों ने मिलकर कलश स्थापना की थी। नौ करोड़ को पुनः धर्म की मर्यादा में बांधा गया था। जो उस कलश से धर्म हुआ था, वही इस कलश से भी होवें। ऐसी शुभ कामना कलश स्थापक द्वारा की जाती है।

चार लाख बतीस हजार, कलयुग प्रमाण।
कलयुग के पहरे में माटी को घाट माटी को पाट माटी को कलश।
तांबा को टको, अनन्त कोड्या के मुखी गुरु जम्भेश्वर कलश थाप्यो।
वे कलश धर्म हुआ सो इस कलश हुइयो।
श्री सिद्धेश्वर महाराज भला करियो, ओ३म् विष्णवे तत्सत ब्रह्मणे नमः।

युगों की अवनती का क्रम पूर्ववत् चलता रहा, जिस वजह से कलयुग का आगमन हुआ। इस

कलयुग में तो धार्मिक कार्य नाम मात्र के रह गये किन्तु धर्म के नाम पर पाखण्डो की तो बाढ़ सी आ चुकी थी। इस समय कठिनाइयों से झूझना तो हर किसी के बलबूते की बात नहीं रह जाती है। इसलिये वही परम सतावान परमेश्वर सन्त के रूप में अवतरित होकर पुनः मर्यादा स्थापना का प्रयत्न करते हैं।

इस कलयुग की आयु चार लाख बतीस हजार ही है जैसी युग की आयु है वैसी ही मानवों की आयु भी घट जाती है तथा आयु के साथ ही साथ शक्ति धर्म मर्यादा का भी ह्रास हो जाता है। इस कलयुग के समय में तो सोना, चांदी, तांबा भी नहीं रहा। पूजा स्थल मिट्टी का बनाया जाता है और मिट्टी का ही पाट तथा कलश भी मिट्टी का ही बनाकर स्थापित किया जाता है। यह मृण्मय युग आने पर सभी कुछ मिट्टी का ही हो जाता है। किन्तु व्यापार विनिमय का साधन रूप मुद्रा चांदी की ही रहती है। (किन्तु वर्तमान में तो कलयुग की प्रखरता के कारण मुद्रा भी कागज या लोहे की ही हो गई है।) जम्भदेवजी के समय में तो चांदी की ही मुद्रा चलती थी।

युग के धर्म का उतरोत्तर ह्रास होते देखकर बारह करोड़ मानवों के प्रमुख या अनन्त करोड़ मानवों के प्रमुख के रूप में आकर श्री जम्भेश्वर जी ने पुनः कलश की स्थापना की थी। उसी कलश मर्यादा नियमों के सहारे उनको संसार सागर से पार उतार दिया था। जम्भदेवजी द्वारा स्थापित उस कलश तथा प्रहलाद हरिश्चन्द्र तथा युधिष्ठिर द्वारा स्थापित कलश से जो धर्म हुआ है वही इस हमारे द्वारा स्थापित कलश से होवे। कलश स्थापक इस समय भी उन्हीं भावनाओं से ओत-प्रोत होकर कलश की स्थापना करते हैं। जिससे वही फल कलश में स्थित पाहल लेने वाले सज्जन को होता है। इस प्रकार से यह कलश पूजा सम्पूर्ण होती है।

इस कलश के माध्यम से हम उन्हीं परम सत्ता तथा सृष्टि के महानतम विभूतियों की ही पूजा अराधना करते हैं। उनसे यही प्रार्थना करते हैं कि हमें वही आदि अनादि कलश स्थापना से प्राप्त होने वाली शक्ति प्रदान करें, जिससे हम उन टूटी हुई धार्मिक मर्यादाओं को जोड़ सके।

★★★ ★★★

पाहल-मन्त्र

ओ३म् नमो स्वामी शुभ करतार, निर्तार भवतार धर्मधार पूर्व एक ओंकार।
साधूनां दर्शणम् पुण्यम्, सन्मुखे पाप नाशणम्।

भावार्थ-शुभ कार्य करने वाले, भक्त जनों को संसार से पार उतारने वाले, सृष्टि की रचना करने वाले, धर्म के आधार स्वरूप तथा पूर्व में एक ओम शब्द से कहे जाने वाले, सर्व के स्वामी, परमात्मा को नमन है। शुभ कार्य के प्रारम्भ में मंगलाचरण के रूप में इसी प्रकार से परमात्मा के विशेषणों के कथन सहित नमन करना चाहिये। जिससे निर्विघ्न कार्य की सिद्धि हो सके। यही नमन अन्य जनों को सिखाते हुऐ स्वयं ही परमात्मा को नमन कहते हैं।

महान आत्मा सज्जन पुरुषों का दर्शन ही पुण्य कारक है। वे सन्मुख हो जाते है तो निश्चित ही पापों को काट देते हैं। जहाँ पर भी महापुरुष निवास करते हैं वहाँ का सम्पूर्ण वातावरण ही दिव्य अलौकिक आनन्द से भर जाता है। यह उनकी तपस्या का ही प्रभाव होता है तथा उनका दर्शन तो अतीव पुण्यदायक होगा। क्योंकि उनके शरीरस्थ ज्ञान ध्यान से उत्थित ऊर्जाएं दृष्टा की आंखों द्वारा उसके शरीर में प्रवेश करेगी और अन्दर अज्ञान जनित दूषित वातावरण को काट देगी और यदि सन्मुख अर्थात् प्रसन्न हो जाये तो निश्चित ही आपके पापों को काट डालेंगे। ऐसे संत महापुरुष की कृपा अपार होती है।

जन्म फिरंता को मिले संतोषी शुचियार, अपणों स्वार्थ ना करै।
पर पिण्ड पोषण हार, पर पिण्ड पोषण हार, जीवत मरे पावै मोक्ष हि द्वार।

किन्तु अपना स्वार्थ न चाहने वाले संतोषी पवित्र आत्मा कभी कोई अनेक जन्मों में घूमने के बाद मिलता है। सच्चे संत महापुरुष का दर्शन तो दुर्लभ होता है ऐसा कोई विरला ही संत होता है। जो अपने शरीर के पोषण की परवाह न करके सदा दूसरों की भलाई के लिये तैयार रहता है। ऐसा संत साधक जीते जी मरे हुए के समान होता है। उन्हें किसी भी प्रकार की सांसारिक यश, कीर्ति, धन, दौलत की आवश्यकता नहीं होती। वह तो इनसे ऊपर उठ चुका होता है तथा अजर काम क्रोधादि को जिसने जला दिये है ऐसा सन्त पुरुष ही मुक्ति को प्राप्त कर लेता है तथा शरणागत की भी करवा देता है।

एहस पाहल भाइयों साधे लिवी विचार, एहस पाहल भाइयो थूले मेल्ही हार।
एहस पाहल भाइयों ऋषि सिद्धों के काज, एहस पाहल भाइयों ऊधरियो प्रहलाद।

हे भाई लोगों! इसी पाहल रूपी मर्यादा को साधु-सन्तों ने विचार करके ली थी, जिससे वे पूजनीय हो गये थे। इसी पाहल के बल से स्थूल जगत की मोह माया को त्याग दिया था। उन्हें सत्यासत्य का विवेक इसी पाहल के ग्रहण करने से ही हुआ था। यह पाहल तो ऋषि सिद्धों के लिये बनाया था। जिसे ग्रहण करके ऋषि सिद्धता को प्राप्त कर सके। वर्तमान में आप लोग भी जो पाहल के महत्त्व को समझकर के पाहल ग्रहण करते है वे सभी उन्हीं ऋषि सिद्धों की कोटि में आते हैं। इसी पाहल को ग्रहण करके सतयुग में प्रहलाद ने अपने साथ पांच करोड़ का उद्धार किया था। इस महत्त्वपूर्ण पाहल को समझो।

तेतीस कोटि देवां कुली लाधों पाहल बंद, एहस पाहल भाइयों ऊधरियो हरिचंद।

पाहल लीन्ही कुन्ती माता होती करणी सार, साधु एहा भेटिया मिल्यो मोक्ष द्वार।

तेतीस करोड़ देवताओं का कुल भी जब दिशा विहीन होकर भटक गया था, तब सृष्टि के आदि काल में ही उन्हें यह पाहल का बन्धन दिया था। उन्हें इन्हीं धर्म-नियमों की मर्यादाओं में बांधा गया था। तब उनका जीवन सुचारू रूप से चलने लगा था। आगे चल करके आदर्श देव कहलाये। त्रेतायुग में इसी पाहल की मर्यादा को लेकर हरिश्चन्द्र सत्यवादी बनकर अपना तथा अपने साथ सात करोड़ का उद्धार किया था। माता कुन्ती ने भी यही पाहल ग्रहण की थी जिससे उन्हें बाल्यावस्था में दुर्वासा जैसे ऋषि मिले थे। उन्हीं से वरदान लेकर कुन्ती ने एक नव युग का निर्माण किया था। कुन्ती ने वरदान स्वरूप पुत्रों की प्राप्ति करके दुनिया में प्रचलित अन्याय का नाश करवाया था। स्वयं तो विष पान किया किन्तु जन साधारण को सदा ही अमृत पिलाने में रत रही थी। यह सभी कुछ पाहल की ही करामात थी। जिसकी स्थापना धर्मराज युधिष्ठिर ने की थी। अन्त में कुन्ती सहित सभी धर्म के अनुयायी नौ करोड़ मुक्ति को प्राप्त हो गये।

आओ पांचों पाण्डवों गुरु की पाहल ल्योह, पाहल सार न जाण ही, तिस पाहल मत द्योह।
पाहल गति गंगा तणी, जे कर जांणै कोय, पाप शरीरा झड़ पड़ै, पुण्य बहुत सा होय।

इस समय आवश्यकता है पांच पाण्डवों जैसे वीरों की जो द्वापर युग की तरह ही पुनः धर्म नियम कायम कर सके। गुरु जाम्भोजी ऐसे शूरवीरों का आह्वान कर रहे हैं कि आप लोग आइये, धर्म का बीड़ा उठाइये और गुरु की इस मर्यादा-धर्म नियमों की पाहल को ग्रहण करके आगे जन साधारण में पहुँचाने का उद्योग कीजिये। जो इस पाहल की सार को जानता है उसे ही यह पाहल दीजिये क्योंकि वह ही इसे आदर सहित ग्रहण करेगा इसके आनन्द का अनुभव करेगा और जो लोग इसके सार तत्त्व को नहीं जानते उसे यह पाहल नहीं देना क्योंकि ऐसे लोग इसे महत्त्व हीन कर देंगे। इससे लाभ नहीं उठा सकेगे तो देना व्यर्थ ही है।

जो पवित्र गंगा नदी में स्नान करने से पुण्य की प्राप्ति होती है, उस पुण्य से स्वर्ग मिलता है वही गति इस पाहल से भी होती है अर्थात् गंगा स्नान का पुण्य भी तभी मिलता है जब पहले इस पाहल को आदर सहित ग्रहण कर लें। हिन्दू होकर हिन्दू धर्म को स्वीकार करके फिर गंगा में स्नान करने का महात्म है गंगा तथा पाहल दोनों से ही शरीर धारियों के पाप झड़ जायेंगे तथा अत्यधिक पुण्य की प्राप्ति होती है।

नेम तलाई नेत जल नेम की जीमे पाहल, कायम राजा आइयों बैठो पांव पखाल
ऋषि थाप्या गति ऊधरै, देता दिये पाहल।

यह जो पाहल ग्रहण की जाती है इसमें केवल जल ही नहीं होता किन्तु जल देवता के माध्यम से नियम-मर्यादा की ही घूंटी पिलाई जाती है। गुरु महाराज कहते हैं कि पाहल का जल हम नदी, कूवा, बावड़ी आदि से ग्रहण करते हैं वह जल भी मर्यादा में बंधा हुआ होता है तथा उस मर्यादित जल के साथ हम नियम भी ज्ञान के सागर से अर्थात् वाणी वेद-शास्त्र जो ज्ञान के भण्डार है वहीं से चुन चुन करके ग्रहण किये हैं। उन्हीं नियम मर्यादाओं को कलश में स्थित जल के माध्यम से आपको ग्रहण करवा रहे हैं यानि आपको पाहल पिला रहे हैं। यही नियम की तलाई और नियम के जल को पान करवा रहे हैं। आप इसे पीकर-धारण करके निश्चित ही तेजस्वी होवें।

हे काया नगरी के राजा जीवात्मा! आप जरूर आइये और शरीर, मन, बुद्धि, चित, अहंकार की धूली को झाड़कर विराजमान होइये। यह प्रयत्न तुम्हारी भलाई के लिये किया जा रहा है। ऋषि संत पुरुषों के द्वारा

स्थापित करके पाहल पिलाने से ही संसार की गति से उद्धार हो सकेगा। यह मौका आपको सुलभ हो गया है।

बन बन चन्दन अगरण, सर सर कमल न फूल।
एका एकी होय जंपो ज्यों भागे भ्रम भूल।
अड़सठ तीर्थ कांय फिरो न इण पाहल संतूल।

अनेक छोटे तथा बड़े वन है किन्तु सभी वनों में तो न तो चन्दन है और न ही अगर आदि सुगन्धित वृक्ष ही है। ढूंढ़ने पर किसी विरले एक या दो वन में अगर चन्दन के वृक्ष मिलेंगे और इसी प्रकार से तालाब भी संसार में छोटे-बड़े बहुत है किन्तु सभी तालाबों में कमल के फूल नहीं मिलते है उसी प्रकार से संसार में ऋषि सन्यासी साधु समाज तो वन की तरह बहुत है किन्तु उनमें चंदन अगर तथा कमल की तरह सुवासित करने वाला तथा संसार से कमल की तरह निर्लिप्त तो कोई विरला ही महापुरुष मिलेगा। ऐसे विरले महापुरुष संत द्वारा कलश स्थापना करके दी हुई नियम-मर्यादा की घूंटी संसार सागर से पार उतार देगी।

श्री देवजी की आज्ञा है कि इस संसार में संत महापुरुषों द्वारा पाहल ग्रहण करके एकाग्र मन से विष्णु परमात्मा का स्मरण जप प्रेम भाव से करोगे तो तुम्हारा भ्रम तथा भ्रम जनित भूल मिट जायेगी। भ्रमित हुआ व्यक्ति ही मार्ग भटक जाता है किन्तु परमात्मा की अनुकंपा से उस समय कोई सतगुरु मिल जाता है और उसे सद्मार्ग का ज्ञान करा देता है तो फिर लक्ष्य तक पहुँच जाता है। यदि आप लोगों ने ऋषि द्वारा स्थापित कलश से पाहल पी ली है और एकाग्र मन से परमात्मा का जप करते हैं तो फिर अड़सठ तीर्थों में भटकने की कोई आवश्यकता नहीं है अड़सठ तीर्थ इस पाहल की बराबरी नहीं कर सकते। ''अड़सठ तीर्थ हिरदा भीतर बाहर लोका चारूं, कोई कोई गुरु मुखी विरला न्हायों।''

गोवल गोवल को को धवल, सब संता दातार।
विष्णु नाम सदा जीम, पाहल एह विचार।

अनेक गोवलों की तरह संतों की जमात है। संतों की जमात तो गोवलवास की तरह ही चलती हुई निवास करती है क्योंकि अपना घर संतों का स्थायी होता ही नहीं है तथा न ही उनकी कोई जमात ही स्थायी है। वह भी तो गोवलवास की भांति बिखर जाने वाली होती है। फिर भी कुछ समय के लिये तो संत जमात बनाकर चलते है। उन्हीं जमात में सभी संत हंस नहीं होते, कोई कोई ही पवित्र आत्मा होता है। अन्य तो सभी बगुलों की भांति ही होते हैं। ऐसे हंस रूपी विवेकी सन्त ऋषि महात्मा पूजनीय है। उनके द्वारा प्राप्त मर्यादा ज्ञान ध्यान से पार उतार देती है तथा अन्य सभी संत तो दाता ही होते है। अपनी अपनी योग्यता के अनुसार कुछ न कुछ तो देते ही रहते हैं। इसलिये अच्छे गुण जहाँ से प्राप्त हो वे ग्राह्य ही होते हैं। सदा ही विष्णु परमात्मा के नाम से उनकी आज्ञानुसार पाहल ग्रहण करते रहे अर्थात् जो भी संत महापुरुष आपको कुछ ज्ञान ध्यान की बातें ग्रहण करवाये तो प्रेम सहित ग्रहण करते रहे जब जब भी आशंका हो जाये कि अच्छे संस्कारों की निवृत्ति और बुरे संस्कारों का जमाव हो रहा है तभी तभी पुनः पाहल संस्कार करवा करके शुद्ध होते रहे। यही विचार बुद्धि का कार्य है। यही विष्णु परमात्मा की आज्ञा एवं पाहल ग्रहण करने का महात्म्य है।

सतगुरु बोले भाइयों, सन्त सिद्ध शुचियार।
मच्छ की पाहल, कच्छ की पाहल, बाराह की पाहल।
नृसिंह की पाहल, बावन की पाहल, परशुराम की पाहल।

राम-लक्ष्मण की पाहल, कृष्ण की पाहल, बुद्ध की पाहल।
निष्कलंक की पाहल, जाम्भोजी की पाहल।

सतगुरु जम्भेश्वर जी बोल रहे हैं-हे भाइयों! हे संतों! हे सिद्धों! हे पवित्र आचार-विचारवान लोगों! यह पाहल मैं आपको पिला रहा हूँ। तुम्हें मर्यादित जीवन की शिक्षा दे रहा हूँ। यह कोई नयी नहीं है। अनादिकाल से परंपरा चली आ रही है। जब जब भी मर्यादाओं का नियमों का उल्लंघन हुआ है तब तब अनेकानेक रूप धारण करके भगवान विष्णु ने ही पुनः मर्यादा की स्थापना की थी। जो मत्स्य अवतार धारण करके पाल बांधी थी वही यह पाल है। उसी प्रकार से कछुवा का रूप धारण करके पाल बांधी तथा बाराह अवतार की पाहल, नृसिंह भगवान की पाहल, बावन अवतार की पाहल, परशुराम की पाहल, राम और लक्ष्मण की पाहल, कृष्ण की पाहल तथा कलयुग में भगवान बुद्ध की पाहल और भविष्य में होने वाली कल्कि अवतार की पाहल है।

इन्हीं परंपरा में गुरु जाम्भोजी कहते हैं कि यह मेरी पाहल है, इस युग की यह पाहल आप ग्रहण कर रहे हैं समयानुसार सभी अवतारों की पाहल सफल हुई है। इस समय यह जो पाहल बनायी जा रही है इसमें पूर्ववर्ती सभी अवतारों की पाहल का समावेश किया गया है अर्थात् पूर्व के सभी धर्म, मर्यादा नियमों को इस समयानुसार ग्रहण करके लागू किया जा रहा है। इसलिये उन सभी पाहलों का महात्म्य इसी पाहल में समाहित किया गया है। इसी भावना के साथ कलश संस्थापक पाहल बनाये तथा ग्रहण कर्त्ता भी ऐसी ही पवित्र भावना से ग्रहण करें। तभी श्री देवजी की बनाई हुई तथा पूर्व सभी अवतारों की बनवाई हुई पाहल सभी के लिये समान रूप से फलदायी होगी। इससे जीवन पवित्र तथा आनन्दमय होगा। ऐसी ही जम्भेश्वर जी की आज्ञा है।

★★★

कलश स्थापना एवं पाहल के सम्बन्ध में विशेष वक्तव्य

हिन्दू समाज में प्रत्येक संस्कारों के शुभ अवसर पर यज्ञ कार्य परमावश्क होता है तथा यज्ञ के अवसर पर ही जल देवता के साक्षी रूप में जल अवश्य ही रखा जाता है इसी परंपरा को जम्भेश्वर जी ने कलश स्थापना के रूप में प्रतिष्ठित की है। इस कलश स्थापना को समझने के लिये हमें सृष्टि के आदि–प्रारम्भ में जाना होगा। जैसे कलश पूजा में बतलाया था कि स्थूल सृष्टि होने के बाद देव, मानव, दानव, सृष्टि के लिये परम पिता परमात्मा ने एक अण्डा उत्पन्न किया था, अण्डे में जल तथा जल में विष्णु की उत्पत्ति होती है। विष्णु की नाभि से कमल विकसित होकर वहाँ पर ब्रह्मा जी की उत्पत्ति तथा ब्रह्मा जी से सम्पूर्ण सृष्टि का विस्तार हुआ। उसी अण्डे के प्रतीक रूप में यह मिट्टी का बना हुआ अण्डे की भांति गोलाकार घड़ा रखा जाता है तथा उसमें जल भरा जाता है जल में ही विष्णु की उत्पत्ति स्थिति होती है इसलिये इस घड़े के जल में भी विष्णु का निवास रहता है विष्णु ही सभी का मूल है जिसका हम घट में मन्त्रों द्वारा आह्वान करते हैं।

जब कलश रख दिया जाता है फिर उसकी विधिवत् स्थापना होती है जब सृष्टि के प्रारम्भ काल में मर्यादा में विकृति आयी थी तब परमात्मा ने स्वयं कमल कलश लाकर स्थापित किया था। वहाँ पर ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्र आदि उपस्थित थे तथा बाल निरंजन गोरख स्वरूप विष्णु ने कलश की प्रथम बार स्थापना की थी। उसी प्रकार से इस समय भी हम पुनः मर्यादा धर्म नियम कायम करने के लिये कलश की स्थापना गृह स्वामी की प्रार्थना पर करते हैं। इसलिये कलश स्थापक यति ग्रह स्वामी से आज्ञा लेता है तथा वहाँ पर देवताओं की भांति समाज, जाति, गांव घर के मुख्य सज्जन लोग उपस्थित रहते हैं तथा अग्नि देव यज्ञ के रूप में रहते हैं। अन्न के रूप में धरती माता रहती है। इसलिये कलश के नीचे अन्न रखा जाता है तथा संकल्प कर्त्ता हाथ में अन्न लेता है और जल देवता तो स्वयं कलश में रहता ही है। वायु तथा आकाश तो सर्वत्र व्यापक रूप से उपस्थित रहते ही है तथा माला जो हाथ में रखी जाती है वह भी ईश्वर एक है। प्रलयावस्था में शून्य ही था तथा प्रकृति घटने बढ़ने वाली परिवर्तनशील है। ये ही 108 माला के मनके बतला रहे हैं तथा एक धागे यानि सत्ता में जुड़कर सृष्टि का व्यवहार चलाते हैं। इसी प्रतीक के रूप में माला भी रखी जाती है तथा समाज के या घर के प्रधान व्यक्ति का हाथ उपर रखकर के इन देवताओं तथा यति संत के सनमुख संकल्प कराया जाता है उन्हें यह अहसास कराया जाता है कि हम धर्म की रक्षा करेंगे तथा अन्य जनमानस से भी करवायेंगे इसी भावना के साथ कलश की स्थापना होती है तथा कलश पूर्वोतर कोण में रखा जाता है यह देवताओं की दिशा मानी जाती है। इसलिये देवताओं का आगमन अपनी दिशा में स्थित वस्तु में ही हो सकता है तथा उस समय में हाथ में रखा जाने वाला तांबे का पैसा भी इस समय प्रचलित धातु तथा युग का प्रतीक है। इसके द्वारा प्रतीत हो जाता है कि यह तांबे का यानि कलयुग चल रहा है। इससे इस समय की शारीरिक, बौद्धिक शक्ति का भान हो जाता है।

इतना सभी कुछ साधन उपस्थित हो जाने के पश्चात् कलश संस्थापक यतीश्वर उन्हीं परमात्मा विष्णु का कलश मंत्र द्वारा आह्वान करता हुआ यह भावना करता है कि जो धर्म उस आदि कलश से हुआ था वही इसी से होवे तथा आगे युगानुसार सतयुग में प्रहलाद, त्रेता में हरिश्चन्द्र, द्वापर में युधिष्ठिर तथा द्वारा संस्थापित जिस कलश से धर्म हुआ था वही इसी कलश से होवे तथा कलयुग में जम्भदेवजी द्वारा संस्थापित कलश से जो धर्म हुआ वही इसी हमारे द्वारा स्थापित कलश से होवे।

कलश शब्द का अर्थ ही होता है कि वह सर्वोतम वस्तु है। सामान्य घड़े में स्थित जल को मंत्र भावना तथा यज्ञादिक साधनों द्वारा सर्वोतम कलश के रूप में स्थापित किया जाता है। यह कलश पूजा कार्य पूर्ण हो

जाने के पश्चात् केवल यति साधु सज्जन पुरुष ही माला घुमाकर उसमें पाहल मंत्र पढ़ता है। वहाँ पर भी यही भावना की जाती है कि हे कलश में स्थित विष्णु परमात्मा! हम जल के माध्यम से आपको ही ग्रहण कर रहे हैं। जिससे हमारा सम्पूर्ण जीवन आपके सदृश ही तेजस्वी होवें। हम बल बुद्धि को प्राप्त करके अपने जीवन का तथा अन्य लोगों का उद्धार कर सके। इसलिये आपको नमस्कार है आपकी इस पाहल मर्यादा को हमसे पूर्व भी हमारे पूर्वजों ने ग्रहण की है उन प्रहलाद आदि तथा तेतीस करोड़ देवता ऋषि संत महात्माओं ने जब-जब भी उन्हें अपने अन्दर धर्म-कर्म मर्यादा नियम टूटते दिखाई दिये तब तब उन्होंने यही पाहल लेकर पुनः मर्यादा की पाल बांधी थी जिससे वे तेजस्वी हो सके थे। हम पाहल रूप में आपकी शक्ति को धारण करते हैं।

हे प्रभों! आपने जो मच्छ कच्छ वाराहादि अवतार धारण करके जो पाल बांधी थी वह पाल अब टूट रही है अब आप ही हमें वह पाल बांधने की शक्ति प्रदान कर सकते हैं अन्यथा सभी कुछ बाद में बह जायेगा। इन्हीं पवित्र भावनाओं के साथ पाहल पूर्ण होती है। बाद में सर्व प्रथम संकल्प कर्ता मुखिया को पाहल ग्रहण करवायी जाती है तत्पश्चात् अन्य सभी जनों को पाहल ग्रहण करवायी जाती है।

उस समय गुरु, समाज के अग्रगण्य जन उपस्थित रहते हैं तथा अग्नि देवता यज्ञ के रूप में उपस्थित रहता है। जल देवता विष्णु रूप को हाथ में लेकर तीन बार संकल्प करवाया जाता है कि अब तक जो भी अधर्म कार्य हुआ, मर्यादा टूटी सो तो टूट गई किन्तु भविष्य में नहीं तोडूंगा। इसी भावना से पाहल ग्रहण किया जाता है। तीन बार पाहल लेने का अभिप्राय है कि देवता तीन है, गुण भी तीन ही है तथा जनेऊ के धागे भी तीन ही है। ये तीनों देवता, तीन गुण तथा जनेऊ भी हम बाह्य न रखते हुए हृदय में धारण करें। इसलिये जनेऊ का विधान भी अन्दर ही धारण पाहल के साथ हो जाता है, बाह्य तो केवल दिखावा मात्र है इसलिये पाहल ग्रहण कर्त्ता को स्वीकार्य नहीं है। गुरु जम्भेश्वर जी के शिष्य बिश्नोइयों का यह कर्तव्य है कि प्रत्येक संस्कार या अमावस्या या जागरण आदि शुभ अवसरों पर पाहल अवश्य ही ग्रहण करना चाहिये। इससे टूटी हुई मर्यादा नियम धर्म पुनः जुड़ जाते हैं ऐसी परंपरा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। आधुनिकता के रंग में रंग कर अपनी मान मर्यादा को न छोड़ें। जो प्रेम भाव से पाहल लेना चाहता है वह चाहे किसी जाति देश का क्यों न हो उसे देना चाहिये। उसके जीवन का कल्याण होगा यही बड़ा धार्मिक कार्य होगा तथा जो इसका महत्त्व नहीं समझता वह चाहे उतम कुल का भी क्यों न हो ऐसे व्यक्ति को पाहल जबरदस्ती नहीं देना चाहिये। इससे पाहल का महत्त्व घटता है। ऐसी ही गुरु देवजी की आज्ञा है।

कलश स्थापना करके पाहल देने वाला भी शुद्ध सात्विक, ज्ञानी विचारवान तथा सज्जन पुरुष हो तभी यह कार्य पूर्णरूपेण हो सकता है। कम से कम पाहल कर्त्ता दाता को यह तो ज्ञान होना ही चाहिये कि मैं यह कार्य करने जा रहा हूँ इसका क्या महत्त्व है। जब यही नहीं जान सकेगा, मन की एकाग्रता करके अपनी भावना को पवित्र ईश्वर प्रार्थना मय नहीं बना सकेगा तो पाहल का महत्व कैसे बढ़ेगा। इन्हीं शब्दों के साथ यह कलश पूजा एवं मन्त्रों की व्याख्या तथा इनका महात्म पूर्ण होता है।

★★★ ★★★

बालक मन्त्र

ओ३म् शब्द गुरुदेव निरंजन, ता इच्छा से भये अंजन
पांच तत्व में जोत प्रसनु, हरि दिल मिल्या हुकम विष्णु।

भावार्थ–ओ३म् शब्द ही गुरु परमात्मा देवाधिदेव है। यही शब्द निरंजन माया रहित परब्रह्म परमात्मा का वाचक शब्द है। ओमकार की ध्वनि से ही उसे जाना जा सकता है। वहाँ तक पहुँचने का यह परम साधन है क्योंकि ओम यह परमात्मा की ही ध्वनि है तथा यह श्रवण एवं उच्चारण की जा सकती है। ऐसे ओम रूपी निरंजन देव की अपनी स्वकीय इच्छा से ही स्वयं ही अंजन रूप हुए अर्थात् सृष्टि रचने की इच्छा होने पर अपनी माया को उपाधि के रूप में स्वीकार करके निराकार से साकार शीलता को प्राप्त हुए। शुद्ध ब्रह्म माया रहित होकर तो जगत सृष्टि नहीं कर सकते इसलिये अंजन युक्त होकर आगे कार्य प्रारम्भ किया। स्वयं एक से अनेकता के सिद्धान्त को स्वीकार करते हुऐ सर्व प्रथम पांच तत्वों को प्रसन्न किया उन्हें यथा स्थान स्थिर करके उनमें ज्योति स्वरूप से स्वयं प्रकाशित हुए। प्रजापिता ब्रह्मा आदि की सृष्टि के अनन्तर मानवों की सृष्टि का कार्य प्रारम्भ हुआ इसी के अन्तर्गत स्त्री–पुरुष के संयोग की भावना आपस में प्रेम, एक दूसरे के प्रति आकर्षण की भावना भी हरि की प्रेरणा से ही उत्पन्न हुई। जिससे यह मानव की संयोग जनित सृष्टि का विस्तार हुआ।

हरि के हाथ पिता के पिष्ट, विष्णु माया उपजी सिष्ट।
सप्त धात को उपज्यो पिण्ड, नौ दस मास बालो रह्यो अघोर कुण्ड।

माता–पिता द्वारा जो पांच तत्त्वों को ग्रहण किया जाता है। वे अन्न, जल, तेज, वायु तथा आकाश इन्हीं से शरीर यात्रा चलती है तथा इन्हीं से शरीर बना हुआ है शरीर को जिंदा रखने के लिये इन्हीं वस्तुओं की परम आवश्यकता होती है। जीव का भी इन्हीं अन्न जल में प्रवेश होता है। उसी अन्न को स्त्री–पुरुष खाते हैं। उसका रज वीर्य बनता है उसमें ही सूक्ष्म जीव प्रवेश हो जाता है तथा उसी से ही संतान की उत्पत्ति अर्थात् वह जीव शरीर को धारण करके उत्पन्न होता है। वह सभी कुछ स्वत: ही नहीं हो पाता है, जीव को उसके अपने कर्मानुसार यथा स्थान भेजने का कार्य में हरि परमात्मा का ही हाथ है तथा परमात्मा भी अपनी वशवर्तिनि माया–प्रकृति के माध्यम से यह कार्य करवाता है इसलिये इसे विष्णु माया की सृष्टि कहते हैं। माया के द्वारा ही ईश्वर, जीव, स्त्री पुरुष सभी सक्रिय हो जाते हैं। त्वचा, रक्त, मांस, मेद, मज्जा, अस्थि और वीर्य इन सात धातुओं से यह शरीर बना हुआ है। इन सात धातुओं की साम्यता ही स्वस्थता है और विकृति ही रूग्णता है। इस जीव की तो उत्पत्ति नहीं होती यह तो इन सात धातुओं के समूह में प्रविष्ट हुआ है। देश काल और त्वचादि वर्धक पदार्थो को पाकर वह जेर में लिपटा हुआ शरीर तो नौ या दस मास तक गर्भ में ही शयन करता है। वह गर्भवास तो भयंकर अन्धकार युक्त नरक कुण्ड की तरह ही दुखदायी होता है। वहाँ से छूटने के लिये सदा प्रयत्नशील रहता है, वहाँ पर भी हरि का हाथ होता है। हरि की सहायता से सुरक्षित रहकर विकास को प्राप्त होता है।

अरध मुख ता उरध चरण हुतास, हरी कृपा से भया खलास।
जल से न्हाया त्याग्या मल, विष्णु नाम सदा निरमल।

गर्भवास में रहते समय नीचे की ओर मुख होता है और चरण ऊपर की ओर होता है अर्थात् वह उल्टा

लटका रहता है। उस समय कष्ट का कोई पार नहीं होता। हरि कृपा से ही वह उस दुख से छूट कर जन्म लेता है वहाँ पर भी हरि की ही सहायता से जन्म हो जाता है। बाहर आने पर उस बालक को जल से स्नान करवा कर पवित्र किया जाता है जल ही मल को काटता है यह एक बालक के उत्पति की कथा बतलाई है इससे सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति की कथा हो जाती है। आदि से अन्त तक विष्णु का निर्मल नाम ही साथ रहता है विपत्ति में रक्षा करता है तथा इस जीवन दान में परम पवित्रता से सहयोग देता है बिना विष्णु की सहायता के तो इस दिव्य जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

विष्णु मन्त्र कान जल छूवा, गुरु फूरमाण विश्नोई हुवा।

तीस दिन सूतक पालन करने के बाद जब बच्चा तथा उसकी माता पूर्णतया स्वस्थ तथा सूतक यानि अपवित्रता समाप्त हो जाने पर घर द्वार को पवित्र करके हवन तथा पाहल बनाकर बच्चे तथा माता को पिलावे तथा उनके उपर छिड़के और विष्णु महामन्त्र का उच्चारण करें यह पाहल, हवन कर्त्ता का कर्त्तव्य है। ऐसा करने से ही वह बिश्नोई हो सकेगा। ऐसी ही श्री देवजी की आज्ञा है। जन्म से कोई बिश्नोई पैदा नहीं होता है उसे इस संस्कार से संस्कारित करके बिश्नोई बनाया जाता है तथा जब कभी भी ऐसी अशुद्धता की शंका होती है तो उसे पुनः पाहल देकर शुद्ध किया जाता है। इस बालक मंत्र द्वारा जन्म के तीस दिनों के बाद संस्कार किया जाता है। जिसमें वह बिश्नोई बनता है। यह एक प्रकार के मंत्र, उपदेश तथा जीवन के रहस्य का भी उद्‌घाटन करता है।

यह मंत्र, बालक, उसकी माता एवं अन्य परिवार जनों को सुना करके उन्हें इस रहस्य से अवगत कराया जाता है। बालक के कानों यह पवित्र ध्वनि प्रवेश करके हृदय में अच्छे संस्कारों को उत्पन्न करती है, यही जीवन का मूल है। इसी मूल पर यह जीवन वृक्ष खड़ा होगा इसलिये मूल को ही मजबूत करना चाहिये तथा समझदार लोगों के लिये यह मंत्र तथा उपदेश दोनों ही है। इसलिये बिश्नोई बनने के लिये इस संस्कार की महती आवश्यकता है।

★★★ ★★★

सुगरा मन्त्र

ओ३म् शब्द गुरु सूरत चेला, पांच तत्व में रहे अकेला।
सहजे जोगी शून्य में वास, पांच तत्व में लियो प्रकाश।

भावार्थ–ओम् यह ध्वनि रूप शब्द ही गुरु है और शब्द श्रवण करने वाली वृति ही चेला है। ''**स तु सर्वेषां गुरु कालेनानवच्छेदात्**'' वह परमात्मा तो सभी का ही गुरु है क्योंकि काल से परे है। ऐसा गुरु रूप परमात्मा ओम शब्द से कहा जाता है। ''**वृति सारूप्यमितरत्र**'' मनुष्य वृति के सारूप्य को ही प्राप्त हो जाता है। हमारी ये पांच ज्ञानेन्द्रिया तथा मन के द्वारा जो वृत्ति उत्पन्न होती है वे बाह्य देश में जाकर विषयाकार में प्रवर्तित हो जाती है। इसलिये हम सभी सदा ही विषयाकार ही बने रहते है परमात्माकार तो कभी वृति बनती ही नहीं है। जो वृति सुरति परमात्मा आकार की बनी रहती है वही वृति ही चेला है। यही गुरु और शिष्य का सम्बन्ध है तथा ऐसा पवित्र सम्बन्ध सदा ही बना रह सकता है। यही साधना भी और साध्य भी है शरीर से गुरु शिष्य का सम्बन्ध स्वार्थ पर टिका हुआ होता है वह कभी भी टूट सकता है इसलिये जम्भदेवजी ने बतलाया कि ओम शब्द ही गुरु तथा सुरती ही चेला है। यदि शरीर से गुरु शिष्य का सम्बन्ध माना जाय तो वह सदा ही नहीं रह सकता। किन्तु गुरु द्वारा दिये हुए शब्द का सम्बन्ध सदा बना रह सकता है क्योंकि शब्द नित्य होता है। हमें शब्द से ही नाता जोड़ना चाहिये, वही हमें संसार से पार उतारने में सक्षम होगा तथा शब्द सदा ही साथ रहने से आपकी सहायता भी करेगा। आपका गुरु सदा साथ रहेगा, जब भी मार्ग से भटक जाओगे तभी आपको सुरक्षा प्रदान करेगा। यह सभी कुछ ओम शब्द गुरु से जुड़ने पर ही संभव हो सकेगा।

जब इस प्रकार से गुरु शिष्य का सम्बन्ध जुड़ जायेगा तो वह व्यक्ति इस पंचभौतिक संसार से व्यवहार करता हुआ तथा इस शरीर में निवास करता हुआ भी अकेला ही हो जायेगा। संसार तथा शरीर से सम्बन्ध टूट जायेगा और परमात्मा से जुड़ जायेगा। फिर उसे सांसारिक बाधाएँ दुखित नहीं कर सकेगी। वह जीवन यापन के लिये अलौकिक शक्ति परमात्मा से प्राप्त करके जीवन को धन्य बना लेगा। ऐसा शिष्य सहज में ही योगी हो जाता है। उन्हें किसी प्रकार की साधना नहीं करनी पड़ती और न ही कोई आसन प्राणायाम आसन की ही आवश्यकता पड़ती। सामान्य जीवन व्यवहार चलाते हुऐ भी उसकी वृति परमात्मा में लग जाती है यही योग है। वह सदा ही सहज में सुलभ हो जाता है तथा इस जीवन में ही निराकार, निरंजन, आकाशवत् सर्वत्र व्यापक शून्य रूप ब्रह्म में ही वृतियों का लय हो जाता है संसार उसके लिये शून्य हो जाता है सांसारिक वासनाएँ उसे प्रभावित नहीं कर पाती। इन पांचों तत्वों द्वारा निर्मित सृष्टि में निवास करते हुए भी जो इन्हीं तत्त्वों में स्थित प्रकाश रूपी परमात्मा की ज्योति को ही ग्रहण करता है, उसी में ही स्वकीय ज्योति को एकाकार करता है मिथ्या रूप जड़ से सम्बन्ध विच्छेद कर लेता है और स्वकीय आत्म ज्योति तथा इन पांच तत्त्वों में स्थित परमात्मा की ज्योति से एकता स्थापित कर लेता है।

ना मेरे माई ना मेरे बाप, अलख निरंजन आपो ही आप।
गंगा यमुना बहै सरस्वती, कोई कोई न्हावै बिरला यती।

इस प्रकार से पांच तत्त्वों से बिलग तथा शून्य ब्रह्म के साथ एकाकार हुआ योगी यही कहेगा कि न तो मेरे आत्मा के कोई माता है और न ही कोई पिता है माता–पिता का सम्बन्ध शरीर से ही संभव हो सकता है किन्तु आत्मा से नहीं। शरीर से ऊपर उठा हुआ योगी यही कहेगा तथा शुद्ध ब्रह्म अलख तथा निरंजन है और अपने आप ही स्वयं स्थित

है उसे किसी दूसरे के सहारे की आवश्यकता नहीं है आत्मा भी शरीरस्थ होते हुऐ भी वृतियों द्वारा परमात्मा के साथ अभेद हो जाती है। तो ज्ञानी व्यक्ति भी वही अलख निरंजन हो जाता है। जैसी संगति करता है वैसा ही तो रंग चढ़ता है। इसलिये सहज योग की भी यही दशा होती है।

जिस प्रकार से बाह्य देश में गंगा, यमुना और सरस्वती ये तीनों पवित्र नदियाँ बहती है और इनमें स्नान करने से पुण्य की प्राप्ति होती है। आनन्द का अनुभव भी होता है। ठीक उसी प्रकार से प्रत्येक शरीर में ये तीनों नदियाँ प्रवाहित हो रही है। किन्तु उनसे साक्षात्कार नहीं हो पाता। वे सभी वृत्तियों की पकड़ से बाहर है। जिसे योगी लोग इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना भी कहते हैं। सांसारिक वृत्ति वाले जन तो इन्हीं में स्नान नहीं कर सकेगे क्योंकि उनकी वृति तो संसारमय हो चुकी है। परन्तु कोई विरला गुरुमुखी योगी ही उनमें स्नान कर पाता है। इन तीनों नाड़ियों द्वारा सदा ही परमात्मा के आनन्द की तीनों नदियाँ प्रवाहित रहती है। उनमें स्नान यानि आनन्द का अनुभव तो कोई विरला योगी ही प्राप्त करता है, बाकी तो सभी इससे वंचित रह जाते हैं।

तारक मन्त्र पार गिराम, गुरु बतायो निश्चय नाम।
जो कोई सुमिरे उतरे पार, बहुरि न आवै मैली धार।

यही गुरुजी ने विचार करके सभी के हितार्थ साधना तथा साध्य रूपी मन्त्र बतलाया है। इसी मन्त्र की साधना करने से यह संसार सागर से पार उतार देगा। यह पक्का निश्चय जानों। जो कोई भी सज्जन पुरुष इसी मन्त्र का स्मरण, ध्यान तथा विचार करके वैसी ही साधना करेगा तो निश्चित ही पार उतर जायेगा। इस संसार के दुखों से छूट जायेगा। जीवन यापन युक्तिपूर्वक आनन्द से परिपूर्ण होकर करेगा और मृत्यु हो जाने पर मुक्ति को प्राप्त करेगा। फिर बार- बार जन्म-मरण के चक्कर में नहीं आयेगा। यह जो चौरासी लाख छोटी-मोटी योनियाँ ही मैली धार है। इस गंदी धारा से सदा सदा के लिये छूट जायेगा। यही गुरु देव की आज्ञा है।

गुरु जम्भेश्वर जी ने यह मंत्र बालक गुरु दीक्षा के रूप में विधान किया है इसमें साधना करने का भी तरीका बताया है और साधक को जब साध्य की प्राप्ति हो जाये तब उसकी उतम स्थिति भी बतलाई है तथा यह गुरु मंत्र भी है। परम्परा से यही मंत्र संत महात्मा जब शिष्य बनाते है तो सुनाते है इसे स्मरण रखते हुऐ इसकी साधना अनुसार जीवन यापन करने की आज्ञा देते हैं तब वह सुगरा गुरु मुखी होता है यह मंत्र श्रवण किये विना तो नुगरा ही कहा जायेगा। बालक जब बारह वर्ष का समझदार हो जाता है तभी से यह सुगरा संस्कार प्रारम्भ किया जाता है तथा वही समय ही ऐसा ही होता है जिस समय गुरु शिष्य बनाकर उसे पवित्र जीवन कला सिखाते हैं। किन्तु किन्हीं परिस्थितिवश बाद में भी जब सचेत हो जाये तभी भी यह संस्कार प्रत्येक बिश्नोई को करवाना चाहिये। ऐसी हमारी वैदिक परंपरा भी है इसका पालन करना प्रत्येक हिन्दु का कर्त्तव्य है। इसलिये इस दिव्य शक्तिवान मंत्र से कोई वंचित न रहें, यही श्री देव जम्भेश्वर जी की आज्ञा भी है।

★★★ ★★★

साधु गुरु दीक्षा मन्त्र

ओ३म् शब्द सोहं आप, अन्तर जपे अजप्पा जाप।
सत्य शब्द ले लंघे घाट, बहुरि न आवै योनि वाट।

भावार्थ–ओ३म् शब्द ही मैं आप आत्मा रूप से हूं ''तत् त्वमसि'' वही तूं है ''अहं ब्रह्मास्मि'' मैं ही ब्रह्म हूँ, इत्यादि वेद वाक्यों द्वारा भी यही सिद्ध होता है कि जो ओम् शब्द से कहा जाने वाला परम तत्त्व है वह आत्म तत्त्व ही है। ''तस्य वाचक प्रणव'' उस परम तत्त्व का वाचक शब्द ओम ही कहा जाता है। साधु सन्यासी साधक के लिये यही उत्तम उच्च कोटि की साधना है इसलिये आगे बतलाया है कि ''अन्तर जपै अजप्पा जाप'' हृदय के अन्दर बिना कुछ बाह्य दिखावा किये ही होठ जिह्वा द्वारा तथा हाथ में बिना माला के ही निरंतर जाप करता रहे मुख से उच्चारण करता हुआ तो निरंतर नहीं जप सकता वह तो निश्चित ही थोड़ी देर बाद थक जायेगा और परमात्मा के चिंतन मनन ध्यान द्वारा तो सतत ध्यान जप किया जा सकता है तथा निरंतर अहं ब्रह्मास्मि का ध्यान या ओम् शब्द की गुंजार-ध्वनि का श्रवण भी निरंतर सुना जा सकता है। उसे समाधि भी कहते हैं और अजप्पा जाप भी कहते हैं। ऐसी साधना साधु-सन्यासी योगी पुरुषों के लिये बतलाई है। यही ओम शब्द ही जो आत्मा रूप से कहा जाता है इसी को लेकर इस घाट से पार उतरा जा सकता है। इस मानव जीवन की प्राप्ति तथा उत्तम कुल में जन्म तथा साधना की सुविधा यही नदी के किनारे का घाट है। इसी घाट पर तो पहुँच चुके हो, अब केवल ओम् शब्द सत्य शब्द रूपी नौका लेनी है। यह नौका तो सतगुरु द्वारा दी जा रही है। आप केवल इसे स्वीकार कर लीजिये तो निश्चित ही इस संसार सागर से पार उतर जाओगे। फिर कभी भी जन्म-मरण रूपी योनियों के मार्ग में नहीं आओगे, इस दुखमय कंटीले मार्ग से सदा के लिये छूट जाओगे।

परसै विष्णु अमृत रस पीवै, जरा न व्यापै युग युग जीवै।
विष्णु मंत्र है प्राण आधार, जो कोई जपै सों उतरे पार।

ओ३म् शब्द सोहं की साधना में रत हुआ साधक, साधना के बल पर आत्म रूप विष्णु तक पहुँच जायेगा। उनकी अन्तःकरण की वृतियां विष्णु परमात्मा में समाहित हो जाती है। ये वृतियां हृदयस्थ विष्णु से एकाकार होती है। ''ईश्वर सर्वभूतानां हृददेशेअर्जुन तिष्ठति'' ''हृदय हरि सिंवरीलो'' यही श्रुति स्मृतियां बतला रही है वहाँ पर विष्णु परमात्मा से साक्षात्कार हो जाता है तथा उनके साक्षात्कार का फल ही आनन्द होता है। वह आनन्द रूप अमृत रस को प्राप्त करती हुई वृतियाँ यानि जीव बहुत समय तक वहीं पर ही ठहर जाता है। वह समाधिस्थ हो जाता है। वहाँ वापिस आने की इच्छा नहीं होती क्योंकि संसार सुख उसके सामने तुच्छ मालुम पड़ता है। फिर ऐसे सागर को छोड़कर भला क्यों आयेगा ''जिहिं का उमग्या समाघूं, ते सरवर कित नीरूं'' तथा ''आत्मन्यैव आत्मना तुष्टः स्थित प्रज्ञस्तदोच्यते'' गीता, जब तक विष्णु से स्पर्श बना रहेगा मन प्राणों की गति अति धीमी हो जायेगी तो शरीर की आयु घटेगी नहीं, शीघ्र वृद्धावस्था नहीं आयेगी। इस योग के प्रभाव से युवावस्था में रहते हुए युगों युगों तक जीयेगा तथा आनन्द पूर्वक जीवन का लाभ उठायेगा। यही सच्चा आनन्दमय जीवन है।

यह मन्त्र विष्णु द्वारा दिया गया है। विष्णु परमात्मा तक पहुँचाने वाला होने से प्राणों का आधार है। जीवन धारण करने वाले प्राण इस विष्णु मन्त्र पर ही टिक सकते हैं अर्थात् प्राणों की गति में स्थिरता प्रदान करने वाला यह विष्णु मन्त्र ही है। जाति, अवस्था, देश, काल के बन्धनों वाला कोई भी व्यक्ति यदि इस ''ओ३म्

विष्णु सोहं विष्णु'' महामन्त्र का निरंतर जप करेगा इसके अनुसार साधना करेगा वह निश्चित ही संसार सागर से पार उतर जायेगा।

ओ३म् विष्णु सोऽहं विष्णु, तत स्वरूपी तारक विष्णु।

जो ओम नाम से कहा जाने वाला तत्व है वह विष्णु ही है तथा सोहं नाम से कहा जाने वाला परम तत्व है वह भी परम विष्णु ही है तथा तत्व रूप से कहा जाने वाला तत्व भी विष्णु ही है क्योंकि यह विष्णु स्वयं तत्त्व स्वरूप है और तत्त्व ही ओम् सोहं द्वारा कहा गया है। इसलिये विष्णु के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

यह साधु दीक्षा मंत्र इसी व्याख्या के साथ सम्पूर्ण होता है। जब गृहस्थ से साधु संन्यास मार्ग में किसी को दीक्षित किया जाता है तो यही मन्त्र और यही साधना बतलाई जाती है। इसलिये गृहस्थ दीक्षा मन्त्र और साधु दीक्षा मन्त्र में दोनों की साधना में अन्तर रखा गया है। यह साधना दोनों को अधिकारी भेद से भिन्न भिन्न प्रकार की बतलाई है। गृहस्थ के लिये तो शब्द गुरु सुरति चेला कहते हुए सहज योग बतलाया है। वहाँ पर साध्य परमात्मा तथा साधक जीव में भेद बतलाया है। इसी भेद के कारण ही उपास्य और उपासक की भावना बनती है। किन्तु यहाँ पर साधु मन्त्र में अभेद उपासना बतलाई हैं यह समाज इस तरह की सोहं उपासना की योग्यता रखता है और साधारण किसान वर्ग या व्यापारी जन उस प्रकार की उपासना की योग्यता रखता है। इसलिये दोनों को भिन्न-भिन्न मन्त्र तथा उपासना साधन बतलाया है।

वैदिक परंपरा से ही चार आश्रम स्थापित किये है। गुरु जाम्भोजी ने भी यह चौथा सन्यास आश्रम कायम किया किन्तु जम्भदेवजी के जाम्भाणी साधु अकर्मण्य नहीं है। कर्म में विश्वास करते हुऐ साधना करते हैं। इसलिये जाम्भाणी साधु यज्ञादिक शुभ कर्म त्याज्य नहीं मानते हैं परन्तु विशेष रूप से करते हैं ऐसा अपना नित्य कर्म मानते हैं सहर्ष सभी करते हैं तथा करवाते भी हैं।

★★★ ★★★

उनतीस नियमों की विस्तृत व्याख्या

ओ३म् तीस दिन सूतक, पांच ऋतुवंती न्यारो।

1. तीस दिन तक प्रसूता स्त्री को गृह कार्य से पृथक् रखना चाहिये। उनतीस नियमों में यह पहला नियम है। मानव के शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक विकास की यह नींव है। यहीं से मानव जीवन प्रारम्भ होता है। यदि यह प्रारम्भिक काल ही बिगड़ जायेगा तो फिर आगे मानवता का विकास कैसे हो सकेगा। शायद दुनिया में प्रथम बार ही जम्भेश्वर जी ने यह तीस दिन सूतक का नियम बतलाया है। वैसे सूतक मानते तो कुछ लोग है किन्तु तीस दिन का किसी भी समाज में नहीं मानते और न ही इस रहस्य को जानते हैं। बिश्नोइयों के लिये बालक जन्म का सूतक तो तीस दिन का बतलाया है तथा मृत्यु का सूतक-पातक तीन दिन का बतलाया है। इसमें कुछ रहस्य छिपा हुआ होगा इस अवसर पर विचार करके देखना चाहिये।

जब बालक दस महीने तक गर्भवास में निवास करता है तत्पश्चात् समय आने पर जन्म लेता है उस समय बालक एवं उसकी माँ दोनों ही अपवित्र अवस्था में हो जाते हैं। शरीर गर्भ से बाहर आया है जिससे गर्भ के सभी भाग वह साथ में लेकर आया है तथा उसकी माता के भी शरीर के अन्दर कमजोरी विकृति पैदा हो गई होती है। इन दोनों को स्वस्थ एवं पवित्र होने में समय चाहिये, समय पाकर ही पवित्रता आ सकती है। इसलिये तीस दिनों का समय रखा गया है। जो सूतक रूप में धर्म से जोड़ा गया है तथा तीस दिन पूर्ण हो जाने पर ही संस्कार करके उसे बिश्नोई बनाया जाता है तथा मृत्यु का सूतक-पातक तीन ही दिन का बताया है। क्योंकि वहाँ पर तो कुछ शेष रहता ही नहीं है। जीव तीन दिन के पश्चात् चला ही जाता है तथा शरीर तो उसी समय ही जमीन के समर्पित हो जाता है। फिर इतना लम्बा पातक किसके लिये रखा जाये। इसलिये तीसरे दिन ही जीव को समारोह पूर्वक विदाई तथा मिलन हो जाता है। उसी तीसरे दिन पाहल-हवन द्वारा संस्कार कर दिया जाता है। ''आज मूवा कल दूसर दिन है जो कुछ सरै तो सारी।''

दूसरी बात यह है कि तीस दिन तक प्रसूता स्त्री को गृह कार्य से पृथक् इसलिये रखी जाती है कि उसे पूर्णतया विश्राम चाहिये क्योंकि बच्चा पैदा होने से उसके शरीर में कमजोरी आ जाती है। उस कमजोरी की पूर्ति के लिये एक महीना पूर्णतया विश्राम तथा शरीर पुष्टि के लिये पौष्टिक आहार दिया जाना भी आवश्यक है और ऐसा करते भी है। इसमें दो कारण है प्रथम तो यह है कि बच्चे की माता का शरीर पुनः क्षति की पूर्ति कर लेगा। यदि ऐसा न हो सका तो कमजोर शरीर से न तो कुछ कार्य हो सकेगा, न ही शरीर स्वस्थ ही रह सकेगा। अनेकानेक बीमारियां शरीर को जकड़ लेगी। जिससे कभी भी अकाल मृत्यु हो सकती है। मातृ शक्ति तो खेती की तरह होती है, उस खेती को सुधारा जायेगा, उसे खाद पानी देते रहोगे तो वह नित्य ही नयी फसल देती रहेगी अन्यथा खेती अच्छी फसल नहीं दे सकेगी। दूसरा लाभ यह होता है कि नवजात शिशु को अपनी माता का दूध भरपूर मिलेगा। उस समय का अपनी ही माता का पीया हुआ अमृतमय दूध भविष्य में शरीर, मन, बुद्धि के निर्माण में सहायक होता है। यदि उगते हुए वृक्ष को ही पूर्णतया खाद नहीं मिलेगी तो वह कभी भी विशाल वृक्ष नहीं बन सकेगा।

बिश्नोइयों में यह परंपरा प्राचीन काल से ही इस नियम के बदोलत चली आ रही है जिससे सुन्दर बलिष्ठ जवान पैदा होते आये हैं। अन्य लोगों से पहचान अलग से हो जाती है। आजकल इस नियम में कुछ

ढ़ील हो जाने से वह बात अब नहीं दिखाई देती।

आजकल संसार के वैज्ञानिक लोग यही प्रचार कर रहे हैं कि बच्चे को अपनी माँ का ही दूध पिलाये। किन्तु इस समस्या का समाधान कैसे हो सकता है? तब वे लोग कहते हैं कि बच्चे की माता को निश्चित होकर पोष्टिक आहार लेना चाहिये, जिससे दूध में बढ़ोतरी होगी। क्या इस बात को ''तीस दिन सूतक'' इस नियम से नहीं जोड़ा जा सकता? क्या बिश्नोई लोग इस नियम का पालन करते नहीं आये है? क्या आज से पाँच सौ वर्ष पूर्व जम्भेश्वर जी ने यह बात नहीं बतलायी थी? ये लोग क्या कुछ नयी बात बतला रहे हैं? यदि मानवता की रक्षा करनी है तो एक दिन अवश्य ही इस नियम को सभी लोगों को स्वीकार करना होगा। श्री देवजी तो भविष्य दृष्टा थे, उनको तो आज की यह भयावह परिस्थिति दिख रही थी इसलिये पहले ही अपने शिष्यों को सचेत कर दिया था और यह संकेत दे दिया था कि यदि हम नियम पर अडिग रहेंगे तो तुम्हें दूध की बोतल को माँ नहीं कहना पड़ेगा तथा उस माँ का दूध पीकर तुम कभी जवान नहीं बन सकोगे। यदि अपने जीवन को पूर्ण रूपेण जीना है तो यही एक मार्ग है यही जीवन का मूल है इसी पर वृक्ष खड़ा होगा।

तीस दिन पूर्ण हो जाने पर फिर कोई तिथि, वार, घड़ी, नक्षत्र आदि देखने की आवश्यकता नहीं रह जाती क्योंकि सभी तीस दिनों के अन्दर ही समाहित हो जाते हैं। तब घर कच्चा है तो गौ के गोबर से लिपवाकर, यदि पक्का हो तो जल से धुलवाकर फिर संस्कार करने वाले सज्जन साधु पुरुष से संस्कार करवायें। संस्कार करते समय हवन पाहल होना अति आवश्यक है बिना इस हवन पाहल के तो बिश्नोई नहीं बन सकता। बालक मन्त्र सहित पाहल देकर उस बालक को बिश्नोई बनाया जाता है तथा बालक की माँ को पाहल देकर पुनः गृह कार्य में प्रवेश कराया जाता है तब सूतक की निवृति होती है यही परंपरा है तथा जीवन में सफलता प्रदान कराने वाली भी है आज के युग में भी ऐसी परंपरा की महती आवश्यकता भी है।

2. पांच ऋतुवन्ती न्यारो– पाँच दिन के मासिक धर्म में आ जाने पर औरत को गृह कार्य से पृथक् रहना चाहिये। उन पांच दिनों में वह अपवित्र दशा में होती है। उस समय न तो उसे गृह के कार्य में भाग लेना चाहिये, उसे जल, भोजन आदि के कार्य से तो बिल्कुल ही दूर रहना चाहिये और न ही रजस्वला स्त्री को छूना चाहिये। वह अस्पर्शा होती है। ऐसी दशा में उसका शरीर कच्चा हो जाता है, जिससे कई प्रकार के दोषों से दूषित हो जाती है। अनेक रोगों से ग्रसित भी हो सकती है। उसके द्वारा बनाया हुआ भोजन करने से भोजन कर्ता दूषित हो जाते हैं, वह भी रोगी हो सकता है। इसलिये अन्य कार्य न करते हुए अपने पति का ही स्मरण करें या फिर देवता श्री भगवान विष्णु का ही स्मरण करें, अन्यथा दृष्टि दोष भी लग सकता है। ''जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि'' जैसी दृष्टि रजस्वला अवस्था में पड़ती है संतान भी वैसी ही हो सकती है। कई प्रसंगों उदाहरणों से यह बात पुष्ट होती है तथा जम्भसार की कथाओं में यह भी प्रमाण मिलता है कि एक रजस्वला स्त्री के हाथ का जल पीने से और उसके शरीर की छाया पड़ने से 350 शूरवीर क्षत्रिय भूत प्रेत योनि में चले गये थे। इसलिये जीवन में मन बुद्धि का बहुत ही महत्व होता है। उन्हें शुद्ध पवित्र रखना परमावश्यक है और वे खाने-पीने से भी अपवित्र होते हैं तथा अपवित्र दशा में तो यह शरीर ही बैठ जायेगा या फिर विपरीत कर्म करके नष्टता को प्राप्त हो जायेगा। इससे बचने के लिये इस धर्म का पालन करना माता और बहनों का परम कर्तव्य है तथा पुरुषों को भी इस नियम पालन करने में पूरा सहयोग देना चाहिये। गाड़ी एक चक्र से नहीं चलती दोनों बराबर घूमेंगे, समझौता रखेंगे तभी यह गृहस्थी की गाड़ी चलेगी। भावी पीढ़ी निर्माण में आपका बहुत बड़ा सहयोग हो सकता है। आप अपनी संतान को कैसे देखना चाहते हैं। यदि अच्छी देखना चाहते हैं तो इस नियम का पालन करे और

करवायें।

पांचवें दिन सभी कपड़े धोकर शुद्ध पवित्र हुआ जाता है, उसके बाद ही गृह कार्य तथा सांसारिक कार्य व्यवहार करना चाहिये। यदि आप पुत्र की प्राप्ति चाहते है तो छठे, आठवें, दसवें, बारहवें, चवदहवें दिन और पुत्री चाहते हैं तो इनसे विपरीत दिनों में व्यवहार कर सकते हैं। ऐसी शास्त्रों की विधि है।

सेरा करो स्नान, शील संतोष शुचि प्यारो।

3. सेरा करो स्नान– प्रतिदिन प्रातः काल की वेला में ही स्नान करना चाहिये। ''सैरा उठै सुजीव छांण जल लीजिये, दांतण कर करे स्नान जिवाणी जल कीजिये'' बतीस आखड़ी ''वील्होजी'' प्रातःकाल ब्रह्म मुहूर्त में उठकर सर्वप्रथम शौचादि से निवृत होकर दांतुन करके स्नान करें। यहीं से जीवन की गति प्रारम्भ होती है। स्नान करने के पश्चात् ही अन्य कोई घर का कार्य या पूजा पाठ हवन आदि हो सकता है। बिना स्नान किये तो कुछ भी कार्य नहीं हो सकता। रात्रि में हम लोग शयन करते हैं तो एक प्रकार की मृत्यु ही हो जाती है, बुरे स्वप्न आते हैं, आलस्य का आक्रमण हो जाता है जिससे शरीर आलसी किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाता है। कोई भी शुभ दिनचर्या नहीं बन पाती। इन्हीं सभी शारीरिक दोषों की निवृति के लिये प्रातः कालीन स्नान का विधान किया है। प्रातः काल के स्नान से शरीर शुद्ध पवित्र स्वस्थ होगा तो इस शरीर में स्थित मन, बुद्धि आदि भी पवित्र होंगे तथा सभी कार्य सुरूचि पूर्ण ही होंगे।

सबद संख्या 104 के प्रसंग में जम्भदेवजी ने वस्त्र, हाथी, घी आदि के अत्यधिक दान से भी अधिक महत्वपूर्ण स्नान को स्वीकार किया है क्योंकि दान का प्रभाव तो क्षणिक होता है। किन्तु स्नानादिक दिनचर्याओं का प्रभाव दीर्घकालीन होता है इनसे जीवन निर्माण होता है इस स्नान करने के नियम के कारण ही तो बिश्नोइयों को अन्य लोग स्नानी कहते हैं और बड़ी ही श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं क्योंकि उन्हें मालूम है कि जो प्रातः की वेला में स्नान करेगा वह निश्चित ही परमात्मा के नाम का स्मरण, संध्या, हवनादि शुभ कार्य करके उसके बाद ही अन्य कार्य करेगा। वह निश्चित ही धार्मिक व्यक्ति होगा तथा उनका अन्य लोगों से शरीर स्वस्थ अधिक रहेगा, प्रत्येक कार्य करने में सबसे आगे रहेगा। यही सभी कुछ स्नान की बदौलत से ही संभव हो सकता है।

कुछ वर्ष पूर्व तक इस स्नान के नियम का पालन अच्छी प्रकार से होता था। यहाँ तक कि छोटे-छोटे बच्चों को भी बिना स्नान करवाये दूध जल पान आदि नहीं करवाया जाता था। सभी के लिये स्नान करना अनिवार्य था। जिससे आगे चलकर आदत पड़ जाने पर बिना स्नान किये भोजन नहीं कर सकते थे। किन्तु इस समय कुछ शिथीलता नजर आ रही है। नियम की यह महत्वपूर्ण कड़ी यदि टूट जायेगी तो फिर यह शृंखला कैसे जुड़ पायेगी। अन्य शास्त्रकार इस नियम की महता को नहीं देख पाते थे इसलिये अधिक चर्चा का विषय नहीं बन पाया किन्तु जम्भदेवजी ने ठीक ही पहचान करके अपने शिष्यों के प्रति बतलाया था। इसलिये सभी के लिये पालनीय है।

4. शील– शील व्रत का पालन करना चाहिये। शील शब्द के प्रसंगानुसार कई अर्थ हो सकते हैं। किन्तु यहाँ उनतीस नियमों में जो इस शील शब्द का प्रयोग किया है इसका अर्थ है कि स्त्री के लिये पतिव्रता धर्म का पालन करना तथा पुरुष के लिये एक पत्नी व्रत धर्म का पालन करना। पति-पत्नी मे तथा संसार की मर्यादा को बांधने वाला यह एक शील धर्म ही है। इस शील धर्म से ही आपसी पिता पुत्रादि की मर्यादाएं,

सीमाएँ जुड़ती है। यदि यह शील धर्म ही खंडित हो जायेगा तो कौन किसका पिता, कौन किसका भाई, बहन होगा तथा कौन किसके पालन पोषण का भार उठायेगा। पारिवारिक स्नेह कैसे जुड़ पायेगा। उसके बिना तो समाज ही बिखर जायेगा। पति-पत्नी के बीच मधुर सम्बन्ध जोड़ने वाला शील ही होता है।

जिससे परिवार समाज देश मर्यादित होकर चलता है तथा यह शील व्रत ही मानवता तथा पशुता में भेद करता है। इसी भेद से ही मानव पशुता से ऊपर उठकर अपनी उन्नति में अग्रसर होता है। हिन्दू समाज ही नहीं सम्पूर्ण मानव के लिये यह धर्म पालन करना आवश्यक है। जहाँ पर भी शील व्रत खण्डित हुआ है वहीं पर ही पारिवारिक जीवन नरकमय बन गया है तथा पवित्र वैवाहिक सम्बन्ध भी टूटते देखे गये हैं। एक बार शील टूट गया तो फिर दुबारा कभी भी जुड़ नहीं सकता। इसलिये सुख शांति चाहने वाले सभी सज्जनों के लिये शीलव्रत पालनीय है।

5. संतोष- अपने ही परिश्रम के द्वारा जो यथा कर्मानुसार मिल जाये, उसी फल में ही सन्तुष्ट रहना ही संतोष कहलाता है। इसके विपरीत धन प्राप्ति के लिये दिन-रात होने वाली इच्छा का प्रसार ही लोभ कहलाता है। लोभ से होने वाले दुख का कोई आर पार ही नहीं है। एक वस्तु की प्राप्ति हो जाने पर झट दूसरी वस्तु प्राप्ति की इच्छा हो जाती है। उसी प्रकार ''संतोषादनुतमं सुख लाभ:'' संतोष से ही अति उत्तम सुख का लाभ मिलेगा क्योंकि यथा आवश्यकतानुसार जो कुछ भी प्राप्त हो जाता है उनमें ही संतुष्टता होती है कहा भी है-

गोधन गज धन बाजी धन और रतन धन खान।
जो आवै संतोष धन, सब धन धूर समान।

संतोषी सदा ही सुखी तथा लोभी सदा ही दुखी रहता है। गुरु जम्भेश्वर जी ने उनतीस नियमों में संतोष को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। धन, दौलत, स्त्री, पुत्र परिवार आदि सभी कुछ होते हुए भी संतोष रहित लोभी मनुष्य का जीवन नरकमय हो जाता है। आखिर यह जीवन केवल इस प्रकार की बर्बादी के लिये तो नहीं मिला है। इसका सदुपयोग तो करना ही चाहिये। इस जीवन को प्राप्त करके सुख की प्राप्ति तो होनी ही चाहिये। इसलिये सभी शास्त्रों से सहमत यह संतोषमय जीवन जीने की कला सिखलाई है। इसे धारण करके कोई भी चाहे धनी हो या निर्धन, छोटा हो या बड़ा अपने जीवन को सफल बना सकता है।

6. शुचि प्यारो- बाह्य तथा आभ्यन्तर अर्थात् शरीर की शुद्धता तथा मन बुद्धि की शुद्धता से प्रेम रखना चाहिये। सदा ही अपना ध्यान इस ओर बना रहे तथा शुद्धता के लिये प्रयत्नशील रहे। शरीर की शुद्धि तो जल से होती है और मन बुद्धि की अच्छे विचारों से भगवान के भजन करने से तथा सत्य बोलने आदि से होती है। इस प्रकार शुद्धता के लिये सदा प्रयत्नशील रहना चाहिये। सबदवाणी में भी कहा है ''तन मन धोइये संजम होइये, हरष न खोइये।''

तथा दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि पवित्र प्रेम एक दूसरे के प्रति सदा बनायें रखें क्योंकि आपस के पवित्र प्रेम भाव से ही दुनिया का सम्पूर्ण व्यवहार सुचारू रूप से चल पाता है। जहाँ पर प्रेम भाव में स्वार्थ आ जाता है वहाँ पर प्रेम में पवित्रता नहीं रह पाती। वहाँ तो मोह हो जाता है। मोह से तो सदा दुख दायी तथा स्वार्थ से भरा रहता है। किन्तु प्रेम भाव सदा ही निर्मोही तथा परमार्थी होता है। प्रेम भाव से सेवा, सहायता करने में अनुपम सुख मिलता है। संसार का व्यवहार ठीक से चलता है। सभी मानव सामान्य रूप से जीवन व्यतीत करते हुऐ क्षमा, दया दाक्षिण्यादि गुणों को धारण कर लेते हैं।

इसी नियम द्वारा सृष्टि के सभी छोटे-बड़े प्राणियों से निष्काम भाव से परम पवित्र प्रेम भाव करना सीख जाता है। इसी से ही जीयो और जीने दो का सिद्धान्त कायम हो सकता है तथा कण-कण में प्रभु परमात्मा की ज्योति की छटा बिखर रही है। सभी जीव मात्र उसी परमात्मा की ही सन्तान है हम भी वही है, जो ये हैं। ऐसा शुद्ध ब्रह्ममय सिद्धान्त कायम होता है। इसलिये अपने पराये का भेदभाव भूला कर सभी के प्रति प्रेम भाव रखना चाहिये।

द्विकाल सन्ध्या करो, सांझ आरती गुण गावो।

7. सन्ध्या- प्रात: काल सूर्योदय तथा सांयकाल सूर्यास्त समय को सन्ध्या का समय कहते हैं। उस समय रात्रि तथा दिन की संधि बेला है। प्रात:काल की संधि बेला में तो रात्रि की समाप्ति तथा दिन का आगमन होता है तथा सांय समय तो दिन की विदाई और रात्रि का आगमन होता है। ऐसी वेला ही पवित्र मानी जाती है क्योंकि यह वेला हमें प्रात:कालीन जीवन यानि मानव जीवन प्राप्ति का संकेत करती है और दोपहर जवानी और सांय वृद्धावस्था को प्राप्त होते ही मृत्यु का संकेत देती है तथा दूसरे दिन पुन: नया जीवन प्राप्ति का संकेत देती है तथा प्रात:काल सूर्योदय की बेला में संध्या करके फिर हम दिन का कार्य प्रारम्भ करे तथा सायं सूर्यास्त के समय अपना कार्य छोड़कर पुन: परमात्मा की प्रार्थना रूपी संध्या करके विश्राम करें। कहा भी है-

''ताती बेला ताव न जाग्यो, ठाडी बेला ठारूं, बिंम्बै बेला विष्णु नं जंप्यो, तातै बहुत भई कसवारूं''

संध्या या उपासना की तो वैदिक काल से ही परंपरा चली आ रही है क्योंकि यह एक अति सुन्दर परंपरा थी जिसकी रक्षा करना परमावश्यक था। इसलिये जम्भेश्वर जी ने उनतीस नियमों में यह एक नियम बतलाया। प्रात: सूर्योदय के साथ ही साथ सांय भी सूर्यास्त के समय में हाथ पांव धोकर या स्नान करके उतर की तरफ मुख करके एकान्त शुद्ध स्थान में आसन लगाकर बैठें। आवश्यकतानुसार हाथ में माला लेकर या बिना माला ही परमात्मा विष्णु को हृदय में धारण करके मुख से ''ओ३म् विष्णु'' इस महामन्त्र का जप करें ''यज्जपस्तदर्थ भावनम्'' जिसका भी जप किया जावे वैसी भावना अर्थात् ध्यान भी करना चाहिये। ध्यान पूर्वक प्रेम से लिया हुआ परमात्मा का नाम ही अनन्त गुण फल वाला होता है।

परमात्मा विष्णु की महिमा स्मरण के लिये, परमात्मा के प्रति श्रद्धा से समर्पित होने के लिये वृहन्नवण संध्या का पाठ अवश्य ही करना चाहिये, ऐसी परंपरा तथा विधि-विधान है। इस नियम का नित्य प्रति पालन करें। समय यदि ज्यादा नहीं है तो भी नियम छोड़ना नहीं चाहिये। नियम का मतलब ही यही होता है कि अबाध गति से कार्यक्रम चलता रहे बीच में टूटे नहीं। यह नियम की सार्थकता है।

8. सांझ आरती- संध्या पूर्ण हो जाने पर रात्रि का समय हो जाता है। उस समय में भी व्यर्थ की निंदा या आल बाल की बातों में समय नष्ट नहीं करें। जैसा तुम बोलोगे, करोगे सुनोगे वैसा ही संस्कार तुम्हारे अन्दर आ जायेगा। उसी संस्कार से ही आप अपना जीवन व्यतीत कर सकोगे, इसलिये अच्छे संस्कारों के लिये तथा परमात्मा की अनुकम्पा के लिये रात्रि में सभी परिवार के छोटे-बड़े लोग मिलकर बैठे और आरती करो अर्थात् आर्त भाव से, समर्पण भाव से प्रभु परमात्मा की पुकार करो। परमात्मा के गुणों का बखान करो यानि सत्संग चर्चा करो। जिससे तुम्हारे संस्कार पवित्र बनेगे उससे जीवन में खुशहाली आयेगी।

यह भी एक नियम है नियम तोड़ना नहीं चाहिये। एक बार यदि टूट गया तो फिर दुबारा जुड़ना कठिन हो जायेगा। फिर बिना नियम का जीवन उद्दण्ड हो जायेगा जिससे समाज में अव्यवस्था फैलती है। इन्हीं

मर्यादाओं को बांधने के लिये नियम बतलाये है। सांय काल में आरती बोलने के लिये प्रथम तो स्वयं आरती कीर्तन भजन हरिजस आदि याद करो, बाद में सस्वर प्रेम भाव से गाओगे तो अन्य लोग भी आपकी तरफ आकर्षित होंगे उनका भी जीवन सफल होगा। इसलिये गुण एक लाभ अनेक होंगे। यही सांझ आरती गुण गान का महत्त्व है। उदोजी ने कहा है ''तीसरी आरती कंठ सुर गावै, नवधा भक्ति प्रभु प्रेम रस पावै।''

होम हित चित प्रीत सूं होय, वास वैकुण्ठे पावो।

9. हवन– सभी के हित के लिये सचेत होकर तथा प्रेम से हवन करो। उसका फल मुक्ति पद की प्राप्ति का होगा। केवल हवन करना ही पर्याप्त नहीं है। हवन करने के साथ साथ हित, चित और प्रीत की भावना भी जुड़ी हुई होनी चाहिये। ऐसी पवित्र भावना द्वारा किया हुआ कर्त्तव्य कर्म कभी भी बंधन में डालने वाला नहीं होता। यज्ञ के अवसर पर हम घृतादिक की आहुति अग्नि देवता को समर्पित करते हैं। वह आहुति स्वाहा का उच्चारण करके दी हुई देवता ग्रहण करके तृप्त होते हैं तथा विष्णु परमात्मा तक वह आहुति पहुँचती है, तो सम्पूर्ण विश्व ही तृप्त हो जाता है। उस आहुति के बदले में हम देवताओं से कुछ भी नहीं चाहते तो भी देवताओं की प्रसन्नता का अर्थ है कि वे कुछ न कुछ अवश्य ही देते हैं।

यदि ये देवता सूर्य, चन्द्र, वायु, जल, आकाश, पृथ्वी आदि प्रसन्न हो जाते हैं तो यहाँ मृत्यु लोक के सभी प्राणी दैहिक, दैविक और भौतिक तापों से छुटकारा पा जाते हैं। देवता हमें दिन रात अजस्र प्रवाह से देते ही रहते हैं। हम उनके लिये क्या दे सकते हैं उनके ऋण से उऋण होने का मात्र उपाय यज्ञ ही हो सकता है। इसलिये यज्ञ करने में सभी का कल्याण निहित होता है। वेदों में कहा है कि ''स्वर्ग कामो यजेत'' स्वर्ग सुख की कामना वाला यज्ञ करे तथा प्राचीन काल से ही हिन्दू समाज में बड़े बड़े यज्ञ करते ही आये हैं किन्तु उस समय से अद्यपर्यन्त यज्ञ करने का एकाधिकार ब्राह्मण जाति विशेष के पास ही था। वे लोग जैसा चाहते थे वैसा मनमानी दक्षिणा लेकर करते थे। इससे तो नित्य प्रति घर में प्रातः सांयकाल यज्ञ नहीं हो सकता था किन्तु यज्ञ करना तो नित्य प्रति चाहिये।

इस समस्या का समाधान करने के लिये जम्भदेवजी ने ही सर्वप्रथम एकाधिकार समाप्त करके सभी को पूर्ण अधिकार दे दिया। वह चाहे किसी भी जाति का पुरुष हो या स्त्री हो अथवा बच्चा ही क्यों न हो यह शुभ कार्य तो करना ही चाहिये। पवित्रता शुद्धता आचार विचारवान मानव तो सभी एक ही जाति के है, वे तो सभी अधिकारी हो सकते हैं। जो उनतीस नियमों का पालन करता हो। इसलिये प्रत्येक बिश्नोई के घर में हवन अवश्य ही होता आया है। उसके घर में जो भी समझदार सदस्य उपस्थित रहेगा वह प्रेम भाव से यज्ञ अवश्य ही करता है। उनतीस नियमों में एक नियम पालन करने योग्य मुक्ति युक्ति दिलाने वाला है।

पांणी बांणी ईन्धणी, दूध ज लीजै छांण।

10. जल, दूध और ईन्धन को छानना– जल और दूध को तो छान करके पीना चाहिये और लकड़ी उपले आदि को झाड़ करके जलाने के लिये लेना चाहिये। यही उनका छानना है। क्योंकि देखा गया है कि लकड़ी आदि ईन्धन में छोटे–मोटे कीड़े दीमक आदि इकट्ठे हो जाते हैं। यदि ईन्धन को झाड़कर काम नहीं लेंगे तो वे सभी कीट पतंग लकड़ी के साथ ही जलकर भष्म हो जायेंगे। उन असंख्य कीड़ों को मारनें का पाप अवश्य ही लगेगा।। थोड़ी सी सावधानी से बहुत बड़े पाप से अपराध से बचाव कर सकते हैं। इन कीड़ों को अग्नि में जलाने से तो कोई स्वार्थ सिद्ध होने वाला नहीं है। किन्तु पाप कर्म होना तो अवश्यंभावी है।

इसी प्रकार जल में भी छोटे-छोटे जल के जीव रहते हैं उस जल को यदि कपड़े से छानकर पीयें तो उन असंख्य जीवों को बचा सकते हैं। बिना छाने जल पीयेंगे तो वे असंख्य जल के जीव जल के साथ ही पेट में चले जायेंगे और अन्दर जाकर अनेकों बिमारियाँ पैदा करेंगे तथा जीव हत्या का पाप तो लगेगा ही। इसलिये कहा है-

''पानी पी तूं छानकर निर्मल बाणी बोल, इन दोनों का वेद में न ही मोल नहीं कुछ तोल।''

इसी प्रकार से दूध भी छान करके लेना चाहिये क्योंकि कभी कभी गऊ भैंस आदि के बाल आदि दूध के अन्दर गिर जाते है ऐसा प्राय: दूध निकालते समय होना संभव है। इसलिये दूध को बिना छाने प्रयोग में लेने से पाप होता है।

11. बांणी- मुख से उच्चरित होने वाले शब्द को भी छानकर अर्थात् सत्य, प्रिय हितकर बोलना चाहिये।

''सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्, प्रियं च नानृतम् ब्रूयादेष धर्म सनातन''

सत्य बोलना चाहिये, साथ में प्रिय भी होना चाहिये। अप्रिय यदि सत्य है तो भी नहीं बोलना चाहिये और यदि प्रिय शब्द है किन्तु असत्य है तो भी नहीं बोलना चाहिये यही सनातन धर्म है।

''सांच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप, जांके हृदय सांच है तांके हृदय आप''

तथा यही बात श्री देवजी भी कहते हैं कि ''सुवचन बोल सदा सुहलाली'' अच्छे वचनों को बोलेगा तो सदा ही खुशहाली रहेगी।

''वाणी एक अमोल है जे कोई बोल जान, हिये तराजू तोलकर तब मुख बाहर खोल।

तथा च ''क: परदेश प्रिय वादीनाम्'' प्रिय बोलने वालों के लिये परदेश क्या होता है सभी उनके अपने हो जाते हैं जगत में हम देखते हैं कि सत्य पर ही जगत का सम्पूर्ण व्यवहार टिका हुआ है। सभी लोग एक दूसरे को सत्य बोलने की हिदायतें देते देखे गये हैं, सत्य ही परमात्मा है सत्य व्यवहार से ही परमात्म तत्त्व की प्राप्ति तथा लौकिक यश, प्रतिष्ठा, सुखी, यशस्वी जीवन जीया जा सकता है। इसलिये सभी को सत्य का पालन करते हुऐ जीवन कला सीखनी चाहिये। ऐसी ही श्री देवजी की इस नियम द्वारा आज्ञा है।

लोक व्यवहार में हम एक दूसरे को सामान्य वार्ता करते हुए सुनते हैं तो वे लोग गाली द्वारा ही शब्द बोलते हैं, जिससे आपस में वैमनस्य वैर विरोध लड़ाई झगड़ा देखे गये हैं। यदि वाणी को ही मधुर हितकर प्रेम भाव से बोला जाये तो आनन्द की लहर दौड़ जाती है यह वाणी सत्य सनातन है। देव मानव सभी लोग सुनते हैं। अच्छी वाणी से सभी लोग प्रसन्न होकर आशीर्वाद देते हैं।

क्षमा दया हिरदै धरो, गुरु बतायो जांण।

12. क्षमा और दया- सदा ही क्षमा दया भाव तथा प्राणियों पर दया हृदय में धारण करके रखे यह गुरु ने अच्छी प्रकार से विचार करके बतलाया है। क्षमा तथा दया भाव ये दोनों ही परस्पर एक दूसरे के आश्रित है। यदि आपके अन्दर क्षमा भाव होगा तो किसी पर दया कर सकते हैं और यदि आपके अन्दर दया भाव हो तो आप क्षमा कर सकते हैं। एक भाव उदय होने से दूसरा उसके पीछे अपने आप चला आयेगा, इसलिये दोनों को एक ही नियम के अन्दर रखा गया है। यदि किसी ने आपके प्रति कोई अपराध कर दिया है तो उस पर दया करके क्षमा कर दें। यह क्षमा तो आप अपने से कमजोर पर ही कर सकते हैं। आप अपने बल से उसको दबा

सकते थे। किन्तु दयावश उसके अपराध को क्षमा कर दिया। ऐसा करने से वह अपनी गलती समय पाकर अवश्य ही सुधार लेगा। यदि आपसे कोई ताकतवर अधिक है उसका आप कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते, उसे क्षमा नहीं कहा जा सकता। क्षमा तो उसे ही कहना चाहिये जिसमें आप समर्थ होकर भी दयावश क्षमा कर देते हैं। यह क्षमाशीलता अनेक प्रकार के झगड़ों उपद्रवों के शमन का कारण होती है, क्षमाशीलता से ही सुख शांति रह सकती है।

इसी प्रकार से दया भाव यदि आपके अन्दर है तो आप दुखी प्राणियों की सेवा कर सकते हैं। असहाय दुखी प्राणी की सेवा दयाभाव से ही हो सकती है। इसलिये कहा है–

''दया धर्म को मूल है, पाप मूल अभिमान, तुलसी दया न छोड़िये, जब लग घट में प्राण''

''अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचन द्वयम्, परोपकाराय पुण्याय पापाय परपीड़नम्''

अठारह पुराणों में व्यास जी के दो ही वचन प्रमुख है कि परोपकार करना ही पुण्य है तथा निर्दयता से पीड़ा देना ही पाप है। इसलिये दया से धर्म की उत्पति होती है और निर्दयता से पाप की वृद्धि होती है।

चोरी निंदा झूठ बरजियो, बाद न करणों कोय।

13. चोरी– चोरी नहीं करनी चाहिये। किसी दूसरे के धन को छिपाकर ले जाने को सामान्य रूप से चोरी कहते हैं। अनधिकार किसी अन्य के कमाये हुऐ धन दौलत को अपना मान करके छीन लेना उसे उस आवश्यक धन से वंचित कर देना, यह बहुत ही कष्ट दायी कर्म है। दूसरों को उन आपके कर्मो से कष्ट पहुँचे यही तो पाप है। इसी चोरी कर्म से पाप होता है। तो कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है। चोरी नहीं करना यह नियम सर्व साधारण के प्रति लागू होता है। इसलिये शासकों ने भी आदि काल से कानून बनाये थे, चोरी करने वालों को दण्ड देने का प्रावधान किया था। यदि इस नियम का पालन न किया जाये तो चारों तरफ अव्यवस्था फैल सकती है। कहीं किसी का भी जीवन सुरक्षित नहीं रह सकता। कोई तो धन कमायेगा तथा दूसरा चोर बलिष्ठ जन उसका अपहरण कर लेगा इससे समाज की व्यवस्था चलनी असंभव है इसलिये सभी सर्व साधारण के लिये, संसार में सुख पूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिये तथा परलोक का सुधार करने के लिये इन नियम का पालन करना आवश्यक है।

14. निंदा– दूसरों की निंदा नहीं करनी चाहिये। अपने अवगुणों को छिपाकर दूसरे के अवगुणों को प्रगट करने को सामान्य रूप से निंदा कहा जाता है। निंदक लोगों का यह कर्त्तव्य कर्म ही हो जाता कि वह दूसरों के गुणों को छिपाकर केवल उनके अवगुणों को ही चिंतन–मनन करता रहता है। इससे उनके दुर्गुण मिट तो नहीं जाते किन्तु व्यक्ति जैसा चिंतन करता है वह स्वभाव में उसके आ जाता है, वैसा ही जीवन उसका बन जाता है। **''परनिंदा पापा सिरै, भूल उठावै भार।''** दूसरों की निंदा करना शिरोमणि पाप है। मूर्ख लोग इस पाप के बोझ को उठाकर वैसे ही भार मरते हैं।

''निंदक नेड़ै राखिये आंगन कुटी छवाय, बिन पाणी बिन साबणा, मेल धुपै धुप जाय।''

निंदक मेरा मति मरो वे तो बड़ा सपूत, मोह बिठावै सुरग में आप भूत का भूत।

जंपो विष्णु न निंदा करणी।

दूसरों की निंदा करने से भी कुछ रस जरूर आता होगा उस रस की प्राप्ति के चक्कर में अनेक प्रकार की कलह लड़ाई झगड़े इसी के बदौलत देखे गये हैं। कभी कभी रस में निरसता भी आ जाती है, समय को

व्यर्थ में गमाने का तो यह निंदा रस बहुत बड़ा साधन है इसलिये यदि जीवन में सदा सुख शांति बनाये रखना चाहते हैं तथा दूसरों को भी सुख देने वाला पुण्य कर्म करना चाहते हैं तो परायी निंदा कभी न करें। यदि कुछ कहने की हिम्मत हो तो अपनी ही निंदा करें, अपने ही दुर्गुणों को प्रगट करके उनसे छूटने का उपाय करें, यही निंदा करने का फल है। किसी कवि ने निंदक लोगों पर अपना रोक्ष प्रगट किया है–यथा–

जीवो राज सुराज, जीवो नर उपकारी।
जीवो जग दातार, जीवो पति वरता नारी।
जीवो सिद्ध अरू साधु, जीवो योगी निर्मोही।
जीवो जल थल के जीव, मरो संतन के द्रोही।
ईश्वर गिरि त्रिलोक में, और सकल आनन्द करो।
जो संतन की निंदा करै, तिन के सिर विद्युत परो।

15. झूठ– झूठ नहीं बोलना चाहिये, सदा यथार्थ बात ही बोलनी चाहिये। अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये या व्यर्थ में ही बातों ही बातों में लोग शौकीन से झूठ बोल दिया करते हैं। इससे दूसरे का कार्य बिगड़ जाता है जहाँ पर स्वार्थ, लोभ, कुटिलता का व्यवहार अधिक होगा वह झूठ बोलने से ही होगा। झूठ बोलकर धोखा बार–बार नहीं दिया जा सकता। एक दो बार झूठ बोलकर भले ही स्वार्थ सिद्धि कर ले परन्तु बार–बार नहीं हो सकेगा। क्योंकि उस व्यक्ति पर से विश्वास सदा सदा के लिये ही समाप्त हो जाता है तथा विश्वास समाप्त होने से लोक में इज्जत, व्यवहार, मान्यता सभी कुछ समाप्त हो जाती है। इसलिये सत्य का पालन दृढ़ता से करना चाहिये।

सत्य बोलना ही सभी धर्मो का मूल है, सत्य पर ही सम्पूर्ण पृथ्वी टिकी हुई है। सत्य से ही पवन चलती है, सत्य से ही संसार का सम्पूर्ण व्यवहार चलता है। जिन लोगों ने सत्य धर्म का पालन किया है, उनकी ही महिमा आद्यपर्यन्त गायी जाती है वे ही सम्मानीय महापुरुष है। कहा भी है–''सत्यमेव जयते नानृतम् पन्था'' सदा सत्य से ही विजय होती है, झूठ से कदापि नहीं। ''सत्यं वद, धर्म चर'' सत्य ही बोलें धर्म का ही आचरण करें, ऐसी आज्ञा वेद भी देता है। यही आज्ञा गुरु जम्भेश्वर जी ने इस नियम द्वारा दी है जो सदा ही पालनीय है।

16. व्यर्थ का विवाद– व्यर्थ का वाद–विवाद नहीं करना चाहिये। सूक्ष्म विचारों द्वारा किसी तत्त्व तक पहुँचना तो वाद कहलाता है जो अच्छा भी कहा जा सकता है। ऐसी तत्त्व अन्वेषण विषयक वार्ता तो होनी ही चाहिये। परस्पर वार्ताओं द्वारा ही तत्व की खोज की जा सकती है। ऐसे विचार करने वाले जन समूह को तो संगोष्ठी कहते हैं किन्तु इसके अतिरिक्त भी कुछ लोगों का ऐसा भी विचार होता है कि सामने वाले को अपनी वाक् तर्क शक्ति के द्वारा किसी प्रकार से पराजित कर दिया जाय या कुछ लोग स्वयं जानते हुऐ भी दूसरों की परीक्षा लेने के लिये उससे पूछेगा तथा ऐसी विना सिर पैर की, बिना मतलब की बात पूछेगा और कुछ लोग तो कुछ न जानते हुऐ भी पाँच सात एकत्रित होकर मूर्खता का परिचय देते हुऐ जिद्द ही करेंगे। वहाँ पर लड़ाई झगड़े मनमुटाव वैर विरोध आदि अनेक प्रकार की बिमारियाँ खड़ी हो जाती है। यह सभी कुछ व्यर्थ के वाद–विवाद के अन्तर्गत ही आता है।सबदवाणी में भी कहा है–

वाद विवाद फिटा कर प्राणी, छोड़ो मन हट मन का भाणों।
वाद विवादे दाणूं खीणां, ज्यूं पहुंपे खीणां भंवरी भंवरा।

मनुष्य जिद् या विवाद इसलिये ही करता है कि मैं ही बड़ा हूँ और ज्ञानी हूँ। मेरी बात चलनी चाहिये क्योंकि मुझे अच्छी लगती है। यदि उसकी मिथ्या बात का कोई खंडन कर दे तो वह तिलमिला उठेगा। कभी भी उसके प्रतिवाद को सहन नहीं कर सकेगा। यही तो ईर्ष्या, द्वेष और प्रेम के बन्धन टूटने का कारण है। व्यर्थ के विवाद में निश्चित ही अमूल्य समय नष्ट होता है उस समय का अच्छे प्रगतिशील कार्य में सदुपयोग कर सकते हैं, अच्छे विचारों का आदान-प्रदान द्वारा ज्ञान की वृद्धि कर सकते हैं। इसलिये बुद्धि का सदुपयोग करें, व्यर्थ के झगड़े में पड़कर ज्ञान का दुरूपयोग न करें। कहा भी है-

विद्या विवादाय धनंमदाय, शक्ति परेषां पर पीड़नाय।
खलस्य साधोर्विपरीतमेतत ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय।

दुष्ट आदमी के पास आयी हुई विद्या का व्यर्थ में विवाद करके दुरूपयोग करेगा। ऐसे ही धन से मदमस्त होगा और शरीर की शक्ति से दूसरों को कष्ट ही देगा किन्तु सज्जन के पास यदि विद्या होगी तो उससे ज्ञान देगा, धन होगा तो दान देगा और शक्ति होगी तो पीड़ित दुखी प्राणी की रक्षा करेगा।

अमावस्या का व्रत राखणों, भजन विष्णु बतायो जोय।

17. अमावस्या का व्रत- अमावस्या का व्रत करना चाहिये अर्थात् निराहार रहकर उपवास करना चाहिये। उप-समीप, वास-निवास आवास अर्थात् परमात्मा के समीप रहना चाहिये। अमावस्या के दिन ऐसे ही कार्य करने चाहिये जो परमात्मा के पास में ही बिठाने वाले हो, सांसारिक खेती-बाड़ी व्यापार आदि कर्म तो परमात्मा से दूर हटाने वाले है और संध्या हवन सत्संग परमात्मा का स्मरण ध्यान कर्म परमात्मा के पास बैठाते हैं इसलिये महीने में एक दिन उपवास करना चाहिये और वह दिन अमावस्या का ही श्रेष्ठ मान्य है क्योंकि सूर्य और चन्द्रमा ये दोनों शक्तिशाली ग्रह अमावस्या के दिन ही एक राशि में आ जाते हैं। जब तक दोनों एक राशि में रहते हैं तब तक ही अमावस्या रहती है। चन्द्रमा सूर्य के सामने निस्तेज हो जाता है अर्थात् चन्द्र की किरणें प्रायः नष्ट हो जाती है। संसार में भयंकर अन्धकार छा जाता है। चन्द्रमा ही सभी औषधियों को रस देने वाला है। जब चन्द्रमा ही पूर्ण प्रकाशक नहीं होगा तो औषधि भी निस्तेज हो जायेगी। ऐसा निस्तेज अन्न, बल, वीर्य, बुद्धि वर्धक नहीं हो सकता किन्तु बल वीर्य बुद्धि आदि को मलीन करने वाला ही होगा। इसलिये अमावस्या का व्रत करना चाहिये उस दिन अन्न खाना निषेध किया गया है और व्रत का विधान किया गया है।

एकादशी या सोम रवि आदि वार तिथियाँ तो अतिशीघ्र सप्ताह में एक बार या महीने में कई बार आ जाते हैं। साधारण किसान लोग परिश्रम करने वाले इतना कहाँ कर पाते हैं। ये सभी व्रत तो होना असंभव है किन्तु अमावस्या तो महीने में एक बार ही आती है। सभी कार्यों को छोड़कर तीस दिनों में एक दिन तो पूर्णतया परमात्मा के अर्पण कर सकते हैं। इसमें सुविधा भी है तथा सुलभता भी है। वेदों में भी कहा है - ''दर्शपौर्णमास्यायां यजेत्'' अर्थात् अमावस्या और पूर्णमासी को निश्चित ही यजन करें। वेदों में एकादशी या अन्य किसी व्रतों उपवासों का कोई वर्णन नहीं आया है।

व्रत करने से आध्यात्मिक लाभ तो होगा ही, साथ में भौतिक लाभ भी होगा। हम लोग रात दिन समय या विना समय, भूखे हो या न भी हो तो भी खाते ही रहते हैं। शरीरस्थ अग्नि को ज्यादा भोजन डालकर मंद कर देते है। वह मंद अग्नि भोजन को पूर्णतया पचा नहीं सकती। इसलिये अनेकानेक बीमारियाँ बढ़ जाती है। फिर डाक्टरों के पास चक्कर लगाना पड़ता है। इन समस्याओं का समाधान भी व्रत करने से हो जाता है और यदि

रोज-रोज नये-नये व्रत करोगे तो भूखा रहते रहते अग्नि स्वयं बुझ जायेगी। फिर भोजन डालने से प्रज्वलित नहीं हो सकेगी और यदि महीने में एक बार ही अमावस्या कर व्रत करते है तो स्वास्थ्य का संतुलन ठीक से चलता रहेगा। यह भी अमावस्या व्रत का फल है।

वेदों में अमावस्या का महत्त्व बताया है। उसके पश्चात् सभी संत महापुरुष ने अमावस्या का व्रत करना ही बताया है। अनेकों बार गुरु जम्भेश्वर जी ने कहा कि अमावस्या का व्रत करो। इसमें बहुत बड़ा रहस्य छुपा हुआ है। यह एक अलग से अन्वेषण का विषय है। अमावस्या के समय जब तक सूर्य चन्द्र एक राशि में रहें, तब तक कोई भी सांसारिक कार्य जैसे हल चलाना, कस्सी चलाना, दांती, गंडासी, लुनाई, जोताई आदि तथा इसी प्रकार से गृह कार्य भी नहीं करना चाहिये। उस दिन तो केवल परमात्मा का भजन ही करना चाहिये। अमावस्या व्रत का फल भी शास्त्रों में बहुत ही ऊंचा बतलाया है। यह व्रत कथा जम्भसार तथा अमावस्या व्रत कथा में प्रकाशित हो चुकी है। जाम्भा पुराण में यह कथा सरल हिन्दी भाक्षा में लिखी जा चुकी है। आप स्वयं पढ़े तथा अन्य जनों को सुनाने से अमावस्या महत्त्व का ज्ञान होता है तथा ज्ञान से श्रद्धा बढ़ती है, श्रद्धा से व्रत सुरूचि पूर्वक किया जाता है।

18. भजन विष्णु- सर्वज्ञ सर्वेश्वर परम पिता परमात्मा श्री विष्णु का ही भजन करना चाहिये। भज-सेवायाम् धातु से भजन शब्द की रचना होती है। इसलिये भजन का अर्थ मूल रूप से सेवा करना ही है। सेवा किसकी करें? सेवा करने के योग्य तो एक देवाधिदेव विष्णु ही है। उनकी ही सेवा पूजा भजन करना चाहिये। अन्य किसी देवी देवताओं की सेवा पूजा नहीं करनी चाहिये। हम लोग परमात्मा विष्णु की क्या सेवा कर सकते हैं, हमारे पास हमारा अपना ही क्या है जो उनको दे सके। केवल एक अहंकार ही हमारे पास है वही हम दे सकते हैं। हम अहंकार को समर्पण करके आनन्द को प्राप्त कर सकते हैं। यही उनकी सेवा है। जब तक अहंकार विसर्जित नहीं हो जाता है तब तक न तो हम सेवा ही कर सकते हैं यदि कुछ किया भी जाता है तो भी केवल दिखावा ही होगा। अहंकार की उपस्थिति में तो नाम जप यज्ञ सन्ध्यादिक कुछ भी करते हैं तो निष्फल ही हो जाते हैं।

अनेकानेक संतों ने भक्तों ने नाम जप के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न राय प्रगट की है। किसी ने राम नाम का जप बताया है तो किसी ने कृष्ण या शिव या अन्य कुछ और ही बतलाया है। किन्तु श्री जम्भेश्वर जी ने इन्हीं परंपरा लीक से हटकर विष्णु-विष्णु यही जप बतलाया है। सभी लोग एक मत से यह स्वीकार करते हैं कि सगुण साकार चाहे राम हो, कृष्ण हो या शिव हो ये सभी विष्णु के ही अवतार है। इन्हीं सभी का आदि मूल पुरुष परमात्मा विष्णु ही है। इसलिये एक विष्णु का स्मरण होने से सभी अवतारों का स्मरण हो जाता है। मूल में पानी सींचने से डालियाँ पते आदि तो सभी हरे भरे हो जाते हैं। किन्तु डालियाँ पते आदि सींचोगे तो मूल हरा-भरा नहीं हो सकेगा। सभी अवतारों का समन्वय एक विष्णु में ही हो सकता है। इसलिये विष्णु जप का ही आदेश दिया है। जिससे एक का जप करने से सभी के जप का फल मिल जाता है।

जीव दया पालणी, रूंख लीला नहीं घावै।

19. जीव दया- जीवों पर दया करते हुए उनका पालन-पोषण करें। सभी जीव अपने अपने कर्मानुसार जीना चाहते हैं इसलिये उनके जीवन में हमें सहयोग देना चाहिये। न कि उनके जीवन को समाप्त करके स्वकीय उदर पूर्ति करना ठीक है। जीओ और जीने दो यह एक सिद्धान्त किसी हद तक ठीक है। किन्तु जीव दया पालणी के सामने बौना पड़ जाता है। स्वयं तो जीए किन्तु दूसरों को मारे नहीं इस सिद्धान्त से आप किसी जीव हत्यारे से जीव की रक्षा नहीं कर सकते और न ही पालन पोषण ही कर सकते। किन्तु जीव दया

पालनी में तो न तो आप स्वयं ही किसी को मारोगे और न ही किसी और को मारने देंगे। इसलिये यह सिद्धान्त गुरुतर है। इसी सिद्धान्त के पालन करने की श्री देवजी ने आज्ञा दी थी।

उनके शिष्य बिश्नोई इस नियम का पालन करते भी आये हैं। इसी नियम की बदौलत अब भी बिश्नोइयों के गांवों में हिरण आदि वन्य जीव निर्भय होकर विचरण करते हुए देखे जा सकते हैं। ऐसा क्यों न होगा, बिश्नोई लोग अपने प्राणों का बलिदान देकर शिकारियों से वन्य जीवों की रक्षा करते हैं। ऐसा एक दो नहीं अनेकों उदाहरण है जिन्होंने अपने प्राणों की बलि दी है। प्राचीन समय से ही ताम्र पत्र राजाओं ने लिखकर दिये थे तथा अब भी सरकार को इस नियम का पालन करने के लिये मजबूर किया है इसलिये शिकार निषेध क्षेत्र घोषित किया है।

''अहिंसा परमो धर्म'' अहिंसा व्रत का पालन करना ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है। आप किसी को जीवन दे नहीं सकते हो तो लेने का क्या अधिकार है। जीव हिंसा अनधिकार चेष्टा है। सबदवाणी में अनेक बार जीव हिंसा का खण्डन किया है। ''सूल चुभीजै, करक दुहैली तो है है, जायो जीव न घाई'' तथा आधुनिक युग के बुद्धिमान लोग भी जीव हिंसा का विरोध करते हैं। इनसे होने वाले पाप को भी न माने तो भी शारीरिक मानसिक तथा बौद्धिक कष्ट रोग तो अवश्य ही मांसाहारी को हो जाते हैं। इसलिये सदा जीवों पर रक्षा करते हुए उनका पालन-पोषण करना चाहिये।

20. रूंख लीला नहीं घावै- हरा वृक्ष नहीं काटना चाहिये। क्योंकि हरा वृक्ष दिन-रात बढ़ता है, हवा, जल, भोजन आदि ग्रहण करता है। ये आवश्यक वस्तुएँ नहीं मिलने पर सूख जाता है। शीघ्र मर जाता है। मनुष्यों की भांति चल फिर नहीं सकता तो क्या हुआ चेतन शक्ति वाला तो है ही। तो फिर उसे काटने का मतलब तो हुआ कि आप जीव हत्या ही कर रहे है सभी जीव परोपकारी ही होते हैं। उनका अस्तित्व होना भी आवश्यक है। कोई एक जाति विशेष लुप्त हो जाती है तो जीवों का संतुलन बिगड़ जाता है। जिससे किसी जीव विशेष की अभिवृद्धि हो जाती है। जिससे उपद्रव फैल जाता है। इसी परोपकार की श्रृंखला में वृक्ष सबसे ज्यादा परोपकारी है। कहा भी है-

तरूवर सरवर संत जन चौथा वर्षे मेह, परमार्थ के कारणें चारों धारी देह।

गुरु जम्भेश्वर जी के पास आकर लोग पूछा करते थे कि हे देव! यहाँ मरुभूमि में प्रत्येक वर्ष भयंकर अकाल पड़ जाता है कभी कभी ही पूर्ण वर्षा हो पाती है इस अकाल की विभीषिका से बचने के लिये कोई उपाय बतलाओ। तब श्री देवजी उनसे ऐसा कहा करते थे कि ''रूंख लीलो नहीं घावै'' हरे वृक्ष नहीं काटना। तभी से लोगों ने हरे वृक्ष काटने बन्द कर दिये फिर वापिस वर्षा का आगमन हुआ तथा खुशहाली हो गई। श्री देवजी भविष्य दृष्टा थे वे जानते थे कि वर्षा करवाने में मुख्य कारण वृक्ष है तथा दूसरा कारण यज्ञ है। इसलिये उन लोगों को ये बातें प्रथम बार ही बतलाई थी जो सफल सिद्ध हुई। इस नियम का पालन जब तक होता रहा तब तक तो वर्षा होती रही। धीरे-धीरे बिश्नोई इतर लोगों ने वन काट डाले जिससे पुनः अकाल की विभीषिका का मुंह देखना पड़ा तथा वर्तमान में भी ऐसा ही हो रहा है।

इस समय जबकि वायु प्रदूषण सभी जगह पर फैल चुका है। श्वांस लेना भी मुश्किल हो गया, भयंकर अकाल पड़ने लग गये। तब हमारे विश्व के वैज्ञानिकों को चेता हुआ। इस समस्या का समाधान खोजने लगे तो और कोई उपाय नजर नहीं आया। केवल एक ही उपाय सामने आया कि वृक्षों की रक्षा करना। इस भयावह स्थिति से सैकड़ों वर्ष पूर्व में गुरु जाम्भोजी ने सचेत किया था। उसी को ही हमें स्वीकारना पड़ रहा

है।

जोधपुर से दक्षिण पूर्व दिशा में एक खेजड़ली ग्राम में वृक्षों की रक्षा करते हुऐ 363 स्त्री पुरुषों ने स्वेच्छा से अपने प्राणों का बलिदान दिया था। जिसका लेखन तत्कालीन कवि गोकुल जी ने अपनी साखी में किया है तथा इसी का ही विस्तार से वर्णन जम्भसार में साहबराम जी ने किया है। भले ही यह घटना इतिहास में नहीं आ सकी किन्तु सत्यता से नकारा नहीं जा सकता। इसके अतिरिक्त और भी छोटी-मोटी घटनाएँ हरे वृक्षार्थ हो चुकी है।

एक खेजड़ी का वृक्ष मानव के लिये बहुत ही परोपकारी सिद्ध हुआ है। यह वृक्ष छाया, फल, फूल, खाद, वर्षा, अच्छी फसल, ईन्धन के लिये सूखी लकड़ी इत्यादि असंख्य जीवन दायिनी वस्तुएँ प्रदान करता है। सदा ही धूप, गर्मी, ठण्ड सहन करके शीतलता आदि प्रदान करने वाले को बेरहमी से काट डालना कहाँ तक न्याय है। इसी बात को सचेत करने वाले सर्व प्रथम युग पुरुष गुरु जाम्भोजी ही थे तथा उनकी आज्ञा को स्वीकार करके प्राणों का भी बलिदान देकर रक्षा करने वाले बिश्नोई ही थे।

अजर जरै जीवन मरै, वै वास स्वर्ग ही पावै।

21. अजर जरै- अजर जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि अब तक जले नहीं है इनकी राख न होकर अग्नि रूप में स्थित होकर मानव को जलाते रहते हैं। इनको जला दिया जाये इसकी भस्मी ठण्डी हो जायेगी तभी चैन पड़ेगा। यदि इनको जलाकर भस्मभूत नहीं किया तो ये मानव को सदा ही जलाते रहेंगे। कभी कामनाऐं जलायेगी तो उन्हीं कामनाओं से क्रोध रूपी अग्नि का विस्तार होगा और क्रोध अपना पसारा करेगा तो लोभ पैदा हो जायेगा तथा लोभ से मोह उत्पन्न हो जायेगा। मनुष्य किं कर्तव्य विमूढ़ हो जाता है और मोहित जन सदा ही अहंकार करेगा अपने सदृश किसी अन्य को नहीं समझेगा तो नष्टता को प्राप्त हो जायेगा। इसलिये ये काम क्रोधादि कहीं आग न लगा दे उससे पहले ही सचेत होकर इनको ही ठण्डा करना उचित होगा।

जब तुम्हारे अहंकार की निवृति हो जाये तो जीते जी मरे हुए के समान हो जाओगे। ''जीवत मरो रे जीवत मरो, जा जीवन की विधि जांणी। जे कोई आवै हो हो करता आप ज हुइये पाणी'' शब्द जरणा यानि सहन शीलता ही जरणा है और जो जरणा रखता है वह जीते जी मृत के समान हो जाता है उसके लिये कोई छोटा-बड़ा नहीं होता है। सम्पूर्ण कण-कण में एक परमात्मा की ज्योति का ही दर्शन करता हुआ परम पद को प्राप्त कर लेता है, जीते जी तो जीवन मुक्त होकर जीता है अपार सुख को प्राप्त करता है और मृत्यु पर मोक्ष को प्राप्त करता है। उसके लिये जीवन-मरण का कोई विशेष अर्थ नहीं होता, दोनों बराबर ही होते हैं। उसके बन्धन कारक काम क्रोधादि जल जाने से बन्धनों की रस्सी टूट जाती है। निर्मुक्त हो जाने से वह कभी दुख में नहीं गिरता, जब तक बंधन की फांस में फंसा था तभी तक दुख रहता था।

''रतन काया वैकुण्ठे वासो, तेरा जरा मरण भय भाजूं''''शब्द''

बुढ़ापे तथा मृत्यु का भय ही अधिक कष्टदायी है वह ज्ञानी का नष्ट हो जाता है। इसलिये सभी को जरणा सहनशीलता रखनी चाहिये। सदा नम्रता का व्यवहार करना ही मानवता की सफलता है।

करै रसोई हाथ सों, आन सूं पला न लावै।

22. रसोई- भोजन स्वकीय जाति के लोगों के हाथ का बनाया हुआ ही करना चाहिये। सर्वप्रथम जब श्री देवजी ने बिश्नोई बनाये थे तब उनके सामने यह समस्या आ गई थी कि जो अपने पीछे परिवार के लोग बिश्नोई

नहीं बने है। उनके साथ भोजन कैसे किया जा सकता है क्योंकि उनकी क्रिया, आचार-विचार शुद्ध नहीं थे। उन्होंने उनतीस नियम ग्रहण नहीं किये थे। इस समस्या का समाधान देते हुऐ श्री जम्भदेवजी ने कहा कि भोजन आप लोग आपने आप ही बनाकर करें। जिन लोगों ने अभी संस्कारित होकर उनतीस नियम धारण नहीं किये हैं उनका पला भी नहीं छूना है वे लोग आपकी मण्डली में सम्मिलित नहीं हुए है इसलिये तुम्हारे लिये पराये हैं। उस समय यदि वह नियम न बतलाते तो यह पंथ आगे नहीं चल सकता था। इस पन्थ की कोई मर्यादा ही स्थिर नहीं हो पाती क्योंकि तब तो बिश्नोई भी मांसाहारी, नशेड़ी अपवित्र घरों में भोजन करेगा तो फिर नियमों का पालन कैसे करेगा। खान-पान से ही सम्पूर्ण व्यवस्था बिगड़ जाती है और खान-पान शुद्ध होता है तो सभी कुछ सुचारू रूप से चलता है। इसलिये जम्भदेवजी ने कहा है कि अब आप लोग सभी एक समाज में एक गुरु की छत्रछाया मे तथा उनतीस नियमों की मर्यादा में बंध चुके हो। इसलिये खान-पान की व्यवस्था भी एक समाज में अपने जैसे लोगों के हाथ का किया करो।

चाहे प्राचीन काल हो या आधुनिक समय, भोजन, जल तो शुद्ध होना ही चाहिये। इस बात को प्रत्येक व्यक्ति सहर्ष स्वीकार करेगा ही। अपवित्र स्थानों में, अनजान जगहों पर, भोजन, जलादि ग्रहण करने से शरीर में अनेक प्रकार की बिमारियां फैल जाती है। मन में चंचलता बुद्धि में विकृति हो जाती है। जैसा खाये अन्न वैसा होये मन। जैसा पीये पाणी वैसी बोले बाणी। यही कहावत चरितार्थ होती है। इसलिये प्रत्येक बिश्नोई का कर्त्तव्य है कि सदा पवित्र बिश्नोई के घर पर बना हुआ ही भोजन करें क्योंकि बिश्नोई के घर का विश्वास है। वह कभी मांसाहारी नहीं हो सकता। अन्य लोगों के घर जहाँ नियमों का पालन नहीं होता है वहाँ का जल ग्रहण न करें, यही जम्भदेवजी की आज्ञा है।

अमर रखावै थाट, बैल बधिया न करावै।

23. मादा भेड़ बकरियों का समूह तो इकट्ठा रह सकता है और लोग ऊन, दूध के लिये पालते भी है किन्तु नर भेड़-बकरा साथ में नहीं रह पाते जिससे लोग कसाइयों को देते हैं। कसाई लोग उनकी हत्या कर डालते हैं। उस समय भेड़ बकरी पालने का लोगों का प्रमुख धन्धा था। इस प्रकार से सैकड़ों बकरे कसाइयों के हाथ में पहुँचकर कट जाते हैं। इतनी अधिक मात्रा में जीव हत्या देखकर जम्भदेव जी ने यह नियम बतलाया कि प्रथम तो बिश्नोई होकर भेड़-बकरी पालन करना छोड़ दो और यदि अतिशीघ्र नहीं छोड़ सकते तो धीरे-धीरे कम करते-करते अपने आप ही छूट जायेगी। तब उस समय यह समस्या आ गई थी कि इन बकरों का क्या करें। जम्भेश्वर जी ने कहा कि इनको कसाइयों के हाथों में न बेचो। यदि भेड़ों में इनको नहीं रख सकते तो इनका थाट बना दीजिये, जिसमें केवल बकरे ही रहेंगे। ये अमर ही रहेंगे अर्थात् इनको कोई मारेगा नहीं। स्वत: ही अपनी मृत्यु से मर जायेंगे तो धीरे-धीरे अपने आप तुम्हारा इन भेड़ बकरियों से पीछा छूट जायेगा। फिर कभी इन्हें पालना नहीं, यदि तुम्हें पशु पालन करना है तो गौ पालन करो, तुम्हें अमृतमय दूध देगी उसका बछड़ा हल गाड़ी चलेगा। वास्तव में तो यह नियम भेड़ बकरी पालन निषेध का है।

इस प्रकार से उन परिस्थितियों में इस नियम को बनाया था। जब धीरे धीरे ये परिस्थितियाँ समाप्त हो गई, बिश्नोइयों ने भेड़ बकरी पालन करना ही छोड़ दिया तो फिर थाट पालन करने का औचित्य ही कहाँ रह जाता है। किसी निरीह प्राणी की रक्षा करना कोई बुरी बात तो नहीं कही जा सकती। यदि थाट पालने का सामर्थ्य होता है तो ऐसा कर भी सकते हैं। जितना हम बचायेंगे उतने की तो रक्षा हो सकेगी। अमर थाट का अर्थ इस युगानुसार

गोपालन करना ही होता है।

24. बैल बधिया– बैल को बधिया न तो स्वयं करे और न ही दूसरों से करवायें। जब बछड़ा हल चलाने के लायक बड़ा हो जाता है तो लोग उसे नपुंसक कर देते है या करवा लेते है। फिर उसे हल गाड़ी में चलाते हैं। यदि ऐसा न करें तो हल गाड़ी चलता नहीं है। जब उसे नपुंसक बनाया जाता है तो वह दृश्य कष्ट दायक होता है। जो पीड़ा उस बछड़े को सहन करनी पड़ती है। उसका कोई आर–पार नहीं हैं। उस समय की छटपटाहट दर्द और रोना चिल्लाना देखने वाले कठोर हृदय मानव को भी पिघला देता हैं। इसलिये जम्भेश्वर जी ने बिश्नोइयों के लिये यह विशेष नियम बनाया कि बैल बधिया न करावैं उस पाप का भागी कभी मत बनना और दूसरा यदि ऐसा करता है तो करें।

न ही अपने घर की गऊ के बछड़े को ही गाड़ी चलाना और न ही बधिया ही कराना। जो नपुंसक हो चुके है, किसी द्वारा कर दिये गये है, उन्हें खरीदकर अपना कार्य कर लेना। यह नियम भी विशेष रूप से किसानों पर ही लागू होता है क्योंकि व्यापारी या अन्य कार्यकर्ता के लिये तो ऐसी नौबत ही नहीं आती। यदि आती है तो इस नियम का पालन अवश्यमेव करना चाहिये। यह नियम भी दया की वृद्धि करके जीव की पीड़ा को हरने वाला है। इस नियम का पालन भी बिश्नोइयों के द्वारा दृढ़ता से होता आ रहा है।

अमल तमाखूं भांग, मद्य मांस सूं दूर ही भागै।

25. अमल– अफीम नहीं खाना चाहिये। अफीम एक भयंकर नशीली वस्तु है, इसके वशीभूत मानव जल्दी ही हो जाता है। दो चार दिन ही लगातार खाते रहने से फिर कभी भी खाये बिना रह नहीं सकता। शरीर के अंग प्रत्यंग में अतिशीघ्रता से अपना असर जमा लेता है। जैसा अफीम का रंग काला होता है, वैसा ही खाने वाले का बना देती है। दिनोंदिन इससे शरीर कमजोर होता चला जाता है और अफीम की पकड़ मजबूत होती चली जाती है। अफीम खाने वाले के सभी नियम–धर्म छूट जाते हैं। धन की हानि होते हुए एक दिन कंगाल होते हुए देखे गये हैं तथा अनेकानेक बीमारियाँ शरीर को जकड़ कर जर्जरित बना देती है। इसमें देखा जाये जो अवगुण तो असंख्य नजर आते हैं किन्तु गुण तो एक भी नहीं है।

मानव जब धर्म नियम मर्यादा एक बार भूल कर तोड़ देता है तो फिर इस प्रकार की बर्बादी में फंस जाता है फिर निकलना मुश्किल हो जाता है। इसलिये कभी भी भूलकर अफीम नहीं खानी चाहिये और न ही छोटे बच्चों को खिलाकर अफीम खाने की आदत डालनी चाहिये। किसी कवि ने अफीम खाने वाले की धर्मपत्नी के दुख दर्द को कविता के द्वारा कितना सटीक वर्णन किया है।

कोसत है उस दोस्त को, जिन पोसत पीव न पीय को सिखायों।
टूटी सी खाट में ऐसो परो, मानों सास ने पूत को आज ही जायो।
कर्म विकर्म भये पिय के सब, पोसत पीकर दुष्ट कहायो।
बल बीरज नाश भयो सगरो वपु, अन्त समय पिय को इन खायो।

अफीम खाने वाले जीते जी ही इस दिव्य शरीर को नरकमय बना लेता है। मृत्यु पर भी वह शुभ कर्म न कर सकने के कारण नरक में ही पड़ता है। इसलिये सभी को सचेत होकर इस भयंकर कोढ़ से सदा ही अपनी रक्षा करनी चाहिये।

26. तम्बाकू– खाने पीने और सूंघने में तम्बाकू का प्रयोग कभी नहीं करना चाहिये। ऐसा भयानक हानिकारक वस्तु को गधे भी नहीं खाते किन्तु वाह रे! मानव! तूने इसे भी नहीं छोड़ा। आज तक तो इतिहास

साक्षी है कि कोई भी तम्बाकू का सेवन करने वाला न तो स्वयं सुख शांति प्राप्त कर सका है और न ही अपने पड़ोसी तथा परिवार को सुख प्रदान कर सका है। सर्वप्रथम तो तम्बाकू से अपने मन बुद्धि तथा शरीर की ही हानि स्वयं करता है और बाद में तम्बाकू की दुर्गन्ध से समीपस्थ जनों को दूषित कर देता है।

प्राचीन काल में तो गुरु जम्भेश्वर जी ने इस महान कोढ़ से अवगत करवा कर सदा ही इससे अपनी रक्षा करने का उपाय बतलाया था। सभी को पाहल देकर प्रतिज्ञा करवायी थी। धीरे-धीरे समय पाकर आज इसने पुनः भयंकर रूप धारण कर लिया है। इससे सम्पूर्ण विश्व के वैज्ञानिक, डाक्टर, मनीषी बहुत ही चिंतित हो चुके हैं। नयी-नयी कानूने बनवाते हैं, चेतावनी देते हैं कि यह नशा ही मानवता के लिये मौत का संदेशा है। इस प्रकार यदि सभी लोग इस नशे के चक्कर में पड़ते रहे तो वह दिन दूर नहीं है जिस दिन मानवता नष्ट हो जायेगी। ये बने हुए एटम बम तो न जाने कब टूटेंगे। इससे पहले ही यह तम्बाकू आदि का नशा मानवता को नष्ट कर देगा। इसलिये आजकल कई देशों में सामूहिक रूप से लोग नशे को छोड़ रहे हैं। ऐसा दुख जाहिर किसी विद्वान ने किया है। उन्हीं के शब्दों में-

''तम्बाकू और इन्सान दोनों एक दूसरे को खाते है'' बस यों ही खाया था मीठा पान और अब तो तम्बाकू सिगरेट की आदत छूटती ही नहीं। लेकिन मात्र लाचारी जाहिर करने से इस सच को झूठलाया नहीं जा सकता कि स्वाद के नाम पर लिया गया तम्बाकू या तनाव घटाने के बहाने पी गई सिगरेट के हर पैकेट के साथ आप जिन्दगी को इस चौराहे की ओर धकेल देते है, जहाँ हर रास्ता आपको मौत के घाट के करीब ले जाता है। गौरतलब है कि मुंह के कैंसर के रोगियों की कुल संख्या एक तिहाई हिस्सा मात्र उन देशों के रोगियों का है जहाँ तम्बाकू का प्रचलन है, उसमें भी ज्यादा उन लोगों की है जो तम्बाकू का सेवन किसी भी प्रकार से करते हैं। वर्तमान समय में जब अकेले भारत में लगभग 15 लाख लोग मुँह के कैंसर से पीड़ित है तब तम्बाकू युक्त पान मसाला का प्रयोग करने से पहले उसके घातक परिणाम पर विचार कर ले। ''साभार-सरिता, जुलाई द्वितीय 1980 ई.।''

27. भांग- भांग कदापि नहीं पीना चाहिये। भांग भी एक प्रकार का जहर है। शरीर को धीरे-धीरे काटता है। भांग पीने वाले को तो ऐसा ही मालूम पड़ता है कि मैं स्वस्थ हो रहा हूँ, कि मोटा हो रहा हूँ। किन्तु असलियत से वह बहुत दूर होता जा रहा है। शिवजी का नाम लेकर साधना भजन करने वाले भी भांग को पवित्र मान कर पीते हैं, वहाँ पर नाम साधना का लेते हैं और भांग के नशे में धुत रहते हैं इसी प्रकार से अपने जीवन को बर्बाद कर देते हैं जीवन की वास्तविकता को नशा थोड़ी देर के लिये भुला सकता है जिसका यही मतलब नहीं होता कि आप सदा के लिये ही दुखों से छूट गये हैं। शिवजी की बराबरी करना तो ढ़ोंग मात्र ही है केवल तम्बाकू भांग से शिव नहीं बन सकते। उसके लिये तो शिव जैसी तपस्या करनी पड़ेगी। भांग पीने वाले अर्धविक्षित तो होते ही है कभी कभी उन पर अधिक भांग सेवन से पूर्णतया पागलपन आ जाता है। ऐसे समय में जीवन से भी हाथ धो बैठते हैं।

''भांग भखत ध्यान ज्ञान खोवत, यम दरबार में प्राण रोवंत''-गोरख वाणी। भांग पीने से ज्ञान ध्यान नष्ट हो जाते हैं तथा जीवन में दुख उठाते हुए मृत्यु पर यमराज के दूतों द्वारा मार पड़ने पर फिर प्राण रोयेंगे। इसलिये कभी भी भांग नहीं पीना चाहिये।

28. मद्य मांस- मनुष्य को मद्य शराब का सेवन नहीं करना चाहिये। यदि जिसने भी शराब सेवन कर लिया तो समझो फिर उसने मांस भी खा ही लिया। इसलिये मद्य मांस दोनों ही एक नियम के अन्तर्गत रखे

गये हैं। इन दोनों में एक का सेवन कर लिया तो फिर दूसरा भी करने में कोई संकोच नहीं होगा। शराब पीने में अनेक अवगुण शास्त्रकारों ने महापुरुषों ने बतलाया है-

चित भ्रान्तिर्जायते मद्यपानाद् भ्रान्ते चिते पापचर्यामुपैति।
पापं कृत्वा दुर्गति यान्ति, मूढ़ास्तस्मान्मद्य नैव पैयम्। ''रत्नाकर''

मद्यपान करने से चित में भ्रान्ति उत्पन्न हो जाती है तथा भ्रान्त चित से पाप कर्म हो जाते हैं इसलिये हे मूढ़! मद्यपान न करो न करो। यही सलाह श्री देवजी ने दी थी क्योंकि सभी अनर्थों का मूल यह शराब ही है। इसी एक के पीछे सभी पाप अनर्थ खींचे चले आते हैं ऐसा हम लोक व्यवहार में देखते भी हैं तथा मद्यपान में और भी अनेक अवगुण हैं।

द्यूतं च मांसं च सुरा च वैश्या, पापाद्धिचोर्य परदार सेवा।
एतानि सप्त व्यसनानि लोके, पापा अधिके पुन्सि सदा भवन्ति।

सुरापान करने से अन्य व्यसन जैसे जुआ खेलना, मांस खाना, वैश्या गमन, चोरी करना, परस्त्री की सेवा तथा पापों की अधिकता हो जाना इत्यादि हो जाते हैं। जो मानव को पतित कर देते हैं। इसलिये मानवता की रक्षा के लिये व्यसनों के मूल रूप शराब को ही काट डालना चाहिये। यदि इस मूल को पानी सींचते रहे तो फिर कभी भी मानव व्यसनों से छुट्टी नहीं पा सकेगा। अपना तथा अपने सम्बन्धियों का जीवन बर्बाद कर डालेगा।

शराब पीने के पश्चात् मानव सुध-बुध खो बैठता है। उसे किसी प्रकार की मर्यादा का भान नहीं रहता है ऐसे मद में वह कुछ भी कुकर्म कर सकता है। ऐसी कामना करने से रोंगटे खड़े हो जाते हैं। अब तक जो भी भयंकर अनर्थ हुए है वे सभी इसी मद्य पान की बदौलत हुए है। सभी प्रकार के झगड़े झंझट का मूल कारण यह शराब ही होता है। जीवन में पागलपना लाने में इसका ही प्रमुख सहयोग है इसलिये ऐसा विचार करके इसका त्याग करे तथा करवायें। इस जीवन को स्वर्गमय बनावें। इससे बढ़कर और कोई जीवन का लाभ नहीं है।

मांस नहीं खाना चाहिये इसकी व्याख्या तो जीव दया पालनी के अन्तर्गत ही हो जाती है। पुनः व्याख्या की आवश्यकता नहीं है। यहाँ पर अमल तमाखू भांग मद्य मांस इत्यादि नशीली वस्तुएँ मुख्य मुख्य बतलाने से और भी चरस, गांजा, चाय आदि भी इसी तरह से नुकसान दायक है। ऐसा समझकर इनसे दूर ही रहना चाहिये।

''सकल पदार्थ है जग मांहि, कर्महीन नर पावत नांही''

संसार में खाने की वस्तुएँ अत्यधिक है जो खाने योग्य है एवं स्वास्थ्य वर्धक भी है एवं उनके खाने से दोष भी नहीं लगते किसी प्रकार की हानि नहीं होती है, किन्तु कर्महीन मानव ऐसी वस्तु को छोड़कर अखाद्य, दोषपूर्ण वस्तु को खाता है जिससे शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक क्षति होती है। ऐसे लोग कर्महीन होते हैं। जो अज्ञानी है तथा जो वस्तु पशु नहीं खाते है उसका मनुष्य सेवन करता है।

लील न लावै अंग, देखत दूर ही भागै

29. नीला वस्त्र धारण नहीं करना- इस नियम द्वारा नीला वस्त्र धारण करना बिश्नोई के लिये सर्वथा निषेध बताया है क्योंकि स्वभाव से ही जो सफेद वस्त्र है उसको नीले रंग से रंगा जाता है, वह रंग ही मूलतः अशुद्ध होता है। इसकी उत्पत्ति तथा रंगाई दोनों ही अपवित्रता से होती है ऐसी शास्त्रों में मान्यता है। इसलिये स्मृति

ग्रन्थों में नील वस्त्र धारण को निषेध किया है–

यथा स्नानं दानं जपो होम, स्वाध्याय पितृ तर्पणम्।
पंच यज्ञा वृथा तस्य नीली वस्त्रस्य धारणात्।

नीले वस्त्रों को पहनकर यदि कोई नित्य प्रति स्नान करें, सुपात्र को दान दें, सांय प्रातः हवन करें या स्वाध्याय, अतिथि सेवा आदि शुभ कर्म करें तो भी उन शुभ कर्मो का फल नष्ट हो जाता है तथा अन्य भी बहुत से प्रमाण श्रुति शास्त्रों में नील वस्त्र के निषेध में दिये गये है। बाल्मीकीय रामायण में अयोध्या नरेश त्रिशंकु की कथा आती है। त्रिशंकु प्रथम तो अपने कुलगुरु के पास जाकर सशरीर स्वर्ग में जाने की इच्छा प्रगट की थी। जब वशिष्ठ जी ने मना कर दिया तब वशिष्ठ के पुत्रों के पास गया था तब उन्होंने शाप देते हुए इस प्रकार से कहा था कि जाओ तुम चाण्डाल हो जाओ। इस प्रकार से त्रिशंकु शापित हो गया इसका वर्णन बाल्मीकि ने इस प्रकार से किया है–

अथ रात्र्यां व्यतीतायां राजा चण्डालतां गतः नील वस्त्रो नील पुरुषो ध्वस्त मूर्धजः।
चित्यमाल्यांग रागश्च, आयसा भरणोंअभवत्।

तदन्तर रात व्यतीत होते ही राजा त्रिशंकु चाण्डाल हो गये। उनके शरीर का रंग नीला हो गया। कपड़े भी नीले हो गये। प्रत्येक अंग में रूक्षता आ गई। सिर के बाल छोटे–छोटे हो गऐ। सो शरीर में चिता की राख लिपट गई। विभिन्न अंगों में यथा स्थान लोहे के गहने आभूषण पड़ गये। इसलिये नील वस्त्र पहनना चाण्डाल का लक्षण होता है। चाण्डाल–राक्षस लोग ही इस रंग को पसंद करते हैं, क्योंकि जैसी भावना जिसकी होती है वह बाह्य वैश भी वैसा ही धारण करता है।

बिश्नोइयों को चाण्डालता से निवृत्त करके देव तुल्य बनाया था, इसलिये सफेद या अन्य रंग केवल नील को छोड़कर पहनने की आज्ञा प्रदान की थी क्योंकि वस्त्रों का प्रभाव भी मन बुद्धि शरीर पर पड़ता है। सभी की अपनी–अपनी वेशभूषा परिधान होता है। उससे समाज पर प्रभाव विशेष पड़ता है। पुलिस, सेना, वकील, जज, भक्त, साधु इत्यादि इन्हीं की अपनी–अपनी पोशाके है। जिससे भावनाओं पर सीधा असर पड़ता है। यदि आप नीले वस्त्र धारण करेंगे तो अवश्य ही आपके अन्दर चाण्डालता, राक्षसता, दुष्टता आदि दुर्गुण अवश्य ही आ जायेंगे और यही आप यदि भक्त, सज्जन पुरुष का सौम्य शुभ्र पीत या गुलाबी वर्ण के कपड़े पहनेंगे तो आपका प्रभाव अति उत्तम होगा। आपकी भावनाएँ भी पवित्र होगी। इसलिये राक्षसी पहनावा त्यागकर के भक्त का यह सफेद वस्त्र पहनना गुरु जी ने बतलाया था।

कुछ वैज्ञानिक लोग नील वस्त्र में दोष बतलाते हुए कहते हैं कि यह हिन्दुस्तान गर्म देश है इसमें गर्मी अधिक पड़ने के कारण यहाँ सूर्य की किरणें सीधी पड़ती है और वे किरणें नील रंग की ओर आकर्षित ज्यादा ही होती है। सूर्य की किरणों से यह नील विपरीत रंग होने से सूर्य की किरणों को यह रंग अधिक ही खिंचता है। जिससे गर्मी ज्यादा ही लगेगी। नील वस्त्र से छन कर आयी हुई गर्मी स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होगी तथा सफेद वस्त्र पर सूर्य की किरणें अपना प्रभाव नहीं डाल सकती और यदि थोड़ा बहुत जमाती है तो भी शरीर के लिये स्वास्थ्य वर्धक ही होती है। इसलिये सफेद वस्त्र ही धारण करना चाहिये।

नील वस्त्र सभी दृष्टियों से हानिकारक सिद्ध होता है। नीले या काले वस्त्र में मैल गंदगी का साम्राज्य होता है क्योंकि वह आँखों से तो दिखाई पड़ता ही नहीं है। सफेद वस्त्र में मैल छुपाने की कुछ भी गुंजाइश नहीं

है। सफेद वस्त्रों से भक्त की पहचान होती है और नीले रंग से चाण्डाल दुष्टता की पहचान होती है।

श्री देवजी ने जब बिश्नोई बनाये थे। तब सभी के लिये यह नियम लागू करते हुए बतलाया था कि अब आप लोग सज्जन हो गये हैं। आपकी पहचान सफेद वस्त्रों द्वारा होगी। आप लोग हृदय की कालुष्यता त्याग चुके हैं तो अब वस्त्रों की भी कालुष्यता त्याग दीजिये। यही नील वस्त्र त्याग रूपी इस नियम को बनाने का उद्धेश्य था और यह नियम सर्वथा शास्त्र सम्मत, वैज्ञानिक की कसौटी पर खरा उतरने वाला है यदि इसके सम्बन्ध में संदेह होता है तो अवश्य ही विचार करके देखिये, समाधान मिलेगा।

विशेष- इस प्रकार से उनतीस नियमों की व्याख्या पूर्ण हुई तथा उनतीस नियमों के अन्त में एक दोहा भी कहा जाता है वह इस प्रकार से है-

दोहा

उणतीस धर्म की आखड़ी, हिरदै धरियो जोय।
जाम्भेजी कृपा करी, नाम विश्नोई होय।

इन्हीं उनतीस नियमों को धर्म भी कहा जाता है। ये सभी नियम मिलकर एक धर्म विशेष का स्वरूप प्रदान करते हैं। जिस प्रकार से शरीर के अंग प्रत्यंग सभी मिलकर एक शरीर की संज्ञा प्रदान करते हैं। जैसे हाथ, पांव, कान आदि सभी तो पृथक्-पृथक् शरीर ही है और सम्मिलित रूप में भी शरीर ही है। उसी प्रकार से ये उनतीस नियम भी पृथक्-पृथक् भी धर्म कहे जा सकते हैं और सभी सम्मिलित रूप को भी बिश्नोई धर्म की संज्ञा दी जा सकती है। जो कोई भी व्यक्ति इन बीस और नौ नियमों का पालन करेगा इन नियमों के अनुसार जीवन यापन करेगा वही बिश्नोई कहलायेगा क्योंकि बीस और नौ मिलकर ही बिश्नोई बनते है। इसलिये हम लोग बीस और नौ नियमों को बिश्नोई धर्म कहते हैं।

विशेष - एक वृक्ष के भाग जैसे जड़, मूल, तना, डालियाँ, पते इत्यादि जब तक आपस में जुड़े हुऐ होते है तब तक वह हरा-भरा रहता है तथा उसमें फल-फूल भी लगते है। किन्तु इन भागों में से एक भी भाग खण्डित हो जाता है तो वह मृत हो जाता है एवं उसके कोई फल-फूल नहीं लगते तथा सभी भाग बिखर जाने पर वह पेड़ नहीं कहलाता है। उसी प्रकार मनुष्य भी पूरे उनतीस नियमों का पालन करेगा तभी बिश्नोई कहलायेगा। एक भी नियम खण्डित हो जाने पर वह बिश्नोई कहलाने का हकदार नहीं है। इसलिये नियमों का पूरा ध्यान रखते हुऐ उनका पालन करें।

सभी जातियों में अपना अपना धर्म विशेष रहता है जिससे उनकी पृथक् पहचान होती है। उसी प्रकार से बिश्नोइयों में भी यह विशेष धर्मत्व रहता है। इसलिये ये एक पृथक् जाति विशेष से जाने जाते हैं। प्राचीन काल में बीस गिनने के पश्चात् फिर एक से गिनना प्रारम्भ करते थे तथा यही परंपरा संस्कृत भाषा में भी है। इसलिये बीस और नौ के योग से बिश्नोई कहना उचित ही है तथा विशेषत: विष्णु के उपासक होने से भी बिश्नोई कहा जा सकता है किन्तु विष्णु की उपासना तो एक नियम के रूप में बतलाई है। यह धर्म की सम्पूर्णता न होकर एक अंग मात्र ही है। इसलिये केवल विष्णु की उपासना करने वाला ही बिश्नोई नहीं हो जाता। इन उनतीस नियमों में कुछ नियम तो प्राचीन काल से मानवता के नियम जो चले आये हैं उन्हें ही पुन: नये ढ़ंग से बतलाये हैं तथा कुछ नियम जैसे तीस दिन सूतक, पांच ऋतुवन्ती न्यारो, सेरो करो स्नान, जल इन्धन छान कर लेना, अमावस्या का व्रत रखना, विष्णु भगवान का भजन करना, रूँख लीलो नहीं घावै, अमल तम्बाकू भांग, मद्य मांस का निषेध, नीले वस्त्र धारण न करना, ये नियम परंपरा की लीक से हटकर सर्वथा नये

ही मालूम पड़ते हैं। ये नियम शायद ही किसी महापुरुष ने बतलाये हों।

आधुनिक समाज को हो सकता है इनमें कुछ आश्चर्य हो सकता है, संदेह भी हो सकता है। किन्तु विचार करके देखने से तो ये अपनी कसौटी पर खरे उतरेंगे। उस समय तो शायद ही इन नियमों की इतनी आवश्यकता थी जितनी इस समय पड़ रही है और ज्यों-ज्यों समय आगे बढ़ेगा त्यों-त्यों इन उनतीस नियमों की महती आवश्यकता महसूस होगी इसलिये ये नियम शाश्वत है।

★★★ ★★★

अभिवादन प्रणाली-विवध विषय

किसी भी समाज व्यक्ति के पहचान के लिये अलग-अलग नमस्कार करने की प्रणाली हुआ करती है वैसे सभी अभिवादन शब्दों में अर्थ-भाव की एकता होते हुऐ भी शब्दों में अन्तर जरूर रखा गया है। जिससे अभिवादन कर्त्ता की पहचान हो जाये। बिश्नोई समाज में भी अन्य समाज से भिन्न प्रणाली है। गृहस्थ लोगों के लिये तो जब आपस में मिलते हैं तो ''नमन प्रणाम'' कहते हैं तब सामने वाले जिसे प्रणाम किया था वह उत्तर देता है कि ''जाम्भोजी नै, विष्णु नै'' ऐसा कहते हुए जबाब देता है। जब गायणा समाज किसी बिश्नोई से भेंट करेगा तो कहेगा ''नमन नमन'' यही उनकी पहचान होगी और साधु भगवें वेशधारी से गृहस्थ लोग केवल ''नमन महाराज'' ऐसा कहेंगे तथा साधु समाज का आपस में अभिवादन भी यही है। यही साधुओं की पहचान होती है। यह परंपरा जम्भेश्वर जी ने प्रारम्भकाल से ही शुरू की थी। इससे पहचानने में सुविधा होती है। इसलिये अपनी पहचान के लिये बिश्नोई चाहे किसी भी देश में रहे ऐसा ही अभिवादन करें।

साधु- साधु दो प्रकार के होते हैं विरक्त तथा महन्त। विरक्त साधुओं के लिये कोई प्रतिबन्ध आदि लागू नहीं होता और आश्रमधारी महन्त होते हैं उनके लिये हवन करना, सुगरा-संजीवन मंत्र देना तथा आवश्यकतानुसार जागरण लगाना सत्संग करना। समयानुसार विवाह आदि संस्कार भी करवाना, ये कर्त्तव्य कर्म श्री जम्भेश्वर जी ने बतलाये थे तथा मुख्य कर्म तो धर्म का प्रचार प्रसार करने के लिये प्रयत्नशील रहना। इसके लिये ये सत्संग, साहित्य की रचना करना तथा प्रवचन देना है तथा आत्मोन्नति के लिये जप, ध्यान, योग आदि कार्य करना ही है।

थापन- थापनों का मुख्य कर्त्तव्य कलश स्थापना करना है इसलिये जम्भेश्वर जी ने थापन नियुक्त किये थे। किन्तु थापनों ने यह कार्य करना प्रायः छोड़ दिया है। तब साधुओं ने इस कार्य को संभाला किन्तु साधु वर्ग भी सभी जगहों पर नहीं पहुँच सके तब यह कार्य गायणा ने संस्कार करने का कार्य संभाला है।

गायणा- गायणों के लिये वंशावली लिखना, विवाह, उत्सव, जागरण के शुभ अवसरों पर गाना बजाना, मृतक का दान ग्रहण करना, ये तीन कार्य प्रमुखता से सौंपे गये थे। किन्तु समयानुसार सभी के अधिकारों में परिवर्तन आया है।

संस्कार- जन्म संस्कार, गुरु दीक्षा-सुगरा संस्कार, विवाह संस्कार तथा मृत्यु संस्कार प्रमुख रूप से विधान किये है। इनके अतिरिक्त भी होली पाहल संस्कार तथा अन्य समय में जब कभी अपवित्रता की आशंका होने

पर हवन पाहल करके संस्कार किया जाता है।

जागरण– वैसे तो महीने में एक बार प्रत्येक बिश्नोई के घर में जागरण लगना चाहिये और यदि महीने में एक बार नहीं लग सके तो वर्ष में एक जागरण तो अवश्य ही लगाना चाहिये। ऐसी जाम्भोजी की आज्ञा है। ''सांझे जमो सवेरे थापण'' जागरण में साखियाँ, हरजस और जाम्भाणी कथाओं का ही विशेष रूप से गायन होना चाहिये। ऐसा जागरण एक प्रकार से सत्संग का ही रूप होता है। सभी लोग मिल बैठ कर ज्ञान की चर्चा करें। इसके लिये रात्रि का ही समय उपयुक्त है जागरण तो स्वयं ही करना चाहिये विधान तो यही है और यदि स्वयं न कर सके तो किसी दूसरे सज्जन पुरुष से जो पूर्णतया ज्ञाता हो, सदाचारी हो, उससे सत्संग करवा सकते हैं। प्रात:काल हवन कलश स्थापना का विधान है।

बिश्नोई गृहस्थ– बिश्नोई जनों का मुख्य कार्य खेती करना है तथा खेती ही सबसे उत्तम धन्धा माना गया है। किसान सभी का पालन पोषण करने वाला होता है। समयानुसार आधुनिक युग में व्यापार, नौकरी आदि में भी रूचि लेते है अतिथि सेवा, गृह तथा कृषि कार्य में पूर्णतया दक्ष, शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, दृष्टि से पूर्ण, बलिष्ठ होना बिश्नोई की विशेषता है।

कलश स्थापना– सर्वप्रथम आदि कलश की स्थापना बाल निरंजन गोरख यति ने की थी तत्पश्चात् क्रम, काल, देश के अनुसार प्रहलाद ने सतयुग में स्थापना की थी। वही कलश प्रमाणित रूप से प्रचलित हुआ तथा मानव दृष्टि का यह पहला कलश था। वहीं से बिश्नोई पन्थ प्रारम्भ होता है। इसलिये बिश्नोइयों को प्रहलाद पन्थी भी कहा जाता है उसी परंपरा को त्रेता युग में हरिश्चन्द्र ने आगे बढ़ाया और द्वापर में युधिष्ठिर ने कलश स्थापना करके आगे बढ़ाया था तथा कलयुग में संवत् 1542 कार्तिक कृष्ण पक्ष अष्टमी को गुरु जम्भेश्वर जी ने कलश की स्थापना करके पाहल पिलाकर बिश्नोई बनाया। मार्ग से भटके हुए लोगों को पुन: सचेत करके मार्ग में लाये। यही परंपरा अद्यपर्यन्त चली आ रही है।

त्योहार–होली का त्योहार आदि भक्त प्रहलाद की यादगार में मनाते है। सांय को तो प्रहलाद को लेकर होलिका जब अग्नि में प्रवेश करती है तो उस समय को शोक रूप में मनाते हैं। अन्य लोगों की भांति राग रंग कीचड़ आदि से राक्षसों की भांति नहीं खेलते सांय को शोक मनाते हैं। प्रात: काल जब प्रहलाद सकुशल लौट आता है और होलिका जल मर जाती है तो उस खुशी में भी राग रंग आदि कीचड़ उछालने वाला राक्षसी कार्य नहीं करते किन्तु हवन करते हैं और एक दूसरे का प्रेम से मिलन होता है कि प्रहलाद बच करके आ गया और होलिका मारी गई। जब अग्नि से भी परमात्मा विष्णु ने प्रहलाद को बचा लिया तब तो लोगों को पूर्णतया विश्वास हो गया। उसी दिन ही प्रहलाद ने कलश की स्थापना करके प्रहलाद पंथ की स्थापना की थी। वही उसी दिन का प्रहलाद पंथ ही यह वर्तमान बिश्नोई पन्थ है। इसलिये होली का पाहल ग्रहण करना अनिवार्य है होली के दिन ही आपसी मनमुटाव लड़ाई-झगड़े आदि सामाजिक समस्याएँ उसी दिन सुलझाई जाती है तथा प्रेम भाव का संचार किया जाता है और हवन पाहल के बाद होली के दिन प्रहलाद चरित्र सुनाया जाता है। इस प्रकार से प्रत्येक वर्ष होली के दिन नये रूप में पंथ स्थापना दिवस मनाते हैं।

दीपावली, जन्माष्टमी, चरित नवमी-गुरु जाम्भोजी का निर्वाण दिवस'' तथा आजकल बिश्नोई स्थापना दिवस भी मनाने लग गये हैं। किन्तु वास्तविक बिश्नोई दिवस तो होली ही है। जिसको प्राचीन समय से ही मनाते आ रहे हैं।

मेले– मुख्य रूप से प्रत्येक अमावस्या को गाँव-गाँव में लोग एक जगह मन्दिर चौक पर एकत्रित होकर हवन

सत्संग करते हैं वे मेले के रूप में होता ही है। इनके अलावा भी मुकाम में फाल्गुन की अमावस्या को सबसे बड़ा मेला लगता है तथा दूसरा छोटा मेला आसोज की अमावस्या को लगता है। इसी प्रकार से जाम्भोलाव पर भी चैत्र की अमावस्या को बड़ा मेला तथा भादवे की पूर्णिमा को छोटा मेला लगता है। जाँगलू के मन्दिर में भी प्रत्येक अमावस्या के अतिरिक्त चैत्र अमावस्या एवं भादवे की अमावस्या को बड़े मेले लगते हैं। उतरप्रदेश में लोदीपुर धाम में चैत्र की अमावस्या को मेला भरता है। हिसार में जन्माष्टमी को मेला लगता है तथा खेजड़ली ग्राम में 363 शहीदों की जगह पर भादवा सुदी दसमी को मेला लगता है। इनके अतिरिक्त भी छोटे-मोटे असंख्य मेले लगते हैं जहाँ पर गुरु महाराज को श्रद्धा सुमन अर्पित करने के लिये लाखों नर नारी एकत्रित होते हैं।

साथरियां एवं धाम- साथरी एवं धाम उन स्थानों को कहा जाता है जहाँ पर कभी किसी समय गुरु जम्भेश्वर जी ने कुछ समय के लिये निवास किया था। उनमें सर्वप्रथम श्री देवजी का जन्म स्थान पींपासर, सम्भराथल, मुकाम, जाम्बोलाव, लालासर, रोटू, रामड़ावास, जांगलू, लोहावट, लोदीपुर ये तो प्रमुख स्थान तथा परम पवित्र माने जाते हैं। इनके अतिरिक्त भी अन्य स्थान है जहाँ पर प्राचीन साथरियाँ बनी हुई है, जिनमें कांठ, नगीना, पुर, दरीबा, संभेलिया, रूड़कली, गुड़ा, भींयासर, रणसीसर, रावतखेड़ा, हरिद्वार, ऋषिकेश, मेहराणा इत्यादि प्राचीन स्थान मन्दिर है। आधुनिक काल में भी नये मन्दिरों का अन्तपार ही नहीं है। प्रत्येक गाँव शहर जहाँ पर बिश्नोई रहते हैं वहाँ पर मन्दिर यज्ञशाला अवश्य ही बने हुऐ हैं।

भण्डारे- बिश्नोई पन्थ प्रारम्भ होने के कुछ दिन पश्चात् ही चौबीस जगहों पर सदाव्रत प्रारम्भ किया था। जिसका खर्चा समाज उठाता था। वहाँ पर आने-जाने वाले अतिथियों को भोजन मिलता था। यह परंपरा काफी समय तक चलती रही किन्तु अन्न-धन के अभाव तथा एकता के बिना यह पवित्र पुण्यकारक कार्य बन्द हो गया। आधुनिक समय में पुनः इसी परंपरा को कायम करने की आवश्यकता है तथा इस समय साधन सम्पन्नता भी है। इसलिये कर भी सकते हैं। कई स्थानों में आश्रमों में साथरियों में भण्डारे की व्यवस्था अबाध गति से चल भी रही है।

बिश्नोइयों के गोत्र- नव और बीस नियम धारण करके गुरु के शिष्य बिश्नोई बन जाने पर भी उनके जो भी पीछे के गोत्र जाति थी, वह नहीं बदली गयी थी। उस समय लगभग दो सौ गोत्र-जाति के बिश्नोई बने थे। ठीक वही गोत्र अद्यपर्यन्त भी उसी प्रकार से चल रहे है। विवाह-शादी या अन्य भाई बन्धुओं की निकटता या दूर का सम्बन्ध देखने में गोत्र ही काम आता है। क्योंकि गोत्र किसी एक पुरुष विशेष के नाम से चलता है। उनकी संतान आपस में भाई बन्धु का नाता चलाते है। इसलिये स्वकीय गोत्र में विवाह नहीं होते।

सबदवाणी- गुरु जम्भेश्वर जी द्वारा कहे गये एक सौ बीस सबद तथा कुछ अन्य मन्त्र आदि इस समय समाज में प्रचलित है। वैसे श्री देवजी ने अनन्त सबद कहे थे किन्तु लिपिबद्ध नहीं किये गये जिस कारण से लुप्त हो गये। ये वर्तमान में प्रचलित सबद भी नाथोजी के कण्ठस्थ थे। नाथोजी ने अपने शिष्य वील्होजी को सुनाये थे। वील्होजी ने आगे चलकर इनको लिपिबद्ध किये थे। इस समय ये सबद जिनकी व्याख्या इसमें की गई है ये समाज में प्रचलित है। हवन करते समय सस्वर सबदों का उच्चारण किया जाता है। जो वेद मन्त्रों की ध्वनि से फल मिलता है वही इन सबदों का उच्चारण करने से मिलता है। इसलिये ये सबद वेद वाणी ही है। वेद भी किसी की नकल नहीं है उसी प्रकार सबद भी जाम्भोजी की अनुभव वाणी है। किसी अन्य शास्त्र की नकल नहीं है। भगवान के श्री

मुख से निकले हुए सबद ये गीता है।

मंत्र– इन शब्दों के अतिरिक्त कुछ मंत्र रूप में भी बतलाये हैं। जिनमें संध्या मंत्र, बालक मन्त्र, सुगरा मन्त्र, साधु मन्त्र, कलश पूजा मन्त्र तथा पाहल मन्त्र इत्यादि प्रसिद्ध हैं जिनकी व्याख्या पीछे कर आये हैं।

साखी– बिश्नोई कवियों द्वारा अपने सद्गुरु परमात्मा की हृदय से की गई प्रार्थना जो आज साक्षी रूप में विद्यमान है। ये साखियाँ विशेष रूप से जागरण में मधुर ध्वनि से अनेक राग-रागनियों में गायी जाती है उन्हें साखी कहा जाता है। इनके रचयिता जाम्भोजी के सामने ही विद्यमान थे, वहीं से प्रारम्भ होकर अद्यपर्यन्त अबाध गति से नयी नयी साखियों की रचना हो रही है। रचनाकारों में प्रमुखत: ऊदोजी, आलम जी, वील्होजी, केशोजी, सुरजन जी, हरजी, परमानन्द जी, गोकुल जी, साहबराम जी आदि प्रसिद्ध है तथा सम्पूर्ण कवियों की संख्या तो लगभग 150 से भी ज्यादा है। ये सभी साखियां ''साखी भावार्थ प्रकाश'' नाम से पुस्तक रूप में प्रकाशित हो चुकी है। पृथक से अध्ययन करने योग्य है। प्राचीन समय में सभी कवि लोगों की रचनाएँ छन्द-कविता के रूप में ही होती थी पद्य लेखन परंपरा थी। इस समय गद्य पद्य दोनों विधाएँ प्रचलित हो गई है। साखियों की तरह आरतियाँ भी गेय है।

हरजस– परमात्मा के यश का गान करना ही हरजस कहलाता है। किन्तु अद्यपर्यन्त सभी हरजस नियमबद्ध तरीके से एक साथ पुस्तक रूप में प्रकाशित नहीं हो सके हैं। यदा-कदा छुट-पुट हरजस ही प्रकाशित हो पाये हैं। हस्तलिखित साहित्य में कितना भण्डार है, यह तो बताना कठिन है। किन्तु इतना निश्चित है कि साखियों की भांति हरजस भी बहुत ही महत्त्वपूर्ण साहित्य की कड़ी है।

आख्यान कथाएँ– गुरु जम्भेश्वर जी का जीवन चरित्र तथा बिश्नोई समाज का प्रमाणित इतिहास एवं प्रमुख घटनाएँ दोहा, चौपाई, छन्द, छप्पय इत्यादि के रूप में रचना की गई है। जिसे प्रबन्ध काव्य भी कहा जा सकता है। प्राय सभी घटनाएँ काव्यमय शैली मे तथा मरुभाषा में कथन की गई है। ये कथाएँ वील्होजी से प्रारम्भ हुई थी। उनके ही शिष्य सुरजन जी, केशोजी ने लिखी थी। जिनका संकलन परमानन्द जी ने किया था वह ''पोथो ग्रन्थ ग्यान'' इस समय हमारे पास उपलब्ध है। उन्हीं परंपरा में साहबराम जी ने जम्भसार ग्रन्थ की रचना की थी। जिसमें कुछ तो अपने से पूर्व गुरु जनों की कथाओं को विस्तार से संग्रह किया तथा कुछ स्वरचित नवीन रचनाओं का समावेश किया है। यह विशाल ग्रन्थ दो भागों में बिश्नोई मन्दिर ऋषिकेश से प्रकाशित हो चुका है। इस समय उपलब्ध है। परमानन्द जी का पोथा ग्रन्थ ग्यान तथा जम्भसार का आधार लेकर मैंने इस समय जाम्भाणी साहित्य का भण्डार ''जाम्भा-पुराण'' के नाम से सरल हिन्दी भाषा में पौराणिक शैली में लिखा है यह भी इस समय प्रकाशित हो चुका है। साहित्य की दृष्टि से तो बिश्नोई समाज के पास अपार धन राशि है। इनका सदुपयोग समाज नहीं कर पा रहा है तो यह लापरवाही ही कही जायेगी। उपर्युक्त विधाओं के अतिरिक्त भी अन्य सभी विधाओं को संत कवियों ने अपनाया है तथा साहित्य का निर्माण किया है। आधुनिक समय में भी प्रयास चल रहे हैं।

आरती– आर्तभाव से परमात्मा की प्रार्थना करने को आरती कहते हैं। किन्तु जन साधारण तथा कवि द्वारा की जाने वाली आरती-प्रार्थना में अन्तर होता है जितनी सुन्दरता से दिव्य शब्दों में भावों को गूंथ करके कवि ही प्रार्थना कर सकता है। उतनी सामान्य जन नहीं कर सकता। इसलिये बिश्नोई संत कवियों ने जिसमें हजूरी कवि ऊदोजी नैण प्रसिद्ध है। उन्होंने आरतियों की रचना की है तथा अन्य भी संत-कवियों ने समयानुसार आरतियों की रचना की है वे सभी प्रात: सांय काल में हवन संध्या के पश्चात् गायी जाती है। वर्तमान समय में

प्राय: बहुत से लोगों के कण्ठस्थ है तथा कई पुस्तकों में प्रकाशित भी हो चुकी हैं।

धूप मन्त्र– हवन पूर्ण हो जाने पर यज्ञदेव की स्तुति के रूप में धूप मन्त्रों को बोला जाता है। इन फुटकर मन्त्रों के रचयिता विशेष रूप से वील्होजी, चारण कवि सुरजन जी केशोजी एवं साहबराम जी का नाम आता है इस समय इन्हीं के धूप मन्त्र प्रचलित है तथा सबदवाणी आदि में प्रकाशित हो चुके हैं।

जम्भेश्वरीय संवत्– समाज में जम्भेश्वरीय संवत् पूर्व में प्रचलित था। इसका प्रारम्भ जम्भेश्वर जी के वैकुण्ठ की तिथि अर्थात् सं. 1593 की मिंगसर वदि नवमी से प्रारम्भ माना जाता है। वर्तमान में प्रचलित विक्रम संवत् से 1593 घटा देने से जम्भेश्वरीय संवत् निकल जाता है।

औसर– औसर शब्द का अर्थ है अवसर अर्थात् वृद्ध पुरुष की मृत्यु के पश्चात् तीसरे दिन किये जाने वाला मृत्यु भोज। यह परंपरा प्राचीन काल से चली आ रही है। इस परंपरा का मूल कारण यह था कि जीव को शरीर छूट जाने के बाद भी तीन दिन का अवसर प्रदान किया जाता है। उसकी इच्छा बिना शरीर के भी पूर्ण की जाती है तथा उन्हें मोह से छूटने का अवसर प्रदान केवल तीन दिन का दिया जाता है। जिसमें सगे-सम्बन्धी मिलने के लिये आते हैं और तीसरे दिन (कागोल) या जलांजलि-पूड़ी देकर विदाई दी जाती है। वह एक प्रकार का विदाई समारोह होता है। उसमें अन्तिम मिलन तो उस जाने वाले जीव से ही होता है तथा विदाई भी होती है। उस विदाई में सम्मिलित हुए लोगों के लिये भोजन की व्यवस्था ही मृत्यु भोज का रूप धारण कर लिया है। इसलिये मृत्यु पातक तीन दिन का ही माना जाता है तीसरे दिन विदाई समय हवन पाहल द्वारा संस्कार कर दिया जाता है तथा मिलन भी तीन ही दिन का होता है तथा जीव को मोह-माया तोड़ने का समय भी तीन दिन का होता है। इसी बात को शब्द के द्वारा गुरुदेव ने बताया है।

''आज मूवा कल दूसर दिन है, जो कछु सरै तो सारी।
पीछे कलियर कागा रोलो, रहसी कूक पुकारी।''

जीव के प्रस्थान करने का साधन अन्न ही होता है शरीर छूट जाने के पश्चात् जीव अन्न में प्रवेश करता है उस अन्न भोजन करने वाले के वह जीव रज-वीर्य के रूप में प्रवेश करके जन्म लेता है। इसलिये इस अवसर पर अपने भाई बन्धुओं को भोजन अवश्य ही खिलाना चाहिये जिनके संतान होने की संभावना हो। जिससे अपने ही परिवार जाति में जन्म ले सके और अपने पूर्व जन्म के संस्कारों का विकास सरलता से कर सके, उन संस्कारों को फूलने फलने का अवसर प्राप्त हो सके जाति व्यवस्था चलती रहे। वर्ण संकर संतान पैदा न हो जाये। वासना ही दूसरे जन्म लेने में कारण होती है अधिकतर वासना अपने प्रिय, अपने ही लोगों में जन्म लेने की होती है वह वासना इस प्रकार से पूरी की जा सकती है। यही अन्त समय की जीव की युक्ति है।

यह संस्कार पूर्ण रीति से अवश्य ही करना चाहिये अपनी श्रद्धा अनुसार आगन्तुक मेहमान अपने परिवार के छोटे-बड़े जवान जिनके संतान होने की संभावना हो उन्हें अवश्य ही भोजन करवाना चाहिये। जिससे वह जीव दुर्गति को प्राप्त न हो। वह वापिस जन्म लेकर अपने ही परिवार अपने ही जैसे पवित्र श्रीमानों के घर में जन्म ले सके। यही उस जीव की भलाई का कार्य है। उसे विदाई देने का सुअवसर है। अन्यथा वह जीव सद्गति में पड़ना असंभव हैं प्रत्येक सिक्के के दो पहलू होते हैं। प्रत्येक रीति-रिवाज में कुछ अच्छाइयाँ है तो कुछ बुराइयाँ भी समय पाकर अपना प्रभाव जमा लेती है।

समयानुसार इस स्वस्थ परंपरा ने भी विकृत रूप धारण कर लिया है, जिससे गरीब आदमी के लिये

तो यह रीति-रिवाज का जंजाल भी बन जाती हैं कुछ समाज के पंच लोग उसे मजबूर भी करते देखे गये हैं। ऐसा नहीं होना चाहिये। दूसरे के देखा देखी भी तो नहीं करना चाहिये। अपनी जितनी ओकात हो उसी अनुसार कार्य करना चाहिये। सामाजिक बन्धन अन्धा होता है योग्यता अयोग्यता से नहीं नाप पाता।

बाल विवाह- केवल बिश्नोई ही नहीं अपितु राजस्थान के अन्य लोग भी छोटे-छोटे बच्चों का विवाह कर देते हैं। प्राचीन समय में तो भले ही कुछ कारण रहा हो किन्तु आधुनिक समय में ऐसी कोई मजबूरी नहीं है। बाल विवाह करने में सबसे बड़ा कारण तो पहले यह था कि कोई वृद्ध स्वर्गवासी हो गया तो उसके पीछे होने वाले औसर में ही विवाह भी कर दिये जाते थे तथा दूसरा कारण यह भी है कि आजकल लोग सामूहिक विवाह के द्वारा कम खर्च करने की बात करते हैं यह तो इसी प्रकार से हो सकता है तथा यह प्रथा बिश्नोइयों में तो प्राय: चली आ रही है। छोटी आयु में विवाह करने का मतलब तो बस केवल भविष्य में होने वाले व्यर्थ के खर्चे को कम करना ही होता है।

बाल्यावस्था में विवाह हो जाने पर यदि लड़के की मृत्यु हो जाती है तो पुन: विवाह करने की छूट होती है। बाल विधवा लड़की घर में नहीं रहती दुबारा विवाह हो जाता है। प्रत्येक रीति रिवाज में कुछ अच्छाइयाँ होती है तो कुछ बुराइयाँ भी होती है। एक सिक्के के दो पहलू तो होते ही है।

दहेज प्रथा- प्राचीन काल से ही हिन्दू समाज में दहेज की प्रथा चली आ रही है। विवाह के बाद अपनी पुत्री को प्रेम से विदाई देते समय सप्रेम उपहार दिया जाता था। इसमें कुछ भी बुराई भी नहीं थी स्वस्थ परंपरा थी। वह भेंट अपनी खुशी सामर्थ्यानुसार ही हुआ करती थी। उस समय नारी समाज का सम्मान था। अब भी अधिकतर बिश्नोई समाज में ऐसा ही होता है जिनको आजकल पिछड़े हुए बतलाते हैं किन्तु तथाकथित सभ्य समाज धन के लोभ में स्वयं क्या करने जा रहे हैं। इसका उनको स्वयं को ही पता नहीं है। इस समय की दहेज प्रथा की हवा से धनवान बिश्नोई समाज के लोग भी वंचित नहीं है। जिस दहेज प्रथा के परिणाम नित्य प्रति सामने आ रहे हैं। रोज हत्याएँ, मार-पीट, लड़ाई-झगड़े, तलाक आदि सामने हैं जीवन को रूपयों से तोला जायेगा तो फिर आपसी प्रेम भाव कहाँ से रहेगा तथा बिना प्रेम भाव के तो जीवन सूख कर ठूंठ हो जायेगा। जीवन रस ही समाप्त हो जायेगा। वह धन कहाँ काम आयेगा। यही है दहेज के दुष्परिणाम।

(परम पावनी गंगा तट पर स्थित श्री बिश्नोई मन्दिर, ऋषिकेश निवासी परम पूज्य स्वामी ज्ञान प्रकाश जी के शिष्य कृष्णानन्द आचार्य द्वारा लिखित सबदवाणी जम्भसागर टीका दिनांक 18-5-1989 तदनुसार वैशाख शुक्ल त्रयोदशी वृहस्पतिवार को शुभारम्भ करके एक अगस्त श्रावण अमावस्या मंगलवार को पूर्ण हुई तथा दीपावली के शुभ अवसर पर प्रकाशित हुई है।)

''समाप्तो अयं ग्रन्थ''

★★★ ★★★

जम्भ चरित्र ध्वनि

आये म्हारे जम्भ गुरु जगदीश, सुरनर मुनि हरि नै नावें सीस।टेक।
गुरु आप सम्भराथल आये हो, म्हारे संतों के मन भाये हो।टेक।
लोहट घर अवतारा हो, एतो धन धन भाग हमारा हो।1।
अलख निरंजन आये हो, एतो म्हारे संतों के मन भाये हो।2।
घट घट मांय विराजै हो, एतो सरस शब्द धुनि गाजै हो।3।
जांके चरण कोई ध्यावे हो, एतो चार पदार्थ पावे हो।4।
सम्भराथल आसण साजै हो, एतो झिगमिग जोत प्रकाशे हो।5।
नंद घर गऊवें चारी हो, ऐतो नख पर गिरवर धारी हो।6।
विराट रूप अखंडा हो, जाके रोम कोट ब्रह्मण्डा हो।7।
इस धुन कूं कोई गावे हो, एतो वास वैकुण्ठे पावे हो।8।
जम्भगुरु जी की आशा हो, ऐतो जस गावे गंगादासा हो।9।

आरती - 1

आरती कीजै गुरु जम्भ जती की, भगत उधारण प्राण पति की।टेक।
पहली आरती लोहट घर आये, बिन बादल प्रभु इमिया झुराये।1।
दूसरी आरती पींपासर आये, दूदा जी को प्रभु परचो दिखाये।2।
तीसरी आरती सम्भराथल आये, पूल्है जी को प्रभु स्वर्ग दिखाये।3।
चौथी आरती अनू निवाये, भूंच लोक प्रभु पात कहाये।4।
पाँचवी आरती ऊदो जन गावै, वास वैकुण्ठ अमर पद पावै।5।

आरती-2

आरती हो जी सम्भराथल देव, विष्णु हर की आरती जय।
थारी करे हो हांसल दे माय, थारी करे हो भक्त लिवलाय।टेक।
सुर तेतीसां सेवक जांके, इन्द्रादिक सब देव।
ज्योति स्वरूपी आप निरंजन, कोई एक जानत भेव।1।
पूर्ण सिद्ध जम्भगुरु स्वामी, अवतरे केवलि एक।
अन्धकार के नाशन कारण, हुए हुए आप अलेख।2।
सम्भराथल हरि आन विराजे, तिमिर भये सब दूर।
सांगा राणा और नरेशा, आये आये सकल हजूर।3।
सम्भराथल की अद्भुत शोभा, वरणी न जात अपार।
सन्त मण्डली निकट विराजे, निर्गुण शब्द उच्चार।4।
वर्ष इक्यावन देव दया कर, कीन्हों पर उपकार।

ज्ञान ध्यान के शब्द सुणाये, तारण भव जल पार।5।
पंथ जाम्भाणों सत कर जाणों, यह खांडे की धार।
सत प्रीत सूं करो कीर्तन, इच्छा फल दातार।6।
आन पंथ को चित से टारो, जम्भेश्वर उर ध्यान।
होम जाप शुद्ध भाव से कीजै, पावो पद निर्वाण।7।
भक्त उद्धारण काज संवारण, श्री जम्भ गुरु निज नाम।
विघ्न निवारण शरण तुम्हारी, मंगल के सुख धाम।8।
लोहट नन्दन दुष्ट निकन्दन, श्री जम्भ गुरु अवतार।
ब्रह्मानन्द शरण सतगुरु की, आवागवण निवार।9।

दोहा

संध्या सुमरण आरती, भजन भरोसे दास। मनसा वाचा कर्मणा, सतगुरु चरण निवास।
पींपासर सूं परगटे, द्वादश कारण देव। ब्रह्मादिक पावै नहीं, अद्‌भुत जांको भेव।
सीस धरणी धर करत हूँ, नमस्कार सौ बार। इष्ट देव बाबो जम्भगुरु, लीला हित अवतार।

आरती – 3

आरती कीजै गुरु जम्भ तुम्हारी, चरण शरण मोही राख मुरारी।टेक।
पहली आरती उन मुन कीजै, मन वच करम चरण चित दीजै।1।
दूसरी आरती अनहद बाजा, श्रवण सुण्या प्रभु शब्द आवाजा।2।
तीसरी आरती कंठ सुर गावै, नवधा भक्ति प्रभु प्रेम रस पावै।3।
चौथी आरती हृदय में पूजा, आतम देव प्रभु और नहीं दूजा।4।
पांचवी आरती प्रेम प्रकाशा, कहत ऊदो साधु चरण निवासा।5।

आरती – 4

आरती कीजै श्री जम्भगुरु देवा, पार नहीं पावै बाबो अलख अभेवा।टेक।
पहली आरती परम गुरु आये, तेज पुंज काया दरसाये।1।
दूसरी आरती देव विराजै, अनंत कला सतगुरु छवि छाजै।2।
तीसरी आरती त्रिसूल ढ़ापै, खुध्या तृष्णा निंदरा नहीं व्यापै।3।
चौथी आरती चहुंदिश परसै, पेट पूठ नहीं सनमुख दरसै।4।
पांचवी आरती केवल भगवंता, शब्द सुण्या जोजन पर्यन्ता।
ऊदो दासजी आरती गावै, श्री जम्भगुरु जी को पार न पावै।5।

आरती – 5

आरती कीजै श्री महा विष्णु देवा, सुरनर मुनि जन करै सब सेवा। टेक।
पहली आरती शेष पर लौटे, श्री महा लक्ष्मी चरण पलोटे।1।
दूसरी आरती खीर समुद्र ध्यावै, नाभि कमल ब्रह्मा उपजाये।2।
तीसरी आरती विराट अखंडा, जांकै रोम कोट ब्रह्मण्डा।3।
चौथी आरती वैकुण्ठ विलासी, काल अगूंठ सदा ही अविनाशी।4।
पांचवीं आरती घट घट वासा, हरिगुण गावै ऊदो दासा।5।

यज्ञ पूर्णाहुति मन्त्र

दोनों मन्त्रों को तीन-तीन बार पढ़ कर आहुति प्रदान करें।

ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।
ओ३म् सर्ववै पूर्णम् स्वाहा।
ओ३म् शान्ति! शान्ति!! शान्ति!!!

''इति श्री समाप्तम्''

★★★ ★★★ ★★★